संस्कृत

भास साहित्य की समीक्षा

लेखक

डॉ० श्रीनिवास मिश्र

एम० ए०, पी-एच० डी०

रीडर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग

धर्म समाज कालेज

अलीगढ़ ।

साहित्य भण्डार

सुभाष बाजार, मेरठ-२

● प्रकाशक :
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ ।

● मूल्य : चालीस रुपये मात्र । (४०·००)

● मुद्रक
सर्वोदय प्रेस, मेरठ ।
दूरभाष : ७४३५२ ।

समर्पणम्

यत्स्नेहवञ्चितश्चाहं सेवया च विवर्जितः,
पूज्येषु 'पितृचरणेषु' कृतिश्चेयं समर्पिता ।

आशीर्वचन

मेरठ विश्वविद्यालय

दूरभाष · ७५४५४

डॉ० दीपचन्द्र शर्मा
शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०
कुलपति

डॉ० श्रीनिवास मिश्र द्वारा लिखित 'संस्कृत भाण साहित्य की समीक्षा' के प्रारूप को देखकर प्रसन्नता हुई । सस्कृत के दृश्य काव्यों में भाण एक ऐसी विधा है जिससे विद्वत् समाज भी बहुत कम परिचित रहा है । डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के 'शृङ्गार हाट' (जिसमे केवल चार भाणों का परिचय है) के अतिरिक्त इस साहित्य पर अभी तक कोई कार्य नही हुआ था । विद्वान् लेखक ने परिश्रमपूर्वक भारतवर्ष के—विशेषकर दक्षिण भारत के—सभी प्रसिद्ध प्राच्य ग्रन्थागारों से विभिन्न लिपियो मे प्राप्त प्रकाशित एव अप्रकाशित भाणो का अध्ययन किया है । इन सभी भाणो को वस्तुग्रथन एवं शैली के आधार पर संघर्ष प्रधान, भाव प्रधान, व्यंग्य प्रधान तथा वर्णना प्रधान वर्गों मे विभाजित करके प्रत्येक का शास्त्रीय एव साहित्यिक विवेचन प्रस्तुत किया है । ग्रन्थ के अन्त में वर्णित सामाजिक जीवन—सामान्य लोगो के आचार विचार, रहन सहन, आमोद प्रमोद, मनोरजन के साधन, वेशवाट एवं वेश्या जीवन, कलपत्रिका आदि—का विस्तृत वर्णन ग्रन्थ का अत्यन्त उपयोगी भाग है । इस प्रकार इस वृहत् साहित्य के अध्ययन के आधार पर निगमन प्रणाली के रूप मे भाण का स्वरूप निर्धारण करना लेखक का सर्वथा नवीन प्रयास है ।

इस मौलिक, उपयोगी ग्रन्थ के द्वारा लेखक ने सस्कृत वाङ्मय की श्रीवृद्धि की है—एतदर्थ वह बधाई के पात्र है । मैं डॉ० मिश्र के इस प्रयास के लिए उनका अभिनन्दन करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि भविष्य मे भी इस प्रकार की रचनाओं द्वारा वे सस्कृत साहित्य को समृद्ध करते रहेंगे ।

१६ अगस्त १९७८

(दीपचन्द्र शर्मा)
कुलपति
मेरठ विश्वविद्यालय

अवतरणिका

श्रव्य एवं दृश्य रूप से काव्य के दो प्रमुख भेद माने जाते हैं। इनमे श्रव्यकाव्य का रसास्वादन केवल सहृदयो को ही पाता है क्योंकि रसानुभूति के लिये जिस कवित्वमय वातावरण की अपेक्षा होती है उसका अनायास सृजन सभी व्यक्तियों के द्वारा नही हो सकता, वह एक मात्र कवि-कल्पना से ही प्रसूत होता है। इसके विपरीत दृश्य अथवा रूपक काव्य में रसानुभूति की सारी सामग्री उपयुक्त नाटक-सविधानो के द्वारा इस प्रकार सन्निविष्ट की जाती है कि रसानुभूति के लिये वातावरण स्वयमेव उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार के वातावरण या परिवेश के स्वतः उत्पन्न होने का प्रधान कारण रूपक मे सर्वविध औचित्य का सर्वथा अवलम्बन है। उदाहरणार्थ, रूपक या नाट्य काव्य में उसके पात्रो की अवस्था के अनुसार वेष-सज्जा होती है, वेष के अनुरूप गति प्रचार, तदनुकूल पाठ्य, एवं पाठ्यानुरूप अभिनय होता है (द्रष्टव्य नाट्यशास्त्र १४/६८) इसी विशेषता को ध्यान मे रखकर आचार्य अभिनवगुप्त का कथन है कि नाट्य मे भाषा, वृत्ति, काकु, नेपथ्य आदि के औचित्य के कारण ही रसवत्ता की सम्पूर्ति होती है परन्तु काव्य मे इतना औचित्य एक साथ दृष्टिगत नही होता। (अभिनवभारती)। महाकाव्य—जो श्रव्यकाव्य का सर्वश्रेष्ठ प्रकार है--की नायिका या अन्य कोई स्त्री-पात्र सस्कृत का ही प्रयोग करती है जब कि उसकी स्वाभाविक भाषा प्राकृत होती है। इसी प्रकार प्रकृत रस के प्रतिकूल भी महाकाव्य-रचयिता अपने पाण्डित्य के प्रदर्शनार्थ उबा देने वाले लम्बे वर्णनों, क्लिष्ट काव्योक्तियों एवं नाना प्रकार के वाग्वैदग्ध्यों मे यत्र-तत्र उलझते रहते है। ऐसी वस्तु-—स्थिति मे रूपक की स्वाभाविकता, औचित्य तथा रसवत्ता की पूर्णता से प्रभावित आचार्य अभिनवगुप्त अपनी अभिनवभारती में उसे ही मुख्य काव्य मानते दिखाई पड़ते हैं—"काव्य तावन्मुख्यतो दशरूपकात्मकमेव।" अन्यत्र भी "नाटकान्त कवित्वम्" तथा "काव्येषु नाटकं रम्यम्" जैसी उक्तियाँ उपलब्ध होती है।

आचार्यों ने दशविध रूपको मे नाटक एव प्रकरण के बाद ही 'भाण' को स्थान दिया है—"नाटक सप्रकरण भाण. प्रहसनं डिमः। व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्के-हामृगा इति ॥" (दशरूपक) इसी से अन्य सात रूपक-भेदो से इसकी अधिक महत्ता प्रकट होती है। नाटक आदि आदर्शवादी रूपक-भेदों की अपेक्षा यथार्थवादी रूपक-विधा होने के कारण 'भाण' वस्तुतः जन-जीवन के बहुत समीप रहा। जनता की सहज प्रवृत्तियो का इस रूपक-विधा मे निस्सकोच वर्णन हुआ जिससे यह अत्यधिक लोकप्रिय बन गया। इसकी अत्यधिक लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि इसमें एक ही अङ्क और एक ही पात्र होता है जिससे इसके अभिनय के लिये अल्प उपकरणों की ही अपेक्षा होती है। सम्भवतः यही कारण रहा है सैंकड़ों की संख्या में भाणों के

लिखे जाने का। इस प्रकार कलेवर में छोटा होने पर भी विषय-वस्तु की दृष्टि से भाण-रूपक अपना स्वतन्त्र स्थान रखता है।

सस्कृत की इतनी महत्वपूर्ण साहित्य-विधा को अपने गम्भीर चिन्तन एवं शोध का विषय बनाकर धर्म समाज कालेज, अलीगढ के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ० श्रीनिवास मिश्र ने संस्कृतानुरागी जगत् का महान् कल्याण किया। प्रस्तुत ग्रन्थ मूलतः आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये प्रस्तुत किया गया वह शोध-प्रबन्ध है जो परीक्षको के परीक्षा–निकष पर कसा जाने पर खरा उतर चुका है। डॉ०मिश्र की यह कृति सस्कृत समीक्षा जगत् की एक बहुमूल्य एव महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके सात अध्यायो मे अनेक उपादेय तथ्यो एव विचारो का उन्मीलन हुआ है। प्रथम अध्याय मे भाण-साहित्य का उद्गम. दृश्य काव्यो में उसका महत्त्व, भाण की परिभाषा एव उसके स्वरूप का विवेचन है। इसीके अन्तर्गत वर्णन की प्रधानता के आधार पर भाणो के स्वकल्पित, सघर्ष-प्रधान, भाव-प्रधान, व्यङ्ग्य-प्रधान तथा वर्णना-प्रधान—इन चार भेदो का वर्णन है। अध्यायान्त मे नान्दी, स्थापना, सन्ध्यन्तर, लास्याङ्ग, प्रवृत्ति आदि भाणोपस्कारक धर्मों एव तत्वो का भी विवेचन है। द्वितीय अध्याय मे भाण-साहित्य को तीन कालो—उद्गम और विकास काल, ह्रासकाल तथा पुनरुत्थान-काल मे विभक्त करके प्रत्येक के कवियों एवं उनकी कृतियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। तृतीय से षष्ठ अध्याय पर्यन्त चार अध्यायो मे भाणों के पूर्वोक्त चारों प्रकारों का शास्त्रीय एवं साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन अध्यायों मे प्रभूत मौलिक सामग्री मिलेगी। सप्तम अध्याय प्रस्तुत ग्रन्थ का उपसंहारात्मक है। इसमे ग्रन्थकार ने यह तथ्य प्रकाश मे लाने का प्रयास किया है कि लक्षणकारों द्वारा प्रस्तुत भाण का लक्षण लक्ष्य—विशेषत: व्यङ्ग्यप्रधान एव वर्णनाप्रधान भाणों—में समग्र रूप से घटित नही होता। भरत से लेकर विश्वनाथ पर्यन्त सभी नाट्यशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गये भाण के प्राय. एक से लक्षण के साथ ई० पू० पञ्चम शताब्दी से लेकर इसवी बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक के सुदीर्घ काल में लिखे गये सैंकड़ो भाणों का समन्वय क्यों नही होता ? इस स्वाभाविक प्रश्न के उत्तर में ग्रन्थकार का कथन है कि लक्षणकारो द्वारा दिये गये लक्षण इंगित-मात्र है। इसकी मान्यता विचारणीय अवश्य है। नाटिकाओं के सम्बन्ध मे भी कुछ ऐसी ही वस्तु स्थिति है। अत: संस्कृत नाट्य साहित्य का यह तथ्य अधिक गम्भीर चिन्तन एवं मीमांसा की अपेक्षा रखता है।

उपर्युक्त विशेषताओं के कारण डॉ० मिश्र का प्रस्तुत ग्रन्थ विवित्सुओं एव विद्वानो के लिये भी समान रूप से उपादेय होने के कारण सर्वथा सग्राह्य है। हमारी दृढ प्रतीति है कि विद्वज्जगत् मे इस उपादेय कृति का समादर होगा। एतदर्थ हमारी सारी शुभाशसा अपने श्रेष्ठ शिष्य एवं उनकी प्रस्तुत कृति के लिये है।

—आद्याप्रसाद मिश्र

आचार्य एव अध्यक्ष संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
गुरु पूर्णिमा, संवत् २०३५

भूमिका

काव्यशास्त्र एव विभिन्न काव्य भेदो के निदर्शनो के अध्ययन का अवसर प्राप्त होने पर प्रस्तुत लेखक की दृश्यकाव्यो के प्रति विशेष रुचि जाग्रत हुई। फलस्वरूप प्रसिद्ध नाटक तथा प्रकरण साहित्य का सामान्य अध्ययन करने का अवसर मिला। रूपककारो की कृतियो पर प्राचीन टीकाकारो द्वारा किये गये विषय विश्लेषण से यह प्रतीत हुआ कि कवियो की प्रतिभा लक्षणकारो द्वारा निर्धारित नियम-बन्धन के प्रति कुछ स्वतन्त्रता ग्रहण करती रही है। इस प्रवृत्ति का और व्यापक रूप देखने की इच्छा से लेखक की अन्य रूपक भेदो के अध्ययन की ओर प्रवृत्ति हुई। फलस्वरूप डिम, समवकार, वीथी प्रहसन आदि रूपक भेदो के अन्तर्गत आने वाली रचनाओं के साक्षात् अध्ययन की उत्सुकता हुई है। खोज करने पर भी इन रूपक विशेषों के पर्याप्त निदर्शन न मिलने से वह जिज्ञासा अतृप्त ही रही। इसी प्रेरणा से डिम, वीथी आदि की अपेक्षा अधिक सख्या मे उपलब्ध प्रकाशित भाणों के अध्ययन में लेखक तत्पर हुआ। इन भाणो में रूपक सामान्य की प्रवृत्ति के अतिरिक्त सामाजिक परिस्थिनि तथा साधारण जनता के जीवन का चित्रण नाटक, प्रकरण की अपेक्षा कही अधिक यथार्थ रूप में मिला। इससे प्रतीत हुआ कि भाण साहित्य आदर्शवादी अन्य रूपकों की अपेक्षा कही अधिक महत्वपूर्ण है तथा भारतीय जनजीवन का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने से अधिक सफल हुआ है। सर्वसाधारण के यथार्थ जीवन का चित्रण—जिसमे खेलकूद, मनोरंजन, सुरापान एवं भोग के आनन्दों का वर्णन अधिक है—जितना इस साहित्य मे हुआ है उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

किन्तु यह एक विचित्र बात है कि भाणो के इस सुन्दर साहित्य के पठन एवं प्रचार प्रसार का समस्त देश मे अभाव है। बहुत कम व्यक्ति इस साहित्य से परिचित है। इसका प्रथम कारण तो यह है कि सदियो की दासता के कारण हमारे देश में राष्ट्रीय रंगमंच का अभाव होने से प्राचीन अभिनय परम्परा समाप्त प्रायः हो गई। फलस्वरूप ये कृतियाँ जो अभिनय के लिए ही विशेष रूप से निर्मित हुई थी रंगमच पर स्थान न पा सकी। दूसरे, विश्वविद्यालयो में इस साहित्य को प्रश्रय नही मिला। फलस्वरूप अपने निर्धारित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त इस प्रकार का साहित्य पढ़ने की ओर अध्येताओं की प्रवृत्ति नहीं हुई। तीसरा कारण सम्भवतः यह है कि मनोरंजन के वर्तमान वैज्ञानिक साधनो—सिनेमा, रेडियो आदि—के कारण २०वी शती के आरम्भ तक प्रचुरमात्रा में प्रचलित नाट्यमण्डलियो का क्रमश. ह्रास होता जा रहा है। केवल ग्रामों में सामान्य जनता के मनोविनोद के साधन के रूप में नौटंकी की परम्परा अवश्य यत्र-तत्र उपलब्ध होती है जिसका कि मूल आधार सम्भवतः भाण साहित्य ही है। इसीसे ई० पू० से आधुनिक युग पर्यन्त लिखे गये इतने महत्वपूर्ण लोकप्रिय साहित्य से विद्वत् समाज भी सुपरिचित न हो सका।

भाण साहित्य का पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने भी बहुत कम अध्ययन किया है। एफ० डब्लू० थामस एकमात्र पाश्चात्य विद्वान् है जिन्होंने कतिपय भाणो पर प्रकाश डाला है। कीथ, मैक्डानल एव विन्टरनिट्ज ने भी प्रसिद्ध आठ दश भाणों का परिचय मात्र ही दिया है। सस्कृत साहित्य के भारतीय इतिहासकार एम० कृष्णमाचारी ने अधिकाश भाणों का उल्लेख तो किया है किन्तु उनका परिचय नही दिया है। पाश्चात्य दृष्टिकोण से संस्कृत का अध्ययन करने वाले इतिहासकार एस०-के० डे० ने भी कुछ भाणों का परिचय देकर चतुर्भाणी पर एक निबन्ध भर लिखा है। इसके अतिरिक्त प्राचीन एवं वर्तमान टीकाकारो द्वारा भी भाणो की उपेक्षा की गई। आधुनिक विद्वानो मे यदि किन्ही की इस ओर दृष्टि गई है तो वे है शृगारहाट—जिसमे चतुर्भाणी का सम्पादन है—के रचयिता डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा डा० मोतीचन्द्र। किन्तु इन विद्वानो ने भी ऐतिहासिक एव पारिभाषिक शब्दों का अर्थ निर्धारण पूर्वक तत्कालीन सामाजिक स्थिति के आलोक में केवल चार भाणो का अध्ययन प्रस्तुत किया है। शृगारहाट में रूपक की दृष्टि से इन भाणों की शास्त्रीय समालोचना का प्रयास नही किया गया है।

उपर्युक्त सामग्री को देखते हुए निश्चित ही कहा जा सकता है कि भाण साहित्य का समूचा शास्त्रीय एवं सामाजिक दृष्टि से अध्ययन सदा ही अनुसन्धान सापेक्ष रहा है। अतएव शोधकार्य के लिए यह एक उपयुक्त विषय प्रतीत हुआ। अपने निर्देशक के प्रोत्साहन एवं विपुल पाण्डुलिपियां प्राप्त होने के आश्वासन से अनुप्राणित होकर लेखक इस ओर प्रवृत्त हुआ।

इसके अनन्तर भाणो की पाण्डुलिपियाँ खोजने के प्रयास मे दक्षिण भारत के प्रायः सभी प्रसिद्ध प्राच्य विद्या सस्थानो एव पुस्तकालयों की अनेक बार यात्रा करनी पड़ी। सौभाग्य से इस प्रयास मे आशातीत संख्या मे पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई। सरस्वती भवन पुस्तकालय वाराणसी, रा० ए० सोसायिटी बम्बई तथा भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना मे एक दो के अतिरिक्त नये भाणों की पाण्डुलिपियाँ प्रायः नहीं है। यही स्थिति अहमदाबाद तथा पाटन में भी है। गायकवाड ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा में सात नये भाण प्राप्त हुए। मैसूर के ओरियन्टल रिसर्स इंस्टीट्यूट मे लगभग एक दर्जन तथा महाराज सस्कृत कालिज लाइब्रेरी में पाँच भाग प्राप्त हुए। युनिवर्सिटी मैनस्कृप्ट लाइब्रेरी त्रिवेन्द्रम् मे दश नये भाणों की पाण्डुलिपियाँ मिली। सरस्वती महल लाइब्रेरी तजौर में १४ तथा आड्यार लाइब्रेरी मद्रास में आठ नये भाण मिले। इस प्रयास में सर्वाधिक सफलता गवर्नमेन्ट ओरियन्टल मैनस्कृप्ट लाइब्रेरी मद्रास मे मिली। यहाँ लगभग ४० नये भाण उपलब्ध हुए। इस प्रकार १०० से भी अधिक इन पाण्डुलिपियो मे लगभग ६० तो व्यवस्थित, सम्पूर्ण तथा सुपाठ्य हैं शेष अव्यवस्थित, त्रुटित, असंपूर्ण एवं दुष्पाठ्य। इनमें जो भाण देवनागरी में मिले उनके पढने की तो कोई समस्या नहीं थी किन्तु चतुर्भाणी के अतिरिक्त शेष समस्त भाणो की रचना दक्षिण भारत के कवियों द्वारा होने से बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ

तेलगू, तामिल, ग्रन्थ, नन्दिनागरी, मलयालम आदि दक्षिण भारत की लिपियों मे लिखी मिली। इन्हे देवनागरी मे प्राप्त करना आवश्यक था। आगरा विश्वविद्यालय तथा धर्मसमाज कालिज, अलीगढ़ आदि विविध संस्थाओं की सहायता से इन्हे देवनागरी मे लिप्यन्तरित करवाकर प्राप्त किया गया। कुछ भाणों का अध्ययन तत्तत् संस्थाओ मे उपलब्ध लिपि विशेषज्ञो एव पण्डितो की सहायता से भी किया जा सका।

इस विपुल सामग्री के संकलन की सफलता से प्रोत्साहित लेखक को प्रतीत हुआ कि भाणो की रचना का आयाम बिस्तृत है। ईसापूर्व से लेकर २०वी शती के आरम्भ तक भारतीय इतिहास के विविध युगो एव विविध प्रदेशों मे भाण रचना हुई। इस साहित्य मे विविध काल एव प्रदेश के कवियो कीप्र वृत्ति तथा तत्कालीन सामान्य जन जीवन के स्वरूप के यथावत् ज्ञान के लिए प्रचुर सामग्री है तथा इस साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन अभी तक नही किया जा सका है। इसी अभाव की पूर्ति की ओर एक विनीत प्रयास ही प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रवृत्ति निमित्त है।

लक्षण ग्रन्थों के अवलोकन से निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि दृश्य काव्यों का उल्लेख करने वाले सभी नाट्याचार्यों ने भाण की परिभाषा दी है। इन आचार्यों मे मुख्य हैं—भरत, शिगभूपाल, सागरनन्दिन्, शारदातनय, धनंजय, विश्वनाथ, रामचन्द्रगुणचन्द्र, विद्यानाथ तथा नृसिह। इन सभी लक्षणकारो द्वारा प्रदत्त भाण के लक्षणो मे साम्य दृष्टिगोचर होता है। कतिपय लक्षणग्रन्थ ऐसे भी है जिनमे लक्षणों के साथ-साथ लक्ष्य ग्रन्थो का उल्लेख भी किया गया है। यथा साहित्यदर्पण मे लीलामधुकर का, नाटकलक्षणरत्नकोश में पत्रलेखा एव ललितानागर का उदाहरण के रूप मे उल्लेख है। किन्तु लक्ष्य रूप में उल्लिखित ये भाण आज खोज करने पर भी उपलब्ध नहीं होते। ऐसी स्थिति में लक्षणकारों ने जिन लक्ष्यो को सामने रखकर सम्भवत. अपने लक्षण स्थिर किये होंगे—उनका अध्ययन सम्भव न होने के कारण दो कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। प्रथम तो विभिन्न लक्षणकारों द्वारा दी गई परिभाषा मे समन्वय करने के लिए लक्ष्यों का अभाव तथा दूसरे, लक्षणकारों द्वारा दिये गये लक्षण उन्ही के द्वारा उल्लिखित भाणों में कहाँ तक घटित होते है इस परीक्षण की असम्भाव्यता।

प्रस्तुत लेखक ने प्राचीन लक्षणकारो द्वारा दिये गये लक्षणों का वर्तमान काल मे उपलब्ध मुद्रित एवं अमुद्रित भाणो मे समन्वय कर लक्षणों की सगति पर विचार करने का प्रयास किया है। इस प्रयास मे यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान युग में उपलब्ध लगभग २५०० वर्ष के सुदीर्घकाल मे प्रणीत भाण साहित्य की **प्रगति, विकास एवं पुनरुत्थान की विविध अवस्थाओं को निर्धारित करना तथा विविध प्रकार के भाणों का मौलिक वर्गीकरण करना, वर्गीकरण के आधार को स्थिर करना, विभिन्न वर्गों के भाणों की निजी विशेषताओं की रूपरेखा निश्चित करना एवं लक्ष्यों के आधार पर विश्लेषण से प्रसूत सामान्य सिद्धान्तों का निगमन कर प्राचीन लक्षणकारों द्वारा विश्लेषण से प्रसूत सामान्य सिद्धान्तों का निगमन कर**

प्राचीन लक्षणकारों द्वारा प्रदत्त परिभाषा के अर्थ को उन्मीलित कर विशद व्याख्या करना अथवा उसे नया रूप देना आदि प्रस्तुत लेखक का सर्वथा नवीन कार्य है।

इस प्रसङ्ग मे यह उल्लेखनीय होगा कि प्रस्तुत प्रबन्ध मे आगमन तथा निगमन दोनो ही प्रणालियाँ अपनायी गयी है। आचार्यों की भाण के सम्बन्ध में दी गई परिभाषा सामान्य को प्रत्येक भाण पर घटाते समय आगमन (इन्डक्टिव) प्रणाली का तथा प्रत्येक भाण के अध्ययन के आधार पर भाण सामान्य की परिभाषा में परिवर्तन, परिवर्धन और उसके स्वरूप के स्थिरीकरण मे निगमन (डिडक्टिव) प्रणाली का आश्रय लिया गया है।[1]

भाणो का ऐतिहासिक दृष्टि से तिथिक्रम निश्चित करना प्रस्तुत ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य नही है। अतएव तिथि निर्धारण का स्वतन्त्र प्रयास न करते हुए संस्कृत साहित्य के इतिहासकारो द्वारा स्वीकृत देशकाल का आलम्बन करते हुए प्रस्तुत लेखक ने भाण साहित्य का साहित्यिक दृष्टि से विकास एव शास्त्रीय समालोचना प्रस्तुत करने तक ही अपने को सीमित रखा है। इस आलोचनात्मक अध्यवसाय मे विवेचन का क्रम इस प्रकार है—

भाण साहित्य का उद्गम, भाण-समाख्या, लक्षण का स्वरूप और विस्तार तथा भाणो के प्रमुख कवियो का परिचय—इस प्रारम्भिक विवेचन के पश्चात् प्रत्येक भाण का शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम भाणो का वर्गीकरण और परस्पर साम्य वैषम्य के आधार पर वर्ग विशेष का स्वरूप एव लक्षण स्थिर किया है। तत्पश्चात् प्रत्येक वर्ग के अन्तर्गत आने वाले भाणों का क्रमश: विवेचन किया गया है। इस प्रकार के विवेचन मे निश्चय ही विषय की आलोचना में एकरूपता एव वर्णन क्रम मे पुनरावृत्ति हुई है। कारण, प्रत्येक भाण का लक्षणानुसारी विश्लेषण किये बिना उसकी साहित्यिक महत्ता एवं सांगोपाग सगठन का मूल्यांकन सम्भव नही है। जब तक प्रत्येक भाण का इस प्रकार विश्लेषणात्मक अध्ययन न किया जाये तब तक निगमन (डिडक्टिव) प्रणाली से भाणो के स्वरूप एवं लक्षणों का सामान्य सिद्धान्त स्थिर करना कठिन है। इसी कारण लेखक को उपर्युक्त एकरूपता एव क्रमगत पुनरावृत्ति को खेदपूर्वक सहन करना पड़ा है।

साथ ही द्वितीय अध्याय मे कवियो के साथ उनके भाणो एवं तृतीय से षष्ठ अध्यायो मे भाणो के साथ उनके कवियों का नामोल्लेख—पुनरावृत्ति होते हुए भी एक ही नाम के अनेक भाणों तथा अनेक कवियों मे भ्रमनिवारण के लिए आवश्यक हो गया।

इस प्रसग मे यह उल्लेखनीय है कि नाट्यागो—विशेषकर वीथ्यंगों एवं कुछ लास्यांगों—की परिभाषा के सम्बन्ध मे नाट्याचार्यों मे यत्र-तत्र मतभेद है। लक्ष्य में

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ में अध्याय ३–६ तक आगमन प्रणाली तथा अध्याय ७ (उपसहार) में निगमन प्रणाली अपनायी गई है।

उन परिभाषाओ को घटाते समय जो परिभाषा जहाँ समन्वित हुई है उसका उपयोग किया गया है । किसी एक आचार्य की ही परिभाषा का सर्वत्र आश्रय नही लिया गया है ।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि षष्ठ अध्याय के वर्णना प्रधान वर्ग मे जिन भाणो का विवेचन है उनमे आरम्भिक दश भाणो का तो विस्तारपूर्वक सांगोपांग अध्ययन किया गया है । अनन्तर चौरासी भाणो के वर्णनों एव कथानको मे विशेष नवीनता न होने से, अनावश्यक पिष्टपेषण एव एकरूपता को दूर करने के लिए 'सामान्यभाण' शीर्षक के अन्तर्गत इन भाणो का परिचय मात्र दिया गया है। क्योकि उनमे अधिकाश की पाण्डुलिपियाँ या तो अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण, अव्यवस्थित, त्रुटित एव असपूर्ण है या उनके वर्णन एव कथानक अत्यन्त सामान्य कोटि के, चमत्कार हीन, पिष्टपेषण मात्र है ।

प्रत्येक भाण के शास्त्रीय अध्ययन की सीमा भी लेखक को संकुचित करनी पडी है । फलस्वरूप काव्य सामान्य के वे तत्व जो दृश्य एव श्रव्य उभय प्रकार के काव्यो मे साधारण है—ऐसे गुण, दोष, रीति, अलकार आदिका सविस्तर वर्णन प्रत्येक भाण के अध्ययन मे छोड़ दिया गया है । परन्तु भाणो की शैली स्थूलरूप से एकसी होने से इन काव्य सामान्य की विशेषताओ पर विहंगम दृष्टि से उपसंहार में विचार किया गया है । इसी प्रकार भाषा एवं छन्दों के सम्वन्ध मे भी सामान्यत उपलब्ध निदर्शनों को पृथक्-पृथक् अंकित करने की अपेक्षा उपसंहार मे ही विवेचन किया है तथा वहाँ भी विशेषतः उल्लेखनीय, अन्यत्र अप्रचलित छन्दो का ही विशेष रूप से उल्लेख किया है । भाणों की भाषा के क्रमिक विकास के अध्ययन के लिए उनमे प्रयुक्त लोकोक्तियाँ तथा सूक्तियाँ बड़े महत्व की है । उपसहार के काव्यालोचन प्रसंग मे उन पर अत्यन्त संक्षेप में विचार किया गया है ।

अन्त में सबसे महत्व का विषय है भाणों मे प्रतिबिम्बित समाज—विशेषकर जनसाधारण की स्थिति का अवलोकन—जो भाण साहित्य की मुख्य देन है। ऊपर कहा जा चुका है कि प्रस्तुत प्रबन्ध मे आलोचित भाणसाहित्य का काल की दृष्टि से आयाम लगभग २५०० वर्ष का है जो उद्भव, ह्रास तथा पुनरुत्थान—इन तीन अवस्थाओं मे विभक्त है । किन्तु यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि भाण साहित्य मे जनता जिस एक वर्ग की पृष्ठभूमि मे रेखाचित्रित की गई है वह बहुत कुछ मिलती-जुलती है । साधारण जनता की प्रवृत्तियो का तो आलोच्य साहित्य निर्मल दर्पण है । इस स्तम्भ के अन्तर्गत तत्कालीन सामाजिक स्थिति की रूपरेखा के साथ ही जन-जीवन की साधारण चर्या, उनके मनोविनोद, खेल-कूद, उत्सव, रहन-सहन तथा नर-नारी जगत् की प्रवृत्तियों का उल्लेख विशेष महत्व का है ।

भाण साहित्य का सामाजिक दृष्टि से एक और निखरा रूप है—पारदारिक प्रकरण । कौटिल्य एव वात्स्यायन जैसे प्रौढ लेखकों की कृतियों के आधार पर कहा

जा सकता है कि स्फीत, समृद्ध भारत मे साधारणी नायिकाओ तथा ललितकलाओं का पोषण करने वाली वारवनिताओं का समाज में विशेष गौरव का स्थान रहा है। दामोदर गुप्त की प्रसिद्ध कृति **शम्भलीमत**—जो निश्चित ही एक मध्ययुगीन कृति है—में गाणिक्याधिकरण का महत्व और उसका शिक्षाप्रद स्वरूप इस तथ्य को प्रगट करता है कि यह विषय आज की अपेक्षा कही अधिक समादृत था। इस परम्परा के अन्तर्गत जन-जीवन के कितने पहलू हो सकते है—उनका विवरण भाण को छोड़कर अन्य कोई साहित्य उतने विशद रूप से प्रस्तुत नही करता। अतएव इस दृष्टि से वेशजीवन, पारदारिक प्रकरण, कलत्रपत्रिका आदि का अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण विषय है।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ मे समग्र उपलब्ध इस साहित्य के यथावत्, यथापेक्ष आलोचनात्मक अध्ययन के साथ सामाजिक स्थिति का विवरण, भाण रचना का वास्तविक लक्ष्य एव रूपक साहित्य मे भाणो का मूल्याकन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अन्त में कतिपय परिशिष्ट भी दिये गये है जिनमे कुछ विशिष्ट लोकोक्तियाँ, कलत्रपत्रिका के निदर्शन, ग्रन्थसूची के रूप में आलोच्य भाणों तथा सन्दर्भ ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध कार्य के मूल प्रेरणा स्रोत एवं आरम्भ से अन्त तक इसकी पूर्णता मे सक्रिय सहयोग देने वाले पूज्यपाद गुरुदेव स्वर्गीय डॉ० सुरेन्द्रनाथ शास्त्री (कुलपति, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) के चरणों मे लेखक श्रद्धावनत है। उनकी कृपा और वैदुष्यपूर्ण निर्देशन के विना यह कार्य असम्भव ही था। संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् तथा मेरठ विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० दीपचन्द्र शर्मा ने आशीर्वचन देकर लेखक को अपने अनुग्रह से अभिभूत किया है–एतदर्थ वह उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा। प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृतविभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष तथा कला संकाय के अधिष्ठाता, अपने विद्यागुरु डॉ० आद्याप्रसाद मिश्र का लेखक चिरऋणी रहेगा जिन्होंने 'अवतरणिका' लिखकर प्रस्तुत ग्रन्थ की श्रीवृद्धि कीहै। समस्त प्रबन्ध का आद्योपान्त आलोडन करके अपने बहुमूल्य सुझावो एव सम्मतियों से उसे प्रकाशन के योग्य बनाने में सहयोग करने वाले धर्मसमाज महाविद्यालय मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० मनोहरलाल गौड का लेखक सदा कृतज्ञ रहेगा। अन्त मे इस ग्रन्थ के प्रकाशक, साहित्य भण्डार के स्वामी पं० रतिराम शास्त्री के प्रति आभार व्यक्त करना लेखक का पुनीत कर्तव्य है जिन्होने विना किसी पूर्वानुबन्ध के परम सौजन्य पूर्वक इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर सुधी पाठकों तक पहुँचाया। लेखक उन सब के प्रति भी कृतज्ञ एवं विनयावनत है जिनके प्रयत्न एवं सहयोग से यह कार्य पूर्ण हो सका।

श्रावणी, २०३५ **—श्रीनिवास मिश्र**

विषय-क्रम

समर्पण
आशीर्वचन
अवतरणिका
भूमिका
सकेत-सूची
अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय— १–३२

(अ) **भाण साहित्य** का उद्गम एवं शास्त्रीय स्वरूप
(१) भाण साहित्य का उद्गम १
(२) दृश्य काव्यों में भाण का स्थान ६
(ब) **शास्त्रीय स्वरूप** (परिभाषा)
(क) भाण उनका स्वरूप ९
(ख) भाण के उपस्कारक अंग १८
(ग) भाण के भूषण २५
(घ) पाक सिद्धान्त ३०

द्वितीय अध्याय— ३३–६५

भाणों के कवि और उनका काल
(क) काल विभाजन ३३
(ख) उद्गम और विकास काल ३३
(ग) ह्रास काल ४४
(घ) पुनरुत्थान काल ४८

तृतीय अध्याय— ६६–१३०

भाण समीक्षा—**संघर्ष प्रधान वर्ग**

चतुर्थ अध्याय— १३१–१६५

भाण समीक्षा— **भाव प्रधान वर्ग**

पञ्चम अध्याय— १६६–१९२

भाण समीक्षा—**व्यंग्य प्रधान वर्ग**

षष्ठ अध्याय— १९३–२५०

भाण समीक्षा—**वर्णना प्रधान वर्ग**

सप्तम अध्याय— २५१–३०२

उपसंहार

१. उपसंहार—लक्ष्य लक्षण समन्वय—एक परीक्षण २५१

भाणों में नाट्यतत्व २५२

(क) नान्दी (ख) प्रस्तावना

(ग) वस्तुग्रथन—सन्धि-सध्यंग, सन्ध्यन्तर, नाट्यालंकार, शिल्पकाग, भाण्यंग, लास्याग (घ) पात्र (ङ) रस (च) वृत्ति—कैशिकी, सात्वती, आरभटी, भारती, वीथी, प्रहसन (छ) प्रवृत्ति—नाम, सम्बोधन, भाषा, आहार्य (ज) मिश्रभाण

२. **काव्यालोचन** २७१

शैली, अलकार, प्रकृति वर्णन, छन्दोयोजना, मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा सूक्तियाँ।

३. **सामाजिक स्थिति** २७४

वेशजीवन, कलत्रपत्रिका, अन्धविश्वास, ब्राह्मण, धर्म, शासन, आचार-विचार, रहन-सहन।

४. **भाणों में मनोरंजन के साधन** २८६

मनोरजन के साधनों का विभाजक-चक्र, अन्तर्द्वारक्रीडायें, बहिर्द्वारक्रीडायें।

५. **भाण रचना का लक्ष्य तथा निष्कर्ष** ३००

परिशिष्ट ३०३–३१७

(क) कुछ विशिष्ट लोकोक्तियाँ ३०३

(ख) कलत्रपत्रिका के कुछ निदर्शन ३०७

(ग) भाण सूची ३०८

(घ) सन्दर्भ ग्रन्थ ३१४

संकेत--सूची

अग्नि० पु०	: अग्निपुराण	:
अ० जी०	: अनंगजीवन	: वरद
अ० जीवन	: अनगजीवन	कोचुन्नि भूपालक
अ० ति०	: अनंगतिलक	: रगनाथ
अ० वि०	: अनगविजय	: जगन्नाथ
अ० विजय	: अनगविजय	. शिवरामकृष्ण
अ० स०	˙ अनगसर्वस्व	: लक्ष्मीनृसिहाचार्य
अभि० भा०	अभिनव भारती	: अभिनव गुप्तपादाचार्य
अभि० शा०	: अभिज्ञान शाकुन्तल	: कालिदास
अ० को०	: अमरकोष	: अमरसिंह
अवलोक	: दशरूपक पर टीका	: धनिक
अ० सु० क०	अवन्ति सुन्दरी कथा	. दण्डी
उभयाभि०	उभयाभिसारिका	: वररुचि
उ० रा० च०	: उत्तररामचरित	. भवभूति
क० स० सा०	: कथासरित्सागर	: सोमदेव
क० च०	: कर्पूरचरित	: वत्सराज
का० सू०	कामसूत्र	: वात्स्यायन
का० क० वि०	: कामकलाविलास	: प्रधानवेंकभूपति
काद०	: कादम्बरी	: बाणभट्ट
का० प्र०	: काव्यप्रकाश	: मम्मट
का० मी०	: काव्यमीमासा	: राजशेखर
काव्यानु०	: काव्यानुशासन	: हेमचन्द्र
काव्याल०	: काव्यालंकार	: भामह
कुबलय०	: कुवलयानन्द भाण	: रामचन्द्र कवि
कृ० च०	'. कृष्णचरित	: महाराज समुद्रगुप्त
क० द०	: कन्दर्प दर्पण	श्रीकठ
कं० वि०	. कन्दर्पविजय	: घनगुरु
गो० ली०	: गोपाललीलार्णव	: गोविन्द
चा० च०	: चातुरी चन्द्रिका	: वेंकटार्य
त० भू०	. तरुणभूषण	: शथकोप
त्रि० शे० को०	: त्रिकाण्डशेषकोश	: पुरुषोत्तम
द० कु०	: दशकुमार चरित	: दण्डी
द० रू०	: दशरूपक	: धनंजय
धू० वि० सं०	: धूर्तविटसंवाद	: ईश्वरदत्त
न० य० भू०	: नंजराजयशोभूषण	: नृसिंह

ना० ल० र० को०	: नाटकलक्षणरत्नकोश	: सागरनन्दिन्
ना० शा०	: नाट्यशास्त्र	: भरत
ना० द०	· नाट्यदर्पण	: रामचन्द्रगुणचन्द्र
ना० प्र०	: नाट्यप्रदीप	: सुन्दरमित्र
प० म०	. पदमजरी	: हरदत्त
प० प्रा०	: पद्मप्राभृतक	: शूद्रक
पा० ता०	: पादताडितक	: श्यामिलक
प्र० रु० य० भू०	: प्रतापरुद्रयशोभूषण	: विद्यानाथ (सम्पादक)
प्र० वि०	: प्रबन्ध चिन्तामणि	
पचा० प्र०	: पचायुध प्रपच	: त्रिविक्रम
प० बा० वि०	: पंचबाणविजय	: रंगार्य
भा० व० इति०	: भारतवर्ष का इतिहास	: भगवद्दत्त
भा० प्र०	: भावप्रकाशन	: शारदातनय
म० गो० वि०	: मदनगोपालविलास	: रामकवि
म० म० च०	: मन्दारमरन्द चम्पू	: श्रीकृष्णकवि
मनु०	: मनुस्मृति	: मनु
म० भा०	: महाभाष्य	: पतंजलि
म० भा० प्र०	: महाभाष्य प्रदीप	: कैय्यट
म० भा० प्रदीपोद्योत	: महाभाष्य प्रदीपोद्योत	: नागेशभट्ट
म० म०	: मदनमहोत्सव	: श्रीकंठ
म० सं०	: मदनसंजीवन	: घनश्यामकवि
म० भू०	: मदनभूषण	: अप्पा यज्वा
म० म०	: मदनमंजरी परिणय	: वैद्यनाथ
मा० अग्नि०	: मालविकाग्निमित्र	: कालिदास
मुकुन्दा०	: मुकुन्दानन्द भाण	: काशीपति
मृ० क०	: मृच्छकटिक	: शूद्रक
र० ति०	· रसिक तिलक	: मद्दुराम कवि
रत्ना० ना०	: रत्नावलीनाटिका	: श्री हर्षवर्धन
र० ग०	रसगगाधर	: पंडितराज जगन्नाथ
र० र०	: रसरत्नाकर	: जयन्त
र० स०	: रससदन	: युवराज
र० सु०	: रसार्णव सुधाकर	: शिगभूपाल
रसो०	: रसोल्लास	: श्रीनिवासाचार्य
रू० ष०	· रूपकषटकम्	: सी० डी० दलाल (सपादक)
रं० रा० च०	: रगराजचरित	: श्रीनिवास
व० ति०	: वसन्ततिलक	: वरदाचार्य

व० भू०	: वसन्तभूषण	: वरदार्य
वसन्ता०	: वसन्ताभरण	: श्रीनिवास
वि० नि०	: विटनिद्राभाण	: त्रिविक्रम
वृ० र०	. वृत्तरत्नाकर	: केदार भट्ट
श० क० द्रु०	. शब्दकल्पद्रुम	:
शृं० हा०	. शृगारहाट	: वासुदेवशरण अग्रवाल (संपा०)
शृ० स०	. शृगारसर्वस्व	. नल्लादीक्षित
शृं० सर्वस्व	· शृगारसर्वस्व	· वेदान्तदेशिक
शृ० भू०	शृगारभूषण	वामनभट्टबाण
शृ० च०	. शृगारचन्द्रिका	: श्रीनिवास कवि
शृ० ति०	. शृगारतिलक	: रामभद्र दीक्षित
शृं० दी०	· शृगार दीप	: वेंकटाध्वरिन्
शृ० र० भृं०	: शृगाररस भृंगार	· इन्द्रगन्थिकोद
शृं० मं०	: शृंगारमजरी	. रतिकर
शृ० मं०	: शृंगार मंजरी	· वेंकटनारायण
शृ० सु०	: शृंगार सुधाकर	: अश्वति तिरुनालराम वर्मा
शृ० स०	· शृगार सजीवन	· शथजित
शृ० को०	: शृगारकोश	: अभिनव कालिदास
शृ० वि०	· शृगारविलास	: साम्बशिव
शृं० स्तबक	: शृंगारस्तबक	· नृसिह
शृं० शृं	: शृगारशृगाटक	रंगाचार्य
शृ० र०	: शृगाररत्नाकर	: सुन्दरताताचार्य
श्या०	: श्यामला भाण	: चिन्तामणि
स० क०	: सरस्वतीकण्ठाभरण	: भोजदेव
सा० द०	: साहित्यदर्पण	: विश्वनाथ
सा० सा०	: साहित्यसार	: अच्युतराय
सि० कौ०	: सिद्धान्तकौमुदी	: भट्टोजि दीक्षित
सू० मु०	: सूक्तिमुक्तवली	· जल्हण
ह० च० सां० अ०	: हर्षचरित एक सां० अध्ययन	: वासुदेवशरण अग्रवाल
हला० को०	: हलायुधकोश	
ह० वि०	: हरविलास भाण	: हरिदास

उद्धरण पद्धति

मुद्रित भाणों के उद्धरण प्रसग मे आवश्यकतानुसार पृष्ठ अथवा श्लोक संख्या दोनों ही दी गई हैं किन्तु पाण्डुलिपियों मे प्रायः श्लोक सख्या के अभाव के कारण केवल पृष्ठ संख्या का उद्धरण दिया गया है।

अनुक्रमणिका

भाण	कवि	पृष्ठ
अनगतिलक	रगनाथ	२४८
अनगजीवन	कोचुन्निभूपालक	१४२
अनगजीवन	वरद	२३२
अनंगब्रह्मविद्याविलास	वरदाचार्य	२५०
अनगमगल	श्रीनिवास	२४६
अनगविजय	जगन्नाथ	२२७
अनंगविजय	शिवरामकृष्ण	२४८
अनगसजीवन	वरद	२४६
अनग सर्वस्व	लक्ष्मी नृसिहाचार्य	२४८
उभयाभिसारिका	वररुचि	१३२
कन्दर्पदर्पण	श्रीकण्ठ	२४८
कन्दर्प विजय	घनगुरु आर्य	२४८
कन्दर्प विजय	उद्दण्ड कवि	२४६
कर्पूर चरित	वत्सराज	११०
कामकला विलास	प्रधानबेक भूपति	१२६
कुवलयानन्द	रामचन्द्र कवि	१६४
कुसुमायुध जीवित	रगार्य	२५०
गोपाल लीलार्णव	कवि गोविन्द	१३०
चन्द्ररेखा विलास	शङ्कर	२५०
चातुरी चन्द्रिका	वेंकटार्य	२४८
तरुण भूषण	शथकोप	२४६
धूर्तविट सवाद	ईश्वर दत्त	१८२
पद्मप्राभृतक	शूद्रक	८७
पल्लव शेखर	अनन्ताचार्य	२४६
पादताडितक	श्यामिलक	१६८
पञ्चबाणसिद्धान्त भाण	श्रीनिवास कवीन्द्र	२४६
पञ्चायुध प्रपञ्च	त्रिविक्रम	१००
पञ्चबाण विजय	रगार्य	२४८
भद्रकालीकेलियत्रामह भाण	कोटिलिंग युवराज	२५०
भाण नाटक	— —	२४६
भाणत्रयी	— —	२४६

भाण	कवि	पृष्ठ
मदन गोपाल विलास	राम कवि	२४८
मदन भूषण	अप्पा यज्वा	२४४
मदनमहोत्सव	श्रीकण्ठ	२४८
मदनमंजरी परिणय	वैद्यनाथ	२४८
मदनसाम्राज्य	भुजंग कवि	२४६
मदनाभ्युदय	कृष्णमूर्ति शास्त्री	२५०
मदन सजीवन	घनश्याम कवि	२४६
मदन विलास	नंगनाथ	२५०
महिषमङ्गल	महिषमगल नपूतिरि	२५०
मुकुन्दानन्द	काशीपति	६६
रतिभूषण	——	२५०
रसरत्नाकर	जयन्त	२४६
रससदन	युवराज	१६५
रसिकतिलक	मद्दुराय	२४८
रसिक जनमानसोल्लास	श्रीनिवासाचार्य	२४६
रसिक जनरसोल्लास	वेंकट	२५०
रसोल्लास	श्रीनिवासाचार्य	२४८
रसोदार	अण्णयार्य	२४६
रंगराज	गोपालराय	२५०
रंगराजचरित	श्रीनिवासाचार्य	२४८
रंगनाथ भाण	श्रीनिवासाचार्य	२४६
लीलादर्पण	पद्मनाभ	२४८
वर्तमान भाण	——	२४६
वसन्ततिलक	वरदाचार्य	२०४
वसन्ततिलक	भास्कर कवि	२४६
वसन्ततिलक	नृसिंह सूरि	२५०
वसन्ताभरण	श्रीनिवास	२४६
वसन्तोत्सव भाण	वसन्तराज	२५०
वल्लविपल्लवोल्लास	——	२५०
वसन्तभूषण	वरदाचार्य	२४८
विलासभूषण	निरूमल्लाचार्य	२५०
विटनिद्रा भाण	त्रिविक्रम	२४६
विटराज विजय	कोचुन्नि भूपालक	२५०
शारदा तिलक	शंकर कवि	२४६

भाण	कवि	पृष्ठ
शारदातिलक	शेषगिरि	२४६
शारदानन्द भाण	श्रीनिवासाचार्य	२४६
शृंगारकोश	अभिनव कालिदास	२४१
शृंगारकोश	गीर्वाणेन्द्र दीक्षित कवि	२४६
शृंगारचन्द्रिका	श्रीनिवास कवि	२४६
शृंगार जीवन	वरदाचार्य	२४६
शृंगार जीवन	अवधान सरस्वती	२४६
शृंगार तिलक	रामभद्र दीक्षित	११८
शृंगार तिलक	राघवाचार्य	२४६
शृंगार दीप	वेंकटाध्वरिन्	२४६
शृंगार दीपक	विजमूरि राघवाचार्य	२५०
शृंगाराद्वैत	अभिनव कालिदास	२४६
शृंगार पवन	वैद्यनाथ	२५०
शृंगार भूषण	वामनभट्ट बाण	२११
शृंगार भूषण	भट्टनारायण पडा	२४६
शृंगार भूषण	अनन्ताचार्य	२५०
शृंगार भूषण	वेंकटाचार्य	२५०
शृंगार मजरी	रतिकर	१६५
शृंगार मजरी	वामनभट्ट बाण	२५०
शृंगार मंजरी	विश्वनाथ	२५०
शृंगार मजरी	वेंकटनारायण	२४६
शृंगार मंजरी	वेंकटाध्वरिन्	
शृंगार रत्नाकर	सुन्दरताताचार्य	२४८
शृंगार रस	—	२५०
शृंगार रसभृंगार	इन्द्रगन्थिकोंद	२४८
शृंगार रसोदय	रामकवि	२५०
शृंगार राजतिलक	अविनाशीश्वर	२५०
शृंगार लीला तिलक	भास्कर	२४६
शृंगार विलसित	नारायण कवि	२४६
शृंगार विलास	साम्बशिव	२४८
शृंगार शेखर भाण	रामानुज कवि	२५०
शृंगार सर्वस्व	नल्ला दीक्षित	१५६
शृंगार सर्वस्व	अनन्तनारायणसूरि	२५०
शृंगार सर्वस्व	स्वामि शास्त्री	२५०

भाण	कवि	पृष्ठ
शृंगार सर्वस्व	वेदान्त देशिक	२३७
शृंगार सुधाकर	अश्वतितिरुनालराम वर्मा	१४६
शृंगार सुधाकर	रामचन्द्र	२४६
शृंगार संजीवन	शथजित	२४८
शृंगार संजीबन	वरद	२४६
शृंगार स्तवक	नृसिह	२२१
शृंगार शृंगाटक	रगार्य	२४६
श्यामला भाण	चिन्तामणि	१८६
सरसकविकुलानन्द	रामचन्द्र कवि	२४६
सारस्वतोल्लास	वेकटराम कवि	२४६
सकर्षण भाण	—	२४६
संपत्कुमार विलास	रंगनाथ महादेशिक	२५०
हरिविलास	हरिदास	२१६

प्रथम-अध्याय

भाण साहित्य का उद्गम एव शास्त्रीय स्वरूप।

(अ) (१) भाण साहित्य का उदगम

(२) दृश्य काव्यों मे भाण का स्थान

(ब) शास्त्रीय स्वरूप (परिभाषा)

भाण-उनका स्वरूप

(अ) भाण-समाख्या

(ब) वस्तु-भाणों का वर्गीकरण

(स) अङ्क, सन्धि, लास्याङ्ग एवं पात्र

(द) रस तथा वृत्ति

भाण के उपस्कारक अंग

नान्दी, स्थापना, कलेवर, सन्ध्यन्तर, अङ्क तथा दृश्य, भाण का उपरूपक भाणी

भाण के भूषण

नाट्यालङ्कार, शिल्पकाङ्ग, लास्याङ्ग वृत्ति, नेता, रस, प्रवृत्ति, पाक सिद्धान्त आदि।

(अ)

भाण साहित्य का उद्‌गम

नाट्यशास्त्र के अनुसार त्रेता युग में इन्द्र आदि देवता ब्रह्मा के पास गये और प्रार्थना की कि भगवन् भूलोक पर मनोरंजन के लिए कोई ऐसा क्रीडनीयक उत्पन्न कीजिए जो दृश्य एवं श्रव्य हो तथा समस्त वर्णों के लिए उपयोगी हो। क्योकि वेद का व्यवहार कुछ सीमित वर्ग के लिए ही संभव है। भगवान् ब्रह्मा ने समस्त वेदों का सार ग्रहण कर नाट्यवेद नामक पंचम वेद की रचना की जो सर्वश्राव्य एवं सर्वदृश्य हुआ।[1]

नाट्यशास्त्र मे वर्णित यह घटना इस बात के प्रति संकेत है कि तत्कालीन समाज के उच्चवर्ग के लिए तो मनोविनोद का साधन वेद थे किन्तु सर्वसाधारण को वेद पढ़ने का अधिकार न होने से वे इस मनोविनोद के साधन से वंचित थे। अतः लोकपितामह ने कृपापूर्वक नाट्यवेद का निर्माण किया जो प्राणिमात्र के सुख एवं कल्याण का साधन बना। भाणो के उद्‌गम के सम्बन्ध मे भी कुछ इसी प्रकार का कारण है।

नाटक की कथावस्तु और उसके मुख्यपात्र ऐतिहासिक और प्रसिद्ध होते है। इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु होने से उसका अधिकतर सम्बन्ध राजा या राजवंशों से ही होता है, जन साधारण से नही। शास्त्रीय दृष्टि से नाटक मे नायक धीरोदात्त-गुणोपेत अर्थात् सभी प्रकार के उदात्त और उत्तम गुणों से पूर्ण होना चाहिये। उसी प्रकार नायिका भी राजवंश समुद्‌भवा होने से उत्तमगुणोपेत होनी चाहिये। साथ ही राजा और राजवंश से सम्बन्धित होने के कारण शेष परिकर भी उसी स्तर का होना चाहिये। इस प्रकार नाटक में पूरा कथानक और प्रायः सभी पात्र समाज के शिष्ट वर्ग से सम्बन्धित होते हैं। शिष्टवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण नाटक अधिकांश उसी वर्ग के मनोविनोद का साधन बना। जन साधारण इस साधन के साथ अपनी एकता नही कर सका। बड़े लोगों के चरित्र, उनकी कहानी के साथ निम्न वर्ग तादात्म्य कैसे कर लेता! परिणाम यह हुआ कि नाटक देखने वाले भी राजा, सामन्त या इसी स्तर के लोग रह गये। यहाँ तक कि नाटकों की प्रस्तावना में भी कवि, उसकी कृति एवं सामाजिकों का परिचय देने के प्रसंग मे सूत्रधार ने

---

१. ना० शा०, प्र० अ० (संपूर्ण)

सदा राजसमूह या विद्वन्मण्डली की ही चर्चा की है[१], साधारण जन समाज की नहीं। यह राजसमूह या विद्वन्मण्डली किसी राजमहोत्सव या धार्मिक उत्सव के दर्शनार्थ आई हुई होती है।

नाटको के केवल उच्चवर्ग में अधिक प्रचार का एक और मुख्य कारण है और वह है उनके नायक का केवल राजवंश से सम्बन्धित एवं धीरोदात्त गुणोपेत होना। इस बन्धन के कारण नाटक में नायक की सहज वृत्तियों, उसके स्वाभाविक गुणो को छिपाया जाता है तथा कृत्रिम एवं अस्वाभाविक गुण उस पर थोपे जाते है। इस प्रकार पाठक और सहृदय को 'रामादिवत् प्रवर्तितव्य न रावणादिवत्' की ओर हठात् प्रवृत्त किया जाता है। शकुन्तला के अनिन्द्य सौन्दर्य को देखकर दुष्यन्त का उस पर आकृष्ट होना सहज वृत्ति है। दुष्यन्त एक सामान्य कामीजन की ही भाँति शकुन्तला पर मुग्ध होता है, उसे पकड़ना चाहता है, तदनुरूप चेष्टाये करता है। शकुन्तला को पुनः किसी बहाने से देखने के लिए, उससे दो बातें करने के लिए वह राजकार्यों की उपेक्षा करता है। अनुत्तरदायी व्यक्ति की भाँति सेना को राजधानी भेजकर स्वयं लुक-छिपकर शकुन्तला से मिलना चाहता है। यही नही, स्नेहमयी माँ ने अपने व्रत की समाप्ति पर पुत्र की उपस्थिति को अत्यन्त आवश्यक मानकर उसे बुलाने के लिये सन्देश भेजा। कामान्ध दुष्यन्त ने बहाना बनाकर विदूषक को अपने प्रतिनिधि के रूप में माँ के पास भेज दिया और स्वयं प्रणय व्यापार मे निरत हो गया। किन्तु कालिदास ने दुष्यन्त की इन समस्त सहज वृत्तियों को छिपाया है। उसके चरित्र को निष्कलक और निष्पाप दिखाने का प्रयत्न किया है। उसमें धीरोदात्त गुणों को हठात् आरोपित किया है। शकुन्तला के निरुपम सौन्दर्य को देखकर जब दुष्यन्त तल्लीन हो जाता है तो कवि उस प्रेम को जननान्तर सौहृद कह देता है।

उद्दाम कामान्धता की पराकाष्ठा पर पहुँचकर जब दुष्यन्त अपनी मर्यादा छोड़कर एक बाजारू प्रेमी की भाँति शकुन्तला को पकड़ते-पकड़ते भयभीत होकर रुक जाता है तो कवि उसे नायक की जितेन्द्रियता कह देता है।[२] उसके चरित्र की उपहासास्पदता तब पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब दुष्यन्त अपनी इस कुचेष्टा

---

१. (अ) आर्ये! अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्—अभि० शा०।

(ब) ···राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेन उक्तः—रत्ना० ना०।

(स) ···भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि—उ० रा० च०।

२. सहसा विनयेन वारितप्रसरः—अभि० शा० १/२५।

के बाद निर्लज्ज होकर उपदेश देने लगता है।[1] श्रीराम मानव थे और मानव सुलभ सहज वृत्तियाँ भी उनमें थी। शास्त्रो मे स्त्री वध निषिद्ध होने पर भी वे ताडका को मारते है। पुष्पवाटिका में सीता के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते है। वृक्ष की आड़ मे छिपकर वे बालि को मारते है।[2] लका मे बन्दर, भालु और राक्षसो के समक्ष सीता का अपमान करते है, सीता के चरित्र को निष्कलक जानते हुए भी अन्याय पूर्वक उनका निर्वासन करते है। इतने पर भी काव्य-नाटक मे उन्हें धीरोदात्त नायक ही माना गया है। क्योकि परम्परा और शास्त्रीय नियमों से कवि इसके लिये बाध्य है।

नायको की सहज वृत्ति को दबाकर उनके चरित्रों की यह खीचातानी अस्वाभाविक है। मानव मात्र का सहज स्वभाव भौतिक सुखो की ओर झुकना है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के प्रति उसका सहज आकर्षण होता है। काम प्रवृत्ति मानव का सहज धर्म है। इन्द्रिय निग्रह, त्याग, तपस्या और इच्छा-दमन कृत्रिम है, कष्ट साध्य है। इसी से विश्वनाथ के 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं, न रावणादिवत्' की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न, रावणादिवत्

अर्थात् मानव की सहज वृत्ति रावणादि की भाँति सहज आचरण करने की होती है, रामादि की भाँति कष्ट साध्य कृत्रिम आचरण करने की नही। इससे रावणादि के आचरण का अनुकरण करना चाहिये, रामादि के आचरण का नही।[3]

इस प्रकार केवल उच्चवर्ग से सम्बन्धित एव कृत्रिम गुणो से आरोपित पात्रों वाले नाटकों मे सहज वृत्तियों से उपेत जन साधारण की प्रवृत्ति कैसे सम्भव हो सकती है? इसी से अनेक भाणों की प्रस्तावना मे नाटकों को प्राचीन, कठिन एवं लम्बे कथानकों वाला बताते हुए उनके प्रति अरुचि प्रकट की गई है।[4] पुराने रूपकों के बजाय नये, सरस एवं शृङ्गार रसोपेत भाणों के अभिनय के प्रति सामा-

---

१. (अ) अहो चेष्टाप्रतिरूपिकाकामिजनमनोवृत्तिः। वही पृ० ४६।
(ब) ···एवमात्माभिप्रायसभावितेष्टजनचितवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते। वही पृ० ५८।

२. उ० रा० च० ५/३४।

३. सा० द० (तर्क वागीशकृत टीका)

४. (अ) प्राक्तनकविघटितकठिननाटकाभिनयविलोकनविषण्णलोचनानन्दनाय। शृ० सर्वस्व, प्रस्तावना पृ० ६।
(ब) दुरधिगमानेकपात्रसंधानेभ्यः प्रबन्धेभ्यो बलवदुद्विजामहे···। म० गो० वि० प्रस्तावना पृ० ३।
(स) अद्वैतपात्रमग्राम्यं हास्य हरिकथांकित। तद् दिदृक्षामहे दृश्य संक्षेपविस्तरम्। कुवलय० प्रस्तावना पृ० ३।

जिकों की विशेष रुचि की बात तो लगभग प्रत्येक भाण की प्रस्तावना में कही गई है। अतः सामान्य जनों के मनोविनोदार्थ नवीन, सरस एवं सरल भाण साहित्य का उद्गम हुआ। भाणों मे जनजीवन की झाकी है। यहाँ कोई आडंबर नही, कोई कृत्रिमता नही। भाणों को देखने वाले भी सामन्त या राजवर्ग ही नहीं बल्कि साधारण जन भी है। ये लोग किसी नगर में या किसी सार्वजनिक स्थान पर, साधारण जनता में मान्यता प्राप्त मेला, उत्सव, किसी देवता की यात्रा आदि को देखने के लिये आये होते हैं।

दिनभर के काम से थके हुये ये साधारण जन किसी साहित्यिक, दार्शनिक या गम्भीर खेल को देखने के पक्ष मे नही होते। इन्हे तो हसाने गुलगुलाने वाला, हंसी विनोद से भरा हुआ, जीवन की यथार्थ कहानी वाला मनोरंजन चाहिए।[१] ऐसे ही समाज को प्रसन्न करने के लिए, उसके मनोविनोदार्थ भाण साहित्य रचा गया। इसी से भाणों की कथावस्तु भी सामान्य समाज के प्रेमी प्रेमिकाओ की कहानी है। वेश्याजन, धूर्त चरित एव समाज की कुप्रथाओ तथा व्यसनो का यथावत् चित्रण यहाँ है। अतः कहा जा सकता है कि भाण साहित्य जनता के लिए लिखा गया है, जनता का है। इसी से जनता की सहज वृत्तियों को यहाँ निःसंकोच वर्णन किया गया है।

किन्तु इस विवेचन से एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित हो जाता है। काव्य के अन्य प्रयोजनों मे 'उपदेशयुजे' एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है। यदि भाणो मे मध्यम एवं निम्न स्तर के समाज की निम्नवृत्ति का यथातथ्य वर्णन है, उसमे आदर्श नहीं है—तो इस प्रकार का साहित्य लोकरंजक भले ही हो, उपदेशपरक नही हो सकता। सत्य, आचार और शील की स्थापना नही कर सकता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाण साहित्य में 'उपदेशयुजे' की पूर्ति नहीं की गई है।

वास्तव में ऐसा नही है। भाणों में जीवन की यथार्थता का चित्रण अवश्य है, सहज कामवृत्ति का यथातथ्य निरूपण अवश्य है। किन्तु इसमें 'उपदेशयुजे' की उपेक्षा नही हुई है। उपदेश दो प्रकार का होता है साक्षात् और व्यङ्ग्यपरक। साक्षात् उपदेश के तीन भेद हुए—प्रभु सम्मित, मित्र सम्मित और कान्ता सम्मित। व्यङ्ग्य परक उपदेश में समाज या व्यक्ति के अवगुणो और दोषो पर छीटाकशी की जाती है, हास परिहास में उनपर व्यङ्ग्य किया जाता है। अभिज्ञान शाकुन्तल मे दुष्यन्त को समझाने के प्रसग मे शार्ङ्गरव और शारद्वत की उक्तियाँ व्यङ्ग्यों से भरी पड़ी है।[२] इस प्रकार का सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्यङ्ग्य भाणो में पग-पग पर है।

---

१. आज के सामान्य जन समाज मे, विशेषकर गाँवो मे नौटंकी, ढोला, रसिया तथा इसी प्रकार के अन्य समारोह इसी प्रवृत्ति के निदर्शन हैं।

२. (अ) उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी। ५/६

(ब) वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः ··· । उ० रा० च० ५/३४

वेशवाट एव वेश्याजीवन की झाँकी सामाजिकों की उच्छृंखल प्रवृत्ति, विधवाओं एवं कुलवधुओ के चरित्र की शिथिलता आदि पर भाणो में गहरा व्यङ्ग्य है। इन दृश्यो द्वारा दिखाया गया है कि समाज का, स्त्री पुरुषो का कितना निम्न स्तर तक चारित्रिक पतन हो सकता है। इन व्यङ्ग्य परक दृश्यो द्वारा कवियों ने समाज के दोषों को जनता के समक्ष उपस्थित किया, जिससे समाज का सुधार सम्भव हो सके। मिश्रभाणों के प्रचार का भी सम्भवत. यही कारण है। क्योकि इनमें सामाजिक दोषों के उद्घाटन एवं शृंगार की उद्दाम प्रवृत्ति के वर्णन के साथ ही सरल और सरस ढंग से नीति, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और सत्संग का उपदेश भी किया गया है।[१]

भाणो में एक अङ्क होना भी उनके उद्गम और प्रचार का कारण बना। पीछे देखा गया है कि किस प्रकार दिनभर के परिश्रम से श्रान्त सामान्यजनों के मनोविनोदार्थ भाण लिखे गये। ऐसा व्यक्ति मनोरजन के लिए भी अधिक समय नही दे सकता। वह तो थोड़ी देर के लिए अपना मन बहलाना चाहेगा। अतः उसके लिए कोई ऐसा साधन चाहिए जो लगभग एक घटे मे समाप्त हो जाये। भाणों मे इसीलिए एक अंक की योजना की गई है। यह एक अंक लगभग सभी भाणों का थोडे बहुत अन्तर से एक स्वरूप का होता है।

केवल एक अक मे जन सामान्य की कहानी कहना कवियों के लिए भी अधिक सरल हो गया। नाटक प्रकरण में तो विशेष प्रकार के पात्र, इतिहास प्रसिद्ध उदात्त कथानक, नायक नायिका का असामान्य होना, अधिक अंक, अर्थोपक्षेपक, सभी सन्धियाँ आदि लम्बा चौड़ा एवं कठिन आयोजन होने से प्रत्येक कवि उनके निर्माण का साहस नही कर सकता। यही कारण है कि संस्कृत में नाटक और प्रकरण बहुत कम लिखे गये। भाण के कथानक में ऐसा कोई विशेष नियम नही, बन्धन नही। पात्रों के चरित्र के लिए ऐतिहासिक तथ्यों को जानने की आवश्यकता नहीं। अंकों को बढ़ाने के लिए सामग्री जुटाने का यहाँ अवसर नही। जनता के दैनिक जीवन से सम्बन्धित छोटे-छोटे कथानक होने से वे अल्पश्रम साध्य हैं। यही कारण है कि भाणों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई। छोटे बड़े, प्रसिद्ध अप्रसिद्ध, सभी प्रकार के कवियों ने इस साहित्य के निर्माण में रुचि ली।

भाणों की प्रसिद्धि का एक और कारण है और वह है उनके अभिनय का अल्पद्रव्य साध्य और सरल होना। नाटक प्रकरण को अभिनीत करने के लिये तो बहुत बड़ा रगमंच, अनेक पर्दों का प्रबन्ध, दृश्य परिवर्तन के लिए विविध प्रकार की सामग्री, पात्रों की भिन्न-भिन्न प्रकार की वेशभूषा, भाषा, प्रत्येक पात्र की अभिनय कुशलता आदि का प्रबन्ध अधिक द्रव्य साध्य, असुविधाजनक एवं कठिन होता है। किन्तु भाण के सम्बन्ध में यह बात नही है। इनके अभिनय के लिए छोटे

---

१. द्रष्टव्य-उपसंहार 'मिश्रभाण'।

से छोटे रंगमंच से भी काम चल सकता है। यही नहीं, उसके लिए न तो पर्दों की आवश्यकता है और न दृश्य परिवर्तन के लिए किसी प्रकार की सामग्री की। केवल एक पात्र होने से वेशभूषा तथा अन्य प्रसाधन एवं अलंकरण की सामग्री की भी आवश्यकता नहीं। इस प्रकार सरल, सादा और अल्प द्रव्य साध्य एवं अत्यधिक सुविधाजनक होने से भाणो की रचना, उनका प्रचार और प्रसार अन्य रूपकों की अपेक्षा अधिक हुआ।

अत. जनता की आवश्यकता के लिए उद्‌भूत हुए भाण नाटक और प्रकरण की ही भाँति महत्वपूर्ण है। कलेवर की दृष्टि से छोटा होते हुए भी विषय वस्तु की दृष्टि से भाण साहित्य अपना एक स्वतन्त्र स्थान रखता है।

दृश्य काव्यों में भाण का स्थान—

संस्कृत के समस्त काव्य को साहित्य शास्त्रियों ने दो भागों में विभक्त किया है—श्रव्य और दृश्य। श्रव्य काव्य मे महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं गीतिकाव्य आ जाते है तथा दृश्य में सब प्रकार के रूपक। अभिनय करने वाले नट आदि पात्रों में वास्तविक चरित्र राम दुष्यन्त आदि का आरोप कर लेने से इन्हें रूपक कहते हैं।[१] सभी रूपक रंगमंच पर अभिनीत हो सकते है, पात्रों की अवस्था की अनुकृति को यहाँ साक्षात् देखा जा सकता है। इसी से रूपक दृश्य काव्य कहलाते है। नाट्याचार्यों के अनुसार रूपक संख्या मे दश हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, और ईहामृग।

दश रूपकों मे नाटक सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। नाटक के बाद प्रकरण का स्थान है। नाटकीय समस्त लक्षणो से उपेत होने से, कल्पित कथावस्तु के कारण जन सामान्य के स्तर पर अधिक उतरने वाला प्रकरण भी नाटक की ही भाँति महत्वपूर्ण है। नाटक और प्रकरण सर्वांगपूर्ण रूपक हैं। अर्थात् पाँचो अर्थप्रकृतियाँ, पाँचों कार्यावस्थायें, पाँचों सन्धियाँ, अधिकांश सन्ध्यंग, पाँच से दश तक अंकों की संख्या, सविस्तर कथावस्तु, विभावों के चरित्र का पूर्ण विकास आदि अनेक दृष्टियों से दोनों ही रूपक (नाटक और प्रकरण) संपूर्ण लक्षण वाले माने जाते है।

अन्य रूपकों की प्रकृति तथा समस्त लक्षणोपेत होने से नाटक का विशेष महत्व है।[२] नाटक और प्रकरण के बाद महत्व की दृष्टि से आचार्यों ने भाण को स्थान दिया है। भाण के बाद अन्य रूपक आते हैं।

---

१. 'रूपकं तत्समारोपात्' (द० रू० १/७)

२. (अ) प्रकृतित्वादथान्येषां भूयोरसपरिग्रहात्।
सम्पूर्णलक्षणत्वाच्च पूर्वं नाटकमुच्यते ॥ द० रू० ३/१ तथा भा० प्र० पृ० २२१।

(ब) आहुः प्रकरणादीनां नाटकं प्रकृतिं बुधाः। म० म० च० पृ० ६८।

(स) न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न तत्कर्म न योगोऽसौ नाटके यन्न दृश्यते ॥ ना० शा० १६/१२२।

भाण का यह स्थान केवल उसके महत्व, संघटना एवं प्रचार की दृष्टि से है, लक्षण ग्रन्थों मे दिये गये गणनाक्रम की दृष्टि से नही। क्योकि वहाँ तो नाटक और प्रकरण के बाद सुविधा की दृष्टि से, छन्दः की आवश्यकता के अनुसार किसी भी रूपक को कही भी रख दिया गया है। भरत ने दश रूपकों की गणना में भाण को पाँचवाँ स्थान दिया है[1] तथा "एतेषां लक्षणमहं व्याख्यास्याम्यनुपूर्वशः" की प्रतिज्ञा करके भी वह नाटक तथा प्रकरण के बाद अ्क तथा व्यायोग का क्रम प्राप्त लक्षण न करके समवकार, ईहामृग तथा प्रहसन का लक्षण करने लगते है। उसके बाद भाण का क्रम आता है। इसी प्रकार अग्नि पुराण में भी भाण को गणनाक्रम मे आठवाँ स्थान दिया गया है।[2] अतः गणनाक्रम से नही, उपयोगिता की दृष्टि से भाण का रूपको में तीसरा स्थान है।

नाटक एवं प्रकरण के अतिरिक्त शेष रूपकों में भाण का विशेष स्थान है। यद्यपि नाटक, प्रकरण की भाँति यह सम्पूर्ण लक्षणों वाला नही होता है। क्योकि न तो इसमें अंकों का विभाजन होता है, न इतने पात्र होते है और न उतनी सन्धियाँ एव अर्थप्रकृतियाँ ही होती है। बहुत छोटा कलेवर होते हुए भी भाण साहित्य का एक विशेष स्थान है। इसका अन्य कारणो मे एक प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि शास्त्रीय दृष्टि से अधिकतर रूपको की कथावस्तु ऐतिहासिक होने से उनमे परम्पराबद्ध वर्णन ही सम्भव है।[3] चरित्र के स्वतन्त्र विकास का वहाँ स्थान नही। जैसा कि पीछे भाण के उद्‌गम के प्रसंग मे देखा गया है, ऐतिहासिक वृत होने से राजा, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, देवता आदि से ही अधिक सम्बद्ध होने के कारण उच्चवर्ग के चरित्र एवं समाज का चित्रण करना ही इन रूपकों में सम्भव है। अतः वे नाटकीय नियमों से बोझिल, परम्पराओं के पिंजड़े में बन्द, पिष्टपेषित स्वरूप वाले ही अधिकांश मिलते है। इसके विपरीत भाणो में कल्पित कथावस्तु, धूर्त और निम्न वर्ग के चरित्र चित्रण के कारण कवि को समाज और जीवन की यथार्थ झाँकी देने का अवसर होता है। समाज की कमजोरियो पर यहाँ व्यंग्य किया जा सकता है। जनजीवन की यथार्थ झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा सकती है। इसी से अन्य रूपकों की अपेक्षा कवियो का रुझान रूपको के इस भेद की ओर अधिक हुआ। फलस्वरूप भरत से लेकर २०वी शताब्दी तक सैकड़ों भाणों की रचना हुई। सामान्य लोकजीवन परक होने से जिस प्रकार मृच्छकटिक एवं दशकुमारचरित अधिक आदर के पात्र हुए उसी प्रकार समाज के सामान्य वर्ग की दुर्बलताओ, अन्ध-

---

१. ना० शा० १८/२, ३

२. अग्नि० पु०, अध्याय ३३७/१, २।

३. नाटक, डिम, व्यायोग, समवकार, अंक, तथा ईहामृग (मिश्रवृत्त) में इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु का विधान है। (द० रू० तृ० प्र०)

परम्पराओं एवं कुरीतियों पर व्यंग्य करने के कारण, मानव की सहज कामवृत्ति का आडम्बरहीन चित्र प्रस्तुत करने के कारण दशरूपकों मे भाण साहित्य का एक स्वतन्त्र स्थान है।

कुछ रूपकों में आदर्श एवं कुछ मे यथार्थ वर्णन के आधार पर दश रूपकों के दो भेद किये जा सकते हैं :—

आदर्शवादी रूपक—

नाटक, प्रकरण, डिम, व्यायोग, अंक और समवकार।

यथार्थवादी रूपक—

भाण, प्रहसन, वीथी, और ईहामृग।

आदर्शवादी रूपकों में नाटक सर्वश्रेष्ठ है तो यथार्थवादी रूपकों में भाण।

(ब)

शास्त्रीय स्वरूप

(परिभाषा)

भरत से लेकर विश्वनाथ तक प्रायः सभी नाट्यशास्त्रियो ने भाण की परिभाषा तथा उसके स्वरूप पर विचार किया है। इन परिभाषाओं के तथा भाण साहित्य के व्यापक अध्ययन के आधार पर भाण के प्रत्येक अंग का यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा।

भाण-समाख्या

भाण शब्द की निष्पत्ति'भण' धातु से हुई है[1]। जहाँ कथन की, भाषण की प्रधानता हो वह भाण है।[2]

इसी व्युत्पत्ति से संबन्धित भाण का अर्थ अनेक नाट्याचार्यो को भी अभीष्ट है। अभिनव गुप्त ने कहा है कि एक ही मुख अर्थात् एक ही पात्र द्वारा अप्रविष्ट भी पात्र जहाँ बोलते हुए से दिखाये जायें उसे भाण कहते है।[3] धनिक के अनुसार भाण वह है जिसमे—वाग्व्यापारात्मिका भारतीवृत्ति प्रधान हो।[4] रामचन्द्र गुणचन्द्र ने कहा है कि नायक आकाश भाषित के द्वारा जो स्व एवं पर वृत्त प्रकाशित करे, भणित करे वही भाण है।[5]

भाण की समाख्या के संबन्ध में यह व्याख्या इस बात की द्योतक है कि ये सभी आचार्य भाण को भणिति प्रधान मानते हैं। केवल एक पात्र द्वारा, कथन की भंगिमा के माध्यम से वाचिक अभिनय द्वारा समस्त रूपक अभिनीत किये जाने के कारण 'भाण' अन्वर्थ नाम वाला हुआ।

वस्तु

भाणों में कथावस्तु कल्पित होती है[6]। भरत तथा नाट्य-दर्पणकार ने अपनी परिभाषा में कथा वस्तु के संबन्ध में कुछ भी नही कहा है। संभव है धूर्त, पाखण्डी,

---

१. भण, मण, क्वण शब्दार्थाः (सि० कौ० भ्वादि, धातु संख्या ४७६)

२. भण्यतेऽत्रेति। भण-अधिकरणे घञ् (श० क० द्रु० भाग ३, पृ० ४६६)

३. ......एकमुखेनैव भाण्यन्ते उक्तिमन्त. क्रियन्ते—अप्रविष्टा अपि पात्रविशेषा यत्रेति भाणः (अभि० भा० भाग २, पृ० ४४६)

४. भारतीवृत्तिप्रधानत्वाद् भाणः (अवलोक, पृ० १६८)

५. भण्यते व्योमोक्त्या नायकेन स्वपरवृत्तं प्रकाश्यतेऽत्रेति भाणः (ना० द० पृ० १२७)

६. द० रू० ३/५१, सा० द० ६/२३०, प्र० रु० य० भू० पृ० १२५

द्यूतकार, वेश्या एवं विटों से संबन्धित होने के कारण उसका कल्पित होना स्वत: सिद्ध मानकर इन आचार्यो ने वस्तु के संबन्ध मे कुछ न कहा हो। अतएव भाण की कथा-वस्तु कविप्रतिभाप्रसूत 'उत्पाद्य' होती है ।

वस्तु के आधार पर भाणों का विभाजन

जैसाकि ऊपर देखा गया, भाणो की कथावस्तु कल्पित होती है। आचार्यों ने कथावस्तु के संबन्ध मे इससे अधिक और कुछ नही कहा है। किन्तु भाणो के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि कवियो ने कल्पित कथावस्तु को भी अनेक रूपों में ग्रहण किया है। कुछ ने उसे संघर्ष प्रधान बनाया है तो कुछ ने भाव प्रधान। कुछ कवियो ने व्यंग्य को प्रधानता दी है, तो कुछ ने वर्णनामात्र को। इस प्रकार मोटे तौर पर, एक विशिष्ट प्रकार के वर्णन की प्रधानता के आधार पर भाणों को चार प्रधान वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

सघर्ष प्रधान (Conflict Monologues)

इस वर्ग में वे भाण आते है जिनमें मुख्य पात्र अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए प्रयत्न करते हैं, विघ्न बाधायें आती है। इनके कथानक में संघर्ष एवं चमत्कार है। घटनाओं में बहुलता एवं रोचकता है, नायक नायिका द्वारा फल प्राप्ति के निश्चत उद्देश्य की पूर्ति है। उदाहरण है—मुकुन्दानन्द, पद्मप्राभृतक आदि ।

भाव प्रधान (Emotional monologues).

इस वर्ग के भाणो में नायक नायिका की एक दूसरे से मिलने की तीव्र उत्कंठा रहती है, अनुराग मे अनन्यता, प्रगाढता और विचारों में भावात्मकता रहती है। दोनों का मिलन भी अल्पप्रयत्नसाध्य, निर्विघ्न एवं सरल होता है। उदाहरण-उभयाभिसारिका, अनगजीवन (कोचुन्नि भूपालक कृत) आदि ।

व्यंग्य प्रधान (Satirical monologues.)

इन भाणों मे नायक नायिका का प्रसंग प्राय: नही होता। यों तो सभी भाणों में व्यंग्य रहता है किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनमे किसी विशिष्ट जाति एवं समाज की कुप्रथाओं तथा बुराइयो का ही विशेष रूप से उद्घाटन होता है, उन पर व्यंग्य की प्रधानता रहती है। ऐसे भाण व्यंग्य प्रधान वर्ग में आते हैं। उदाहरण-पादताडितक, धूर्तविटसंवाद आदि ।

वर्णना प्रधान (Descriptive monologues.)

इस वर्ग के भाणों में नायक नायिका का प्रसंग नाम मात्र का होता है। वर्णना प्रधान भाणों के नायक नायिका में न तो विरहजन्य वेदना ही होती है और न मिलन की उत्कण्ठा एवं प्रयत्न। इन भाणों में घटना का प्रायः अभाव होता है। गणिकाओं के रूप, यौवन, विट तथा अन्य प्रेमियों के साथ प्रेम रति एवं

शृंगार का वर्णन ही इनमे प्रधान होता है। उदाहरण-वसन्ततिलक, रससदन आदि।

भाणों के इस विभाजन से संबन्धित सग्रह श्लोक इस प्रकार का हो सकता है—

चतुर्धा प्रथितो भाण प्रधानत्वं भवेद् यदि
वर्णना-भाव-संघर्ष-व्यंग्याना हि विशेषतः।

अङ्क, सन्धि तथा लास्याङ्ग—

भाणों मे एक अङ्क, मुख एव निर्वहण दो सन्धियाँ तथा गेयपद आदि दशलास्यांग होते है।[1] दशरूपककार ने सन्धियो के साथ 'साङ्गे' विशेषण लगाकर इस बात पर बल दिया है कि दोनो सन्धियाँ अपने अधिक अगों के साथ प्रयुक्त हों। किन्तु ये दोनो सन्धियाँ भाव एवं संघर्ष प्रधान वर्ग के भाणो मे ही आवश्यक है। व्यंग्य तथा वर्णना प्रधान वर्गों में इनका अभाव पाया जाता है। इस सम्बन्ध मे संग्रह श्लोक इस प्रकार हो सकता है—

भावसंघर्षमुख्यत्वे सन्धिभावो भवेद् ध्रुवम्।
वर्णनाव्यंग्यमात्रे तु सन्ध्यभावस्तु दृश्यते॥

पात्र, चरित्र एव अभिनयप्रकार—

भाण मे निपुण, विद्वान् एवं धूर्तविट ही एक पात्र होता है[2]। किन्तु सागरनन्दिन् किसी सुन्दरी नायिका को ही भाण मे एकमात्र पात्र मानकर उसी के द्वारा उसे 'हार्य' (अभिनीत) बताते है।[3] इसके विपरीत इस परिभाषा में आये 'एकहार्य' पद की व्याख्या करते हुए डिलन तथा वी० राघवन् ने नाटक लक्षण रत्नकोष के अनुवाद मे इसका अर्थ—एक व्यक्ति–स्त्री या पुरुष द्वारा अभिनीत माना है।[4] किन्तु यह युक्ति सगत नही है। क्योंकि यदि परिभाषा में केवल 'एक हार्यः' पद ही होता तब तो उसका अर्थ 'एकेन हार्यः' 'एकया वाहार्यः' समास

---

१. ना० शा० १८/१६२,३०५ तथा १९/४७।
द० रू० ३/५१। प्र० रु० य० भू० पृ० १२५/३७।
सा० द० ६/२२८,२३०। ना० द० पृ० १२७/८१।

२. ना० शा० १८/१६३। द० रू० ३/४९। सा० द० ६/२२८।
भा० प्र० पृ० २४४। प्र० रु० य० भू० पृ० १२५। म०म०च० पृ० ७१।
ना० द० पृ० १२७

३. आत्मानुभूतशंसी परसंश्रयवर्णनाविशेषो विविधाश्रय **एकहार्यः**। एकया नायिकया हार्यः। भाण इहैकाकिन्या नार्या हार्योऽङ्गहारिण्या, इति।
ना० ल० र० को० पंक्ति २८४३।

४. 'Sustained by one person–male or female' (American Philosophical Society, Nov, 1960)

के द्वारा 'स्त्री या पुरुष पात्र द्वारा अभिनीत' किया जा सकता था। किन्तु परिभाषा मे लक्षणकार ने 'एक हार्यः' की स्वयं व्याख्या की है--एक नायिका के द्वारा अभिनीत हो और वह नायिका भी अंग हारिणी अर्थात् अगों द्वारा आकृष्ट करने वाली सुन्दरी हो। अतः 'एक हार्यः' का अर्थ यहाँ केवल स्त्री पात्र लिया जायेगा पुरुष पात्र नही। यही नही अपने ही कथन के विरुद्ध इस परिभाषा मे आये 'अग हारिण्या' पद की व्याख्या मे डिलन महोदय पुरुष पात्र को छोड़कर केवल स्त्री पात्र ग्रहण कर लेते हैं और 'अंग हारिण्या' का अर्थ सुन्दरी न करके 'नृत्य करने वाली वेश्या' करते हुए कहते है कि भाण केवल एक वेश्या द्वारा (या नटी द्वारा) अभिनीत हो जो वहाँ (रंगमच पर) नृत्य कर रही हो।[१] नाचती हुई वैश्या या नटी द्वारा अभिनय करने का यह अर्थ भाण जैसे रूपक में कुछ विचित्र सा लगता है।

इस प्रकार केवल सागरनन्दिन् के अनुसार भाण केवल स्त्री पात्र द्वारा ही अभिनीत होता है। किन्तु अन्य सभी आचार्य उसे पुरुष पात्र विट द्वारा अभिनीत ही मानते हैं और यही उचित भी लगता है। यह विट ही भाण मे प्रायः नायक होता है। कहीं कहीं विट के अतिरिक्त अन्य कोई पात्र भी नायक होता है—जिसे फल प्राप्ति होती है। उस स्थिति मे विट उसका या तो सहायक होता है या अनुनायक। विट स्वयं नायक हो या कि नायक का सहायक—दोनों ही स्थितियों में प्रगट रूप में रंगमंच पर आता विट ही है। अन्य पात्र तो आकाशभाषित द्वारा बोलते एवं अभिनय करते हुए से दिखाये जाते है।

भाण में धूर्त चरित का वर्णन होता है। 'धूर्त' शब्द 'धुर्वी' हिंसायाम् धातु से धूर्वति-हिनस्ति इस अर्थ मे 'तन्' प्रत्यय होकर 'उपधायां च' सूत्र से उपधा 'उ' को दीर्घ होकर बना। इसके अनेक अर्थ हैं—वंचक, मायावी, विट, जुआड़ी, चोर आदि।[२] नाटचदर्पणकार ने धूर्त का अर्थ चोर या जुआड़ी किया है।[३] चोर से आचार्य का अभिप्राय चौर्यरति से है यथा विल्हणकृत चौरपंचाशिका। 'धूर्तचरित' इस समस्त पद का अभिप्राय एक धूर्त अथवा अनेक धूर्तों के आख्यान से है। इस आख्यान मे विट द्वारा वर्णित घटना या तो आप बीती होती है या परबीती।

यह विट रंगमंच पर विविध प्रकार की चेष्टाओं, संयोग वियोग की विविध अवस्थाओं का आकाश भाषित द्वारा वर्णन करता है। दूसरे की बात को आत्मस्थ करके, अनेक चित्र विचित्र उक्ति प्रत्युक्तियों द्वारा उसे व्यक्त करता है। विट दूसरे की बात को इस ढंग से कहता है कि ऐसा लगता है जैसे वही पात्र स्वयं बोल रहा हो।

---

१. 'Bhana should be sustained by one actress, who dances'.

२. हलायुध कोश पृ० ३७५।

३. धूर्तश्चौरः द्यूतकारादिः (ना० द० पृ० १२७)

रस

भाण में अधिकांश आचार्यों ने वीर और शृंगार दो रस माने है।[१] आचार्य कोहल भाण मे केवल शृंगार रस मानते है।[२] समस्त नाट्य शास्त्रियो में कोहल प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने भाण में वीर रस नही माना। वीर और शृगार के अतिरिक्त हास्य को भी अङ्ग रूप मे मानने वाले नाट्य दर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र है। इन्होंने अपनी विवृत्ति मे लिखा है कि शृगार का अग होने के कारण हास्य को भी भाणो मे अग रूप मे स्थान दिया जाना चाहिए।[३] इस प्रकार का सकेत किसी अन्य आचार्य ने नही दिया है। संभवत· यहाँ हास्य को स्थान न देकर ग्रन्थकार का लक्ष्य भाणो मे प्रचुरता से मिलने वाली भारती वृत्ति के एक मुख्य अंग प्रहसन को अधिक महत्त्व देना हो।[४]

१. द० रू० ३/५०। ना० द० पृ० १२७। प्र० रु० य० भू० पृ० १२५। भा० प्र० पृ० २४४।र० सु० श्लो० २३२-२३६। सा० द० ६/२२६। म० म० च० पृ० ७१।

२. कोहलादिभिराचार्यैरुक्तं भाणस्य लक्षणम्-
लास्याङ्गदशकोपेतं सम्यगुत्पाद्य वस्तु च
भारतीवृत्तिभूयिष्ठ शृगारैकरसाश्रयम्॥ (भा० प्र० २४५ से उद्धृत)

३. शृगाराङ्गत्वाद् हास्योऽप्यत्राङ्गतया वर्णनीयः। (ना० द० विवृत्ति ~~पृ० १२७~~)

४. डा० एस० के० डे० (Aspects of Sanskrit Literature p. 5) तथा श्री मोतीचन्द्र (शृंगारहाट की भूमिका पृ० २) ने लिखा है कि अभिनवभारतीकार ने भाण को प्रहसन माना है और उनके अनुसार उसमें करुण, हास्य और अद्भुत रस होने चाहिए। अभिनव भारती का इस प्रसंग मे दोनो महानुभावो ने कोई उद्धरण नही दिया है। यदि उनका अभिप्राय अभिनवगुप्त के इस कथन से है— उत्सृष्टिकाङ्क प्रहसनभाणास्तु करुणहास्यविस्मयप्रधानत्वाद् रंजकरसप्रधानाः (अभि० भा० भाग २, पृ० ४५१) तो यह विचारणीय है। क्योकि इस वाक्य का अर्थ यह नही है कि उत्सृष्टिकांक, प्रहसन और भाण, करुण, हास्य और विस्मय प्रधान होते है। यहाँ तो यथासख्य रूप में अर्थ लिया जायेगा। अर्थात् उत्सृष्टिकांक में करुण, प्रहसन में हास्य तथा भाण मे विस्मय रस प्रधान होते हैं। ऐसा मानने से ही इस वाक्यार्थ का औचित्य होगा। अन्यथा करुण रस प्रधान उत्सृष्टिकांक में विरुद्ध रस हास्य कैसे संभव है? या हास्य प्रधान प्रहसन में करुण कैसे सभव है? अतः अभिनव भारतीकार ने केवल विस्मय (इन्द्रजाल, माया आदि के यत्र तत्र वर्णन के कारण) को प्रधान माना है। इस कथन के इसी अनुच्छेद के आरम्भ मे वे मानते है कि इन उत्सृष्टिकाक आदि में एक ही रस हो सकता है—

य एते उत्सृष्टिकांकादयो रूपकभेदास्ते तावदेकरसा एव—

साथ ही यह भी द्रष्टव्य है कि प्रहसन का बीज अनौचित्य है जो भाणो से कोसो दूर है। यदि ऐसा ही होता तो दश रूपकों में भाण और प्रहसन की पृथक्-पृथक् गणना न की जाती।

रस के इस प्रसंग में एक बात और द्रष्टव्य है। अपनी परिभाषा मे भरत भाणो मे रस की स्थिति के सम्बन्ध में मौन है। न केवल यह कि उन्होने रस की कोई चर्चा नही की बल्कि श्रृंगार प्रधान कैशिकी वृत्ति का भाण (तथा समवकार आदि सात अन्य रूपकों में) में निषेध किया है।[१] कैशिकी वृत्ति के निषेध का अर्थ हुआ भाणों मे श्रृंगार रस का निषेध। क्योंकि आचार्य कोहल तथा अन्य लक्षणकारो के अनुसार श्रृगार-हास्य तथा करुण कैशिकी के अभिन्न अंग है।[२] तदनुसार श्रृंगार तथा कैशिकी का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो जाता है और यह मान लिया जाता है कि जहाँ कैशिकी है वहाँ श्रृगार अवश्य होगा और जहाँ श्रृंगार है वहाँ कैशिकी। भाणों में श्रृगार रस होता है अतः वहाँ कैशिकी का होना आवश्यक है। परन्तु भरत इसे नही मानते दीखते है। वे भाणों मे कैशिकी का निषेध करते हैं। अतः श्रृगार का निषेध भी स्वतः हो जाता है। इस निषेध का कारण यह हो सकता है कि भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा सचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। भाण एक ऐसा रूपक है जहाँ एक ही पात्र आकाश भाषित द्वारा केवल वाचिक अभिनय करता है, जहाँ विभाव अनुभाव आदि का या तो अभाव रहता है या जो अभिनय के अभाव में सर्वथा अपुष्ट रहते हैं—वहाँ अभिनयात्मिका कैशिकी वृत्ति या तदनुगत श्रृंगार रस कैसे संभव है। अतः कैशिकी वृत्ति के अंगो के अपूर्ण होने से भाण में उसका निषेध किया गया है तथा अनिष्पन्न होने से वीर और श्रृंगार रस का अभाव भी माना गया है।

अभिनवभारतीकार भी नाटक प्रकरण को 'सर्ववृत्तिवृत्यङ्गरूपक' तथा भाण आदि को 'वृत्तिन्यूनरूपक' मानकर भरत के आशय को ही पुष्ट करते हुए दीखते है।[३]

भरत के इस मत का नाट्य दर्पणकार ने भी समर्थन किया है। उनका कहना है कि भाण में वीर तथा श्रृंगार रस की स्थिति यद्यपि प्रधान रूप से मानी गई हैकिन्तु

---

१. भाणः समवकारश्च तथेहामृग एव च
उत्सृष्टिकांको व्यायोगो वीथी प्रहसनं डिमः
कैशिकीवृत्तिहीनानि रूपाण्येतानि कारयेत्। (ना० शा० १८/८,६).

२. श्रृंगारहास्यकरुणैरिहकैशिकी स्यात्।
(अभि० भा० भाग २ पृ० ४५२ से उद्धृत)
तथा
द० रू० २/६२/सा० द० ६। १२४-१२७।

३. एवं नाटकप्रकरणाभ्यां सर्ववृत्तिवृत्यंगाभ्यां वृत्तिन्यूनानां च भेदानां परिकल्पनम्। तत. वृत्तिन्यूनानि रूपकाण्याह वीथीत्यादि
(अभि० भा० पृ० ४१०)

आकाश भाषित के द्वारा समस्त अभिनय वाचिक होने से, सात्विक तथा आङ्गिक अभिनय का सर्वथा अभाव होने से सात्वती तथा कैशिकी को प्रधान नहीं माना जा सकता ।[1] इसके अतिरिक्त रूपकों के गणना प्रसङ्ग में नाट्य दर्पणकार ने भरत की ही भांति नाटक, प्रकरण (तथा नाटिका प्रकरणिका भी) के अतिरिक्त शेष रूपकों में तीन वृत्तियों को मानते हुए कैशिकी का निषेध किया है ।[2] अपने इस निषेध वाक्य 'कैशिकीपरिवर्जनात्' की व्याख्या में उन्होने कहा है कि 'काममात्र शृंगार नहीं होता है बल्कि शृंगार वह है जहाँ विलासोत्कर्ष हो, वहाँ कैशिकी होती है, समवकार में शृङ्गार होता है पर (विलासोत्कर्ष के अभाव मे) वहाँ कैशिकी नही होती[3] ।' जहाँ काममात्र का वर्णन है वहाँ शृंगार भले ही हो परन्तु कैशिकी नही हो सकती ।

भाणो मे कैशिकी वृत्ति के अभाव सम्बन्धी भरत के इस मत का धनिक ने भी समर्थन किया है । धनजय के "सूचयेद् वीरशृंगारौ" इस पद की व्याख्या करते हुए धनिक अवलोक मे कहते है—अस्पष्ट होने के कारण, सौभाग्य और शौर्य के वर्णन द्वारा क्रमशः शृंगार तथा वीर रसों की सूचना दीजानी चाहिए ।[4] धनिक के इस 'अस्पष्ट-त्वाच्च" का अभिप्राय यह है कि विभाव के साक्षात् उपस्थित न होने के कारण यहाँ शृंगार रस की निष्पत्ति नहीं होती । वह अस्पष्ट ही रहता है । अतः अनिष्पन्न और अस्पष्ट होने के कारण भाण मे रस सूच्य होता है ।

यदि यह आपत्ति की जाये कि भरत का यह सिद्धान्त समवकार, वीथी तथा ईहामृग पर कैसे लागू हो सकता है क्योंकि ये रूपक तो अभिनय प्रधान, शृंगार रस तथा कैशिकी युक्त माने गये है— तो यह भी ठीक नही है । क्योंकि भरत ने इन तीनों ही रूपकों में शृंगार को प्रधानता नहीं दी है । वीथी को वे सर्वरस लक्षणाढ्या[5] कहकर उसमें किसी रस को प्रधान नहीं मानते । ईहामृग में व्यायोग की भाँति रस मानकर हास्य तथा शृंगार का अभाव बताते है ।[6]

१.—वीरशृंगारयोः प्रधानत्वेऽपि व्योमोक्त्या वाचिक एवाभिनयो, न सात्वि कांगिकाविति, न सात्वती कैशिकी वा प्रधानम् । (ना० द० पृ०

२. नाटकं प्रकरणं च नाटिका प्रकरण्यथ
व्यायोगः समवकारो भाणः प्रहसनं डिमः ।
अंक ईहामृगो वीथी चत्वारः सर्ववृतयः
त्रिवृतयः परे त्वष्टौ कैशिकीपरिवर्जनात् (वही पृ० २६)

३. यद्यपि समवकारे शृंगारत्वमस्ति तथापि न तत्र कैशिकी ।
न खलु काममात्रं शृगारः किन्तु विलासोत्कर्षः । वही पृ० २६

४. —अस्पष्टत्वाच्च वीरशृंगारौ सौभाग्यशौर्योपवर्णनया सूचनीयौ ।

५. ना० शा० १८/१६२

६. ना० शा० १८/१३३

समवकारों में यद्यपि भरत ने त्रिश्रृंगार माना है किन्तु कैशिकी का योग वहाँ भी उन्हें अभीष्ट नही है। तभी तो अभिनव भारतीकार तथा नाट्यदर्पणकार ने समवकार मे श्रृंगार होते हुए भी कैशिकी का अभाव माना है। इसके अतिरिक्त अन्य आचार्यों ने भी इन रूपकों मे श्रृंगार को प्रधानता नहीं दी है। वीथी की परिभाषा के प्रसंग मे कहे गये श्रृगार रस एवं कैशिकी वृत्ति के संबन्ध में धनिक कहते हैं कि विशेष रूप से श्रृंगार रस अपरिपूर्ण होने से सूच्य है, दूसरे रसों का भी स्पर्श होना चाहिए, श्रृंगार रस के औचित्य के कारण ही कैशिकी विधेय है।[1] अभिप्राय यह कि श्रृंगार रस वैसे पुष्ट तो नही होता परन्तु उसे माना गया है। इसलिए कैशिकी भी हो जायेगी। समवकार मे तो धनंजय त्रिश्रृगार मानते हुए भी उसमें कैशिकी का अभाव बताते है,[2] ईहामृग में भी वे श्रृगाराभास मानकर कैशिकी और श्रृंगार का निषेध करते है। विश्वनाथ वीथी में तो श्रृंगार और कैशिकी वृत्ति मानते है किन्तु समवकार और ईहामृग दोनो में उसका निषेध करते है। इसी प्रकार शारदातनय, रामचन्द्र गुणचन्द्र आदि प्रायः सभी आचार्यों ने इन रूपकों में श्रृंगार को प्रधानता नहीं दी।

इस प्रकार भरत, रामचन्द्र गुणचन्द्र तथा धनिक भाण में कैशिकी वृत्ति का निषेध और तदनुसार श्रृङ्गार रस का अभाव या अपुष्ट श्रृङ्गार मानते है। दूसरी ओर इधर सभी आचार्यों ने भाण में श्रृङ्गार रस मानकर प्रकारान्तर से कैशिकी स्वीकार की है। विश्वनाथ ने तो अपनी भाण की परिभाषा मे आये 'प्रायेण' पद[3] की व्याख्या मे स्पष्ट कहा है कि "प्रायेण" भारती वृत्ति होती है। उसका अभिप्राय यह है कि कहीं-कही कैशिकी वृत्ति भी होती है।[4] इस प्रकार भाण मे कैशिकी वृत्ति एवं श्रृङ्गार रस एक समस्या बन गये।

यदि भरत तथा उनके समर्थक रामचन्द्र-गुणचन्द्र की बात यथातथ्य मान ली जाये तो वृत्ति तथा रस वही होगे जहाँ रंगमंच पर सात्विक तथा आंगिक अभिनय के द्वारा उन प्रसङ्गो को साक्षात् देखा जाये। ऐसी स्थिति में नाटक तथा प्रकरण में तो वे मिल जायेगे किन्तु अभिनयाभाव के कारण समस्त श्रव्य काव्य में रस का अभाव हो जायेगा और समस्त रसात्मा साहित्य व्याकुल हो उठेगा। काव्यों में भी वाचिक वर्णन ही रहता है—सात्विक तथा आंगिक अभिनय नहीं। काव्यों में भी विभावादि का वर्णन ही रहता है—रंगमच पर दिखाये तो नही जाते। अतः भाणो में केवल वाचिक अभिनय होने मात्र से तथा विभावादि के अभाव मे रसनिष्पत्ति की असंभाव्यता के

१. —विशेषतस्तु रसः श्रृंगारोऽपरिपूर्णत्वाद् भूयसा सूच्यः। रसान्तराण्यपि स्तोकं दर्शनीयानि। कैशिकी वृत्तिः रसौचित्यादेव। (अवलोक पृ० १७४)

२. अवलोक, पृ० १७२-१७३

३. वृत्तिः प्रायेण भारती। (सा० द० ६/२३०)

४. ......प्रायेण भारती, क्वापि कैशिक्यपि वृत्तिर्भवति। (सा० द० ६/२३० की वृत्ति)

कारण शृङ्गार रस की अस्पष्टता तथा कैशिकी का अभाव है ऐसा मानना उचित नही।

अतः 'कैशिकीवृत्तिहीनानि रूपाण्येतानि कारयेत्' से भरत का अभिप्राय यह हो नही सकता कि भाण, प्रहसन, वीथी, डिम, व्यायोग, अङ्क तथा ईहामृग, इन रूपकों मे कैशिकी वृत्ति न हो। यदि कैशिकी का अभाव ही बतलाना होता तो भाण, वीथी तथा समवकार में बताते क्योकि ये ही रूपक ऐसे है जिनमे शृङ्गार माना गया है। हास्य, करुण, वीर एवं रौद्र रस प्रधान प्रहसन, डिम, व्यायोग आदि रूपकों में कैशिकी वृत्ति के निषेध का क्या फल हुआ! इसी प्रकार उन्होंने नाटक और प्रकरण को 'सर्ववृत्तिविनिष्पन्न' माना है।[1] इसमें भी असामंजस्य है। नाटक और प्रकरण वीर तथा शृङ्गार रस प्रधान होते है। अत तदनुकूल सात्वती और कैशिकी (सर्व रस व्याप्त होने से भारती भी) वृत्तियाँ तो वहाँ सम्भव है, आरभटी कैसे हो सकती है? अतः इसका अभिप्राय यह हुआ कि नाटक प्रकरण मे रसानुकूल कैशिकी तथा सात्वती तो मुख्य रूप से हों एव अन्य वृत्तिया (आरभटी, भारती) गौण रूप से। उसी प्रकार भाण आदि आठ रूपको के सम्बन्ध में उनका आशय यह है कि इन रूपको में प्रत्येक मे अपने-अपने रस के अनुकूल वृत्ति मुख्य रूप से हो। इस दृष्टि से इन रूपकों में यदि शृगार रस उदात्त, विलासोत्कर्षपूर्ण न हो तो कैशिकी वृत्ति मुख्य रूप से नही हो सकती। इसीलिए भाणों मे उक्ति वैचित्र्यपूर्ण वाचिक अभिनय की प्रधानता के कारण वहाँ भारती को तो भरत ने मुख्य रूप से माना ही है। उदात्त एवं विलासोत्कर्ष प्रधान न होने से (काममात्र होने से) शृंगार की चर्चा नही की।

वस्तुतः सभी भाणों में रस परिपोष पूर्ण रूप से होना अनिवार्य प्रतीत नही होता। संघर्ष तथा भाव प्रधान वर्ग के अन्तर्गत आने वाले भाणों में तो शृङ्गार रस तथा कैशिकी वृत्ति का विलासोत्कर्ष के रूप में प्राप्त होना सम्भव है किन्तु व्यंग्य एवं वर्णना प्रधान भाणों में तो अभिलाष, आकर्षण सौन्दर्यानुभूति, ईहा आदि भावों का ही उन्मेष पर्याप्त है।[2]

वृत्ति

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि भरत तथा रामचन्द्र गुणचन्द्र आदि को भाणों में कैशिकी का अभाव अभिप्रेत है। किन्तु अपने विविध अंगों से उपेत भारती वृत्ति को भाणो में प्रधान रूप से मानने के पक्ष मे सभी आचार्य है।[3] यही नही 'भूयसा' 'भूयिष्ठ' आदि विशेषण देकर भाणो मे भारती की अत्यधिक आवश्यकता बतलाई है। धनिक तो 'भाण' इस नाम की सार्थकता ही भारती वृत्ति प्रधान होने से मानते

१. ना० शा० १८/७।

२. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए उपसंहार।

३. ना० शा० १०/४ /द० रू० ३/५१/सा० द० ६/२३०। भा० प्र० पृ० २४५/२/प्र० रु० य० भू० १२५/३६/म० म० च० पृ० ७१/ ना० द० पृ० १२७।

है ।[1] कारण यह है कि भाणों में वाचिक अभिनय के कारण भारती वृत्ति ही प्रधान होती है तथा वह अपने समस्त भेदों (प्ररोचना, वीथी, प्रहसन तथा आमुख) के साथ प्रधान रूप से प्रयुक्त होनी चाहिए। वीथी तथा प्रहसन के अनेक अंग है। ये अंग भाण में पुनः-पुनः प्रयुक्त होकर उसके वर्णन सौन्दर्य को अधिकाधिक चमत्कार पूर्ण एवं रोचक बनाये।

आचार्य विश्वनाथ ने अपनी परिभाषा में भारती वृत्ति के साथ और आचार्यों की भाँति 'भूयसा' या 'भूयिष्ठ' विशेषण न लगाकर 'प्रायेण' लगाया है और बताया है कि भाण मे कैशिकी वृत्ति भी कभी-कभी हो जाती है। किन्तु विश्वनाथ द्वारा 'प्रायेण' का यह अर्थ सर्वथा सकुचित है। क्योकि 'प्रायेण' का नियन्त्रण कैशिकी मात्र तक सीमित कर देना उचित नही लगता। अन्य आचार्य इसी प्रसङ्ग मे भारती वृत्ति को भूयिष्ठ स्थान देते हुए अन्य वृत्तियो के समावेश को प्रकारान्तर से स्वीकार करते है। वस्तुतः यही सम्भव है कि भारती के मुख्य रूप से रहते हुए भी इतर वृत्तियाँ-कैशिकी, सात्वती आदि-भी यत्र-तत्र पाई जा सकती हैं।

इस प्रकार प्रायः समस्त आचार्यों की परिभाषाओं का पर्यालोचन करने के बाद भाण का स्वरूप यह हुआ—

भाण उसे कहते है जिसमें स्वयं अपने द्वारा या अन्य द्वारा अनुभूत धूर्तचरित का चतुर, पण्डित विट आकाश भाषित के द्वारा उत्तर प्रत्युत्तर के रूप मे वर्णन करे। इस वर्णन मे विट दूसरे की बात को आत्मस्थ करके विविध प्रकार के अङ्ग विकार एवं नाना प्रकार की चेष्टाओ का प्रदर्शन करते हुए समाज एव मानव की विविध स्थितियों का चित्र उपस्थित करता है। केवल एक अङ्क मे वर्णित भाण के इस कल्पित कथानक मे वीर एवं शृङ्गार रस अपने अङ्गों के साथ प्राप्त होना चाहिए[2]। भाण में मुख तथा निर्वहण दो सन्धियाँ, दश लास्यांग एवं यथावसर उपस्थित अन्य वृत्तियों के साथ भारती वृत्ति के समस्त अङ्गों का प्रचुरता से प्रयोग होता है।

भाण के उपस्कारक अङ्ग

भाण की परिभाषा के अनन्तर यहाँ उसके उपस्कारक विविध धर्मों पर विचार किया जायेगा।

नान्दी

रंगमंच पर रूपक के आरम्भ होने के पूर्व सूत्रधार जो आशीर्वाद परक या नमस्कारात्मक मंगलाचरण किसी देवता, ब्राह्मण या राजा की स्तुति के रूप में पढ़ता है उसे नान्दी कहते हैं। पूर्वरंग के १९ प्रकारों में प्रत्याहार से लेकर आसारित तक के ९ प्रकार पर्दे के पीछे किये जाते है जिन्हें दर्शक नही देखते तथा गीतक से लेकर प्ररोचना तक के १० प्रकार रंगमंच पर ही किये जाते हैं और इन्हें दर्शक देख सकते

१. दे० पीछे 'समाख्या'।

२. लक्ष्य के आधार पर विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—उपसंहार।

हैं।[1] इनमें १३ वां पूर्वरंग नान्दी है जो रंगमंच पर दर्शक मण्डली के समक्ष किया जाता है।[2]

नान्दी शब्द नद् (टुनदि समृद्धौ) धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है समृद्धि, मङ्गल। नान्दी के द्वारा काव्य, कवि, नट तथा दर्शक सभी के मङ्गल की कामना की जाती है।[3] जिस नान्दी मे शङ्ख, चन्द्र, कमल, चकवा, चकई एवं श्वेत कमल (कैरव) शब्दो का उल्लेख हो वह नान्दी अधिक उत्तम मानी जाती है।[4]

नान्दी के प्रधानतया तीन भेद माने गये हैं—नीली, शुद्धा और पत्रावली। नीली भेद काव्येन्दु प्रकाशकार को विशेष अभीष्ट है। उनके अनुसार जहाँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य एव चन्द्र का उल्लेख हो वहाँ नान्दी का 'नीली' नामक भेद माना जायेगा।[5] शुद्धानान्दी वहाँ होती है जहाँ नमस्कार, मङ्गल या आशीर्वाद परक वर्णन हो। पत्रावली उस नान्दी को कहते है जिसके वर्णन में कथानक के बीज के प्रति, मुख्य कथा के प्रति किसी प्रकार का संकेत हो। यह सकेत श्लेष अथवा समासोक्ति अलङ्कार द्वारा किया जा सकता है।[6]

आचार्य भरत के अनुसार नान्दी अष्टपदा तथा द्वादशपदा होती है। किन्तु इस सम्बन्ध मे अन्य आचार्यो के भिन्न-भिन्न मत है। शिगभूपाल के अनुसार नान्दी अष्टपदा, दशपदा तथा द्वादशपदा होनी चाहिए। मन्दारमरन्दकार का मत है कि नान्दी अष्टपदा, दशपदा, द्वादशपदा, अष्ठादशपदा तथा द्वाविंशतिपदा होनी चाहिए। शारदातनय ने चतुष्पदा नान्दी भी मानी है। इन मतों से सिद्ध होता है कि अष्टपदा तथा द्वादशपदा नान्दी प्रायः सभी आचार्यों को मान्य है।

---

१. ना० शा० ५/८–१५।

२. विश्वनाथ इससे सहमत नहीं हैं। वे नान्दी की परिभाषा के अन्त में कहते हैं कि मैंने यह दूसरों के मत का उद्धरण दिया है। वस्तुतः नान्दी पर्दे के पीछे होनी चाहिए जिसे दर्शक न देख सकें। अपने इस मत की पुष्टि में उन्होंने कुछ नाटकों मे आरम्भ में 'नान्द्यन्ते ततःप्रविशति सूत्रधारः' का उद्धरण देकर सिद्ध किया है कि पर्दे के पीछे नान्दी हो जाने पर ही सूत्रधार रंगमंच पर आता है।

किन्तु भरत, अभिनव गुप्त, शारदातनय, रामचन्द्र-गुणचन्द्र, शिगभूपाल, भोजदेव आदि इस मत से सहमत नहीं हैं।

३. नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः।
यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी तस्मादियं सा कथितेह नान्दी। (ना० प्र०)

४. सा० द० ६/२५

५. उपादानं वर्णनं वा भवेद् यत्रेन्दुसूर्ययो।
सा नीली स्यात्तदन्या तु शुद्धेति परिगीयते।
(काव्येन्दुप्रकाश, सा० द० पृ० ३३० पर उद्धृत)

६. यस्या वीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुन.।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावली तु सा (ना० प्र०)

नान्दी के पद की परिभाषा के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं। नाट्य प्रदीपकार ने अनेक आचार्यों के नाम दिये बिना उनके मतों को उद्धृत करते हुये कहा है कि कुछ लोग तो श्लोक के एक चरण को ही नान्दी का 'पद' मानते हैं, कुछ लोग सुबन्त और तिङन्त के पद को 'पद' मानते है, अन्य विद्वानों के मत से अवान्तरवाक्य (क्लाज) ही नान्दी का पद है।[1] आचार्य अभिनवगुप्त के मत से 'पद' का अर्थ है सगीतात्मक लय या ध्वनि। अर्थात् श्लोक के उच्चारण में जो यति है वही नान्दी का पद है।[2] इस प्रकार पद की परिभाषा के सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नही मिलता। प्रतीत होता है व्यवहार में श्लोकपाद को ही 'पद' माना गया है।

प्रत्येक अक्षर तथा गण के विशेष देवता होते है जो भिन्न-भिन्न प्रकार के शुभ और अशुभ फलो के देने वाले होते है।[3] अतः मंगल-विधायिका नान्दी के आरम्भिक अक्षर और गण ऐसे होने चाहिये जो शुभ हों, मगल एव समृद्धिदायक हों। ऐसा होने से रूपक के नायक को सफलता एवं सुख की प्राप्ति होती है।[4] इस सम्बन्ध मे इतना अवश्य है कि यदि कोई अक्षर या गण देवता वाची है, या भद्र, मङ्गल आदि शब्दों का वाचक है तो वह अशुभ नही माना जायेगा अर्थात् अशुभ होने पर भी देवता या

---

१. श्लोकपादपदं केचित् सुप्तिङन्तमथापरे
परेऽवान्तरवाक्यैक स्वरूपं पदमूचिरे। (ना० प्र०)

२. अभि० भा०, भाग २, पृ० २१७

अक्षरों के फल

३. कः खो गो घश्च लक्ष्मीं वितरित, वियशो ङ्स्तथा चः सुखं छः
प्रीतिं, जो मित्रलाभं, भयमरणकरौ झञौ, टठौ खेददुःखौ
डः शोभां ढो विशोभां भ्रमणमथचणस्त. सुखं, थश्च युद्धम्
दो धः सौख्य, मुदं नः, सुखभयमरणक्लेशदु.खं पवर्गः।
यो लक्ष्मीं रश्च दाहं व्यसनमथलवौ शः सुखं षश्च खेदं
सः सौख्यं, हश्च खेद, विलयमपि च लः, क्षः समृद्धिं करोति
संयुक्तं नेह न स्यात् सुखमरणपटु वर्णविन्यास योगः
पद्यादौ गद्यवक्त्रे वचसि च सकले प्राकृतादौ समोऽयम्। (काव्यालं पृ० ५७)

गणों के देवता तथा उनके फल

मो भूमिस्त्रिगुरुः श्रियं दिशति, यो वृद्धिं जलं चादिलो,
रोऽग्निर्मध्यलघुर्विनाश, मनिलोदेशाटन सोऽन्त्यगः।
तो व्योमान्तलघु र्धनापहरण, जोऽर्को रुज मध्यगो,
भश्चन्द्रो यश उज्ज्वलं मुखगुरु. नो नाक आयुस्त्रिलः (वृ० र० पृ० ५)

४. अक्षरे परिशुद्धे तु नायको भूतिमृच्छति। (वृ० र० पृ० ६)

मङ्गल वाची होने के कारण शुभ फलदायक ही होगा।[1] अतः ऐसे अक्षर और गण का प्रयोग काव्य तथा नान्दी के आदि मे किया जा सकता है।

स्थापना—

नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार चला जाता है और उसी की भाँति एक दूसरा नट आकर रूपक का परिचय, लेखक, उसकी विशेषता, रूपक का नाम आदि देता है। समयोचित ऋतु का वर्णन, रूपक की प्रशसा आदि के द्वारा वह दर्शक मण्डली को आकृष्ट करता है।[2] इस प्रकार आरम्भिक व्यवस्था होने के कारण रूपक का यह अ्रश 'स्थापना' कहलाता है और इसे करने वाला नट 'स्थापक'। इस स्थापना को ही आमुख या प्रस्तावना भी कहा गया है। रूपक का आरम्भ (मुख) या प्रस्तुतीकरण होने के कारण ही इसे आमुख या प्रस्तावना कहा गया है। वस्तुतः यह उस आमुख या प्रस्तावना से भिन्न है जिसके कथोद्घात आदि तीन भेद हैं।

रूपक का परिचय देने के इस प्रसग मे स्थापक भारतीवृत्ति का आश्रय लेता है।[3]

नट का संस्कृत भाषा में चित्र विचित्र वाग्व्यापार—कथन का एक विशिष्ट प्रकार ही भारती वृत्ति कहलाता है। भारती वृत्ति के चार भेद होते है—प्ररोचना, वीथी, प्रहसन तथा आमुख।[4] वीथी के तेरह तथा प्रहसन के दश अङ्ग[5] एव आमुख के कथोद्घात, प्रवृत्तक तथा प्रयोगातिशय ये तीन भेद होते है।

कलेवर—

लक्षणकारों ने काव्य के कलेवर को पुरुष के कलेवर से निरूपित किया है। विश्वनाथ ने काव्य को शरीर मानते हुये कहा है कि जिस प्रकार शौर्य आदि गुण, कटककुडल आदि अलंकार एव अङ्ग प्रत्यंग का सुन्दर गठन—शरीर के साथ ही आत्मा की, शरीरी की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार प्रसाद, माधुर्य आदि गुण, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार तथा वैदर्भी आदि रीतियाँ—काव्य शरीर के आत्मभूत रस का उत्कर्ष बढ़ाते हैं।[6] राजशेखर ने भी सरस्वती पुत्र काव्य पुरुष के विविध शरीरावयवों का वर्णन किया है।[7] जिस प्रकार शरीर का प्रत्येक अङ्ग पृथक् होते हुए भी एक दूसरे से इस प्रकार से सम्बद्ध रहता है, जुड़ा रहता है कि पूरा ढांचा एक सा लगता है। भवन के भिन्न-भिन्न भाग (भित्ति, खिड़की, द्वार आदि) पृथक्-पृथक् होते है,

---

१. देवतावाचकाः शब्दाः ये च भद्रादिवाचकाः
ते सर्वे नैव निन्द्याः स्यु लिपितो गणतोऽपिवा। (काव्यालं० पृ० ५६)

२. द० रू० ३/२

३. वही ३/४

४. वही ३/५

५. दे० आगे 'वृत्ति'

६. सा० द० १/३ (वृत्ति)

७. का० मी० तृ० अ० पृ० १४

कुशल कारीगर उन्हें इस प्रकार जोड़ देता है कि वे एक दूसरे के पूरक अभिन्न अङ्ग बन जाते हैं।

रूपक का ढांचा भी इसी प्रकार का होता है। उसका कथानक भी कई भागों में विभक्त रहता है, अनेक उसमें मोड़ होते हैं। रूपक के ये विभाग (अन्तर) ही पारिभाषिक शब्दो मे सन्धि कहलाते है। जितना बडा रूपक होगा, जितने अधिक उसमें विभाग होगे, उतनी ही अधिक उसमें सन्धियाँ। एक विभाग या अन्तर के भी अनेक अवान्तर विभाग होते है। ये अवान्तर विभाग ही सन्ध्यंग होते है।

जैसा कि भाण के लक्षण में देखा गया है उसमे केवल दो ही सन्धियाँ होती है—प्रथम और अन्तिम अर्थात् मुख और निर्वहण। दूसरे शब्दों मे भाण के कथानक को दो भागो मे बाँटा जा सकता है। प्रत्येक भाग के अवान्तर भेद ही मुख तथा निर्वहण सन्धियों के अंग होते है।

सन्ध्यन्तर—

कथानक के वे छोटे-छोटे भाग होते हैं जो किसी भी सन्ध्यंग में कहीं भी पाये जा सकते हैं। कथानक के किसी विशेष अर्थ को, किसी विशेष भाग को जहाँ अधिक पुष्ट करना होता है, उसमे विशेषता लानी होती है—वहाँ सन्ध्यन्तर का प्रयोग होता है। सन्ध्यन्तर संख्या में २१ होते है—साम, भेद, दण्ड, प्रदान, बध, प्रत्युत्पन्न-मतित्व, गोत्रस्खलित, साहस, भय, ह्री, माया, क्रोध, ओजः, संवरण, भ्रान्ति, हेत्ववधारण, दूत, लेख, स्वप्न, चित, और मद।[१] किस सन्धि या सन्ध्यंग में कितने और कौन से सन्ध्यन्तर हो इसका कोई विभाजन नहीं है। प्रयोजन एवं प्रसंगानुकूल कोई सन्ध्यन्तर कहीं भी आ सकता है।[२]

अंक तथा दृश्य—

भाण में शास्त्रीय दृष्टि से एक ही अंक होता है और दृश्य शब्द के उल्लेख पूर्वक उस अंक का कोई विभाजन भी नही होता। क्योंकि आचार्यों ने रूपकों में कहीं भी दृश्य विभाजन नहीं किया है। यद्यपि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला की विदा, धीवर का प्रसंग, मातलि द्वारा विदूषक के पीटे जाने का प्रसंग आदि कई दृश्य बन सकते हैं। इसी प्रकार उत्तररामचरित, मुद्राराक्षस, नागानन्द आदि नाटकों में भी अनेक दृश्यो की योजना हो सकती है। किन्तु शास्त्रीय परम्परा न होने से ऐसा नही किया गया। उसी प्रकार भाणों के कथानक में भी मोड़ इस प्रकार के

---

१. ना० शा० १६/१०४-१०७।

२. ना० द० पृ० ११६ मे सन्ध्यन्तरों को गिनाया तो है पर 'केचित्' कहकर उनमें अपनी असहमति ग्रन्थकार ने प्रकट की है तथा उनका गर्भ आदि सन्धियों में अन्तर्भाव दिखाया है।

आते है कि उनमें भी दृश्य विभाजन सम्भव है। प्रस्तावना के बाद से आरम्भ होकर भरत वाक्य के पूर्व तक का कथानक भाण होता है।[1] इस कथानक को कई भागों मे विभक्त किया जा सकता है। भाण का आरम्भ, प्रकृति (प्रातः साय आदि का) वर्णन, वियोगी नायक की दशा, वियोग कारण, नायक के मित्रो द्वारा किसी बहाने से प्रिया से पुनर्मिलन करा देने की प्रतिज्ञा और प्रयत्न के आरम्भ तक का कथानक प्रथम दृश्य में आ सकता है। द्वितीय दृश्य मे विट या नायक द्वारा उद्देश्य प्राप्ति के लिये किया गया प्रयत्न, उसमे बाधायें आदि या कोई सहायता आदि की घटनाये आ सकती हैं। तृतीय दृश्य मे इस कथानक के प्रसङ्ग मे समाज, लोक जीवन, धार्मिक उत्सव, खेलकूद आदि कोई मनोरजक प्रसङ्ग हो सकते है। इसी प्रकार सफलता की आशा के लक्षण, मुख्य कार्य की घटक कोई अवान्तर घटना, समस्त बिखरे सूत्रों का एकत्र होना, नायक नायिका मिलन या उद्देश्य प्राप्ति की घटना चतुर्थ दृश्य में आ सकती है।

भाण का उपरूपक–भाणिका या भाणी

परवर्ती (भरत के बाद) आचार्यों द्वारा एक वर्ग उपरूपकों का भी बनाया गया है जिसमे दृश्य काव्य के कुछ नये निदर्शन दिखाये गये हैं। इनमे नाटिका, प्रकरणी और भाणकिा (या भाणी) जैसी सज्ञाये है जो क्रमश. रूपक वर्ग मे पठित नाटक, प्रकरण और भाण के सक्षिप्त रूप कहे जा सकते है—यद्यपि किसी लक्षणकार ने ऐसा स्पष्ट रूप से कहा नही है। जो भी हो, भाणिका उपरूपक मे वर्णित सन्धि के अनुसार उपलब्ध सन्ध्यगों के अतिरिक्त उसके (भाणिका के) सात विशेष अङ्गो का उल्लेख आचार्यों ने किया है।[2] ये सात अङ्ग हैं—उपन्यास, विन्यास, विबोध, साध्वस, समर्पण, निवृत्ति तथा सहार। ये भाण्यग स्वरूपतः पर्याप्त व्यापक प्रतीत होते हैं और इनका अस्तित्व अपेक्षानुसार न केवल रूपक भाण में ही अपितु अन्य रूपकों में भी होना सम्भव है। आगे चलकर सुबन्धु जैसे लक्षणकार ने तो किसी भी रूपक को पूर्ण लक्षण का स्वरूप देने मे ६६ तत्व मानते हुए कतिपय उपरूपकों के अङ्गों (जिनमें भाणिकाग भी सम्मिलित है) का भी समावेश किया है। अतएव यह माना जा सकता है कि भाणिका के अङ्गो का भाण मे भी होना सम्भव है और वे भाण के कलेवर के उपस्कारक धर्म कहे जा सकते है। आचार्य शारदातनय के अनुसार २० उपरूपको में भाण, भाणिका, तथा भाणी ये तीन उपरूपक भाण रूपक से सम्बन्धित लगते है। **भाण**—वह उपरूपक है जिसमे विष्णु शिव, पार्वती, षडानन, एव प्रमथाधिप की स्तुति रहती है। यह उद्धत करण तथा स्त्री रहित होता

---

१. प्रस्तावना का अंश भाण नही हो सकता। क्योंकि प्रस्तावना में आकाश भाषित नहीं होता। नट, नटी एवं मारिष के वार्तालाप द्वारा भाण का परिचय दिया जाता है। यह प्रस्तावना बिल्कुल नाटक की ही भाँति होती है। इसमें भाण का कोई स्वरूप नही होता। इसी से प्रस्तावना के बाद ही भाण का आरम्भ मानना उचित है।

२. सा० द० ६/३०६-३१०। ना० ल० र० को० पंक्ति ३१६२-६३

है। इसमें गुणो की प्रशसा द्वारा राजा की स्तुति की जाती है तथा यह उदात्त भाव से विभूषित रहता है। **भाण** उपरूपक के तीन भेद होते है—शुद्ध, सकीर्ण और चित्र। इसके अतिरिक्त उद्धत, ललित तथा ललितोद्धत तीन भेद और कथानक के आधार पर माने है। शारदातनय ने 'नन्दिमाली' नामक भाण उपरूपक माना है। **भाणिका** उपरूपक मे प्रायः हरिचरित का वर्णन होता है। सुकुमार प्रयोग के कारण भाण उपरूपक ही भाणिका हो जाता है। **भाणी** उपरूपक शृङ्गार प्रधान होता है। इसमें सुन्दर, सुवेश नायिका होती है। मुख, प्रतिमुख तथा गर्भ ये तीन सन्धियाँ होती हैं। कथानक बहुत थोड़ा होता है। पीठमर्द, विट एव विदूषक का प्रयोग होता है। भाणी मे पांचाली रीति तथा लास्याग भी होते हैं। उदाहरण है—**वीणावती**।[1]

भाण तथा भाणिका नाम के उपरूपक जो शारदातनय ने माने है वे भाण रूपक के ही भेद है। क्योंकि भाण जब अपने मुख्यविषय (धूर्तचरित का शृङ्गार-पूर्ण वर्णन) से हटकर हरिहरचरित का उद्धत वर्णन करता है तब वह भाण उपरूपक का एक भेद हुआ और जब हरिहरचरित का लास्य प्रधान वर्णन होता है तो वह भाण रूपक का दूसरा भेद हुआ। इसे (लास्य प्रधान होने से) भाणिका कह सकते हैं। वस्तुतः भाण ही भाणिका होता है। 'भाण एव भाणिका' स्वार्थ मे 'क' प्रत्यय हुआ।

शारदातनय ने उपरूपक भाण और भाणिका की परिभाषा उसमें भी भाण उपरूपक के शुद्ध, सकीर्ण और चित्र-ये भेद मालूम होता है किसी उपरूपक को देखकर उसके आधार पर किये हैं। क्योंकि यह परिभाषा (हरिहरचरित की स्तुति) और ये भेद अन्य किसी आचार्य ने नहीं माने। अतः व्यापक न होने के कारण ये भेद सर्वमान्य नहीं हैं। इनका 'भाणी' उपरूपक अन्य आचार्यों के भाणिका या भाणी से कुछ मिलता जुलता है।

सागरनन्दिन् ने भी भाण रूपक से संबन्धित दो उपरूपक माने हैं—भाणिका तथा भाणी। **भाणिका** उसे कहते हैं जिसमें उदात्त नायिका, मन्द नायक, सूक्ष्म वेशभूषा, एक अंक तथा कैशिकी और भारतीवृत्ति प्रधान हो। उदाहरण **कामदत्ता**। **भाणी** वह उपरूपक है जिसमें एक अंक हो, विट, विदूषक, मीठमर्द से जो सुशोभित हो, शृङ्गार रस, स्वल्प चित्र कथा, तथा दशलास्यांग हों। उदाहरण—**वीणावती**[2]। सागरनन्दिन् की भाणी शारदातनय की भाणी से मिलती जुलती है।

विश्वनाथ ने भाण से संबन्धित एक ही उपरूपक भाणिका माना है। **भाणिका** उपरूपक में सुन्दर, सुवेश का वर्णन, मुख निर्वहण सन्धि, कैशिकी तथा भारती वृत्ति, एक अंक, उदात्त नायिका तथा मन्दनायक (वैसे यहाँ उदात्तनायिका

१. भा० प्र० पृ० २५८–२६२।
२. ना० ल० र० को० पंक्ति ३१४३–३१८६।

'मन्दनायक:' मे 'अमन्द' पद लेकर उदात्त नायक अर्थ किया जा सकता है किन्तु सागरनन्दिन् के अनुसार ही यहाँ भी मन्दनायक' यही अर्थ लिया गया है) होता है, इसमें सात अंग होते हैं।[1]

इस प्रकार भाण रूपक से संबन्धित उपरूपक भाणी तथा भाणिका में विद्वानों में थोड़ा मतभेद है। ऐसा लगता है इन आचार्यों के सामने भिन्न-भिन्न निदर्शन रहे होंगे जिनके आधार पर लक्षण किये जाने के कारण परिभाषाओं में यह भेद दीखता है।

उपर्युक्त विवेचन मे उपरूपक भाणी का उदाहरण **वीणावती** तथा भाणिका का **कामदत्ता** दिया गया है। साथ ही श्री एम० कृष्णमाचारी ने अपने हिस्ट्री आफ़ क्लैसिकल सस्कृत लिटरेचर[2] में एक दानकेलिकौमुदी नामक भाणिका की चर्चा की है। इनमें वीणावती तथा कामदत्ता तो भारत के प्रायः सभी प्रसिद्ध पुस्तकालयों (विशेषकर दक्षिण भारत के पुस्तकालयों) में प्रयत्नपूर्वक ढूढने पर भी अनुसन्धान-कर्ता को नहीं मिली। दानकेलिकौमुदी की दो पांडुलिपियाँ प्राप्त हुई। एक तो सरस्वती महल लाइब्रेरी—तंजौर में, जो अत्यन्त जीर्ण शीर्ण तथा असपूर्ण होने से पढ़ने मे ही नहीं आई। दूसरी पाडुलिपि गवर्मेन्ट ओरियन्टल मैनस्क्रप्ट लाइब्रेरी मद्रास मे मिली। कैटालाग में तो उसके कर्ता का नाम शथकोप दिया है किन्तु पाडुलिपि की प्रस्तावना आदि में कवि का कोई परिचय नही है। यह प्रति भी बड़ी कठिनाई से कुछ-कुछ पढ़ी जा सकी। इसमें प्राकृत बहुत अधिक है। इसमे राधा और माधव के विरह, प्रेम और मिलन की कहानी है। प्रायः सभी पात्र पौराणिक हैं। इसका स्वरूप शारदातनय के भाणिका के लक्षण से कुछ कुछ मिलता जुलता है।[3] तंजोर की प्रति के अन्त में भाणिका का लक्षण भी दिया है जो अपठनीय एवं अपूर्ण है। इस प्रकार भाणी एवं भाणिका के लक्षण तो मिलते हैं किन्तु लक्ष्य की अप्राप्ति के कारण उनका निगमन संभव नहीं हो सका।

भाण के भूषण—

जिस प्रकार शरीर को अधिक सुन्दर बनाने के लिये आभूषणों का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार भाण रूपक को रोचक बनाने की दृष्टि से आचार्यों ने उसमें अनेक भूषणों की व्यवस्था की है। ये भूषण हैं—नाट्यालंकार, शिल्पकांग, लास्यांग एवं वृत्ति, नेता, रस, प्रवृत्ति, पाकसिद्धान्त आदि।

नाट्यालंकार—

नाट्यालंकार यद्यपि आचार्यों ने मुख्य रूप से नाटक के भूषण माने हैं किन्तु

१. सा० द० ६/३०८—३१०।

२. पृ० ५४८।

३. श्री रूपगोस्वामी कृत 'दानकेलिकौमुदी' जो एक भाणिका है—भारती प्रकाशन इन्दौर से १९७६ मे प्रकाशित हुई है।

नाट्य सामान्य के उपस्कारक अंग होने के कारण भाणों में उनका होना अत्यन्त आवश्यक है। इनके बिना भाणों में चमत्कार की कमी रह सकती है। आचार्य विश्वनाथ का कहना है कि यद्यपि इन नाट्यालंकारों मे बहुतों का गुण, अलंकार, सन्ध्यग आदि मे अन्तर्भाव हो सकता है तथापि नाटक में इनका होना अत्यन्त आवश्यक है।[१] नाट्यालंकार संख्या मे ३३ होते है—

आशीः, आक्रन्द, कपट, अक्षमा, गर्व, उद्यम, आश्रय, उत्प्रासन, स्पृहा, क्षोभ, पश्चात्ताप, उपपत्ति, आशंसा, अध्यवसाय, विसर्प, उल्लेख, उत्तेजन, परीवाद, नीति, अर्थ विशेषण, प्रोत्साहन, साहाय्य, अभिमान, अनुवर्तन, उत्कीर्तन, याच्ञा, परिहार, निवेदन, प्रवर्तन, आख्यान, युक्ति, प्रहर्ष तथा उपदेशन[२]।

शिल्पकांग—

शिल्पक नामक उपरूपक मे चारो वृत्तियो का विधान है। अतः भारती वृत्ति में रहने वाले शिल्पकाग शिल्पक की ही भाँति भाण मे भी प्राप्त होते हैं। अनेक प्रकार की मानसिक स्थितियों, विविध परिस्थितियो के वर्णन में, उनमें चमत्कार लाने मे शिल्पकांग बड़े सहायक होते है। ये संख्या में २७ होते है— आशंसा, तर्क, सन्देह, ताप, उद्वेग, प्रसक्ति, प्रयत्न, ग्रथन, उत्कंठा, अवहित्था, प्रतिपत्ति, विलाप, आलस्य, वाष्प, प्रहर्ष, आश्वासन, मूढ़ता, साधनानुगम, उच्छ्वास, विस्मय, प्राप्ति, लाभ, विस्मृति, संफेट, वैशारद्य, प्रबोधन, तथा चमत्कृति।[३]

लास्यांगः—

लास्य का अर्थ होता है मधुर नृत्य[४]। अथवा लास्य उस नृत्य को कहते हैं जिसमें प्रेम (शृङ्गार) के भावो को नाटकीय ढङ्ग से व्यक्त किया जाये[५]। भाणो मे प्रयुक्त होने वाले लास्यागों का लास्य इस दूसरे अर्थ से ही मिलता जुलता है। यहाँ लास्य एक विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यहाँ (भाणो के प्रसङ्ग में) लास्य का अर्थ नृत्य तो नही, एक विशेष प्रकार का भाव या अभिनय है। भाणों में इस प्रकार के भावों की बहुतायत के कारण लास्य एवं उसके विविध अग पर्याप्त मात्रा मे होते हैं।

लास्यांग दश प्रकार के होते हैं—गेयपद, स्थितपाठ्य, आसीन, पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ, सैन्धव, द्विगूढक, उत्तमोत्तमक तथा उक्तप्रयुक्त[६]।

---

१. सा० द० पृ०—४३०
२. वही ६/१६५—१६८
३. सा० द० ६/२६७–३००।
४. द० रू० १/१०।
५. 'A dance representing the emotions of love dramatically.' (Sanskrit English Dictionary–M. M. Williams P. 899)
६. सा० द० ६/२१२–२२३।

वृत्ति—

वृत्ति दो प्रकार की होती है— शब्दवृत्ति और अर्थवृत्ति । शब्दवृत्ति[1] का सम्बन्ध रचना की शब्दी अभिव्यक्ति से है और अर्थवृत्ति का रचना के आन्तरिक रूप से, उसके रस से, उसकी आत्मा से है । अर्थवृत्तियाँ चार होती है[2]—कैशिकी, सात्वती, आरभटी तथा भारती । परन्तु रस से सम्बन्धित कैशिकी, सात्वती और आरभटी ये तीन वृत्तियाँ ही है । वाग्व्यापार प्रधान होने से भारती वृत्ति को शब्द वृत्ति ही माना गया है । धनंजय तथा धनिक ने तो स्पष्ट शब्दो मे भारती के अर्थवृत्ति होने का निषेध किया है ।[3]

वृत्ति का अर्थ रूपक के प्रसंग मे पात्र के व्यवहार से है । वृत्ति-वर्तन अर्थात् व्यवहार । धनजय इसी से अर्थवृत्ति को 'तद्व्यापारात्मिका' कहते है । अतः अर्थवृत्तियों का सम्बन्ध पात्रो के बोल-चाल, वेशभूषा, चेष्टाओ आदि से है ।

भाणो मे जैसा कि पीछे बताया गया है—वाचिक अभिनय ही होने से भारती वृत्ति अपने समस्त अंगों के साथ प्रयुक्त होती है । भारती वृत्ति के चार अंग होते है—प्ररोचना, वीथी, प्रहसन, एवं आमुख । इनमे प्ररोचना तथा आमुख तो भाण के आरम्भ मे ही आ जाते है । वीथी और प्रहसन पूरे भाण मे बिखरे रहते है । आचार्यों ने वीथी के १३ अग माने है---उद्‌घात्यक, अवलगित प्रपंच, त्रिगत, छल, वाक्कैली, अधिबल, गण्ड, अवस्यन्दित, नालिका, असत्प्रलाप, व्यवहार और मृदव ।[4] इसी प्रकार

१. शब्दवृत्तियों की सख्या के विषय मे विद्वानों मे बड़ा मतभेद है । दण्डी केवल वैदर्भी और गौडी दो ही शब्दवृत्तियाँ मानते है । आचार्य वामन ने वैदर्भी, गौडी तथा पांचाली तीन शब्दवृत्तियाँ मानी है । मम्मट ने उपनागरिका, परुषा तथा कोमला शब्दवृत्तियाँ मानी है । रुद्रट पाचाली, लाटी, गौडी तथा वैदर्भी इन चार वृत्तियों के पक्ष में हैं । भोजराज ने वैदर्भी, पांचाली, गौडी, अवन्तिका, लाटी तथा मागधी ये छः प्रकार की शब्दवृत्तियाँ मानी है । आचार्य मम्मट ने तो इन्हे वृत्ति नाम से ही अभिहित किया है । किन्तु अन्य आचार्यों ने इन्हें 'रीति' संज्ञा दी है—

केषांचिदेता वैदर्भीप्रमुखा रीतयो मताः (का० प्र० ६/१११ ।

२. अर्थवृत्तियों के सम्बन्ध में आचार्य प्रायः एक मत है । यों भोजराज ने सरस्वती कण्ठाभरण में ६ प्रकार की अर्थवृत्तियाँ मानी है—

कैशिक्यारभटी चैव सात्वती भारती तथा
मध्यमारभटी चैव तथा मध्यमकैशिकी । (स० क० पृ० १५६)

किन्तु मध्यमारभटी तथा मध्यमकैशिकी स्वतन्त्र वृत्तियाँ नही हैं बल्कि आरभटी और कैशिकी के उपभेद मात्र हैं ।

३. 'नार्थवृत्तिरतः परा' द० रू० २/६० ।

४. द० रू० ३/१२–१३ ।

प्रहसनांग भी दश माने गये है—अवलगित, अवस्कन्द, व्यवहार, विप्रलम्भ, उपपत्ति, भय, अनृत, विभ्रान्ति, गद्‌गदवाक् तथा प्रलाप ।[1]

नेता[2]—

नियमानुसार भाणों में एक ही पात्र होता है--जो रंगमंच पर उपस्थित होता है । किन्तु आकाश भाषित के द्वारा जो कथानक वह प्रस्तुत करता है उसमें नाटक आदि की भाँति प्रायः सभी पात्रो का सन्निवेश हो जाता है । उन्हीं पात्रो के आधार पर कथानक आगे बढ़ता है—भले ही वे पात्र रंगमच पर साक्षात् उपस्थित न हो । इस प्रकार भाण के पात्र दो प्रकार के होते है—अभिनेय और सूच्य । रंगमंच पर उपस्थित पात्र अभिनेय और शेष सूच्य माने जाने चाहिये ।

भाणो मे वर्णित पात्रो को दो भागो में रक्खा जा सकता है—

पुरुषपात्र	**स्त्रीपात्र**
नायक	नायिका
अनुनायक	अनुनायिका
पताका नायक	पताका नायिका
प्रकरी नायक	प्रकरी नायिका
प्रति नायक	वैशवाट की वारवनितायें ।
अन्य सहायक पुरुष पात्र	दूती, चेटी, लिंगिनी, भिक्षुणी आदि ।

भाण की विशेषता यह है कि उसका अभिनय एक ही पात्र द्वारा होता है, परन्तु यह नियम भाण के मुख्य कलेवर मे ही लगता है । प्रस्तावना में एकाधिक पात्र का प्रवेश कही निषिद्ध नही किया गया है । अतः एकाधिक पात्रों द्वारा अभिनय वहाँ (प्रस्तावना में) होता है । इसलिये स्वभावतः प्रस्तावना का अंश भाण के मुख्य कलेवर से पृथक् हो जाता है—इसीलिए प्रस्तावना के अन्तर्गत आने वाले पात्रों की गणना यहाँ नही की गई है ।

भाणों में नायक या तो विट होता है या कोई अन्य रसिक पात्र ।

भाणों में कहीं-कहीं अनुनायक भी होता है । वह अपनी कार्य सिद्धि के लिए नायक की सहायता लेता है तथा नायक का भी हित साधन करता है ।

पताका नायक तथा प्रकरी नायक दोनों का प्रत्येक भाण में होना नितान्त आवश्यक नही है । भाणों के एकाकी होने से यह सम्भव नही कि उनमें पाँचों सन्धियाँ हों । पताका और प्राप्त्याशा तथा प्रकरी और नियताप्ति के समन्वय से बनी गर्भ तथा अवमर्श सन्धियों के होने पर ही पताका तथा प्रकरी का कथानक सम्भव है ।

---

१. र० सु० तृ० विलास पृ० २६० ।

२. नयति कथावस्तु विस्तारयति इति नेता । नाटकमन्तं नयति इति नायकः (ना० ल० र० को०)

भाणों में गर्भ तथा अवमर्श सन्धियों के अभाव के कारण पताका एवं प्रकरी का अभाव होना स्वाभाविक है। किन्तु अर्थप्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं के समन्वय से भाणों में सन्धि निर्माण ठीक नहीं होगा।[1] क्योंकि ऐसा करने पर तो फिर यहाँ पताका प्रकरी का सर्वथा अभाव हो जायेगा। अतः भाणों में दृष्टादृष्टवाद के सिद्धान्त के अनुसार सन्धि निर्माण ठीक होगा। भाव यह है कि भाणों में बीज जब दृष्ट ही रहता है तब तो केवल मुख निर्वहण दो ही सन्धियाँ बनती हैं। क्योंकि इन दोनों सन्धियों में बीज दृष्ट रहता है। जब कभी बीज नष्ट हो जाता है कुछ समय के लिए कथानक में बीज अदृष्ट हो जाता है, छिप जाता है, विच्छिन्न हो जाता है तो पताका और प्रकरी के कथानक के लिए अवकाश हो जाता है। भाणों में यदि पताका और प्रकरी का समावेश हो तो इसी सिद्धान्त के अनुसार हो सकता है। अतः कहीं-कहीं पताका नायक एवं प्रकरी नायक का भाणों में मिल जाना सम्भव है।

रस—

भाणों में वीर तथा शृंगार अङ्गी रस माने गये हैं। भरत को छोड़कर प्रायः सभी आचार्य इस सम्बन्ध में एक मत हैं। नाट्यशास्त्र एवं उसके टीकाकार अभिनव गुप्त ने भाण में करुण, हास्य एवं अद्भुत रस को माना है। यह आश्चर्यजनक है कि भाणों में शृङ्गार प्रधान कैशिकी के अधिकांश अङ्ग होते हुए भी भरत ने उनमें (भाणों में) शृङ्गार रस क्यों नहीं माना? जैसा कि आगे उपसंहार में विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है—किसी भी भाण में अङ्गी रूप में वीर रस उपलब्ध नहीं होता है। तथापि आचार्यों ने लक्षण में इसकी चर्चा क्यों की? सम्भव है आचार्यों की दृष्टि में कोई वीर रस प्रधान भाण रहे हों जो अब अनुपलब्ध हो गये हों।

प्रवृत्ति—

देश या स्थान विशेष के कारण पात्रों की भाषा, व्यवहार एवं वेष में विभिन्नता पाई जाती है।[2] उत्तर प्रदेश में रहने वाली महिला की अपेक्षा दक्षिणी या

---

१. यद्यपि लक्षण ग्रन्थों में अनुनायक की पृथक् स्थिति नहीं मानी गई है। आचार्यों ने पीठमर्द को ही पताका या प्रकरी नायक माना है। विश्वनाथ ने पताका नायक का कोई स्वकीय फलान्तर नहीं माना है (पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम्) किन्तु ऐसा मान लेने पर लक्ष्य में अव्यवस्था हो सकती है। जिन पताका नायकों को फल प्राप्ति भी होगी वे फिर किस श्रेणी में आयेंगे। विश्वनाथ के ही अनुसार सुग्रीव को राज्य प्राप्ति होती है अतः वह पताका नायक नहीं होना चाहिए। इसीलिए अनुनायक को स्वतन्त्र नायक माना जाना चाहिए। इस प्रकार पताका कथानक के नायक को जब फल प्राप्ति नहीं होगी तब तो वह पताका नायक कहलायेगा और जब उसे नायक के सहायता कार्य के साथ स्वयं भी फल प्राप्ति होगी, तब उसे अनुनायक माना जाना चाहिए। लक्ष्य में घटित करने पर दोनों की स्थिति स्पष्ट हो जायेगी।

२. द० रू० २/६३।

महाराष्ट्री महिला की न केवल भाषा एवं वेष में विभिन्नता मिलेगी अपितु खान-पान, रहन-सहन सभी में अन्तर मिलेगा। इन स्थानीय लोक व्यवहारो अर्थात् प्रवृत्ति को देखकर, उसे समझकर कवि काव्य या रूपकों में उसे तदनुरूप निबद्ध करता है। प्रवृत्ति के प्रतिकूल पात्रो का चरित्र-चित्रण करने से रचना—उपहासास्पद हो जाती है। प्रवृत्ति के सामान्यतया निम्नलिखित प्रकार हो सकते हैं—रहन-सहन, खान-पान, आचार, भाषा, नाम, संबोधन आदि।

पाक सिद्धान्त

पाक का अर्थ है पकना, पकाया जाना या परिपूर्णता को प्राप्त होना। पाक सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार प्राय: प्रत्येक प्रकार का कच्चा फल—कषैला, कड़ुआ और अस्वाद्य होता है, उसका पाक हो जाने पर, पक जाने पर अपनी प्रकृति के अनुसार मधुर, कटु आदि स्वादु प्रदान करता है। उसी प्रकार दृश्य तथा श्रव्य काव्य जब तक अपरिपक्व रहता है अर्थात् आरम्भिक त्रुटियों से युक्त, अपूर्ण, बालप्रयत्न मात्र रहता है तब तक उसमे न चमत्कार आता है और न वह स्वाद्य और हृद्य होता है। उसके पक जाने पर, पूर्णता और प्रौढ़ता आ जाने पर वह पके फलों की भाँति विविध प्रकार का स्वादु तथा सुख पहुँचाता है। निरन्तर काव्य का अभ्यास करते-करते कवि का वाक्य पक जाता है अर्थात् पदों और वाक्यो के प्रयोग मे वह कुशलता प्राप्त कर लेता है, उसमे निर्भीकता आ जाती है।[1]

फल पाक के सादृश्य के आधार पर '**अर्थगभीरिमा पाकः**' यह परिभाषा देते हुए लक्षणकारो ने समग्र प्रबन्ध के सर्वांग विकास एव किसी प्रकार के भी अनौचित्य को स्थान न देते हुए प्रयोजन सिद्धि के उत्कर्ष एव अपकर्ष के आधार पर पाक-व्यवस्था निर्धारित की है। उपर्युक्त विविध अगो के यथावत् उपादान से रचना के प्रत्यंग सौन्दर्य का निर्णय होता है। इसके साथ ही पाक समग्र प्रबन्ध के सर्वांग सौन्दर्य का मूल्यांकन करता है। पूरी रचना पढ़ने के बाद पाठक के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ा, समग्र रूप से इसका निर्णय पाक सिद्धान्त करता है।

काव्य के पाक को दो भागों में बाँटा गया है—शब्द पाक और वाक्यपाक।[2] शब्दपाक वह है जहाँ शब्द परिवृत्तिसह्य न हो अर्थात् प्रयुक्त शब्द को हटाकर उसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द जहाँ न रक्खा जा सके। उदाहरणार्थ काव्य में यदि कहीं मार्तण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है तो वह इतना सार्थक हो कि उसके स्थान पर भास्कर, सूर्य आदि कोई दूसरा शब्द प्रयुक्त न हो सके। साथ ही रसोचित शब्द, अर्थ तथा सूक्तियों के प्रयोग को शब्द पाक माना गया है। 'वाक्यपाक वह होता है जहाँ गुण, अलंकार, रीति तथा उक्ति के अनुरूप शब्द और अर्थ की व्यवस्था हो तथा जिसमें पदों का परिवर्तन किया जाना संभव न हो।[3] आचार्यों ने निम्नलिखित काव्य

१. का० मी० पृ० ४८।
२. वही पृ० ४६।
३. वही पृ० ४६–५०।

पाक माने है ।[1]

मृद्वीका पाक—

मृद्वीका अर्थात् मदिरा की भाँति जो काव्य आरंभ मे नीरस पर अन्त मे सरस लगे—वहाँ यह पाक होता है। कुछ विद्वान् मृद्वीका का अर्थ द्राक्षा मानते है। उनका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार अगूर भीतर, बाहर, आरम्भ मे एक-सा सुन्दर, मधुर रस देता है वैसे ही मृद्वीकापाक काव्य वह होता है जो आरम्भ, मध्य और अन्त मे एकसा मधुर रसास्वादन देता है।[2]

२. पिचुमन्द पाक—

पिचुमन्द अर्थात् नीम की भाँति जो काव्य आदि अन्त सर्वत्र नीरस रहता है।

३. बदरपाक—

बेर के फल की भाँति जिस काव्य में आरम्भ में नीरसता तथा अन्त में थोड़ी सरसता हो ।

४. वार्ताक पाक—

बैगन की भाँति जो रचना आरम्भ मे कुछ सरस तथा अन्त मे नीरस लगे।

५ पिठर पाक—

पिठर (कद्दू या लौकी) की भाँति केवल बाहर से अच्छी लगने वाली पर भीतर सर्वथा नीरस रचना ।

६. तिन्तिणीक पाक—

इमली की तरह आरम्भ और अन्त दोनों में मध्यम रस वाली रचना 'तिन्तिणीक पाक' कहलाती है।

७. सहकार पाक—

आम की भाँति आरम्भ, मध्य और अन्त में सरस रचना सहकार पाक होती है। किन्तु दूसरे विद्वान् यह भी मानते हैं कि जिस प्रकार आम का रस तो सरलता से ग्राह्य होता है पर उसकी गुठली कठोर होती है। उसी प्रकार जिस काव्य का वाच्य तो ग्रहण कर लिया जाये किन्तु जिनमे रसध्वनि कठिन हो ।

८. क्रमुक पाक—

सुपारी की भाँति आरम्भ में कुछ स्वादुयुक्त पर अन्त में कषैली, नीरस रचना ।

९. त्रपुस पाक—

ककड़ी की तरह आरम्भ में सुन्दर पर अन्त मे सामान्य रचना ।

---

१. का० मी० पृ०_५०–५१/न० य० भू० पृ० १९–२० ।
सा० सा० ७/१७७–७८, १८४–८५, १९१–९२ ।

२. सा० सा० ७/१७८ । नं० य० भू० पृ० १९ ।

१०. नारिकेल पाक—

आदि अन्त दोनों में सरस रचना नारिकेल पाक कहलाती हैं ।[1] किन्तु दूसरे विद्वान् नारिकेल पाक का अर्थ यह मानते है कि जैसे जटायुक्त नारिकेल ऊपर से बड़ा कठोर और नीरस होता है किन्तु भीतर सरस होता है। वैसे ही ऊपर से कठोर पर भीतर से सरस रचना नारिकेल पाक कहलाती है। इसी से भारवि के काव्य को विद्वानों ने नारिकेल फल के समान माना है।[2]

११. कपित्थ पाक—

कैथ की भाँति कषैला और नीरस काव्य ।

१२. कदली पाक—

केले की तरह कोमल, मध्यम स्वादुयुक्त काव्य ।[3]

इन पाकों में पिचुमन्द पाक, वार्ताक पाक तथा क्रमुक पाक काव्यों का निर्माण सर्वथा वर्जित है। वदर, तिन्तिणीक और त्रपुसपाक भी वैसे मध्यम कोटि के हैं किन्तु कवि अभ्यास और संस्कार के द्वारा उन्हें उत्तम बना सकता है।[4]

---

१. 'आद्यन्तयोः स्वादु नारिकेलपाकम्' (का० मी० पृ० ५१)

२. 'नारिकेलफलसम्मित वचो भारवेः' (मल्लिनाथ)

३. रत्नापण (कुमार स्वामी कृत) पृ० ६६ (अन्तिम पंक्ति)

४. का० मी० पृ० ५१ ।

द्वितीय अध्याय

भाणों के कवि और उनका काल

(क) काल विभाजन

(ख) उद्गम और विकास काल

(ग) ह्रास काल

(घ) पुनरुत्थान काल

भाणों के कवि और उनका काल

काल विभाजन

भरत से लेकर विश्वनाथ तक प्राय. सभी नाट्यशास्त्रियों ने भाण की विस्तार पूर्वक परिभाषा की है। इससे प्रतीत होता है कि रूपक का यह भेद जनता और विद्वानो मे बड़ा लोकप्रिय रहा होगा। परिभाषा करने वाले आचार्यों में कुछ ने निदर्शनपूर्वक लक्षण उल्लिखित किया है और कुछ ने केवल लक्षण किया है। भरत द्वितीय कोटि मे आते है। उन्होंने परिभाषा के साथ भाण का कोई निदर्शन यद्यपि नहीं दिया है किन्तु यह निश्चित है कि भरत के पूर्व कुछ भाण अवश्य लिखे गये होंगे। चतुर्भाणी के कुछ भाणो का समय ईसापूर्व माना गया है और कुछ का उत्तर-गुप्तयुगपर्यन्त अर्थात् ७०० ईसवी तक। इसके बाद १२वी शताब्दी मे लिखे गये कर्पूरचरित के अतिरिक्त लगभग ७०० वर्ष तक भाणो का प्रायः कोई निदर्शन नही मिलता। लगता है इस बीच भाणो की रचना समाप्त प्राय. हो गई थी। किन्तु १५ वी शताब्दी के बाद से २० वी शताब्दी के आरम्भ तक लगभग ५०० वर्षों मे विशेष-कर १८ वी तथा १९ वी शताब्दी मे भाण रचना की एक बाढ़ सी आ गई। संस्कृत के कवियो ने दृश्य रूपक की इस विद्या के निर्माण मे अत्यधिक रुचि दिखाई। फलस्वरूप सैकड़ों भाणो की रचना हुई।

भाणों के विकास की इन विचित्र स्थितियों को ध्यान मे रखते हुए उनके रचनाकाल को निम्नलिखित तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है—

१. उद्गम और विकासकाल—लगभग ५०० ईसापूर्व मे ७०० ईसवी तक।

२. ह्रास काल —७०१ ई० से १४०० ई० तक।

३. पुनरुत्थानकाल —१४०१ ई० से १९२६ ई० तक।

उद्गम और विकास काल

(लगभग ५०० ईसापूर्व से ७०० ईसवी तक)

इस काल में चतुर्भाणी के चार भाण उभयाभिसारिका, पद्मप्राभृतक, धूर्तविटसंवाद तथा पादताडितक ही उपलब्ध होते है। सम्भव है इनके पूर्व या समकाल में और भाण लिखे ही न गये हो, या हो सकता है नष्ट हो जाने के कारण वे अब अनुपलब्ध हों। उपलब्ध सामग्री के आधार पर ये भाण इस साहित्य के सर्व प्रथम निदर्शन है।

चतुर्भाणी के रचना काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। राम कृष्ण कवि तथा एस० के० रामनाथ शास्त्री ने वररुचि, ईश्वरदत्त, श्यामिलक तथा शूद्रक इन चारो कवियो को समकालीन मानने के मत को भावुक कल्पना मात्र बताते हुए

चारों भाणों को भिन्न-भिन्न काल की रचना माना है।[1] एफ० डब्ल्यू० थामस तथा उनके आधार पर एस० के० डे भी इन भाणों को–विशेषकर पादताडितक को हर्षवर्धन कालीन या उत्तर गुप्त काल का मानते है।[2]

कीथ ने चतुर्भाणी का समय १००० ई० के बाद का माना है।[3] एम० कृष्ण-माचारी चतुर्भाणी को अत्यधिक प्राचीन मानते है।[4]

काल निर्णय के लिए चतुर्भाणी के चारों भाणों को समकालीन मानकर विचार करना उचित नही है। क्योंकि विद्वानों ने कुछ को ईसापूर्व की रचना माना है और कुछ को गुप्त युग या उसके भी बाद का सिद्ध किया है। अतः प्रत्येक कवि पर पृथक्-पृथक् रूप से अत्यन्त सक्षेप मे विचार करना ही उपयुक्त होगा।

वररुचि

उभयाभिसारिका के रचनाकार वररुचि के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। चतुर्भाणी के प्रथम सपादक श्री रामकृष्ण कवि ने वररुचि को पाणिनि कालीन माना है।[5] उनके अनुसार उभयाभिमारिका के अतिरिक्त वररुचि ने 'कंठाभरण' तथा 'चारुमती' नामक ग्रन्थ भी लिखे हैं। इतिहासकार एम० कृष्ण-माचारी का मत है कि पतंजलि द्वारा वररुचि को कवि कहना, श्यामिलक द्वारा उसे काव्य शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का लेखक बताना, उभयाभिसारिका में कुवेरदत्त तथा नारायणदत्ता का कथानक इस बात के द्योतक हैं कि वररुचि पर्याप्त प्राचीन हैं।[6]

एस० के० दीक्षित वररुचि को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं।[7] डा० वासुदेवशरणअग्रवाल तथा डा० मोतीचन्द्र ने वररुचि को कुमारगुप्त का समकालीन माना है।[8]

इन विभिन्न मतों में एस० के० दीक्षित का मत जन श्रुतियों पर आधारित होने के कारण प्रमाण सापेक्ष है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा डा० मोतीचन्द्र का वररुचि को कुमार गुप्त कालीन मानने में तर्क यह है कि उभयाभिसारिका मे पृ० १४१ पर आये हुए—"भगवतोऽप्रतिहतशासनस्य कुसुमपुरपुरंदरस्य भवने

१. शृं० हा० (भूमिका पृ० ४, ५)

२. फोर सस्कृत प्लेज् —एफ० डब्ल्यू० थामस, तथा आस्पेक्ट्स आफ़ संस्कृत लिटरेचर :—एस० के० डे०—पृ० २५–२६

३. सस्कृत ड्रामाः कीथ, पृ० १८५ (पादटिप्पणी–३)

४. हिस्ट्री आफ़ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर : कृष्णमाचारी, पृ० ५००-५७८।

५. चतुर्भाणी–रामकृष्ण कवि तथा रामनाथ शास्त्री द्वारा सपादित, पृ० ५।

६. हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर—एम० कृष्णमाचारी, पृ० ५७०-५७८।

७. इडियन कल्चर पृ० ३३६।

८. शृं० हा०, भूमिका पृ० ८।

पुरंदरविजयसगीतके यथा रसाभिनयमभिनेतव्यमिति देवदत्तया सह मे पणितः संवृत्त." इस वाक्य में पुरंदर शब्द श्लिष्ट होने के कारण इन्द्र का बोधक भी है और महेन्द्र अर्थात् महेन्द्रादित्य कुमारगुप्त का भी सूचक है। अतः वररुचि कुमारगुप्त के समय रहे होंगे–ऐसी कल्पना वे करते हैं। किन्तु पुरन्दर शब्द यहाँ श्लिष्ट नही है। क्योकि श्लेष सदा दोनो अर्थों के प्रवृत होने पर होता है। यदि पाठक को अन्य अर्थ की प्रतीति होती हो तो यह शब्दशक्त्युत्थितध्वनि का विपय हो सकता है, श्लेष का नही। साहित्य मे पुरन्दर शब्द के यदि कही दो अर्थ लिए भी गये है तो 'पुर' अर्थात् शत्रु नगरो को नष्ट कर देने वाला एव इन्द्र, यही अर्थ लिए गये है। उसे पुरन्दर शब्द को) महेन्द्र का बोधक मानकर 'महेन्द्रादित्य कुमार गुप्त' का सूचक मानना कुछ खीचा-तानी लगती है। अत. वररुचि को ५०० ई० पू० के आसपास पाणिनि का समकालीन मानना अधिक युक्तियुक्त लगता है।

अवन्तिसुन्दरी कथा के अनुसार[1] उत्कलदेशीय ब्राह्मण कलापी की कात्यायनी नाम की कन्या अग्नि द्वारा अन्तर्वत्नी होकर पिता द्वारा परित्यक्त कर दी गयी और अग्नि के आदेश से गोदावरी के किनारे रहने लगी। वही उसने वररुचि नामक पुत्र उत्पन्न किया। वररुचि का नाम श्रुतधर भी था। जब वररुचि पाच वर्ष के थे तभी उनकी माता के पास व्यालि (व्याडि) तथा इन्द्रदत्त नामक दो परिव्राजक आये और अपने आगमन का प्रयोजन बताकर माता के न चाहने पर भी वररुचि को लेकर गुरु उपवर्ष के पास पहुँचे। उन्होने इन तीनो को विद्याध्ययन कराया। शिष्यो द्वारा गुरु-दक्षिणा के लिए आग्रह किये जाने पर उपवर्ष ने कन्यादान के लिये विपुल सुवर्ण लाने की आज्ञा दी। तीनों शिष्य राजा महापद्मनन्द के पास स्वर्ण याचना हेतु गये। राजा ने वररुचि को सुवर्ण कोटि देकर उसे अपना मन्त्री बनाया। इसी महापद्मनन्द के वंश का उच्छेद कराके चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा बनाया जिसने २४ वर्ष राज्य किया। इस कथानक से विदित होता है कि श्रुतधर, वररुचि और कात्यायन एक ही थे। उनके गुरु उपवर्ष तथा सहपाठी व्याडि एवं इन्द्रदत्त। वररुचि न केवल कोरे वैयाकरण थे बल्कि महापद्मनन्द जैसे राजा के मन्त्री होने का भी गौरव उन्हें मिल चुका है। राजशेखर के अनुसार भी उपवर्ष, वर्ष, पाणिनि, पिंगल, व्याडि और वररुचि (तथा पतंजलि भी) समकालीन थे एवं इनके शास्त्रों की परीक्षा पाटलिपुत्र में हुई थी।[2]

इसके अतिरिक्त उभयाभिसारिका[3] में परिव्राजिका विलासकौण्डिनी एवं विट वैशिकाचल के बीच सांख्य तथा वैशेषिक दर्शनों की चर्चा, "षड्पदार्थवहिष्कृतैः सह सभाषणमस्माकं गुरुभिः प्रतिषिद्धम्" के द्वारा षट् पदार्थ मानने वाले दार्शनिको की निन्दा तथा अभाव (अभाव वादियो पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव है) को सातवां पदार्थ

---

१. अ० सु० क० पृ० १७६-१८३।

२ अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिर्पिगलाविह व्याडिः
वररुचिपंतजली इह परीक्षिता ख्यातिमुपजग्मुः। (का० मी० पृ० १३५)

३. पृ० १२६–१३१ तक।

मानने वालों के प्रति आस्था का प्रसंग इस बात का द्योतक है कि यह भाण उस समय की रचना है जबकि वैशेषिक दर्शन पर आंशिक रूप से बौद्धों के क्षणिकवाद एवं अभाववाद का प्रभाव पड़ने लगा था। यह समय निश्चित ही ईसापूर्व मे पाणिनि के आस पास होना चाहिए।

पुरुषोत्तमदेव के त्रिकाण्डशेष कोष मे वररुचि के पांच नामो में कात्यायन भी है।[१] कथासरित्सागर में वररुचि को पाणिनि का सहपाठी बताया गया है तथा वैयाकरण व्याडि ने अपने गुरु उपवर्ष से वररुचि का परिचय कराया है।[२] इन प्रकरणो से यह स्पष्ट है कि कात्यायन और वररुचि एक ही व्यक्ति थे तथा वे ईसापूर्व मे पाणिनि के या तो समकालीन थे या उनके कुछ बाद हुए होगे।

यह वररुचि वैयाकरण के अतिरिक्त कवि भी थे—इसके भी अनेक प्रमाण हैं। पतजलि ने 'वाररुच काव्यम्[३]' कहकर उनके काव्य के प्रति संकेत किया है। महाराज समुद्र गुप्त ने कृष्ण चरित काव्य में वररुचि को स्वर्गारोहण काव्य का रचयिता कहा है।[४] यही नही, कृष्ण चरित काव्य मे वार्तिककार वररुचि को पाणिनि के काव्य का अनुकरणकर्ता तथा अपने वार्तिको द्वारा उसे (पाणिनि व्याकरण को) पुष्ट करने वाला कहा है।[५] जल्हण की सूक्तिमुक्तावली मे राजशेखर का एक श्लोक उदधृत है जिसमे वररुचि को स्वर्गारोहण एवं कण्ठाभरण काव्य का निर्माता कहा गया है।[६] इसके अतिरिक्त शार्ङ्गधरपद्धपि, सदुक्तिकर्णाभृत तथा सुभाषितमुक्तावली आदि अनेक ग्रन्थों मे वररुचि के श्लोक एव उनके काव्य ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है। पतंजलि ने 'भ्राज' नामक श्लोको का उल्लेख किया है।[७] कैयट[८], नागेश भट्ट[९] तथा हरदत्त[१०] आदि भाष्यकारो ने इन भ्राज श्लोको को कात्यायन (वररुचि) प्रणीत माना है।

---

१. मेधाजित् कात्यायनश्च सः पुनर्वसुर्वररुचिः।
२. क० सा०, तरग ४, पृ० ८।
३. महाभाष्य, ४/३/१०१।
४. यः स्वर्गारोहण कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि
काव्येन रुचिरेणव ख्यातो वररुचिः कविः। (श्लोक १४)
५. न केवलं व्याकरणं पुपोष दाक्षीसुतस्येरितवार्तिकैर्यः
काव्येऽपि भूयोऽनुचकार तं वै कात्यायनोऽसौ कविकर्मदक्ष. (श्लो. १५)
६. यथार्थता कथ नाम्नि मा भूद् वररुचेरिह
व्यधत्त कण्ठाभरण यः स्वर्गारोहणप्रियः।
७. क्व पुर्नारद पठितम्। भ्राजा नाम श्लोकाः (म० भा० १/१/१)
८. कात्यायनोपनिबद्धभ्राजाख्यश्लोकमध्यपठितस्य (म० भा० प्र०, नवाह्निक, पृ० ३४)
९. भ्राजा नाम कात्यायनप्रणीतश्लोकाः इत्याहुः। (म० भा० प्रदीपोद्योत, नवाह्निक पृ० ३३)
१०. कात्यायनप्रणीतेषु भ्राजश्लोकेषु मध्ये ··· (प० म० भाग, १, पृ० १०)

इस प्रकार कवि वररुचि एवं वार्तिककार कात्यायन एक ही व्यक्ति हैं। कात्यायन तो इनके गोत्र या वश का नाम है[1] या जैसा कि पीछे अवन्तिसुन्दरीकथा के प्रसंग मे देखा गया है—कात्यायनी का पुत्र होने के कारण भी इन्हे कात्यायन कहा गया होगा।[2] इनका वास्तविक नाम तो वररुचि या श्रुतधर था।

वररुचि दाक्षिणात्य थे। पतंजलि ने इन्हे "यथा लौकिकवैदिकेषु" वार्तिक की व्याख्या के प्रसंग में दाक्षिणात्य कहा है।[3] अवन्तिसुन्दरी कथा के अनुसार भी वररुचि कात्यायन की माता कात्यायनी के पिता कलापी उत्कल देश के रहने वाले थे तथा बाद में कात्यायनी अग्नि की आज्ञानुसार गोदावरी के तट पर एक ग्राम में रहने लगी और उसने वही वररुचि नामक पुत्र उत्पन्न किया।[4] कात्यायन शाखा का अध्ययन भी दक्षिण में ही अधिक प्रचलित है।

वररुचि पाणिनि के सूत्रों के वार्तिककार तो थे ही प्राकृतभाषा पर भी इनका एक व्याकरण ग्रन्थ "प्राकृत प्रकाश" कहा जाता है।[5] इसके अतिरिक्त कीथ ने वाररुच संग्रह (२५ कारिकाओ का व्याकरण ग्रन्थ) तथा वैदिकपुष्पसूत्र (एक कोश ग्रन्थ) को भी उनके ग्रन्थ होने का उल्लेख किया हैं।[6] जैसा कि पीछे देखा गया है उनके काव्य ग्रन्थों मे स्वर्गारोहण, भ्राज संज्ञक श्लोक, कण्ठाभरण तथा चारुमती[7] का नामोल्लेख आता है। उभयाभिसारिका नामक उनका भाण तो उपलब्ध ही है।

शूद्रक

पद्मप्राभृतक भाण के कर्ता कवि शूद्रक का व्यक्तित्व तथा काल अत्यन्त विवादग्रस्त है और अभी भी विद्वान् इस सम्बन्ध मे किसी एक निर्णय पर नही पहुँचे है। मृच्छकटिक प्रकरण के रचयिता शूद्रक ही पद्मप्राभृतक के कवि शूद्रक है या कोई भिन्न इस सम्बन्ध में भी अभी अन्तिम निर्णय नहीं हो सका है। किन्तु दोनों ही ग्रन्थों की सरस, सरल एवं श्रृंगार पूर्ण रचना शैली तथा अन्य ऐतिहासिक समानताओं के आधार पर अधिकांश विद्वान् दोनों ही ग्रन्थों के कर्ता कवि शूद्रक को एक ही व्यक्ति मानने के पक्ष में हैं।

---

१ महाभाष्य (३/२/३) में कात्य को गोत्र प्रत्ययान्त तथा (३/२/११८) कात्यायन को युव प्रत्ययान्त (आदरार्थ प्रयोग) माना गया है।

२. कात्यायन्याः अपत्यं पुमान् कात्यायन.। कात्यायनी + अण् प्रत्यय।

३. प्रियताद्धिताः दाक्षिणात्याः। यथा लोके वेदे च प्रयोक्तव्ये यथा लौकिक-वैदिकेषु प्रयुज्जन्ते (म० भा० १/१/१)

४. अ० सु० क० पृ० १७६–१८०।

५. हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर : कीथ, पृ० ४२७।

६. वही पृष्ठ — ४२७।

७. हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर : दास गुप्त तथा डे, पृष्ठ ७६१।

मृच्छकटिक के आमुख में शूद्रक के व्यक्तित्व का विस्तारपूर्वक परिचय दिया गया है। तदनुसार उसकी गजराज के समान गति तथा चकोर जैसे नेत्र थे। सुन्दर शरीर, महाबलशाली, ब्राह्मणों मे श्रेष्ठ, वह यशस्वी कवि था। शूद्रक ऋग्वेद, सामवेद, गणित, कला, वाणिज्य, एव हस्तिशिक्षा में निपुण था। भगवान् शिव के प्रसाद से उसका अज्ञान दूर हो चुका था। पुत्र को राज्य भार सौपकर धूमधाम से अश्वमेध यज्ञ करके, १०० वर्ष १० दिन की आयु प्राप्त कर वह अग्नि में प्रविष्ट हो गया। राजा शूद्रक युद्धप्रिय, प्रमादशून्य, वेदवेताओं में श्रेष्ठ, तपस्वी, शत्रु के हाथियो से मल्लयुद्ध का लोभी था।[1]

शूद्रक के इस परिचय में एक दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि उसे कवि भी कहा गया है और राजा भी। दूसरे वह ब्राह्मण था क्षत्रिय नही।[2] तीसरे वह विद्वान् भी था ओर वीर भी। किन्तु आमुख के इस अंश को कीथ तथा अन्य विद्वान् प्रक्षिप्त मानते है।[3] उनका तर्क है कि अपने अग्नि प्रवेश एवं १०० वर्ष १० दिन के जीवन की भविष्यवाणी उसने कैसे करदी ? साथ ही श्लोक मे 'किल' 'चकार' 'बभूव' आदि पद ऐसे है जो परोक्षकाल के लिए ही प्रयुक्त हो सकते है। कोई कवि उन्हें अपने लिए नही कह सकता। अत: या तो यह सब बाद मे जोड़ा हुआ है या कल्पित है।

कुछ विद्वान् स्कन्द पुराण के कुमारिका खण्ड में वर्णित शूद्रक को ही मृच्छकटिक का कर्ता शूद्रक मानते है। इतिहासकार स्मिथ ने आन्ध्र वश के प्रथम राजा सिमुक को ही शूद्रक माना है। उन्होने सिमुक का समय २४० ई० पू० निश्चय किया है। कोनो तथा फ्लीट का मत है कि आभीरवंश के राजा शिवदत्त का ही दूसरा नाम शूद्रक था। संभवत: आभीरवंश का होने से, शूद्र होने के कारण उसका शूद्रक नाम पडा। इस शिवदत्त (शूद्रक) ने ही आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा का नाश किया था। मृच्छकटिक के अन्त मे गोपालदारक आर्यक द्वारा राजा पालक को अपदस्थ कर देने की घटना भी इस ओर संकेत करती है। चन्द्रवली पाण्डेय ने आन्ध्रवंश के वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि को ही शूद्रक माना है। उनके अनुसार पुलुमावि का दूसरा नाम इन्द्राणिगुप्त भी है। अवन्तिसुन्दरी कथा के अनुसार इन्द्राणिगुप्त ही शूद्रक है। इस प्रकार पुलुमावि, इन्द्राणिगुप्त तथा शूद्रक ये तीनों पर्यायवाची हैं। यह शूद्रक ही मृच्छकटिक का कर्ता था। सिलवालेवी का तर्क है कि मृच्छकटिक का रचयिता शूद्रक नही हैं। किसी कवि ने इसका निर्माणकर प्राचीनता और महत्त्व देने की दृष्टि से उसे शूद्रक के नाम से विख्यात कर दिया। मैकडानल, पिशेल तथा आर०

---

१. मृ० क० आमुख, श्लोक ३, ४।

२. यद्यपि कुछ टीकाकारों ने यहाँ आये 'द्विजमुख्यतमः' का अर्थ 'त्रयो वर्णाः द्विजातयः' के अनुसार द्विज अर्थात् क्षत्रियों मे मुख्य—यह अर्थ भी किया है।

३. संस्कृत ड्रामा—कीथ, पृ० १३०।

डी० करमरकर मृच्छकटिक में प्राप्त कुछ दाक्षिणिक प्रयोगों के आधार पर उसका कर्ता दण्डी को ही मानते है।[1]

इस प्रकार शूद्रक के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। संस्कृत साहित्य मे शूद्रक बहुचर्चित व्यक्ति है। बाणभट्ट ने कादम्बरी और हर्ष चरित्र मे शूद्रक की चर्चा की है, शूद्रक को विदिशा का राजा कहा है। दशकुमार चरित तथा अवन्ति-सुन्दरी कथा में भी शूद्रक का नामोल्लेख है। राजशेखर ने रामिल और सौमिल को 'शूद्रककथा' लिखनेवाला कहा है। कथासरित्सागर और राजतरंगिणी में भी शूद्रक का प्रसंग है। वेतालपंचविंशति मे भी शूद्रक की चर्चा है। इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों का कर्ता वह माना गया है। इससे स्पष्ट है कि शूद्रक अवश्य ही कोई प्रतिभा-सम्पन्न और महत्त्वशाली व्यक्ति था। उसे काल्पनिक मानना युक्तियुक्त नही।

शूद्रक के व्यक्तित्व की ही भाँति उसके समय के सम्बन्ध मे भी विद्वान् एक मत नही है। शूद्रक के काल निर्णय मे कई अड़चने है। भास के दरिद्रचारुदत्त की भाषा शैली और व्यवस्था को देखते हुए मृच्छकटिक उसके आधार पर बना हुआ उसका विकमित और सविस्तर रूप है तथा उसके बाद की रचना है—ऐसा विद्वानो ने माना है। कालिदास ने भास, सौमिल तथा कविपुत्र को आदर पूर्वक स्मरण किया है।[2] साथ ही राजशेखर ने रामिल और सौमिल को शूद्रककथा लिखने वाला कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि शूद्रक भास के बाद तथा सौमिल और कालिदास से पर्याप्त पहले हुआ था। दुर्भाग्य से कालिदास का समय अभी अन्तिम रूप से निर्णीत नही है। भारतीय विद्वान् तो सदा से ही कालिदास को प्रथम शताब्दी ई० पूर्व का मानते आये है। डा० एकान्त बिहारी ने अपने नवीनतम एक निबन्ध मे नई सामग्री के आधार पर कालिदास को ईसा की प्रथम शताब्दी का तथा उज्जयिनी निवासी माना है।[3]

---

१. दाक्षिणिक प्रयोग—
सह्यवासिनी, कर्णाटककलहप्रयोग,
वरण्डलम्बुक, खुण्डमोटक आदि।

२. मा० अग्नि०-प्रस्तावना।

३. **साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १८ अक्तूबर १९६४ में डॉ० एकान्त बिहारी का एक लेख छपा है**—जिसके अनुसार सन् ६४ की भयानक वर्षा से उज्जैन के पास शिप्रा नदी के किनारे खंदको के भीतर हुए भूक्षरण से कुछ पाषाण-पट्टो मे एक पर अंकित गद्य के टूटे-फूटे, अस्पष्ट, घिसे हुए अक्षरों तथा दूसरे पाषाण पट्ट पर स्पष्ट पठनीय १२ अनुष्टुप् श्लोकों के आधार पर निर्भ्रान्त रूप से यह सिद्ध होता है कि यह शिलालेख राजा विक्रमादित्य के मन्त्री या धर्माध्यक्ष हरिस्वामी ने बनवाया था और उसके अनुसार कालिदास **शुंगवंशीय** राजा विक्रमादित्य के ससय थे तथा उन्होंने इस काल में ऋतुसंहार आदि सात ग्रन्थों का प्रणयन किया।

भारतीय विद्वानों तथा डॉ० एकान्तबिहारी की इस नवीन सामग्री के आधार पर कालिदास को यदि ईसा की प्रथम शताब्दी का मान लिया जाये तो शूद्रक के समय की समस्या बहुत कुछ सुलझ जाती है। इतिहास के अनुसार शुंगवंशीय राजा पुष्यमित्र ब्राह्मण था।[1] उसका राज्य काल १८४ ई० पू० से १४९ ई० तक था। पुष्यमित्र के बाद उसका पुत्र अग्निमित्र राजा हुआ। यही अग्निमित्र कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र का नायक था। कुछ विद्वानों ने इस अग्निमित्र को ही शूद्रक माना है।[2] अन्य मतों की अपेक्षा यह मत अधिक उपयुक्त लगता है।

अमरकोष के टीकाकार क्षीरस्वामी ने भी अग्निमित्र को शूद्रक का पर्यायवाची माना है।[3] अग्निमित्र और शूद्रक को एक मान लेने पर मृच्छकटिक के आमुख में पढ़े हुए श्लोको मे शूद्रक को द्विजमुख्यतमः तथा सामवेदाध्यायी कहा जाना भी समीचीन लगता है। अग्निमित्र (शूद्रक) शुगवशीय ब्राह्मण था। शुंग गोत्र वाले सामवेद प्रधान माने गये हैं। इस मत की पुष्टि मे कालिदास से पूर्व हुए सौनिल द्वारा शूद्रक के जीवन परिचय के रूप मे शूद्रक कथा का लिखा जाना भी तर्क सगत है।[4] शूद्रक ने बृहस्पति को अंगारक (मगल) विरोधी बतलाया है।[5] बृहस्पति और मगल को परस्पर शत्रु मानने का सिद्धान्त बराहमिहिर से पूर्व का है। क्योंकि बराहमिहिर ने इन दोनों

---

१. शुंग वंशीय राजाओं के ब्राह्मण होने के अनेक प्रमाण हैं। शार्टर कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इंडिया पृ० ५३ के अनुसार शुंगवंश भारद्वाज की वंशावली में गिना जाता था। मत्स्य पुराण मे लिखा है कि भारद्वाज के वंश मे ही शीग नामक मुनि हुए। उनका ही वंश शुंगवंश कहलाया। हरिवंश मे शुंगवंश तथा पुष्यमित्र के सम्बन्ध मे एक श्लोक आया है—

औद्विजो भक्तिः कश्चित् सेनानीः कश्यपो द्विजः
अश्वमेधं कलियुगे पुनः प्रतिहरिष्यति (हरिवंश ३/२/४०)

इसके अनुसार भी पुष्यमित्र को ब्राह्मण माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी एक अध्यापक का नाम शौंगीपुत्र आया है। कीथ तथा मैकडानल के अनुसार आश्वलायन श्रौतसूत्र में शुंग अध्यापक या शिक्षक का उल्लेख आया है।

२. (अ) केदारनाथ शर्मा (का० मी० परिशिष्ट पृ० २७५)
(ब) भगवद्दत्त (भा० व० इति०, पृ० २९१–३०६)

३. द्रौपदी विक्रमादित्यः साहसांकः शकान्तकः
शूद्रकस्त्वग्निमित्रो वा हालः स्यात् सातवाहन. (अ० को० २/८/१)

४. तौ शूद्रककथाकारौ रम्यौ रामिलसौमिलौ
ययोर्द्वयोः काव्यमासीदर्धनारीश्वरोपमम् (राजशेखर)

५. अंगारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः
ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः (मृ० क० ९/३३)

को सम माना है ।[1] आजकल भी बृहस्पति और मंगल को मित्र ही माना जाता है। अत: बराहमिहिर के पर्याप्त पूर्व शूद्रक रहा होगा। बराहमिहिर का समय छठी शताब्दी ईसवी के लगभग माना गया है ।

मृच्छकटिक के नवम अक मे वसन्तसेना की हत्या का अभियोग सिद्ध होने पर अधिकरणिक चारुदत्त को मनु के अनुसार मृत्युदण्ड न देकर राष्ट्रनिर्वासन की बात कहता है ।[2] मनुस्मृति मे ठीक यही व्यवस्था है । मनु कहते है कि बड़े से बड़ा पाप होने पर भी ब्राह्मण का बध नही करना चाहिए बल्कि उसे राष्ट्र से निकाल दे ।[3] इस प्रसग से मृच्छकटिककार पर मनु का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। अतः यह निश्चित है कि मनुस्मृति के निर्माण के बाद ही मृच्छकटिक की रचना हुई । मनुस्मृति का समय ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी है । इस व्यवस्था से १४६ ई० पू० के बाद हुए अग्नि-मित्र के साथ शूद्रक की अभिन्नता मानने मे कोई बाधा नही दीखती । डा० सुशीलकुमार डे,[4] ने भी मृच्छकटिक मे युवती के लिए वासू शब्द का प्रयोग, पद्म-प्राभृतक मे 'कोकिला गान्ति गीतम्'[5] में 'गान्ति' जैसे प्राचीन पदो का प्रयोग तथा 'देवाना प्रियः[6]' वाक्य का आदरार्थ में प्रयोग आदि के आधार पर शूद्रक को पर्याप्तप्राचीन माना है ।

इस प्रकार निश्चित ही शूद्रक का समय १०० ई० पू० के आस पास होना चाहिए ।

कवि शूद्रक की लिखी हुई दो ही कृतिया मिलती है—मृच्छकटिक प्रकरण तथा पद्मप्राभृतक भाण । महाराज समुद्रगुप्त ने शूद्रक को दो रूपको का कर्त्ता बताया है ।[7] रामकृष्ण कवि ने इन दो रूपको के अतिरिक्त वत्सराज चरित, बाल-चरित, अविमारकचारुदत्त तथा कामदत्ता प्रकरण का रचयिता भी शूद्रक को माना है ।

---

१. जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदः (बृहज्जातक २/१६)

२. अयं हि पातकी विप्रो न बध्यो मनुरब्रवीत्
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह (मृ० क० ६/३६)

३. न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपिस्थितम्
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रं धनमक्षतम् ।
न ब्राह्मणबधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि
तस्मादस्य बधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् (मनु० ८/३८०–३८१)

४. आस्पेक्टस् आफ संस्कृत लिटरेचर—डे, पृ० २४—२५

५. प० प्रा० श्लोक ४

६. वही पृ० ८

७. पुरन्दरबलोविप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित् ।
धनुर्वेदं चौरशास्त्रं रूपके द्वे तथाकरोत् (कृ० च०–कवि वर्णन–६)

ईश्वरदत्त

धूर्तविटसंवाद के रचयिता ईश्वरदत्त के सम्बन्ध मे बहुत कम ज्ञात है । इनका दूसरा नाम वीरेश्वरदत्त भी था ।[1] हेमचन्द्र, ने काव्यानुशासन मे धूर्तविटसंवाद का उदाहरण दिया है । भोज ने शृंगारप्रकाश में ईश्वरदत्त के भाण का उल्लेख किया है । इससे उनके समय की अन्तिम सीमा का तो पता चल जाता है । परन्तु पूर्व सीमा के सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ नही कहा जा सकता । धूर्तविटसंवाद में विट देविलक तथा विश्वलक के वार्तालाप के प्रसग मे—कामसूत्र के सिद्धान्तो का सविस्तर प्रतिपादन किया गया है । कामसूत्रकार वात्स्यायन का समय भी अभी निश्चित नही हो पाया है । एस० एन० दास गुप्त तथा सुशीलकुमार डे ने वात्स्यायन को ५०० ई० के लगभग माना है ।[2] कीथ उन्हे २२५ ई० के बाद का मानते हैं ।[3] इन भिन्न-भिन्न मतो से स्पष्ट है कि वात्स्यायन द्वितीय–तृतीय शताब्दी ई० मे हुए होंगे । कवि ईश्वरदत्त का समय उसके बाद ही होना चाहिए ।

धूर्तविटसंवाद मे नाटचशास्त्र का पग पग पर प्रभाव दीखता है । वेश्या की उत्तम, मध्यम और अधम प्रकृतियां नाटचशास्त्र के[4] ही अनुसार है । अनुरक्ता और विरक्ता वेश्या के लक्षण भी नाटचशास्त्र[5] से सर्वथा मिलते जुलते हैं । अतः धूर्त-विटसंवाद की रचना तब हुई होगी जब नाटचशास्त्र के सिद्धान्त पूर्णरूप से प्रचलित हो गये होगें । नाटचशास्त्र की ख्याति तीसरी चौथी शताब्दी ईसवी तक पर्याप्त हो गई थी । अत. ईश्वरदत्त का भी लगभग यही समय होना चाहिए ।

इस प्रकार ईश्वरदत्त का समय निश्चित न होते हुए भी अनुमानतः चौथी शताब्दी ईसवी के लगभग होना चाहिए ।

धूर्तविटसंवाद के अतिरिक्त कवि की और किसी कृति का अब तक कोई पता नही लग पाया है ।

श्यामिलक

पादताडितक भाण के लेखक श्यामिलक को इतिहासकार कृष्णभाचारी ने ईश्वरदत्त का पुत्र तथा औदीच्य कहा है ।[6] रामकृष्ण कवि के अनुसार श्यामिलक मगध का रहने वाला था । टामस महादेय उसे कश्मीरी मानते है ।

श्यामिलक का समय अधिक विवादग्रस्त नही है । टी० बरो (T. Burrow)

---

१. हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर—कृष्णमाचारी, पृ० ५७०
२. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—
(डे, इन्ट्रोडक्शन पृ० १६)
३. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर: कीथ, पृ० ४६६ ।
४. ३५/३७–५२
५. २५/८–३१
६. हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर : कृष्णभाचारी, पृ० ५७०–७८

ने अनेक प्रमाणों के आधार पर पादताडितक का समय पाँचवीं शताब्दी ईसवी का आरम्भ (४१०–४१५ ई०) माना है[1]। बरो के अनुसार पादताडितक के 'सार्वभौम नरेन्द्र[2]' का अभिप्राय चन्द्रगुप्त द्वितीय से है। महाप्रतीहार भद्रायुध को भाण मे कारूष, कलद, और बाह्लीकों का स्वामी कहा गया है। इसने अपरांतक, शक और मालव को जीत कर मगध का राज्य प्राप्त किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के संबंध मे भी यही तथ्य मिलते है। अतः महाप्रतीहार भद्रायुध के रूप मे चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रति ही संकेत मालूम पड़ता है। भाण में शक और हूणो की चर्चा इस बात को और भी पुष्ट करती है।

श्री बरो के मत का समर्थन करते हुए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा डॉ० मोतीचन्द्र ने भी कुछ और आन्तरिक साक्ष्यो के आधार पर श्यामिलक का समय गुप्तयुग माना है।[3] इन विद्वानो के अनुसार पादताडितक मे भिषक् हरिश्चन्द्र का उल्लेख बडा महत्त्वपूर्ण है। उसे 'बाह्लीक. काकायन: भिषगैशानचन्द्रिः हरिश्चन्द्रः' कहा गया है। इससे विदित होता है भिषक् हरिश्चन्द्र बाह्लीक देश के रहने वाले काकायन के अनुयायी एव ईशानचन्द्र के पुत्र थे। सम्भवत. इन्ही हरिचन्द्र ने चरक-न्यास पर टीका लिखी है और इन्हे ही भट्टारहरिचन्द्र भी कहते थे। अनेक अनुश्रुतियो के अनुसार भी भिपक् हरिश्चन्द्र या भट्टारहरिचन्द्र की स्थिति गुप्तकाल के आस-पास मानी गई है। राजशेखर के अनुसार भट्टार हरिचन्द्र, चन्द्रगुप्त एवं कालिदास तीनों ने उज्जयिनी मे काव्य परीक्षा की थी।[4] बाणभट्ट ने—'भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते' कहकर हरिश्चन्द्र के उत्कृष्ट गद्य की प्रशसा की है। इससे विदित होता है कि बाण के समय तक हरिश्चन्द्र का गद्य पर्याप्त प्रसिद्धि पा चुका था। विश्वप्रकाशकोष के अनुसार चरक के टीकाकार भट्टार हरिचन्द्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन थे। इन प्रमाणो के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भिषक् हरिश्चन्द्र न केवल उच्चकोटि के वैद्य थे बल्कि प्रसिद्ध गद्य लेखक भी थे और चूँकि बाण के समय तक उनकी ख्याति हो चुकी थी—इससे गुप्तकाल के आस-पास उनकी स्थिति मानी जा सकती है। अत. पादताडितक भी गुप्तयुगीन रचना होनी चाहिए। कुछ विद्वान् श्यामिलक को गुप्त युग के बाद का मातते है। अभिनवगुप्त, कुन्तक, तथा क्षेमेन्द्र ने पादताडितक भाण के पद्य उद्धृत किये है। ये तीनों ही आचार्य दशम शताब्दी ईसवी के अन्त मे हुए है। इस प्रकार दशम शताब्दी श्यामिलक की उत्तर सीमा निश्चित होती है। सम्भवतः इसी आधार पर रामकृष्ण

१. दी डेट आफ. श्यामिलकस् पादताडितक : टी० बरो, पृ० ४६–५३।

२. सार्वभौमनरेन्द्राधिष्ठितस्य सार्वभौमनगरस्य पराश्रीः।
(पा० ता० पृ० १६२)

३. शृं० हा० (भूमिका पृ० १०)

४. का० मी० पृ० १३५।

कवि ने श्यामिलक का समय ८वीं ९वी शताब्दी ई० के बीच का माना है। एफ० डब्लयू० टामस[1] तथा उनके आधार पर सुशील कुमार डे ने[2] पादताडितक को अभिनवगुप्त से पर्याप्त पूर्व उत्तरगुप्त युग की रचना माना है। इन विद्वानों के अनुसार पादताडितक में प्रयुक्त अनेक शब्द—यथा डिंडी, धांत्र, चौक्ष, सुखप्राश्निक आदि, सरकारी अफसरों के नाम—महामात्र, महाप्रतीहार, कुमारामात्य, अधिकरणिक, प्राड्विवाक, श्राविणिक (गवाह) आदि, अनेक मुहावरे–कौरुकुची, पुरोभागिन्, 'कर्दमेन न मां ढौकितुमर्हति' आदि हर्षवर्धन तथा उसके पूर्व के है। डे महोदय ने आदरार्थ में 'देवानां प्रियः' (प० प्रा० तथा पा० ता० दोनों में) का प्रयोग, 'आम्' तथा 'अंहो' का विस्मय अर्थ मे प्रयोग आदिको भाण के समय निर्धारण मे सहायक बताते हुए थामस के अनुसार पादताडितक का समय अभिनवगुप्त से पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी ईसवी माना है।

इस उद्गम और विकास काल मे आने वाले चतुर्भाणी के इन चारों भाणों का समय भिन्न-भिन्न है। कुछ समानताओ (चारो मे नान्दी के श्लोक के विना ही 'नान्द्यन्ते तत. प्रविशति सूत्रधारः' वाक्य आना, चारों मे अत्यन्त संक्षिप्त स्थापना, चारों की स्थापना में कवि परिचय का अभाव आदि) के आधार पर उन्हे एक युग का मानना ठीक नही। इन समानताओं से उनका भिन्न-भिन्न काल मे होना वाधित नहीं होता।

ह्रासकाल

(७०१ ई० से १४०० ई० तक)

भारतीय कला, संस्कृति और साहित्य सदा से गुणग्राही राजाओं द्वारा संरक्षित और परिवर्धित हुए हैं। राज्याश्रय पाकर ही इनकी उन्नति हुई है। निःसन्देह कला और साहित्य का अधिकाश अग स्वान्त. सुखाय और लोक रंजनार्थ लिखा गया। परन्तु जब तक कलाकार को कही आश्रय नही मिलेगा, जब तक उसके कृतित्व की उसे भरपूर प्रशंसा और ख्याति नही मिलेगी—वह निर्माण में प्रवृत्त कैसे होगा। यही कारण है कि कला और साहित्य को जब-जब राज्य की ओर से भरपूर संरक्षण और गौरव मिला वह सम्पन्न और समृद्ध हुआ। इसीलिए गुप्तयुग इस दृष्टि से स्वर्णयुग माना जाता है। भारतीय इतिहास में जितना संरक्षण कला और साहित्य को इस युग में मिला उतना और कभी नही। गुप्तयुग तथा उसके पूर्व देश मे सुसगठन, स्फीतता तथा सम्पन्नता के कारण भाण लिखे गये। गुप्तयुग के बाद हर्षवर्धन काल मे भी लगभग यही स्थिति रही और बाण जैसे कवियों ने हर्षचरित तथा कादम्बरी जैसी अद्भुत रचनायें देश को दी।

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद लगभग १३वी १४वीं शताब्दी तक देश की

१. फोर संस्कृत प्लेज्—

२. आस्पेक्ट्स् आफ् संस्कृत लिटरेचर पृ० २३–२६।

राज्य व्यवस्था में एक प्रकार की अराजकता सी फैल गई। देश में कोई सुदृढ़ राज्य संगठन नही रहा। अनेक छोटे-छोटे राज्य बन गये। सैन्य शक्ति विघटित हो गई। राजा निरकुश हो गये। संगठन का अभाव हो गया। यही कारण है कि ७१२ ई० में सिन्ध पर हुए मुहम्मद विन कासिम के साधारण आक्रमण को भी देश न झेल सका। सिन्ध पर हुए आक्रमण को देश पर आक्रमण नही माना गया। अकेले दाहिर ने उसका सामना किया और वह मारा गया। सिन्ध पर मुसलमानो का अधिकार हुआ उसके बाद भी हुए मुसलमानो के आक्रमण से देश की रक्षा नही की जा सकी। उसका सबसे बड़ा कारण यह था कि राजपूत राजा संगठित न थे। उन्हें एक दूसरे की उन्नति से ईर्ष्या होती थी। उनमे स्वार्थ और हीन भावना प्रविष्ट हो गई थी। ऐसी स्थिति मे कला और साहित्य को आश्रय कौन देता। यही कारण है कि समुचित आश्रय, आदर और सम्मान न पाने के कारण भवभूति जैसे कवि को भी निराश और दुखी होकर कहना पड़ा कि आज भले ही मेरी रचनाओ का कोई आदर न करे पर भविष्य मे कभी तो कोई ऐसा विद्वान् होगा जो मुझे आदर देगा।[1] कहा जाता है कि माघ जैसा कवि भी उचित आश्रय न पा सकने के कारण दुखी रहा और अन्त में धनाभाव मे ही उसका अन्त हुआ।

भाणों मे अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध जीवन की झांकी है। वैशिक जीवन की वे अठखेलियाँ, रसिकजनो की वह मस्ती—शान्तिपूर्ण, उदात्त वातावरण मे ही सम्भव है। ऐसे वातावरण का इस युग में (लगभग ८०० ई० से १४०० तक) अभाव होने के कारण इस समय भाण साहित्य बहुत कम लिखा गया। इसी से इस युग को भाण रचना की दृष्टि से ह्रासकाल माना जा सकता है। इस युग मे भाणों की रचना समाप्त प्रायः हो गई।

इस युग में लिखे गये दो भाण मिलते हैं। प्रथम तो १२वी शताब्दी के मध्य लिखा हुआ कर्पूरचरित तथा दूसरा १३वीं शताब्दी के लगभग लिखा हुआ मुकन्दानन्द भाण। कुछ विद्वान् तो मुकुन्दानन्द को भी १८वी शताब्दी का मानते हैं।[2]

वत्सराज—

कर्पूरचरित भाण के कवि वत्सराज कालिंजर के रहने वाले थे। इनका समय निर्धारण करने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। इनका लिखा हुआ किरातार्जुनीय व्यायोग राजा त्रैलोक्यवर्मदेव के आदेशानुसार अभिनीत किया गया था।[3]

---

१. ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां, जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययंनिरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥

२. दे० आगे कवि काशीपति का परिचय।

३. रू० ष० मे संगृहीत—किरातार्जुनीय व्यायोग पृ० १।

कवि के शेष पाँच रूपक त्रैलोक्यवर्मदेव के पिता कालिंजर के राजा परमर्दिदेव के आदेशानुसार अभिनीत किये गये थे।[१] राजा परमर्दिदेव का राज्यकाल ११६३–१२०३ ई० है और परमर्दिदेव के पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव का समय अनुमान से १३ वीं शता० के मध्य तक हो सकता है। राजा परमर्दिदेव के सम्बन्ध मे अनेक उल्लेख मिलते है। ये बड़े विलासी राजा थे। भोजन के समय परोसने में लापरवाह रसोइये को मार डालते थे। इसीसे इनका नाम 'कोपकालानल' पड़ गया।[२] मदनपुरा में पृथ्वीराज के आदेशानुसार खुदे हुए शिलालेख के अनुसार परमर्दिदेव को पृथ्वीराज ने ११८३ ई० मे परास्त किया। इसके अनन्तर १२०३ मे कुतुबुद्दीन ऐबक ने आक्रमण करके उसे परास्त किया। परमर्दिदेव स्वयं कवि थे। उन्होने शिव स्तुति के रूप में एक काव्य लिखा है।

परमर्दिदेव का मंत्री होने के कारण कवि वत्सराज का समय भी १२ वी शता० के मध्य से लेकर १३ वी० शता० के आरम्भ तक (११५०-१२०३) हो सकता है।

कवि वत्सराज के लिखे हुए छ. रूपक मिलते है—

१. किरातार्जुनीय—व्यायोग (महाभारत के आधार पर भारवि की किराता-र्जुनीय जैसा कथानक, एक अंक)।
२. कर्पूर चरित—भाण (एक द्यूतकार का वेश्या के साथ प्रेम, एक अंक)।
३. रुक्मिणीपरिणय—ईहामृग (रुक्मी और शिशुपाल का कृष्ण द्वारा बध एव रुक्मिणी से विवाह, चार अंक)
४. त्रिपुरदाह—डिम (पौराणिक कथा के आधार पर शिव द्वारा त्रिपुर असुर के नगर को जलाना, चार अंक)।
५. हास्य चूडामणि—प्रहसन (केवली विद्या मे निपुण, गढ़ा धन बता देने वाले भागवत सम्प्रदाय के आचार्य का चरित्र, एक अंक)।
६. समुद्र मन्थन—समवकार (सुरों तथा असुरों द्वारा समुद्र मन्थन, लक्ष्मी का विष्णु से विवाह, तीन अंक)।

वत्सराज का एक श्लोक जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत हैं किन्तु छहो रूपकों मे यह कही प्राप्त नही होता। कहा नही जा सकता कि यह श्लोक कहाँ से लिया गया है।

काशीपति[३]—

मुकुन्दानन्द भाण के रचयिता कवि काशीपति के पिता का नाम रमापति

१. रू० ष० में सगृहीत–हास्यचूडामणिप्रहसन पृ० ११८।

२. प्र० चि० पृ० २२६–२३०।

३. इतिहासकार डे, कीथ आदि द्वारा काशीपति को १३ वीं शता० में मानने के कारण ही उसे यहाँ ह्रासकाल में रक्खा गया है। पर जैसा कि आगे स्पष्ट है कवि का समय १८ वी शती होने से उसे पुनरुत्थानकाल में रखना चाहिये।

था । यह कौण्डिन्य गोत्रीय थे ।[1] काशीपति के समय और स्थान के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता । मुकुन्दानन्द भाण के संपादक श्री केदारनाथ दुर्गाप्रसाद ने लिखा है कि कवि का देश और काल अज्ञात है तथा यह कोई द्रविड मालूम पड़ता है जो बहुत प्राचीन नही है ।[2] संभवत. इसी आधार पर सुशीलकुमार डे[3] तथा कीथ[4] ने काशीपति का समय १३ वी० शता० माना है । इस मत की पुष्टि मे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस भाण का कथानक तथा रचना शैली आधुनिक भाणो की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है । आधुनिक भाणों की तो एक विशेष प्रकार की परम्परा चल पडी है जिसका प्राय सभी ने अनुकरण किय। । किन्तु यह भाण (मुकुन्दानन्द) उस परम्परा से कुछ भिन्न है । उदाहरण के लिए खेल कूद तथा कुक्कुट, मेष आदि के युद्धो का इसमे अभाव है जबकि बाद के सभी भाणो मे वे मिलते है । अत. सम्भव है कि अन्य भाणो की अपेक्षा यह कुछ प्राचीन हो । डे महोदय ने मुकुन्दानन्द को उत्तर भारत की रचना माना है ।

किन्तु अन्य विद्वान् काशीपति को दक्षिण भारत का मानने के पक्ष मे है । एस० एन० दास गुप्त का मत है कि कवि काशीपति मैसूर के राजा नंजराज के दरबार में थे । साथ ही एम० पी० एल० शास्त्री के न्यू इडियन ऐन्टीक्वेरी मे दिये हुये विवरण के आधार पर उन्होने लिखा है कि शासक नजराज कवि भी थे और उनका काव्य का नाम नृसिह था । वह अपने को अभिनव कालिदास कहते थे । उन्होने नजराज यशोभूषण नामक एक काव्य शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा है । संगीत गंगाधर नामक ग्रन्थ पर काशीपति ने टीका भी लिखी है । नंजराज का समय १७ वी शता० का अन्त तथा १८ वी शता० का आरम्भ है ।

इस प्रसङ्ग से दो तथ्य प्रकाश में आये । एक तो यह कि शासक नंजराज का समय (१८ वी शती) ही कवि काशीपति का समय है और दूसरा यह कि यदि आजीवन नही तो एक लम्बी अवधि तक वे मैसूर में अवश्य रहे होगे ।

कवि का सम्बन्ध मैसूर या दक्षिण भारत के अन्य प्रदेशों से था इस मत की पुष्टि में मुकुन्दानन्द भाण से कुछ आभ्यन्तर प्रमाण भी प्रस्तुत किये जा सकते है । भाण के अन्त में नायक भुजंगशेखर मित्र मयूरक एवं कलहंस से नायिका मंजरी से सम्बन्धित अपनी प्रणय कहानी सुनाता है ।[5] इस कथा प्रसङ्ग मे तीन नगरों की चर्चा आई है ।—रंगनाथपुरी, नवीननगर और मधुरा (मदुरा) । ये तीनों ही नगर दक्षिण के हैं । भाण में सह्यादि के पास कावेरी नदी के तट पर रंगराज के

---

१. मुकुन्दा० पृ० २

२. कवेर्देशकालौ न ज्ञायेते । भाति चायं कश्चन द्रविडः, नाति प्राचीनश्च (मुकुन्दा० पृ० १ टिप्पणी १)

३. आस्पेक्ट्स आफ् संस्कृत लिटरेचर पृ० ७

४. सस्कृत ड्रामा पृ० २६४

५. मुकुन्दा पृ० ६३–६८ ।

चैत्रोत्सव का वर्णन है ।[1] भुजङ्गशेखर तथा मुद्गलभट्ट के वार्तालाप के प्रसङ्ग में मुद्गलभट्ट गुर्जरियों की रति एवं उनके वेष की निन्दा करता हुआ चोलदेश की स्त्रियों के पहनावे की प्रशंसा करता है ।[2]

ये प्रसङ्ग इस बात के द्योतक हैं कि कवि का दक्षिण भारत से अवश्य ही सम्बन्ध रहा है । इस प्रकार जब तक कवि काशीपति को उत्तर भारत का सिद्ध करने के सम्बन्ध में और प्रमाण नही मिलते और जब तक उनके समय के सम्बन्ध मे और निर्णय नहीं होता तब तक उन्हें १८ वीं शती० के आरम्भ का दक्षिणापथ से सम्बन्धित माना जा सकता है ।

पुनरुत्थान काल

(१४०१ ई० से १९२६ ई० तक)

जैसा कि पीछे देखा गया है भाणों की रचना के लिये स्फीत, सम्पन्न, समृद्ध, विलास और वैभव से पूर्ण, शान्तिमय वातावरण की आवश्यकता है । ऐसा वातावरण जब-जब हुआ है—भाण लिखे गये । ईसापूर्व तथा गुप्तयुग मे सुख समृद्धि का वातावरण था । अतः उस समय और साहित्य के साथ भाणो की भी रचना हुई । ह्रास युग में जब कि देश मुसलमानों के आक्रमण से आतकित था, हिन्दूधर्म और हिन्दू समाज पर कुठाराघात हो रहे थे, उस समय भाण कैसे लिखे जाते ? यही कारण है कि १४ वी शती के अन्त तक भाण रचना प्रायः बन्द रही । इसके बाद मुसलमानों का शासन व्यवस्थित हो गया, दो तीन सौ वर्षों तक उतनी राजनीतिक उथल-पुथल नहीं रही । समाज ने नई शासन व्यवस्था के साथ समझौता कर लिया । यद्यपि उसके बाद भी अग्रेजो के आने से देश मे फिर एक बार उथल पुथल हुई । किन्तु उतनी मारकाट और अशान्ति का वातावरण नही हुआ जितना कि मुसलमानों के आने पर हुआ था । इस प्रकार धीरे-धीरे देश में शान्ति का वातावरण हो गया । फलस्वरूप कला और साहित्य को पुनरुत्थान मिला । ह्रासकाल मे भाणों की रचना जो समाप्त प्रायः हो चुकी थी—पुनः आरम्भ हुई ।

पुनरुत्थान के इस युग मे कवियो ने भाण रचना की पुरानी परम्परा की एक नई धारा अपनाई । भाण की परिभाषा के अनुकूल होते हुए भी भाणों की रचना शैली, उनके कथानक ने एक नया मोड़ लिया और उसके बाद तो इस युग के प्रायः सभी कवियों ने इस नई विधा, नई परम्परा को ही प्रश्रय दिया । फलस्वरूप १५ वीं शती से २० वीं शती के आरम्भ तक भाण रचना की निरवच्छिन्न स्रोतस्विनी अपने पूर्ण प्रवाह के साथ बहती रही । इस युग मे सैकड़ों भाणों की रचना हुई । १७ वी शती के आरम्भ से लेकर १९ वी शती के अन्त तक के ये ३०० वर्ष तो भाण रचना काल के स्वर्ण युग कहे जा सकते है । जितने भाण इस युग मे लिखे गये उतने कभी नहीं । इस समय भाण रचना करना कवियों का फैशन सा हो गया । यद्यपि इन

१. वही श्लोक २०८ ।

२. वही पृ० २३, २४ ।

भाणों में थोड़े ही प्रकाशित हैं किन्तु देश के विशेषकर दक्षिण भारत के विविध ग्रन्थ-भाण्डारों में, विविध लिपियों मे प्राप्त हुई इनकी पाण्डुलिपियों के पढ़ने से इस साहित्य की विपुलता का पता चलता है।

भाण रचना की इस नई परम्परा मे लिखे गये प्रायः सभी भाण एक विशेष प्रकार की रचना शैली के कारण वर्णनाप्रधान वर्ग मे रक्खे गये है। इस युग में जहाँ एक ओर भाण रचना की संख्या बढी वहाँ दूसरी ओर एक बहुत बड़ी कमी भी आ गई और वह यह कि कवियो ने एक विशिष्ट परम्परा का ही अनुकरण किया। फलस्वरूप सभी भाणो के वर्णन प्रायः एक से हो गये। उनकी घटनाओं, वर्णनो एवं रचना शैली मे प्राय. कोई विभिन्नता नही रही। परिणाम यह हुआ कि उनमे रोचकता का अभाव हो गया। यही कारण है कि ये भाण अब भी अप्रकाशित और उपेक्षित अवस्था मे पड़े हुए है।

भाणो की रचना के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेख है। गुप्तयुग तथा उसके पूर्व लिखे गये चतुर्भाणी के चार भाण तथा ह्रासकाल में १२ वीं, १३ वीं शती में लिखे गये कर्पूरचरित एवं मुकुन्दानन्द ये छः भाण तो उत्तर भारत से सम्बन्धित कहे जाते है।[1] कवियो के नाम, उनमें (भाणों में) वर्णित घटनायें एवं स्थान (पाटलिपुत्र, उज्जयिनी आदि) आदि की दृष्टि से वे उत्तर भारत के लगते भी है। शेष सब भाण दक्षिण भारत के कवियो द्वारा लिखे गये तथा उनमें वर्णित घटनायें आदि सभी दक्षिण भारत से सम्बन्धित है। पुनरुत्थान काल मे लिखे गये सभी भाणों के कवि एवं उनके कथानक दक्षिण भारत के हैं। मैसूर, मद्रास तथा केरल तो भाणों के गढ़ हैं। समस्त दक्षिण भारत के उत्सवों के स्वरूप, वहाँ के रीति-रिवाज, सभ्यता और सस्कृति की झाँकी इन भाणों में मिल जाती है।

उत्तर भारत से आरम्भ हुई यह परम्परा दक्षिण में कैसे चली गई? क्यों यह उत्तर में समाप्त हो गई? इसके दो प्रधान कारण हैं। प्रथम तो यह कि विदेशियों के आक्रमण तथा राजनीतिक उथल-पुथल इस युग में जितनी उत्तर भारत में हुई उतनी दक्षिण में नहीं। इसलिए भी उत्तर भारत में आरम्भ हुई भाण रचना की परम्परा वहाँ अधिक समृद्ध नही हुई। दक्षिण में भाण रचना के अनुकूल वातावरण मिल गया। दूसरे, दक्षिण भारत में इस युग में उच्चवर्ग तो रामानुज (११ वीं शती) तथा वल्लभ (१३ वीं शती) के भक्ति तथा दर्शन में प्रवृत्त हुआ। इन आचार्यों के उपदेश से उसकी मानसिक भूख मिटती गई, पथ प्रदर्शन मिलता रहा। किन्तु निम्न वर्ग की मानसिक तृप्ति एवं उसके मनोरजन के लिए ऐसा कोई साधन नहीं था। यही कारण है कि जनसामान्य भोगपरायण हो गया। फलस्वरूप उसके मनोरंजन के लिए, व्यङ्ग्य पूर्वक उसके दोषोद्घाटन के साथ ही उसे सन्मार्ग पर

---

१. यद्यपि मुकुन्दानन्द को भी विद्वानों ने १८ वीं शती का लिखा हुआ दक्षिण भारत से सम्बन्धित भाण माना है।

प्रवृत्त करने के लिए भाण साहित्य का अधिकाधिक प्रचार और प्रसार हुआ। यही कारण है कि न केवल प्रसिद्ध किन्तु सामान्य कवियों ने भी भाण लिखे और इस प्रकार समस्त दक्षिण भारत भाण साहित्य का एक प्रमुख रचना स्थल बन गया। दक्षिण भारत की तेलगू, तामिल, मलयालम, ग्रन्थ आदि सभी प्रमुख लिपियों में भाण लिखे गये जो आज भी पाण्डुलिपियों के रूप मे दक्षिण के प्रमुख राजकीय प्राच्य पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं।

वामन भट्ट बाण

कवि वामन भट्ट बाण के समय के सम्बन्ध में उनके शृगारभूषण भाण में कोई सामग्री नही मिलती। इसके सम्पादको ने पादटिप्पणी मे केवल इतनी सूचना दी है कि यह भाण द्रविड देश में पड़ा हुआ था और श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने काव्य माला में प्रकाशन हेतु यहाँ (बम्बई) भेजा है।[१] इससे केवल इतना ही पता लगता है कि कवि का सम्बन्ध सम्भवतः द्रविड देश से रहा होगा। डे महोदय ने इनका स्थान कोंडविडु (द्रविड प्रान्त) माना है।[२] श्री र० व० कृष्णमाचार्य द्वारा सम्पादित 'पार्वतीपरिणय' नाटक के आधार पर डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि पार्वती परिणय नाटक कादम्बरीकार बाण की रचना न होकर कवि वामन भट्ट की कृति है। वामन भट्ट बाण तैलंग देशीय तथा वत्स गोत्रोत्पन्न थे। इनके आश्रयदाता राजा वेमभूप (अपर नाम वीरनारायण) थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता वेमभूप की प्रशस्ति में वीरनारायण चरित (वेमभूपालचरित) नामक काव्य भी लिखा है।[३]

कीथ ने कवि का समय लगभग १५०० ईसवी माना है।[४]

दास गुप्त तथा डे महोदय के अनुसार भी इनका समय १४ वीं शती का अन्त तथा १५ वी शती का आरम्भ काल है।[५]

शृंगार भूषण भाण के अतिरिक्त वामन भट्ट बाण के दो और ग्रन्थ मिलते हैं—पार्वतीपरिणय और वीरनारायण चरित।

कवि के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में थोड़ी सी जानकारी शृंगार भूषण से भी मिलती है। साहित्यचूडामणि कवि वामनभट्ट बाण सौभाग्य की निधि, वेद के निवास स्थान, विद्या रूपी बधुओं के उत्तमवर, लक्ष्मी के विलास स्थान, शील के उत्पत्ति स्थान तथा कीर्तिशाली थे।[६]

---

१. शृ० भू० पृ० १ (पा० टि०)
२. आस्पेक्ट्स आफ़ सस्कृत लिटरेचर : डे, पृ० ७
३. ह० च० सा० अ० पृ० १ (पा० टि०)
४. संस्कृत ड्रामा पृ० २६३।
५. हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर : दास गुप्त तथा डे, पृ० ४८६
तथा
आस्पेक्ट्स आफ संस्कृत लिटरेचरः डे, पृ० ७
६. शृं० भू० श्लो० ५।

युवराज

रससदन भाण के रचयिता कवि युवराज का वास्तविक नाम गोदवर्मा था। युवराज तो इनका पद था। पर इनकी प्रसिद्धि युवराज के रूप में ही है। रससदन भाण के सम्पादक पंडित केदारनाथ दुर्गाप्रसाद के अनुसार कवि के कुल और काल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।[1] डे महोदय भी युवराज के समय के सम्बन्ध में मौन हैं। कीथ ने भी इनके समय के सम्बन्ध मे कुछ नहीं कहा है। इतिहासकार कृष्णमाचारी ने युवराज का समय १८००–१८५१ ई० माना है।[2]

कवि युवराज के व्यक्तित्व के विषय मे तो रससदन तथा उनके अन्य ग्रन्थों में बहुत कुछ मिल जाता है। कवि केरल देश मे कोटिलिंगपुर नगर के रहने वाले तथा भगवती काली के परम भक्त थे। काली की ही कृपा से उसके समस्त कल्मष नष्ट हो गये।[3] कवि युवराज की बुद्धि शास्त्रों मे अत्यन्त तीक्ष्ण एवं काव्य के निर्माण मे कमल से भी अधिक सुकुमार थी। वे व्याकरण, शास्त्र, काव्य, अलंकार एवं नाट्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। श्रेष्ठ विद्वद्वर्ग रूपी गज समूह के मस्तक को भेदने के लिए युवराज कवि सिंह थे।[4] उनके व्याकरण ज्ञान की अद्भुत प्रतिभा रससदन भाण की समाप्ति के बाद अपनी प्रशस्ति मे दिये १४ श्लोकों मे देखी जा सकती है। रससदन भाण उनकी काव्य प्रतिभा का निदर्शन है।

इस भाण के अतिरिक्त कवि युवराज के ८ ग्रन्थ और है—

१. त्रिपुरदहन चरितम्
२. देवदेवेश्वराष्टकम्
३. मुररिपुस्तोत्रम्
४. रामचरितम्
५. श्रीपादसप्तकम्
६. सदाशिवी
७. सुधानन्द लहरी
८. हेत्वाभासोदाहरणश्लोकाः।

कवि के इस साहित्य से पता चलता है कि उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वह शिव तथा विष्णु का भक्त था।

रामभद्र दीक्षित

शृङ्गार तिलक भाण के रचयिता कवि रामभद्र दीक्षित के समय, स्थान तथा

---

१. र० स० पृ० १ (पा० टि०)
२. हिस्ट्री आफ़ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचरः कृष्णमाचारी पृ० ६६४।
३. र० स० श्लो० १, २।
४. द्रष्टव्य—र० स० तथा सुधानन्द लहरी का अन्तिम पृष्ठ।

जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त है। पं० केदार नाथ के अनुसार[1] कौण्डिन्य गोत्रीय रामभद्र दीक्षित कुम्भकोण नगर से सात कोस की दूरी पर स्थित कण्डरमाणिक्य नामक ग्राम मे पैदा हुए। उनके पिता श्री यज्ञराम दीक्षित चतुर्वेद-यज्वा थे। कवि की मातृभाषा द्राविडी थी। नीलकण्ठविजय नामक चम्पू काव्य के निर्माता श्री नीलकण्ठ भरवी से कवि दीक्षित ने काव्य, नाटक, रस, अलंकार एवं लक्षण ग्रन्थों का अध्ययन किया। श्री चोक्कनाथ भरवी के चरणों में बैठकर आपने व्याकरण का अध्ययन किया। साथ ही चोक्कनाथ भरवी की ज्येष्ठा कन्या के साथ कवि का विवाह हुआ। श्री बालकृष्ण कवि के अध्यात्म विद्या के गुरु थे। 'अद्‌भुत दर्पण' नामक दृश्य काव्य के निर्माता श्री महादेव कवि आपके सहपाठी थे।

नीलकण्ठ भरवी ने अपने चम्पू काव्य 'नीलकण्ठ विजय' का समय ४७३८ कल्यब्द अर्थात् १६३८ ई० लिखा है।[2] नीलकण्ठ भरवी रामभद्र दीक्षित के गुरु थे। अतः रामभद्र दीक्षित का समय भी १६३८ ई० रहा होगा।

साथ ही तंजनगर के अधिपति शहजि ने कावेरी नदी के किनारे कुम्भकोण नगर के दो कोस के इर्द गिर्द मे ही तिरुविशनल्लूर नामक स्थान पर शहजिराजपुर नामक नगर बसाकर वहाँ बहुत से विद्वानों को बुलाकर उन्हे सम्मानित किया तथा उनकी जीविका का प्रबन्ध करके वहीं बसा दिया। इन विद्वानों में कवि रामभद्र दीक्षित भी थे। विद्वत्-प्रिय राजा शहजि का राज्यकाल ४७८४–४८११ कलि संवत्सर अर्थात् १६८४ से १७११ ई० तक रहा है। २७ वर्ष के राज्यकाल में शहजि ने देश-देश से आये हुए विद्वानों का सम्मान किया। अतः १६८४–१७११ ई० ही कवि रामभद्र का समय होना चाहिए। नीलकण्ठ विजय का समय १६३८ ई० तथा शहजिराज का समय १६८४ में थोड़ा ही अन्तर है। सम्भव है आरम्भिक अवस्था मे कवि विद्याध्ययन हेतु नीलकण्ठ भरवी के सम्पर्क मे आया हो और बाद मे अधेड़ अवस्था में राजा शहजि का कृपापात्र बन गया हो। इस प्रकार १७ वीं शती का अन्त और १८ वीं शती का आरम्भ कवि रामभद्र दीक्षित का समय हो सकता है।

कवि दीक्षित भगवान् राम का भक्त था। वह व्याकरण, विशेषकर कैयट का अध्येता था।[3] इतने पर भी भाण जैसी सरस रचना के प्रति उसकी प्रवृत्ति शिष्यों के आग्रह पर हुई।

शृङ्गार तिलक भाण के अतिरिक्त कवि द्वारा लिखित अन्य ग्रन्थ ये हैं—

१. अष्टप्रासः

---

१. शृं० ति० (भूमिका पृ० १, २)

२. अष्टत्रिंशदुपस्कृतसप्तशताधिकचतुः सहस्रेषु कल्यब्देषु
गतेषु ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम्।
(शृं० ति०, भूमिका पृ० १)

३. शृं० ति० पृ० ३।

२. चापस्तवः
३. जानकीपरिणयम्
४. पतंजलिचरिताख्यं काव्यम्
५. पर्यायोक्तिनिष्यन्दः
६. प्रसादस्तवः
७. बाणस्तव.
८. विश्वगर्भस्तवः
९. तूणीरस्तवः (अप्राप्त)।

शृङ्गार तिलक भाण का दूसरा नाम 'अय्याभाण' भी है। यह नाम सोद्देश्य है। वरदाचार्य (उपनाम-अम्माल्लय्यगार) नामक कवि ने वसन्ततिलक (अपरनाम-अम्माभाण) भाण लिखा। द्रविड भाषा मे सम्मानार्थ स्त्रियो को अय्यां तथा पुरुषों को अय्या कहते है। कवि रामभद्र को लोग सम्मानार्थ अय्या कहा करते थे। अतः शिष्यो के बहुत आग्रह पर वरदाचार्य कृत अम्माभाण (वसन्ततिलक) की प्रतिस्पर्धा मे अय्याभाण (शृङ्गार तिलक) की रचना की।[१]

वरदाचार्य

वसन्ततिलक भाण के कवि वरदाचार्य कांचीपुरी निवासी थे। इनके पिता का नाम घटिकाशत सुदर्शन था। वत्स गोत्रोत्पन्न कवि वरदाचार्य वैष्णव धर्म के उपदेशक तथा वेदान्त और न्याय के अच्छे विद्वान् थे। तर्कशास्त्र के विद्वान् होने के कारण कवि की कर्कश वाणी भी काव्य निर्माण में मृदु और सरस थी।[२]

वसन्ततिलक का दूसरा नाम 'अम्माभाण' भी है जिसकी प्रतिस्पर्धा में रामभद्र दीक्षित ने अय्याभाण (शृंगार तिलक) लिखा। इससे यह स्पष्ट है कि वरदाचार्य तथा रामभद्र दीक्षित समकालीन कवि थे। रामभद्र दीक्षित का काल निर्णय करते हुए यह स्पष्ट हो चुका है कि वे शहजिराज (१६८४–१७११ ई०) के समकालिक, उनके सभासदस्य थे। अतः वरदाचार्य का समय भी १७ वीं शती का अन्त तथा १८ वी शती का प्रारम्भ होना चाहिए।

वसन्त तिलक भाण के अतिरिक्त वरदाचार्य का वेदान्तविलास या यतिराजविलास नामक ६ अंक का नाटक भी है जिसमे रामानुज के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।[३]

नल्ला दीक्षित[४]

शृंगारसर्वस्व भाण के कर्ता कवि नल्ला दीक्षित का चोलदेश में कुम्भघोण

१. शृं० ति० भूमिका पृ० २।
२. व० ति० पृ० २।
३. हिस्ट्री आफ़ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचरः कृष्णाभाचारी, पृ० ६६५।
४. शृं० स० (टी० एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री कृत भूमिका)

नगर के समीप कण्डरमाणिक्य नामक ग्राम में जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम श्री बालचन्द्र दीक्षित था। कौशिक इनका गोत्र था। इनके शिक्षा गुरु का नाम रामनाथ मखीन्द्र था। किन्तु परमशिवेन्द्राचार्य एवं उनके शिष्य सदाशिव ब्रह्मेन्द्र ने भी उन्हें शिक्षित बनाने में योग दिया। अपने मित्र वैद्यनाथ दीक्षित के आग्रह से कवि ने २० वर्ष से कम अवस्था में ही इस भाण की रचना की।[१]

नल्ला कवि के गुरु श्री रामनाथमखीन्द्र तंजनगर के अधीश्वर श्री शहजिराज के सभा सदस्य तथा प्रसिद्ध कवि श्री रामभद्र दीक्षित के समकालीन थे। जैसा कि पीछे देखा गया है शहजिराज का राज्यकाल १६८४–१७११ ई० था। रामनाथ मखीन्द्र का शिष्य होने के कारण नल्ला दीक्षित का समय भी १७ वीं शती० का अन्त और १८ वी शती का आरम्भ काल हुआ।

शृंगार सर्वस्व भाण के अतिरिक्त कवि के ये ग्रन्थ और है—

१. सुभद्रा परिणय नाटक
२. अद्वैत मंजरी
३. अद्वैत मंजरी की व्याख्या 'परिमला'।

कवि के इन ग्रन्थों से विदित होता है कि वह अद्वैत वेदान्त, नाटक एवं काव्य निर्माण मे कुशल था।

अश्वति तिरुनालरामवर्मा[२]

शृङ्गार सुधाकर भाण के निर्माता कवि अश्वति तिरुनालराम वर्मा का जन्म १७५६ ई० में हुआ। इनके पिता श्री रविवर्मा भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त थे। उस समय कार्तिक तिरुनालरामवर्मा महाराज त्रावनकोर राज्य के राजा थे। वे धर्मराज के नाम से प्रसिद्ध थे। धर्मराज का राज्यकाल १७५८–१७९८ ई० था। वे कला और साहित्य के बहुत बड़े संरक्षक थे। उनका दरबार कवि और विद्वानों से भरा रहता था। इन विद्वानों में सर्वाधिक प्रतिभाशाली थे धर्मराज के भतीजे प्रस्तुत कवि अश्वति तिरुनालरामवर्मा। १७८४ ई० में कवि ने महाराज धर्मराज के साथ रामेश्वरम् की यात्रा की। इस प्रकार १८ वी शताब्दी का उत्तरार्ध कवि का समय है।

कवि श्री वर्मा ने गुरु श्री शंकरनारायण से शास्त्रों का अध्ययन किया। संगीत तथा अन्य कलाओ में दक्षता प्राप्त की। कवि ने अपनी प्रतिभा का विकास संस्कृत

---

१. स भाणं प्राणयद् बाल्ये सख्युर्वचनगौरवात् (शृं० स० प्रस्तावना श्लो० ६)
२. शृं० सु०।

तथा मलयालम[1] दोनो में किया। संस्कृत में शृङ्गार सुधाकर भाण के अतिरिक्त उनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

१. वांची महाराजस्तव (अपने चाचा धर्मराज का गुण कीर्तन)
२. सन्तानगोपाल प्रबन्ध।
३. कार्तवीर्यविजयप्रबन्ध।
४. रुक्मिणी परिणय नाटक।

ये सभी ग्रन्थ भाषा और भाव की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। इनमें मलयालम मे लिखी आत्तकथा तो संगीत और कला का बहुत सुन्दर निदर्शन है।

त्रिविक्रम

पंचायुवप्रपंच भाण के कवि त्रिविक्रम पुण्यपुर नगर के रहने वाले थे।[2] कवि के बड़े भाई त्र्यम्बकपंडित साहित्य तथा मीमांसा के विद्वान् थे। इन्होने त्रिविक्रम को पढ़ाया भी था। कवि के पिता का नाम चिद्घनानन्द नाथ था।[3]

भाण के अन्तिम श्लोक के आधार पर कवि ने १७२७ शक संवत्, क्रोधन नामक वर्ष मे, शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को भाण समाप्त किया।[4] इस प्रकार १७२७ शक अर्थात् १८०५ ई० मे भाण की समाप्ति के अनुसार कवि का समय १८ वी शता० का अन्त और १९ वी शता० का आरम्भ हुआ।

अभिनव कालिदास

शृङ्गारकोश भाण के निर्माता कवि अभिनव कालिदास काश्यप गोत्रीय थे। कवि के परिवार में भगवान् शङ्कर की उपासना होती थी। सम्भवतः कवि कंपा नदी के पास का रहने वाला था।[5] कवि का समय १७८७ शक संवत् अर्थात् १८६५ ई० था।

इन्होने एक शृङ्गार शेखर भाण भी लिखा है जो अधूरा त्रिवेन्द्रम में मिला

---

१. मलयालम मे लिखे कवि के ग्रन्थ—

(१) पद्मनाथकीर्तन	(५) पूतनामोक्ष
(२) दशावतारदंडक	(६) रुक्मिणी स्वयंवर
(३) आत्तकथा	(७) पौण्ड्रकवध
(४) नरकासुर वध	(८) अम्बरीष चरित।

२. पंचा० प्र० (पांडुलिपि पृ० १)

३. पंचा० प्र० (पांडुलिपि श्लो० ८, ९)

४. ऋषिनयेनाचलशशिनितशकवर्षे (अंकानां वामतोगतिः के अनुसार ७२७१—१७२७ शक संवत् हुआ)।
(ऋषि ७, नयन २, अचल ७, शशि १ — ७ २ ७ १ printed above the word)

५. शृं० को० (पांडुलिपि, पृ० २)

एवं पूरा मद्रास में। शृङ्गार कोश तथा शृङ्गार शेखर का कथानक आधे से अधिक तो मिलता है, शेष मे भिन्नता है।

कोचुन्नि भूपालक

अनंगजीवन भाण के रचयिता कवि कोचुन्निथम्पुरान् का समय १८५८–१९२६ ई० है। कोचीन राज्य में कोटुगलूर (कोटिलिंगपुर) के राज परिवार से आप सम्बद्ध थे। कोचुन्निभूपालक का वास्तविक नाम रविवर्मा था किन्तु प्रायः ये चेरिय कोचुन्निथम्पुरान् के नाम से विख्यात थे। कही कोचुन्निभूपालक भी कवि का नाम मिलता है।[१] कवि की माता का नाम इक्कावुथम्पुरात्ति तथा गुरु का कुन्नूनिराज था।[२] कन्नूनिराज के पूर्व कवि को वंशगुरु उणी आषाण तथा चाचा गोदवर्मा थम्पुरान् ने पढाया था। कवि काली का परम भक्त था।[३]

कोचुन्निथम्पुरान् ने सस्कृत तथा मलयालम मे लगभग ४० ग्रन्थ लिखे। अनंग जीवन भाण के अतिरिक्त इन्होंने 'विटराजविजयम्' नामक भाण भी लिखा है। कवि के संस्कृत में लिखे अन्य ग्रन्थ ये है—

१. वाणायुथम् (चम्पू)
२. विप्रसन्देशम्।
३. श्रीरामचरितपुराण काव्यम्।
४. उत्तररामचरितं काव्यम्।
५. श्रीरामवर्मा।
६. श्रीरामपट्टाभिषेकं नाटकम्।
७. अन्यापदेशम्।
८. सूर्योदयम्।

मलयालम में उन्होंने लगभग ३० ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें नाटक, महाकाव्य, द्रविड छन्दों में साहित्य शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें तथा व्याकरण पर भी कुछ ग्रन्थ हैं।

कवि कोचुन्नि थम्पुरान् संस्कृत तथा मलयालम के सचमुच एक महान् कवि थे। इसीसे इन्हे कोचीन के महाराज ने १९१८ में 'कविसार्वभौमन्' की उपाधि से विभूषित किया था। जिस प्रकार देवताओं में इन्द्र, समुद्रों में क्षीरसागर, रथियों में अर्जुन तथा शैलों में हिमालय श्रेष्ठ है उसी प्रकार कवियों में कोचुन्नि भूपालक श्रेष्ठ हैं।[४]

---

१. अ० जीवन, श्लो० ६।
२. वही श्लो० ५।
३. वही पृष्ठ ३। (श्रीकालीपदपंकजभक्तेन कोटिलिंगाधिपेनानेन कविना प्रणीतम्। ········· ।
४. वही प्रस्तावना श्लो० ६।

वरद

अनंगजीवन भाण के रचयिता कवि वरद् के पिता श्रीनिवासार्य सरस कविता के निर्माण मे निपुण तथा तर्कशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। कवि वरद् विनयशील, विद्वान् तथा गुणी थे। आत्रेय इनका गोत्र था।[१]

अप्पा यज्वा

मदनभूषण भाण के कवि अप्पा यज्वा के पिता का नाम चिदंबरेश्वर था। वह प्रसिद्ध कवि थे। उनके कुल का नाम श्रीवत्स था।[२]

कवि का निवास स्थान चोल देश था। चोल देश के राजा शाह के दरबार मे कवि अप्पा यज्वा थे। राजा शाह कला और साहित्य प्रिय थे।[३]

अप्पा कवि की सुधा तुल्य वाणी से दिङ्मण्डल सुरभित होता था। विद्वान् उनके काव्य से आनन्दित होते थे।

वेदान्तदेशिक

शृङ्गारसर्वस्व भाण के कर्ता कवि का नाम वेतान्ताचार्य[४] या वेदान्त देशिक था।[५] इनका गोत्र भारद्वाज था। पिता श्री वेंकटरामार्य भी कवि थे। कवि वेदान्त देशिक पाण्ड्य देश के राजा के आश्रय में थे।[६]

कवि अनवद्य हृद्य काव्य निर्माण में कुशल, शास्त्रों के विद्वान् तथा स्वतन्त्र विचारों के थे।

जगन्नाथ

अनंगविजय भाण के कवि जगन्नाथ काबल वंश के थे।[७] इनके पिता श्रीनिवास प्रभु वोसल वंश के राजा के कुशल मंत्री थे। राज्य गोष्ठियों में उनकी प्रतिष्ठा थी। कवि की माता सौग्बिाई अरुन्धती की तरह साध्वी तथा दमयन्ती की भाँति विश्रुता थीं।[८]

भोग विलास के वातावरण में पले हुए कवि जगन्नाथ प्रबन्ध कुशल थे। लक्ष्मी और सरस्वती दोनो ने सहज वैर भुलाकर कवि जगन्नाथ का वरण किया था।[९] भाण की आरम्भिक स्तुति तथा अन्त में समाप्ति परक वर्णन से लगता है कि कवि भगवान् राम का परम भक्त था।

---

१. अ० जी० (पांडुलिपि पृ० ६ ७)
२. म० भू० (पांडुलिपि पृ० ८)
३. वही (पांडुलिपि पृ० १५)
४. शृं० स० (पांडुलिपि पृ० ८)
५. शृं० स० (पांडुलिपि पृ० १३२)
६. शृं० स० (पांडुलिपि पृ० ६)
७. अ० वि० (पांडुलिपि पृ० ७)
८. अ० वि० (पांडुलिपि पृ० ७)
९. अ० वि० (पांडुलिपि पृ० ८)

अनंग विजय भाण के अतिरिक्त शृङ्गार तरंगिणी भी कवि की रचना है ।[१]

नृसिंह—

शृङ्गारस्तवक भाण के कवि नृसिंह (अपरनाम-नृकण्ठीरव) हारीत गोत्रीय थे । वे बड़े विनयशील एवं विद्वान् थे ।[२] समस्त भाण में रामभद्रयात्रोत्सव की चर्चा होने से लगता है कवि भगवान् राम का भक्त था ।

लक्ष्मी नृसिंहाचार्य—

अनंगसर्वस्व भाण के कर्ता कवि लक्ष्मीनृसिंहाचार्य वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे । इनके पिता स्वाती नृसिंह देवता तथा ब्राह्मणों के भक्त थे । भगवान् नृसिंह की कृपा से ही कवि लक्ष्मीनृसिंह की उत्पत्ति हुई थी । कवि लक्ष्मीनृसिंहाचार्य विद्वान्, आचारवान, वेद वेदान्त पारंगत, समस्त कलाओं मे निपुण थे । वे श्रव्य दृश्य काव्य मे, गद्य पद्य में तथा प्रबन्ध रचना में पूर्ण पण्डित थे ।[३]

अनंग सर्वस्व भाण के अतिरिक्त कवि की अन्य कृतियाँ भी रही होंगी जिनका भाण मे उल्लेख तो नही है पर संकेत अवश्य है[४] ।

श्रीकंठ[५]—

कन्दर्पदर्पण भाण के कवि श्रीकंठ काश्यप कुल मे हुए थे । ये कांचीपुरी के रहने वाले थे । भाण की भूमिका के अनुसार वे सम्भवत. किसी तत्कालीन कालिदास के पुत्र थे ।[६] कवि श्रीकठ सम्भवत: काव्य के आदि प्रणेता महर्षि वेद व्यास का भक्त है । कवि कंपा नदी के तट का रहने वाला था ।

श्रीनिवासाचार्य—

रसोल्लास भाण के कर्ता कवि श्रीनिवासाचार्य हारीतवंश के थे । इनके पिता का नाम वेंकटार्य तथा बाबा का नाम श्रीनिवास था । कवि कांजीवरम् के पास भूतपुरी के रहने वाले थे ।

चिन्तामणि—

श्यामल भाण के कवि चिन्तामणि का समय १७वीं शताब्दी ई० का अन्त है । भाण की रचना १७४८ विक्रम संवत् ज्येष्ठ वदी प्रतिपदा (१६९१ ई०)

---

१. अ० वि० (पाडुलिपि पृ० ६)

२. शृं० स्तवक (पाडुलिपि पृ० ६)

३. अ० स० (पाडुलिपि पृ० ६–८)

४. अ० स०, पाण्डुलिपि पृ० ७० (लक्ष्मीनृसिंहाचार्यकवेः कृतिषु)

५. मैसूर में प्राप्त भाण के पृ० १ के अनुसार कवि का नाम श्री कण तथा वहाँ के कैटलाग के अनुसार कवि का नाम श्रीकृष्ण है जब कि तंजौर से प्राप्त पाण्डु- लिपि में कवि का नाम श्रीकंठ है ।

६. "कलियुग कालिदाससूनुः" क० द० (पाण्डुलिपि प्रस्तावना)

को पूर्ण हुई थी ।[1] कवि चिन्तामणि के पिता का नाम जीव था । जैसा कि कथानक से लगता है कवि कोल्हापुर का निवासी होना चाहिए ।

प्रधानबेंकभूपति—

कामकलाविलास भाण के निर्माता कवि प्रधानबेंकभूपति कर्नाटक प्रदेश के रहने वाले थे । ये भगवान् राम के उपासक थे । इन्होने कर्णाटरामायण की रचना की थी । कवि को साक्षात् धर्म का अवतार माना जाता था । ब्रह्मविद्या के रहस्य वेत्ता होते हुए भी कवि रूपक रचना मे प्रवीण, थे[2] ।

गुरु रामकवि—

मदनगोपालविलास भाण के निर्माता गुरु रामकवि काश्यप गोत्रीय थे । इनके पिता का नाम स्वयभूनाथदेशिक था ।[3] कवि के मातामह राजनाथ भी बड़े विद्वान् और आशुकवि थे ।

वैद्यनाथ—

मदनमंजरीपरिणय भाण के कर्ता कवि वैद्यनाथ मौद्गवंशीय सेनापति शक्करै महीपाल के पुत्र श्रीनल्लतम्बिशक्करै के समय मे हुए थे ।[4] क्योंकि इन्होंने श्रीनल्लतम्बिशक्करै तथा मदनमंजरी के परिणय से सम्बन्धित (मदनमंजरी परिणय भाण) भाण की रचना की ।

कवि वैद्यनाथ नागाद्रि क्षेत्र के रहने वाले थे । ये प्रसिद्ध कवि पद्मनाभाध्वरि के वंशज थे । इनके गुरु का नाम गोपालकृष्ण था ।

साम्बशिव—

शृङ्गारविलास भाण के रचयिता कवि साम्बशिव कावेरी नदी के पास गोपाल समुद्र नामक गाँव के रहने वाले थे । इनका गोत्र श्रीवत्स था । कवि के गुरु श्रीस्वामि शास्त्री शास्त्रमर्मज्ञ तथा विद्वानों में अग्रणी थे ।[5]

कवि साम्बशिव दाक्षिणात्य थे । अपने पिता कनक-सभापति के आप ज्येष्ठ पुत्र थे ।[6]

---

१. श्या० (पाण्डुलिपि पृ० ५८)

२. का० क० वि० (पाण्डुलिपि पृ० ३–५)

३. मैसूर के प्राच्यविद्यासंस्थान के कैटलाग मे इस भाण के लेखक का नाम स्वयंभूनाथ लिखा है जब कि भाण की प्रस्तावना में कवि का नाम रामकवि है । साथ ही आड्यार लाइब्रेरी मद्रास में प्राप्त म० गो० वि० भाण की प्रति से स्पष्ट है कि कवि का नाम रामकवि ही है, स्वयंभूनाथ तो इनके पिता थे ।

४. म० म० प० (पाण्डुलिपि पृ० २)

५. शृं० वि० (पाण्डुलिपि पृ० ८)

६. ,, ,, (मद्रास में प्राप्त पाण्डुलिपि के आधार पर)

मद्दुराम—(अपरनाम कवि राक्षस)

रसिकतिलक भाण के कवि मद्दुराम कौण्डिन्य गोत्रीय थे। ये राजा शहजि (१६८४–१७११ ई०) के समय में थे। अत. १७ वी शती का अन्त और १८ वी शती का आरम्भ इनका कार्य काल था। महाराज शहजि ने इन्हे बहुत आदर दिया था।[1] इनका स्थान चोलदेश (मदुरा कोयम्बटूर–टिललवेटी की भूमि) था। कवि का दूसरा नाम कवि राक्षस भी था।

त्रिविक्रम—

विटनिद्राभाण के निर्माता कवि त्रिविक्रम और पंचायुध प्रपंच भाण के निर्माता कवि त्रिविक्रम—एक ही है या भिन्न-भिन्न यह नही कहा जा सकता। न तो पंचायुध प्रपच मे कवि के परिचय प्रसंग में कही भी यह संकेत है कि त्रिविक्रम का कोई और भी भाण है और न विटनिद्रा भाण में कवि का कुछ परिचय है। केवल इतना उल्लेख मिलता है कि राजा रामवर्मा के समय यह हुए थे।[2]

गोविन्द—

गोपाललीलार्णव भाण के रचयिता कवि गोविन्द के विषय में बहुत कम ज्ञात है। इनके पिता का नाम रंगवर्मा तथा माता का नाम सरस्वती था। कवि अपने माता पिता के बड़े भक्त थे।

घनश्याम कवि—

मदन संजीवन भाण के कवि घनश्याम पुण्डरीकपुर (आधुनिक चिदम्बरम्) के रहने वाले थे।

रामचन्द्र —

कुबलयानन्द भाण के रचयिता कवि रामचन्द्र कौण्डिनीनदी के किनारे किसी गाँव के रहने वाले थे। इनके वश का नाम वेल्लार था। कवि के पिता चन्द्रशेखर बड़े विद्वान् थे।[3]

इन्द्रगन्थिकोंद

शृङ्गाररस भृङ्गार के कवि इन्द्रगन्थिकोंद के पिता का नाम नारायण आर्य था। कवि इन्द्रगन्थि ने अपने को विधुशेखर सेवक अर्थात् भगवान् शिव या विद्वानों का सेवक कहा है।[4]

रतिकर

शृङ्गारमंजरी भाण के रचनाकार कवि रतिकर का कोई परिचय प्राप्त नहीं

---

१. र० ति० पाण्डुलिपि पृ० ५)
२. वि० नि० (पाण्डुलिपि पृ० ८)
३. कुबलय० (पाण्डुलिपि पृ० १०)
४. शृं० र० भृं० (पाण्डुलिपि पृ० ६)

है। भाण से तो केवल इतनी ही सूचना मिलती है कि अपने काव्य से जनमानस में रति उत्पन्न करने के कारण ही इनका यह नाम पड़ा।[1]

वेंकटनारायण—

शृङ्गारमंजरी भाण के रचयिता कवि वेंकटनारायण अत्रि कुलोत्पन्न थे। उनका यह भाण रतिकर के शृङ्गारमंजरी भाण से भिन्न है।

वेंकटाध्वरिन्—

शृङ्गारदीप भाण के रचनाकार कवि वेंकटाध्वरिन् अत्रि गोत्रीय थे। संभवतः, कांची नगरी इनका निवास था, इनके पिता श्रीनिवासाचार्य प्रसिद्ध यशस्वी, कवि, दाता तथा विद्वानों का आदर करने वाले थे।[2]

श्रीनिवास—

वसन्ताभरण भाण के कर्ता कवि श्रीनिवास के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात है। इनके पिता का नाम रामचन्द्र था।

श्रीनिवास कवि—

शृङ्गारचन्द्रिका भाण के रचयिता श्रीनिवास कवि वसन्ताभरण भाण के रचयिता श्रीनिवास से भिन्न है। श्रीनिवास कवि या श्रीनिवासाचार्य श्रीवत्स कुल में उत्पन्न हुए थे। कवि वेदान्त एव शब्दत्रयी के ज्ञाता थे। इनके पिता का नाम हस्त्यद्रिनायक तथा मातामह का वीरराघव गुरु था।[3]

रंगनाथ—

अनंगतिलक भाण के कर्ता कवि रंगनाथ रंगनगरी के रहने वाले मालूम पड़ते हैं।[4] कवि का वत्स गोत्र था। इनके पिता का नाम श्रीनिवासाचार्य था। कवि की वाणी अत्यन्त मधुर एवं प्रभावोत्पादक थी।[5]

वेंकटार्य—

चातुरी चन्द्रिका के कवि वेंकटार्य रंगनगरी के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम कन्दाल था। कवि की माता दयावती एवं स्नेह शीला थी।

शथकोप—

तरुणभूषण भाण के रचनाकार कवि शथकोप वत्सगोत्रीय थे। इनके पिता का नाम श्रीनिवास गुरु था। बाल्यावस्था में ही शथकोप काव्य में रुचि लेने लगे थे।[6]

---

१. शृं० मं० (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)
२. शृं० दी० (पाण्डुलिपि, पृ० २)
३. शृं० च० (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)
४. अ० ति० (पाण्डुलिपि पृ० २)
५. वही (पाण्डुलिपि पृ० २)
६. त० भू० (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)

तरुण भूषण भाण के अतिरिक्त कवि ने एक दानकेलिकौमुदी नामक भाणिका की भी रचना की है।[1]

श्रीकंठ—(उपनाम नंजुद)

मदनमहोत्सव भाण के कवि श्रीकंठ (उपनाम नंजुद) के गुरु परमेश्वर शिव के भक्त एवं करुणाशील थे। भाण में वर्णित पुडरीकपुर के प्रति अधिक आदरभाव के आधार पर अनुमान है कि संभवतः कवि यही का रहने वाला हो।[2]

कवि श्रीकंठ परम विनीत एवं निरंहकार थे। भाण के अन्त में उन्होंने कहा है कि कहाँ तो मैं मन्द बुद्धि वाला और कहाँ सरस उक्तियों से पूर्ण सरस्वती का साक्षात् विलास-भाण। भला उसकी रचना कौन कर सकता है।[3]

पद्मनाम—

लीलादर्पण भाण के निर्माता कवि पद्मनाभ के पिता गणपति तथा माता वेंकमाम्बा थी। कवि को भगवान् लक्ष्मी पति से बड़ा अनुराग था।[4] तर्कशास्त्र का विद्वान् होते हुए भी कवि की वाणी भाण के निर्माण मे अत्यन्त सरस थी।

जयन्त—

रस रत्नाकर भाण के कवि जयन्त के पिता का नाम नारायण था। जयन्त कवि गुरु के परम सेवक थे।

वरदार्य—

वसन्त भूषण भाण के कर्ता कवि वरदार्य के पिता का नाम अनन्तार्य था। कवि के गुरु का नाम वरदार्यदेशिक था। वरदार्य कावेरी नदी के किनारे के रहने वाले थे।[5]

शथजित—

शृङ्गार संजीवम भाण के कवि शथजित के पिता श्री वेंकटबुध शास्त्रज्ञ एवं कवि थे। शथजित के गुरु काश्यप गोत्रीय श्री रंगनाथ थे। कवि का गोत्र भारद्वाज था। कवि कांचीनगरी का निवासी था।[6]

---

१. द्रष्टव्य 'भाणिका', अध्याय २

२. म० म० (पाण्डुलिपि पृ० ४६)

३. क्वाहं मन्दमनीषः क्वनुवा सरसोक्तिसम्मितोभाणः।
वागीश्वरीविलासो वसुधायां केन वर्णितुं शक्यः (म० म० भाण, अन्तिम श्लो०)

४. ली० द० (पाण्डुलिपि पृ० ४, ५)

५. व० भू० (पाण्डुलिपि पृ० ४१)

६. शृं० सं० (पाण्डुलिपि पृ० ३, ४)

श्रीनिवास—

रंगराजचरित भाण के रचनाकार कवि श्रीनिवास सम्भवतः पिछले दोनों श्रीनिवास नामक कवियों से भिन्न हैं परन्तु इनके विषय मे कोई जानकारी भाण द्वारा प्राप्त नही होती ।

शिवरामकृष्ण कवि—

अनंगविजय भाण के कर्ता कवि शिवरामकृष्ण के पिता श्री नारायणार्य महान् विद्वान् थे । गौतम इनका गोत्र था । वेद के वे साक्षात् अवतार थे । सरस्वती उन्हें सिद्ध थी । कवि शिवरामकृष्ण भी पिता की भाँति विद्वान् थे ।[१]

घनगुरु—

कन्दर्पविजय भाण के रचयिता कवि घनगुरु का गोत्र कौशिक था । इनके पर बाबा का नाम श्री रामानुजार्य वरदार्य तथा पिता का वरदगुरु था । पिता की ही भाँति घनगुरु भी महान् विद्वान् थे । विपक्षियों के तर्कों को काटने में सिद्धवाक् थे ।[२]

श्री रंगार्य—

श्रृङ्गार श्रृंगाटक तथा पंचबाणविजय भाण के कर्ता श्री रंगार्य एक ही व्यक्ति हैं । इनके पिता विद्वत्‌शिरोमणि श्री रामानुजार्य थे । वे मीमासा, तर्क एवं काव्य के पंडित थे । पिता की ही भाँति कवि श्रीरगार्य वेद वेदांग एवं साहित्य में परम प्रवीण थे ।[३]

सुन्दरताताचार्य—

श्रृङ्गाररत्नाकर भाण के रचनाकार कवि सुन्दरताताचार्य वेद के विद्वान् होते हुए भी भाण जैसे सरस साहित्य के निर्माण में कुशल थे ।[४]

हरिदास—

हरिविलास भाण के कर्ता कवि हरिदास भगवान् विष्णु के भक्त थे । समस्त शास्त्र, रस एवं अलङ्कार आदि के विद्वान् कवि हरिदास नाट्यरचना में बड़े निपुण थे ।[५]

विशेष—

अप्रकाशित भाणों की प्रस्तावना में कवियों के गोत्र, पिता का नाम, गुरु का नाम, व्यक्तित्व वैदुष्य आदि के विषय में तो कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है । किन्तु तिथि के विषय में प्रायः कोई संकेत नहीं मिलता । तथापि उनकी भाषा आधुनिक

१. अ० विजय (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)
२. कं० वि० (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)
३. शृं० शृं० तथा पं० बा० वि० (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)
४. शृं० र० (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)
५. ह० वि० (पाण्डुलिपि, प्रस्तावना)

मुहावरों का प्रयोग, लोकोक्तियाँ, संविधान प्रकार एवं शैली आदि के आधार पर इन भाणों का समय लगभग १७००–१६२६ तक माना जा सकता है। क्योंकि अब तक उपलब्ध हुए भाणों में कोचुन्निभूपालक का अनग जीवन भाण सबसे बाद का है।[१] कोचुन्नि भूपालक का समय १८५८–१६२६ ई० माना गया है।

इतर कवि—

इस शीर्षक के अर्न्तगत वे कवि आते है जिनके विषय मे सम्बन्धित भाणों के द्वारा प्रायः कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। प्रस्तावना में भी जिनके सम्बन्ध मे अत्यल्प कहा गया है। ये सभी कवि प्रायः १६वी शती के हैं। विशेष परिचय के अभाव में यहाँ उनका उल्लेखमात्र किया गया है—

उद्दण्ड कवि की कृति कन्दर्पविजय भाण है। **श्रीनिवास कवीन्द्र** के भाण का नाम पचबाणसिद्धान्तविलास है। कवि का उपनाम बालकवि भी मिलता है। **अभिनव कालिदास** की कृति श्रृङ्गाराद्वैतभाण है। यह अभिनव कालिदास सम्भवतः श्रृङ्गार-शेखर के रचयिता से भिन्न है। **अनन्ताचार्य** का भाण पल्लवशेखर है। **कवि श्रीनिवासाचार्य** भाण रचना में अत्यन्त कुशल थे। उनके शारदानन्द, श्रृङ्गारचन्द्रिका रंगनाथ भाण, अनंगमगल, रसिक जनमानसोल्लास आदि अनेक भाण है। **राघवाचार्य** यद्यपि भक्त कवि थे किन्तु उन्होने श्रृङ्गारतिलक नामक भाण की भी रचना की है। **भट्टनारायण पडा** साहित्य तथा न्याय के विद्वान् थे। इनका भाण श्रृङ्गार भूषण है। **भुजंगकवि** तजानगरी के रहने वाले थे। इन्होने मदनसाम्राज्य नामक भाण की रचना की। **अण्णयार्य कवि** रसोदार भाण के निर्माता है। **भास्कर** एक युवा कवि थे जो साहित्य के अतिरिक्त शास्त्रो मे भी निष्णात थे। वसन्ततिलक तथा श्रृङ्गारलीलातिलक इनके भाण है। **शकर कवि** सज्जन स्वभाव के थे। इनके दो भाण मिलते है—शारदातिलक तथा चन्द्ररेखाविलास। **शेषगिरि** की कृति भी शारदा-तिलक है किन्तु प्रथम से भिन्न है। **नारायण कवि** की रचना श्रृङ्गारविलसित है। **कवि रामचन्द्र** के भाण का नाम सरसकविकुलानन्द है। इसके अतिरिक्त भी कवि की कुछ रचनायें हैं जिनके प्रति भाण के आरम्भ मे संकेत है। कवि के पिता श्री नीलकंठ दीक्षित अत्यन्त धार्मिक प्रकृति के थे। अनंगसंजीवन तथा श्रृङ्गारसंजीवन के क्रमशः रचयिता कवि **वरद** और **वरदाचार्य** एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न-भिन्न यह नहीं कहा जा सकता। **अनन्ताचार्य** तथा **वेंकटाचार्य** दोनो कवियो की कृतियों का नाम श्रृङ्गारभूषण भाण है। कवि **गोपालराय** रंगराजचरित के रचनाकार हैं। भद्रकाली-केलियात्रामहभाण के रचनाकार **कोटिलिंग युवराज** तथा रससदन के कवि युवराज सम्भवतः एक ही व्यक्ति है। **महिषमगलनंपूतिरि** की कृति महिषमगल भाण है। कवि महिषमगल नामक ग्राम का रहने वाला था। **वसन्तराज** की कृति वसन्तोत्सव

---

४. यह भाण यूनिवर्सिटी मैन्स्क्रुप्ट लाइब्रेरी त्रिवेन्द्रम् से १६६० में प्रकाशित भी हो चुका है।

भाण है। अनंगब्रह्मविद्याविलास के कवि **वरदाचार्य** तथा वसन्ततिलक भाण के कवि वरदाचार्य एक ही है या भिन्न-भिन्न-नहीं कहा जा सकता। कुसुमायुधजीवित तथा शृङ्गारशृंगाटक एव पंचबाणविजय के कर्ता **श्री रंगार्य** सम्भवत. एक ही व्यक्ति हैं। **कवि नगनाथ** की कृति मदनविलास तथा **कृष्णमूर्तिशास्त्री** की मदनाभ्युदय भाण है। **नृसिंहसूरि** का वसन्ततिलक वरदाचार्य के वसन्ततिलक से भिन्न है। **कवि तिरुमल्लाचार्य** विलासभूषण भाण के रचनाकार हैं। **विजुसूरिराघवाचार्य** का शृङ्गारदीप भाण सम्भवतः वेंकटाध्वरिन् के शृङ्गारदीप से भिन्न है। शृङ्गारपवन भाण के कवि **वैद्यनाथ** मदनमजरीपरिणय भाण के कवि वैद्यनाथ से भिन्न हैं। शृङ्गारमंजरी के कवि **वामनभट्टबाण** तथा शृङ्गारभूषण के कर्ता वामनभट्टबाण एक ही थे या भिन्न—निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। **कवि विश्वनाथ** की कृति शृङ्गारमजरी भाण तथा **रामकवि** की शृङ्गाररसोदयभाण है। **कवि अविनाशीश्वर तथा रामानुज** क्रमशः शृङ्गारराजतिलक एवं शृङ्गारशेखर के रचनाकार हैं। **अनन्तनारायणसूरि** का भाण शृङ्गारसर्वस्व है। **कवि स्वामिशास्त्री** दर्शन और न्याय के विद्वान् थे। उनकी कृति भी शृङ्गारसर्वस्व है। संपत्कुमारविलास भाण के रचयिता **रगनाथमहादेशिक** तथा अनगतिलकभाण के कर्ता कवि रगनाथ एक ही है या भिन्न-भिन्न-निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

संघर्ष प्रधान वर्ग

परिचय

जैसा कि द्वितीय अध्याय के आरम्भ में भाणों के वर्गीकरण के प्रसङ्ग में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है—संघर्ष प्रधान वर्ग में वे भाण आते हैं जिनके कथानक में सघर्ष है, नायक-नायिका की प्राप्ति में, उसके लिए किये गये प्रयत्नों में बाधा है। इन भाणों की नायिका प्रायः परोढा होती है। नायक से उसका सम्बन्ध या तो बचपन से ही होता है, या किसी उत्सव मेले में उसके (नायिका के) अद्भुत सौन्दर्य को देखकर उसके प्रति नायक के आकर्षण के कारण होता है। दोनों ही स्थितियों में पति तथा नायिका के घरवाले दोनों के मिलन में अन्तराय होते हैं। इन अन्तरायों को समाप्त कर प्रिया का सयोग प्राप्त करना ही नायक का उद्देश्य होता है। इतना ही नहीं, संघर्ष प्रधान भाणों की अन्य अवान्तर घटनायें भी अन्य वर्गों के भाणों से कुछ भिन्नता लिए हुए होती हैं।

यहाँ संघर्ष प्रधान वर्ग में सात भाणों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भाणों का क्रम यहाँ उनके महत्व की दृष्टि से रक्खा गया है। इस प्रकार मुकुन्दानन्द इस वर्ग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाण है। इस वर्ग के आरम्भिक पाँच भाण सर्वांग पूर्ण है। उनकी वस्तुयोजना, सन्धि तथा सन्ध्यंग, नाट्यालंकार, लास्यांग, रस, कैशिकी वृत्ति, भारतीयवृत्ति के वीथ्यंग एव प्रहसनांग आदि भाण रूपक में पाये जाने वाले प्राय सभी अंग विस्तारपूर्वक मिलते हैं। किन्तु अन्तिम दो भाण (कामकला-विलास तथा गोपाललीलार्णव) इस दृष्टि से अपूर्ण है।[1] उनकी प्रतियाँ सुपाठ्य न होने के कारण सन्धि तथा सन्ध्यंगों के अतिरिक्त भाण सम्बन्धी उनके अन्य अंगों पर विचार न करके उनका संक्षिप्त परिचय मात्र दिया गया है।

मुकुन्दानन्दभाण

यह भाण कवि काशीपति की कृति है। यह संघर्ष प्रधान वर्ग का है। इसका समय १८वी शता० है। यह एक मिश्रभाण है जिसमें नायक भुजंगशेखर तथा नायिका मंजरी की प्रणय कथा वर्णित है। मध्यम आकार के इस भाण में २५८ पद्य तथा शेष गद्य है।[2]

---

१. मैसूर तथा तजौर के प्राच्य विद्या संस्थानों में प्राप्त हुई इन भाणों की पाण्डुलिपिय दुष्पाठ्य एवं विश्रृंखलित होने से, उनमें पद्य भी गद्य की ही भाँति लिखे रहने से, वाक्यों के आदि-अन्त का अभाव होने से, उनके कथानक का सूत्र तो किसी प्रकार हाथ लग गया है किन्तु भाण के अन्य अंग अस्पष्ट ही रहे हैं।

२. भरत वाक्य (श्लो० २५८) के बाद के दो श्लोकों मे कवि ने भगवान् विष्णु से मंगल प्रार्थना तथा विद्वच्चरणो मे प्रणय निवेदन किया है। अतः ये दो पद्य भाण के कलेवर में नहीं गिने जायेंगे।

तृतीय अध्याय

भाण-समीक्षा

संघर्ष प्रधान-वर्ग (Conflict Monologues)

संघर्ष प्रधान वर्ग-परिचय

१. मुकुन्दानन्द भाण
२. पद्मप्राभृतक भाण
३. पंचायुधप्रपंच भाण (पाण्डुलिपि)
४. कर्पूरचरित भाण
५. शृङ्गारतिलक भाण
६. कामकलाविलास भाण (पाण्डुलिपि)
७. गोपाललीलार्णव भाण (पाण्डुलिपि)

पात्र

स्त्रीपात्र		पुरुषपात्र	
मंजरी	नायिका	भुजंगशेखर	नायक
कलवाणी	वसन्तक की प्रेयसी	वसन्तक	नायक का मित्र
सौदामिनी	मयूरक की प्रेयसी	मयूरक	अनुनायक
चन्द्रिका, तारा	विट की पूर्व प्रेयसी	कलहंसक	अनुनायक
कमलिनी	कलहंसक की प्रेयसी	कलकंठ	वसन्तक का अनुचर
मरालिका	उद्यान पालिका	वीतिहोत्र	ज्योतिषी
भगवती जटावती	तपस्विनी	मुद्गलभट्ट	पौराणिक
लीलावती	वारवनितायें	मन्दार	मंजरी का पिता
कांचनलता	वारवनितायें	माधव	मंजरी का पति
चन्द्रमुखी	वारवनितायें	मलय	मंजरीका श्वसुर
कनकांगी	वारवनितायें	स्वच्छन्दगुच्छ	मंजरी का भाई
लवंगिका	वारवनितायें		

नान्दी[1]—

कवि ने त्रिपद्यात्मक नान्दी की है। यह द्वादशपदा नान्दी है।[2] इन तीन पद्यो मे दो बार चन्द्र शब्द का उल्लेख होने से नान्दी का यह नीली भेद है। साथ ही द्वितीय पद्य मे कृष्ण और गोपिकाओ की प्रणय लीला का वर्णन-भाण के नायक भुजंगशेखर के नायिका मंजरी के साथ प्रणय के प्रति संकेत रूप वस्तु निर्देशन समासोक्ति के रूप मे होने से यह पत्रावली भी है। प्रथम तथा तृतीय पद्य क्रमशः गणेश एवं कामदेव की नमस्कारात्मक स्तुति होने से यह शुद्धा नान्दी है। इस नान्दी का प्रथम पद्य मगण से आरम्भ होने के कारण नायक को 'श्री' प्राप्ति का द्योतक है। अतएव यह गणतः परिशुद्धा है। नान्दी का प्रथम पद्य 'व' से आरम्भ होने के कारण, यद्यपि नायक के व्यसन एवं संकट ग्रस्त होने का परिचायक है किन्तु देवता वाचक होने से नायक के लिए सुखावह ही है। अतः लिपितः शुद्धा भी नान्दी है।

प्रस्तावना—

प्रस्तावना में सूत्रधार तथा नटी के संवाद द्वारा भाण तथा उसके कर्ता कवि काशीपति का परिचय दिया गया है। नटी के यह पूछने पर कि कर्कशतर्कशास्त्र में प्रवीण कवि ने सरस भाण की रचना कैसे की नट उसे समझाता है कि जिस प्रकार क्षण भर के लिए प्रणय कोप मे निष्ठुर होकर भी तुम तुरन्त प्रेमार्द्र हृदया हो जाती हो उसी प्रकार तर्क शास्त्र मे कर्कश भी कवि की वाणी साहित्य रचना मे सरस है। कवि ने स्वयं कहा है कि कर्कश वक्र वाक्य से युक्त, तर्कशास्त्र में निष्ठुर भी मेरी

१. नान्दी के विशेष परिचय के लिए द्रष्टव्य प्रथम अध्याय।
२. यहाँ पद गणना श्लोक पाद के आधार पर है।

वाणी मृदुलोक्ति पूर्ण काव्य मे कोमल है। जो प्रसूनावलि प्रिय वियुक्ता वनिता के हृदय को काटने के लिए कैंची का काम करती है वही क्या सयोगावस्था मे मृदुल नही होती ?[१] इस प्रकार कवि की वाणी को कुसुमश्री की भाँति मृदुल बताकर सूत्र-धार तथा नटी वसन्तागमन का वर्णन करते है। तदनन्तर प्ररोचना के द्वारा सूत्रधार काल, कवि, काव्य, सभासद एव अपनी प्रशसा के द्वारा सामाजिको को उत्साहित करता है।[२] अन्त मे सूत्रधार नेपथ्य मे नायक द्वारा पढे गये श्लोक को सुनकर उसे आता हुआ देखकर रगमच से चला जाता है और नायक भुजगशेखर नेपथ्य मे पढे हुए श्लोक को दुहराता हुआ प्रवेश करता है। नायक का यह प्रवेश आमुख के कथोद्घात आदि प्रसिद्ध भेदो के अन्तर्गत नही आता। इसे वलित नामक आमुख का भेद माना जा सकता है।[३]

कथानक

मजरी वियुक्त भुजगशेखर (दूसरा नाम मुकुन्द) पति के जग जाने के कारण मजरी के चले जाने पर उन अपूर्ण रति व्यापारो, काम केलियो की स्मृति मे दु खी होता है। आज मजरी का पति उसे ले जायेगा यही उसे दु ख है। यदि न ले गया तो प्रिया से पुन समागम होगा। किन्तु मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ? इस प्रकार भुजगशेखर सोच ही रहा था कि प्रात हो जाता है। प्रात का विविध वर्णन करके वह निष्कुटवन से निकलता है और वीथी मे प्रवेश करता है।

वीथी मे उसे कमलापीड के घर से उतरकर आता हुआ मित्र वसन्तक दीखता है। पूछने पर पता चलता है कि वसन्तक कमलापीड से भयभीत है। क्योकि दूती वचन पर विश्वास करके नवरात्रि मे वह (वसन्तक) अपनी प्रिया के साथ समागम प्राप्त कर रहा था। उसी समय कमलापीड अपनी पत्नी के चरित्र की जाँच करने के लिए छिपकर बैठा रहा। रात्रि बीतने पर जब वसन्तक वहाँ से चला तो आगन मे प्राणघातक उसे देखकर प्राकार लाघकर वह भाग आया। भुजगशेखर अपने मित्र वसन्तक को कमलापीड से अभय करता है। उसी समय कमलापीड के घर मे कलकल होता है ' वसन्तक समझता है कि निश्चित ही उसकी प्राणवल्लभा कलवाणी को कमलापीड ने मार डाला। इसी से यह भारी कोलाहल है। वसन्तक विलाप करते हुए अपने को कोसता है। विट उसे समझाता है। इसी बीच वसन्तक का अनुचर कलकंठ बगल मे तलवार छिपाये आता है। इसे वसन्तक ने रात्रि मे अपनी रक्षा के लिए नियुक्त किया था। पूछने पर कलकठ बताता है कि कलवाणी ने स्वय अपनी रक्षा की। वसन्तक के चले आने पर वह बुरी तरह चिल्लाने लगी कि

१ मुकुन्दा० श्लो० ७

२. मुकुन्दा० श्लो० १२।

३ काव्येन्दुप्रकाशकार ने वलित भी आमुख का भेद माना है। द्रष्टव्य 'लाज़ एण्ड प्रैक्टिस् आफ सस्कृत ड्रामा' एस० एन० शास्त्री पृ० ६०।

कोई चोर मेरे आभूषण लेकर भाग गया। अब मेरा पति कल आयेगा तो मैं क्या करूँगी। इस प्रकार कमलापीड ने वसन्तक को चोर समझा, अपनी पत्नी का जार नहीं।

इसके अनन्तर वसन्तक, भुजगशेखर की वियोगी जैसी दशा—श्वास का अधिक निकलना, शरीर की कृशता आदि–देखकर उससे कारण पूछता है। भु० शे० उसे कान में अपनी विरह व्यथा सुनाता है। वसन्तक उसे सलाह देता है कि तुरन्त ज्योतिषी वीतिहोत्र से मिलकर मंजरी की विदा मे विघ्न डलवा दिया जाना चाहिए।

इसके बाद वसन्तक तो वेशवाटी को चला जाता है और भुजंगशेखर पुरोहित पुत्र वीतिहोत्र को ढूढने। भु० शे० वीतिहोत्र को ढूँढता हुआ नगर के उद्यान में पहुँचता है। वहाँ उद्यान पालिका मरालिका से पूछता है कि क्या यहाँ मित्रवीतिहोत्र पुष्प चयनार्थ आया था ? वह कहती है कि आया था और अभी चला गया है। थोड़ा ढूढने पर वह मिल जाता है। वह अपने आप ही पूछता है कि क्या मजरी पति-भवन जा रही है ? भु० शे० सोचता है कि एक जटावती—जिसने निष्कुट वन में मेरा मंजरी से संयोग कराया था—को छोड़कर इस वृतान्त को कोई नही जानता। फिर यह कैसे जान गया ? अथवा दैवज्ञों को क्या अविज्ञात है ? वीतिहोत्र को पहले से ही सब घटना मालूम है। वह भु० शे० को आश्वासन देता है कि वह ऐसा उपाय करेगा कि मंजरी पतिगृह न जाये।

इसी बीच सूर्योदय होता है। उसकी शोभा का वर्णन करके विट आगे पौराणिक मुद्गल भट्ट को आते देखता है। मरालिका से पूछने पर मालूम होता है कि यह महाशय मुद्गल भट्ट बड़े रसिक प्रकृति के हैं। पुराणो की कथा के प्रसग में बाल विधवाओं को फुसलाया करते हैं।

भु० शे० अब वेशवाट में प्रवेश करता है। यहाँ वह धूप सेकती हुई लीलावती, ललाट पर तिलक लगाती हुई कंचनलता एवं केश बन्धन करती हुई चन्द्रमुखी से हास परिहास करता हुआ आगे बढ़ता है।

यहाँ उसे मित्र मयूरक दीखता है। पूछने पर विदित होता है कि कादम्बिनी की पुत्र वधू सौदामिनी से यह प्रेम करता है। एक दिन अंधेरी रात्रि में उसे मयूरक ने पकड़ लिया। किन्तु यह मृदुल निषेध करती हुई चली गई। जाते समय की उसकी अनुराग भरी चेष्टाये इस बात की द्योतक थी कि उससे शीघ्र ही भेट हो जायेगी। थोड़ा आगे चलने पर विट को अपनी पूर्व प्रेयसी चन्द्रिका तथा उसकी मौसी की लड़की मल्लिका मिलती है। विट मल्लिका से उसके कन्दुकक्रीडा को निमित्त बनाकर अनेक प्रकार का हास परिहास एवं व्यङ्ग्य करता है। इसी समय मध्याह्न हो जाने से विट अपनी पूर्वभुक्ता तारा एवं उसकी कनीयसी शशिरेखा से मनोविनोद करता हुआ दोपहरी बिताने के लिये पुरोद्यानपद्या में प्रविष्ट हो जाता है।

यहाँ विट तथा उसके मित्र मयूरक विश्राम कर ही रहे थे कि उन्हें मदन विह्वल कलहंसक दीखता है जो मित्र प्रभाकर की पत्नी कमलिनी से वियुक्त है। पूछे जाने पर कलहंसक मित्रों को बताता है कि वे दोनों एक दूसरे को देखकर अनुरक्त हो गये। कमलिनी ने अपने बन्धुजनों की उपेक्षा करके अभिसरण किया किन्तु दुष्ट विधि ने हमे विफल मनोरथ किया। कल पूर्व संकेतानुसार इसके घर जाकर स्नान गृह में छिप गया। अंधेरा होने पर रात्रि में इसका देवर धूमवर्ति (हुक्का) लेकर उसे जलाने को वहीं आ पहुँचा। उसके आग फूँकने पर राख उड़ी। इस भय से कि आग जलने पर प्रकाश होगा और मै पकड़ा जाऊँगा—मैंने जल से भरा हुआ घड़ा लुढका दिया। पानी गिरने से उड़ती हुई राख से बुरी दशा हो गयी। इसी बीच घड़े की आवाज सुनकर डरकर वहाँ बैठा हुआ विडाल (बिल्ली) निकल भागा। पानी का घड़ा उसी से गिरा है यह जानकर उस देवर ने उस विडाल को गालियाँ दीं और मारने को भागा तथा कमरे की सांकल देकर चला गया। मै उसमें बन्द होकर पछताने लगा। थोड़ी देर मे प्रिया कमलिनी उधर आई। उसने किवाड़ खोले। मैं उसे स्नानगृह में ले गया। यहाँ उसने बताया कि आज शिरोवेदना से पीड़ित आर्यपुत्र ने मुझसे सास के पास सोने को कहा है और सास मुझे शयनगृह में भेजकर स्वयं सो रही है। इसलिये आओ हम दोनों पुरोद्यानपद्या मे विहार करें। क्योंकि पति तो समझता है कि पत्नी सास के पास सो रही है और सास समझती है कि बहू बेटा के पास सो रही है। इस प्रकार हम रात्रि भर उसके साथ विहार में रत रहे। प्रातः होने पर गुरुजनों के भय से वह चली गई। ऐसा कहकर कलहंसक वियोग में दुखी हो जाता है। मु० शे० तथा मयूरक उसे समझाते हैं।

इसी समय मु० शे० को वनपालिका मरालिका का स्मरण हो आता है जिसे उसने प्रिया मंजरी के प्रस्थान का वृत्तान्त जानने के लिए भेजा था। मरालिका का नाम सुनते ही कलहसक कहता है कि मैं तो भूल ही गया था। कल वह मेरे पास आई और कहा कि मैंने तुम्हारे मित्र मुकुन्द को बहुत देर तक ढूँढा पर वह नहीं मिले। तुम उन्हें ये दो पत्रिकाये दे देना। कालिका को बलि देने के लिए मन्दार ने मुझे (वनपालिका को) फूल लाने को कहा है। अतः मैं रुक नहीं सकती। मु० शे० अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक केतकी दल पर लिखे पत्र को लेता है। पढ़ने पर विदित होता है कि प्रिया मंजरी ने लिखा है कि मैं आज पतिगृह जा रही हूँ, तुम दुखी न होना। अपने शरीर की वियोग में उपेक्षा न करना। मु० शे० पढ़कर दुखी होता है। कलहंसक और मयूरक उसे विश्वास दिलाते हैं कि मंजरी किसी भी प्रकार आज पतिगृह नहीं जायेगी। दूसरा पत्र ज्योतिषी वीतिहोत्र का है जिसने लिखा है कि यदि प्रियतमा चली जाये तो भी उसे विषाद नहीं करना चाहिए। क्योंकि सायं के पूर्व ही मेरे प्रयत्न से वह आ जायेगी। ज्योतिषियों की बात अन्यथा नहीं होती। दोनों मित्रों के समझाने पर मु० शे० धैर्य धारण करता है।

दिन बिताने के लिये मु० शे० अपना मंजरी-प्रणय-विषयक कथा प्रसङ्ग सुनाता है। वह कहता है कि एक बार मै वसन्त, सन्तानक आदि मित्रों के साथ भगवान् रंगनाथ का चैत्रोत्सव देखने के लिए रंगनाथपुरी गया। उत्सव देखते हुए वहाँ कई दिन बिताये। एक दिन तरुणियों के समूह में अद्भुतलावण्य युक्त मञ्जरी को देखा। उसकी रूप छटा नेत्रो के मार्ग से मेरे अन्त करण में प्रविष्ट हो गई। मैं माकन्दलता मन्दिर पर था कि वह किसी बहाने से उधर आई और मदनावेश युक्त कटाक्षो से मेरी ओर देखा। मै उसकी इन चेष्टाओं से काम विह्वल हो गया। जब वह साथियों के साथ जाने लगी तो मैं भी उसके पीछे घर तक गया। उसी समय एक रसोइये के पूछने पर उसका नाम, कुल, शील आदि मालूम हो गया। इस रसोइये ने बतलाया कि यह हमारे स्वामी मलय की पुत्रवधू, माधवी की पत्नी और मन्दार की पुत्री मजरी है। यह आज कल मे नवीन नगर जायेगी जहाँ पिता मन्दार का घर है। उसके अनन्तर यह नवीन नगर चली आई और बाद में मैं भी यहाँ आ गया। एक दिन मेरे सौभाग्य से भगवती जटावती मेरे पास आई और मेरी कृशता का वास्तविक कारण जानकर उन्होने मंजरी की विरह व्यथा की बात भी कही तथा आश्वासन दिलाया कि उपयुक्त समय आने पर वे हम दोनों का समागम करा देंगी। तब से उन्होने अनेक बार प्रयत्न किया किन्तु वह विफल रहा। कल मन्दाराराम मे भगवती जटावती की कृपा से मंजरी मुझे प्राप्त हो गई। मैं उससे समागम सुख प्राप्त करना ही चाहता था कि मेरे दुर्भाग्य से इसी बीच उसका पति जाग गया। इस प्रकार मु० शे० से उसके प्रिया वियोग की कहानी सुनकर उसके मित्र उसे मनोरथ पूर्ति का आश्वासन दिलाते हैं।

उसी समय सन्ध्या हो जाती है और जटावती आकर मु० शे० को आशीर्वाद देती हुई कहती है कि शीघ्र ही तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। क्योंकि मंजरी का पति माधव जब उसे अपने घर ले जा रहा था कि रास्ते मे ही उसके पिता मलय का पत्र मिला जिसमे लिखा था कि राज्य में उपद्रव के कारण हम लोग रंगनगर छोड़कर मधुरा जा रहे है। अतः बहू मंजरी महीने भर वही माँ के पास रहे। पत्र पाते ही तुम चले आना, देर मत करना। उसके बाद मंजरी को उसके भाई स्वच्छन्द-गुच्छ के साथ लौटाकर स्वयं पत्र वाहक के साथ माधव अपने घर चला गया। मंजरी इस समय कहाँ है—यह पूछने पर जटावती बताती है कि तुम्हारे विरह में विह्वल मंजरी को मार्ग के परिश्रम से खिन्न जानकर पिता मन्दार उसे घर ही छोड़कर सकल बन्धु समेत कालिका के मन्दिर में गये है। मु० शे० इसे बहुत सुन्दर अवसर मानता है। जटावती कलहंसक और मयूरक को भी उनका शीघ्र मनोरथ सफल होने का आशीर्वाद देती है।

इसी समय हांफती हुई मरालिका आकर कहती है कि तुम्हारे (मु० शे० के) वियोग में विह्वल प्रिया मंजरी तुम्हें बुला रही है। जटावती के साथ तीनों मन्दार के घर जाते हैं। मंजरी कुछ लज्जा करती है। मरालिका उसे मौके से नृ

चूकने का संकेत करती है। इसी समय चन्द्रोदय होता है। उसका विविध प्रकार का वर्णन मु० शे० करता है। नायक नायिका का मिलन होता है। जटावती दोनों को आशीर्वाद देती है। मु० शे० भरत वाक्य पढ़ता है और भाण समाप्त होता है।

वस्तु

इस भाण में नायक भुजंगशेखर तथा नायिका मंजरी का कथानक आधिकारिक है। मयूरक तथा कलहंसक के कथानक प्रासंगिक होने से पताका के अन्तर्गत आते है। वसन्तक का कथानक आरम्भ होकर वही समाप्त हो जाता है—अतः वह प्रकरी है।

पताकास्थानक

इस भाण में तीन बार पताकास्थानक का प्रयोग किया गया है। सर्वप्रथम भाण के आरम्भ में ही प्रिया के वियोग से विधुर मु० शे० जब अत्यन्त विह्वल हो जाता है तो नेपथ्य मे एक श्लोक पढ़ा जाता है जिसका अभिप्राय है कि यह पातकी चन्द्रमा अस्त हो रहा है, उदयाद्रि के समीप ही सूर्य स्थित है जो उदय होने ही वाला है। कोक तुम अब शोक मत करो। तुम्हारे विरह में व्याकुल प्रिया से तुम्हारा मिलन होने ही वाला है।[1] यह कथन मु०शे० तथा मंजरी के भावी मिलन के प्रति संकेत होने से तुल्य संविधान पताकास्थानक के अन्तर्गत आता है। दूसरा पताकास्थानक भाण के मध्य में आता है जब नायक भु० शे० कन्दुक क्रीडा करती हुई मल्लिका से प्रेमालाप करता हुआ कहता है—पयोजाक्षि, बार-बार पैरों पर पड़ते हुए, हाथ में आये हुए भी इस कन्दुक को तुम ताडित क्यों करती हो? विट का संकेत स्पष्ट है कि अपराधी नायक जब नायिका के पैरो पर पड जाये तब तो उसका अपराध क्षमा हो ही जाना चाहिए। इस पर मल्लिका कहती है— पैरों पर पड़ने पर भी तत्काल उत्पतनशील (पुनः अन्य नायिका के पास चले जाने वाले) कापुरुष जैसे इस कन्दुक को कौन नहीं ताडित करेगी। स्पष्ट ही मल्लिका का अभिप्राय भु० शे० द्वारा किये गये व्यवहार के प्रति है। पहले बन्धु जनों को भी धोखा देकर मल्लिका मु० शे० में अनुरक्त हुई थी।[2] किन्तु अब वह (मु० शे०) अन्य नायिकाओं मे आसक्त हो गया है। अतः अन्योक्ति रूप मे यह तुल्य संविधान पताका स्थानक है। तीसरा पताका स्थानक भाण के अन्त मे है। नायक मु० शे० मंजरी विषयक अपने वियोग की कहानी सुनाने के बाद सूर्यास्त का वर्णन करते हुए कहता है कि जैसे ही संसार के नेत्र भगवान् सूर्य अस्ताचल मे लीन हुए, हाय, उसी समय चकवा चकई अत्यन्त दुखी होकर एक दूसरे से दूर ही गये। यह वर्णन निश्चि ही मु० शे० और मंजरी के वियुक्त हो

---

१. मुकुन्दा, श्लोक २२

२. पृ०–४१ (मत्कृतस्नेहानुबन्धा बन्धुजनमतिसन्धायमामनुसंगता वर्तते)

जाने के प्रति सकेत है ।[1] साथ ही जैसे पुन. सूर्योदय होने पर कोक का पुनर्मिलन शीघ्र ही होता है वैसे ही मजरी की यात्रा मे बाधा पड़ते ही जटावती के प्रयत्नों से इन दोनों का सयोग अत्यन्त निकट भावी है—इस ओर भी सकेत है । अतः यह भी तुल्य संविधान पताका स्थानक है।

सन्धि

भाण के आरम्भ मे मु० शे० द्वारा प्रिया मंजरी से मिलन, तत्तद् रति व्यापार आदि का कथन[2] **बीज** नामक अर्थ प्रकृति है एव नेपथ्य मे कहे गये चक्रवाक के लिये आश्वासन वचन[3] को सुनकर मु० शे० का उत्साहित होना तथा प्रिया मिलन के लिए आशा का संचार **आरम्भ** नामक कार्यावस्था है । इन दोनों के मेल से **मुख सन्धि** बनी जिसमे आरम्भ मे मु० शे० का मंजरी से वियोग, वसन्तक को अभयदान देना, उसकी प्रणय कहानी, ज्योतिषी वीतिहोत्र से भेट तथा उसका आश्वासन—मु० शे० का पौराणिक मुद्गल भट्ट से वार्तालाप, वेशवाट का वर्णन, मित्र मयूरक तथा कलहसक के प्रणय प्रसंग तथा मु० शे० द्वारा मजरी समागम वृत्तान्त कथन के आरम्भ तक का कथानक सम्मिलित है तथा भाण के लगभग मध्य मे अपेक्षित साध्य मजरी विषयक वृत्तान्त कथन **कार्य** नामक अर्थ प्रकृति तथा जटावती एव मरालिका की सहायता से मंजरी प्राप्ति का कथानक[4] **फलागम** नामक कार्यावस्था है । इन दोनों के सयोग से बनी यह **निर्वहण** सन्धि है जिसमे मु० शे० द्वारा मयूरक तथा कलहंसक को मजरी से हुई अपनी प्रणय कहानी विस्तार-पूर्वक सुनाना, जटावती द्वारा मंजरी की यात्रा मे विघ्न पडने की घटना सुनाना, मरालिका द्वारा मजरी की आतुरता एवं विरहोत्कंठा का वर्णन करके मु० शे० को उसके पास जाने को प्रेरित करना, सब का मंजरी के पास आना एवं भरत वाक्य के साथ भाण की समाप्ति पर्यन्त की घटना सम्मिलित है ।

सन्ध्यंग

भाण के आरम्भ मे[5] नायक मु० शे० का अपनी प्रिया नायिका मंजरी के वियोग मे उसके प्रति अनुराग रूप बीज का कथन होने से यहाँ **उपक्षेप,** नायक नायिका के इस अनुराग रूप बीज की उसके आगे व्याख्या और विस्तार होने से[6] **परिकर,** पति के अन्तराय होने पर भी प्रिया मंजरी की प्राप्ति के प्रति मु० शे०

---

१. वही श्लोक २२७ ।
२. वही ,, १४–१६ ।
३. वही पृ० ७ ।
४. वही पृ० ६६–७०
५. श्लोक १४, १५ ।
६. ,, '१६ २० ।

का आशावान् होना, अपने उद्देश्य की सिद्धि के प्रति निश्चय और दृढ़ता का भाव होने से यहाँ[1] **परिन्यास** नामक मुख सन्ध्यंग है। नायक द्वारा प्रिया मंजरी के रूप, गुण का वर्णन[2] **विलोभन** और मयूरक तथा कलहंसक द्वारा मंजरी समागम वृत्तान्त पूछे जाने पर भु० शे० द्वारा विस्तार पूर्वक उसे सुनाना-प्रकृत का आरम्भ होने के कारण **करण** नामक मुख सन्ध्यंग हैं।

भुजगशेखर अपने मित्रों को मंजरी विषयक अपनी प्रणय कहानी विस्तार पूर्वक सुना रहा है। यहाँ[3] मंजरी के प्रति अनुराग रूप बीज का पुनः स्मरण एवं उसकी आख्या **सन्धि** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है। इसी प्रसग मे विट मंजरी की प्राप्ति कैसे हुई इस घटना की अनुभूत आख्या प्रस्तुत करता है।[4] अतः यहाँ **निर्णय**, आगे के कथानक मे[5] भु०शे० तथा मजरी के मिलन का वर्णन है जिसमें नायक नायिका के दु:ख का निर्गम हो जाने के **समय**, प्रिया की प्राप्ति से निडर होकर भु० शे० चन्द्रमा को उलाहना देना चाहता है[6] अत: लब्धार्थ (मंजरी की प्राप्ति) का शमन, स्थिरीकरण होने से यह **कृति**, आगे भाण की समाप्ति पर[7] भगवतीजटावती द्वारा यह पूछना कि वह विट का और क्या प्रिय करे---**उपसहार** तथा भरत वाक्य के रूप में अन्तिम पद्य **प्रशस्ति** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है।

सन्ध्यन्तर

कलवाणी का प्रेमी वसन्तक कमलापीड के डर से ऊँची दीवाल फादकर आता है और विट भु० शे० उसे अभय दान देता है तब वह (वसन्तक) उसे अपना पूरा समाचार सुनाता है।[8] अत: यहाँ **भय** सन्ध्यन्तर है। वसन्तक के यह आशंका करने पर कि कमलापीड ने अपनी पत्नी कलवाणी को छिपकर प्रेमी से मिलने के अपराध में मार डाला होगा, कलकंठ उसे सूचना देता है कि कलवाणी ने बड़ी चतुरता पूर्वक अपनी रक्षा की। ज्यो ही वसन्तक दीवाल फांदकर आया त्योंही उसने (कलवाणी ने) अपने आभूषण कहीं छिपाकर रख दिये और चिल्लाने लगी कि कोई चोर मेरे आभूषण लेकर भाग गया। कल विदेश से लौटने पर मैं

---

१. ,, २३ ।
२. ,, २७ ।
३. श्लोक० २०६–२१० ।
४. पृ० ६२–६५ ।
५. श्लोक० २३५–२४५ ।
६. पृ० ७३ ।
७. पृ० ७४ ।
८. पृ० १० ।

अपने पति को क्या उत्तर दूँगी ।[1] यह सुनकर कमलापीड ने भागते हुए वसन्तक को चोर समझा, अपनी पत्नी का जार नही । अत ठीक समय पर रगे हाथो पकडे जाने पर भी कलवाणी द्वारा तत्काल ऐसी बात बना देना **प्रत्युत्पन्नमतित्व** नामक सन्ध्यन्तर है । इसी प्रसंग में प्रांगण में खड़े हुये प्राणघातक कमलापीड को देखकर उससे डरकर वसन्तक द्वारा उदग्र प्राकार फाँदकर निकल भागना[2] **साहस**, पतिगृह जाते समय मञ्जरी केतकी दल पर नखों से लिखकर पत्रिका मु० शे० के पास भेजती है[3] यह प्रसंग **लेख** तथा भाण के अन्त मे नायक नायिका के मिलन प्रसंग मे मञ्जरी के लज्जा करने पर मरालिका का उसे समझाते हुए लज्जा छोड़ने[4] को कहना **ह्री** नामक सन्ध्यन्तर है ।

नाट्यालंकार

प्रस्तुत भाण मे अनेक नाट्यालंकार मिलते है। मु० शे० मञ्जरी के साथ विविध प्रकार के रति प्रसंगो की **स्पृहा** करता है ।[5] उसके सौन्दर्य पूर्ण अंग प्रत्यंगों की **आशंसा** द्वारा अपनी मनोरथ पूर्ति चाहता है ।[6] साथ ही पूर्ववृत्तोक्ति के कारण यह प्रसंग **आख्यान** भी है । कमलापीड द्वारा अपनी प्रेयसी कलवाणी के मार डाले जाने की आशका मात्र से वसन्तक द्वारा करुण विलाप **आक्रन्द** है ।[7] वसन्तक का यह दु ख कि उसने अपने प्राणो की तो रक्षा कर ली किन्तु प्राणप्रिया के प्राण न बचा सका **पश्चाताप** है ।[8] इसी प्रसग मे वसन्तक का यह कहना कि जिस तेरे कण्ठ में मैंने क्रीडा प्रसंगो में कुवलय माला पहनाई थी वह कण्ठ असिलता का पात्र कैसे बना होगा—भी **आक्रन्द** है ।[9] वेशवाट मे मु० शे० लीलावती से प्रेमालाप के प्रसग मे उसके साथ रति प्रसंगों की **स्पृहा** करता है ।[10] इसी प्रसंग में काचनलता से बातचीत करता हुआ विट पूर्वरति प्रसगों का **आख्यान** करता है ।[11] आगे चन्द्रिका के साथ

१. तावदेव सा चतुरा आत्मन आभरणानि कुत्रचित् निक्षिप्य निजवक्षस्ताडनपूर्वकमयमय चारो ममाभरणान्याहृत्य गच्छति । हा हतास्मि। श्व एव दूरदेशादागते आर्यपुत्रे कि करिष्यामि, किं वा कथयिष्यामि पृ० १५ ।

२. श्लो० ३८ ।

३. पृ० ५७-५८ ।

४. श्लो० २४० ।

५. श्लो० १६ ।

६. श्लो० १६-१८ ।

७. पृ० ११ (हा प्रिये कलवाणि, हा मदर्थत्यक्तजीविते हामत्प्राणवल्लभे, कथं पत्यपदेशेन पापीयसा मृत्युना दुर्दशा नीतासि) ।

८. श्लो० ४० ।

९. श्लोक ४१ ।

१०. श्लोक ९८ ।

११. श्लोक १०१-१०२ ।

वार्तालाप के प्रसंग मे भी उसके साथ किये गये अपने पूर्व रति प्रसंगों का वह **आख्यान** करता है ।[1] कमलिनी वियुक्त कलहंसक प्रिया के साथ जहाँ आलिंगन चुम्बन किया था, जहाँ उसके साथ सोया था, जहाँ प्रेमालाप किया था उन-उन स्थानों को देखकर **उत्कीर्तन** करता है ।[2] प्रिया मञ्जरी के पतिगृह जाने के अवसर पर दुःखी, विपन्न भुजंगशेखर को पुनः प्रिया मिलन की आशा बधाने वाली, आश्वस्त कराने वाली ज्योतिषी वीतिहोत्र की पत्रिका **साहाय्य** है ।[3] मित्र कलहंसक तथा मयूरक द्वारा आग्रह पूर्वक पूछे जाने पर भुजगशेखर मञ्जरी समागम वृतान्त का विस्तारपूर्वक **आख्यान** करता है ।[4] भाण के अन्त में वीतिहोत्र के प्रयत्न से मञ्जरी के पुनः पितृगृह आ जाने पर भगवती जटावती भु० शे० को शीघ्र ही मनोरथ प्राप्ति का **आशी** देती है ।[5] विट भु० शे० मञ्जरी के सुकोमल वदनारविन्द को देखने की **स्पृहा** करता है ।[6] अन्त मे नायक भु० शे० के पुनः दर्शन से हर्ष निर्भरा मञ्जरी के मुख से चन्द्रज्योत्स्ना जैसा मन्द हास[7] **प्रहर्ष** नामक नाट्यालकार का भेद है ।

भाण्यग

प्रस्तुत भाण में केवल **समर्पण** नामक भाण्यंग उस स्थल पर मिलता है जब अन्यासक्त भु० शे० से व्यग्य मे उपालंभ देती हुई मल्लिका कहती है कि पैरो में पड़े हुये भी उत्पतन शील कन्दुक और कापुरुष को कौन नहीं ताडित करेगी ।[8]

शिल्पकांग

मुकुन्दानन्द भाण में शिल्पकागो की सख्या पर्याप्त है । भाण के आरम्भ में विवशता मे पतिगृह ले जाई जाती हुई मञ्जरी की दुर्लभ प्राप्ति के प्रति आशावान् भु० शे० विविध प्रकार से उसकी प्राप्ति की **आशंसा** करता है ।[9] मञ्जरी के विरह मे भु० शे० की तथा कमलिनी के वियोग में कलहसक की विरह वेदना ही **ताप** है ।[10] ताप से ही मिलता-जुलता **उद्वेग** भी है जिसका अनुभव भु० शे० तथा कलहसक करते हैं । नायक भु० शे० का अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिये उद्योग

१. श्लोक १४४-१४५ ।
२. श्लोक १८० ।
३. श्लोक २०७ ।
४. पृ० ६०-६५ ।
५. पृ० ६७ ।
६. श्लोक २२८ ।
७. श्लोक २३५ ।
८. श्लोक १४९ ।
९. श्लोक १८-२० ।
१०. पृ० ५-८ तथा ४९-५६ तक ।

(ज्योतिषी वीतिहोत्र द्वारा मञ्जरी की यात्रा में, विघ्न डाल देना, जटावती द्वारा पिता की अनुपस्थिति मे दोनो का सयोग करा देना आदि) ही **प्रयत्न** है। भु० शे० तथा कलहंसक का अपनी प्रेयसियों के विरह में दुखी होना ही **विलाप** है।[1] भाण के आरम्भ मे मञ्जरी के वियोग में पीड़ित भु० शे० का तथा कलवाणी के कमलापीड द्वारा मारे जाने की आशंका से वसन्तक का अश्रु विमोचन **वाष्प** है।[2] वियोगी कलहंसक को मयूरक द्वारा धैर्य बंधाना[3] तथा वीतिहोत्र द्वारा भु० शे० को सान्त्वना देना[4] **आश्वास** है। जटावती द्वारा मञ्जरी के लौट आने की बात सुनकर भु० शे० को आनन्दागम ही **प्राप्ति** है।[5]

लास्यांग

कांचनलता से मनोविनोद करता हुआ विट उसके पुँभाव को प्राप्त होकर रतिसुख देने की बात कहता है। अतः **पुष्पगण्डिका** नामक लास्याग है।[6] लवगिका और कनकांगी के वार्तालाप मे विट को सुनाते हुये कनकांगी का लवंगिका को डाटना हाव, हेला तथा प्रसाद से युक्त होने से **उत्तमोत्तमक** माना जायेगा।[7] सौदामिनी वियुक्त मयूरक तथा भु० शे० का आरम्भिक वार्तालाप जिसमे करांकगता सौदामिनी के चले जाने की बात मयूरक कहता है तथा भु० शे० प्रथम तो सव्यंग्य वचनों द्वारा उसका परिहास करता है पर अन्त मे उसे सान्त्वना देता है। यह प्रसंग **उक्तप्रत्युक्त** नामक लास्यांग है।[8] वेशवाट के प्रसग मे विट को अन्यासक्त जानकर चन्द्रिका दुखी होकर व्यग्य करती है।[9] अतः प्रेमच्छेद प्रगटन के कारण यह **प्रच्छेदक** है। यही प्रसंग आगे चलकर चन्द्रिका द्वारा उपालभ युक्त साधिक्षेप कथन करने से **उत्तमोत्तमक** है।[10] इसी प्रसंग में पैरों पर पड़ते हुये भी कन्दुक को ताडित करती हुई मल्लिका से जब विट ऐसा न करन को कहता है तो वह कहती है कि पैरों पर पड़े हुये भी पुनः उत्पतन शील, कापुरुष जैसे कन्दुक को क्यो न ताडित किया जाय। स्पष्ट ही यह सकेत विट की अन्य नायिका के प्रति आसक्ति का द्योतक होने से

---

१. श्लोक २४-२६ तथा १९६।
२. पृ० ७ तथा १३।
३. पृ० ५६।
४. पृ० ५९।
५. पृ० ६७।
६. श्लोक १०७।
७. पृ० ३४।
८. पृ० ३५-३६ (श्लोक १२५-१२९)।
९. श्लोक १४३।
१०. पृ० ४०।

प्रच्छेदक के अन्तर्गत आता है।[1] वेशवाट में ही तारा को देखकर विट उससे पूछता है कि कभी मु० शे० को स्मरण करती हो। इस पर तारा कोप, प्रसाद एवं अधिक्षेप युक्त वचनों से उसे उपालंभ देती है।[2] अतः यह **उक्तप्रत्युक्त** है। मु० शे० में अनुरक्ता मञ्जरी जब पतिगृह ले जाई जाती है तो जाते समय वह केतकी दल पर एक पत्रिका लिखकर देती है जिसमें अपनी विवशता दिखाते हुये कहा है कि मेरा पति मेरे शरीर को भले ही ले जाये किन्तु तुम में आसक्त मेरे आत्मा को कैसे ले जा सकता है। प्राकृत में मदन ताप प्रकट होने के कारण यह प्रसग **स्थित पाठ्य** है।[3] भाण की समाप्ति पर मञ्जरी की यात्रा में विघ्न का शुभ समाचार लेकर आई हुई जटावती मु० शे०, मयूरक आदि का उक्ति प्रत्युक्ति पूर्ण वार्तालाप **उक्त प्रत्युक्त** है।[4] अन्त मे भागती हुई मरालिका आती है और वियोग विधुरा मञ्जरी की कामदशा का वर्णन करती है। प्राकृत में पढ़ा हुआ यह श्लोक **स्थित पाठ्य** नामक लास्यांग है।[5]

पात्र

आलोच्य भाण का नायक मु० शे० धीरललित प्रकृति का है। मञ्जरी के प्रति वह आसक्त है। इसके साथ ही वेशवाट के प्रसङ्ग में चन्द्रिका, तारा, मल्लिका आदि के प्रति भी उसकी आसक्ति का वर्णन किया गया है। किन्तु मञ्जरी के प्रति प्रेम में उसकी इन गणिकाओं के प्रति आसक्ति न तो कभी बाधक बनी है और न मञ्जरी के लिये ईर्ष्या का विषय। वस्तुतः मु० शे० का वास्तविक शुद्ध अनुराग तो मञ्जरी के प्रति है। अथवा यो कह सकते हैं कि इन पूर्व प्रेमिकाओ के प्रति सहृदय होते हुये भी मञ्जरी के प्रति उत्कृष्ट प्रेमवान् है। अतः मु० शे० एक दक्षिण नायक है। इसमे विलास तथा ललित सात्विक गुण है।

नायक मु० शे० के सहायक मयूरक तथा कलहंसक अनुनायक हैं।[6] मयूरक

१. श्लोक १४८-१४९।

२. श्लोक १६७।

३. श्लोक २०३, २०४।

४. पृ० ६६।

५. श्लोक २३०।

६. वस्तुतः मयूरक और कलहंसक को पताकानायक नही बल्कि अनुनायक कहना चाहिए, क्योंकि नायक के हित साधन में सहायता करते हुये इन्हें अपनी स्वार्थ सिद्धि भी हो जाती है। जैसा कि भगवती जटावती के आशीर्वाद से संकेत मिलता है—अवश्य ही अपनी प्रेयसियों से इनका पुनर्मिलन हो गया होगा। अतः स्वार्थसिद्धि होने से इन्हें अनुनायक कहना चाहिये। विश्वनाथ के **पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीय फलान्तरम्** के अनुसार पताकानायक का तो कोई स्वकीय हित साधन होना ही नहीं चाहिये। इन दोनों पात्रो को यहाँ अपनी-अपनी प्रेयसी की प्राप्ति होने से ये पताका नायक नहीं हो सकते। इसी से इन्हें अनुनायक माना गया है।

की नायिका सौदामिनी है तथा कलहंसक की कमलिनी। वसन्तक प्रकरी नायक है और नायक का प्रत्यक्ष सहायक न होता हुआ भी कथानक को आगे बढ़ाने में, उसमें वैचित्र्य लाने में अद्‌भुत योग देता है। ज्योतिषी वीतिहोत्र, पौराणिक मुद्‌गल भट्ट आदि पात्र नायक की लक्ष्य सिद्धि में सहायक हैं।

भाण की नायिका मञ्जरी है। वह माधव की पत्नी होकर भी मु० शे० नायक से प्रेम करती है। अतः वह परोढा मध्या नायिका है। अवस्था की दृष्टि से यह विरहोत्कंठिता है। रगपुरी में भगवान् श्री रंग के चैत्रोत्सव के चैदर्शनार्थं आये हुये मु० शे० को जब से वह देखती है तभी से अनुरक्त हो जाती है। सामाजिक बन्धनों के कारण वह उससे मिल नही पाती है और इसी समय अपने पति के साथ उसे नवीननगर आना पड़ता है। वह यह नही जानती कि मु० शे० भी यहाँ चला आया है। अत्यन्त मदनपीडिता होने पर जटावती उसके प्रेमी से सयोग कराने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार मञ्जरी के लिये मु० शे० प्रोषित ही रहा है। नायिका में शोभा,[1] हाव,[2] हेला,[3] विहृत,[4] तथा कान्ति[5] योषिदलङ्कार मिलते है।

मयूरक की प्रेयसी सौदामिनी अनुनायिका है। यह भी कादम्बिनी की स्नुषा होने से परकीया के ऊढाभेद के अन्तर्गत मध्या है। इसमे शोभा,[6] बिब्बोक[7] तथा हेला[8] योषिदङ्कार है। कलहंसक की प्रेयसी कमलिनी भी अनुनायिका है तथा प्रभाकर की पत्नी होने से यह परकीया के ऊढाभेद के अन्तर्गत प्रगल्भा नायिका है।[9] कमलिनी मे दीप्ति[10] तथा कुट्टमित[11] योषिदलङ्कार है।

केशवाटिका के प्रसङ्ग मे लीलावती, कांचनलता, चन्द्रमुखी, कनकांगी[12], चन्द्रिका, मल्लिका, तारा आदि गणिकाओं के रूप सौन्दर्य, स्वभाव तथा विट के प्रति उनके प्रेम व्यवहार की चर्चा है। इसके अतिरिक्त भगवती जटावती तथा मरालिका ऐसे स्त्री पात्र है जो कार्यसिद्धि मे विशेष साधक है।

रस तथा वृत्ति

आलोच्य भाण में अङ्गीरस शृङ्गार है। नायक नायिका तथा अनुनायक अनुनायिका इस अङ्गी रस के परस्पर आलम्बन हैं। इनका रूप, यौवन, रतिकालिक निधुवनवचन, निष्कुटवन, मन्दाराराम, एकान्तस्थान, वसन्त ऋतु आदि उद्दीपन, वलितग्रीवगमन, साभिविलोकन अनुभाव तथा लज्जा, औत्सुक्य तर्क, शङ्का, तथा

---

१. पृ० ६१
२. पृ० ६२
३. पृ० ६३
४. श्लो० २४०
५. श्लो० २३९–२४२
६. श्लो० १२७
७. पृ० ५६
८. श्लो० १३१
९. श्लो० १८९
१०. पृ० ५३–५४
११. श्लो० १८७
१२. श्लो० ११५–१२० (विच्छिति नामक योषिदलङ्कार का बहुत सुन्दर प्रयोग)।

अवहित्था आदि **संचारी** भाव है। इनके सयोग से शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति होती है। इसके अतिरिक्त अङ्ग रूप में भयानक तथा हास्य रस भी भाण मे मिलते है। भयानक रस का आलम्बन कमलापीड है तथा निजकलत्रवृत्त परिशोधनार्थ उसका आंगन मे छिप जाना, कमलिनी के पास से कलहंसक को जाते हुए देख लेना **उद्दीपन** है। कलहसक इस रस का **आश्रय** है एवं भय के कारण उसका सत्रास गद्‌गद होना, कांपना आदि **अनुभाव** तथा त्रास, शङ्का आदि सचारी भाव है। कलहंसक द्वारा कमलिनी के घर जाना, वहाँ स्नान गृह मे छिप जाना, कमलिनी के देवर का वहाँ धूर्मवर्ति (हुक्का या बीडी) जलाने आना, कलहंसक द्वारा डरकर उस आग पर पानी का घड़ा लुढ़का देना, उसे विडाल द्वारा गिराया हुआ जानकर देवर का उसे डांट-डपट करते हुये स्नान गृह की साकल लगाकर चला जाना आदि प्रसङ्ग हास्य रस का आलम्बन है। पानी का घड़ा गिरने से उठी हुई राख से मुँह, नाक, दाढ़ी, मूँछ आदि का भर जाना, देवर का उस राख को पौछते हुये विडाल को गाली देना, डण्डा लेकर उसे मारना, स्नानगृह की साकल लग जाने से कलहसक का अपनी मूर्खता पर पछताना आदि उद्दीपन हैं तथा शङ्का एव चिन्ता स्वतन्त्र भाव है।

कैशिकी वृत्ति

मुद्‌गल भट्ट के साथ वार्तालाप मे[1], वेशवाट के प्रसङ्ग में लीलावती के साथ की गई सूर्य की अठखेलियों मे[2] **नर्म का सम्भोग श्रंगार भेद है**। इसके अतिरिक्त लीलावती,[3] काचनलता,[4] चन्द्रमुखी,[5] चन्द्रिका,[6] मल्लिका[7] आदि वेश सुन्दरियों के प्रेमालाप एव सौन्दर्य वर्णन प्रसङ्ग में भी नर्म का यही भेद है। कलहंसक का रात्रि में पूर्व संकेतित स्नानगृह में छिप जाना, कमलिनी के देवर का वहाँ धूमवर्ति भरने आना, आग जलने से उसके प्रकाश में पकडे जाने के भय से कलहंसक द्वारा लुढ़काये गये घड़े को विडाल द्वारा गिराया गया जानकर कमरे की साकल लगाकर चला जाना आदि घटनाक्रम में कलहंसक द्वारा छिपकर चोरी-चोरी अपनी प्रेयसी से मिलने का प्रयत्न होने **से नर्मगर्म** है। इसके अनन्तर दोनों प्रेमियों (कलहंसक तथा कमलिनी) का पुरोद्यान में मिलन और विहार नर्म शृङ्गार का **सम्भोग नामक भेद है। मञ्जरी का विवर्तितवदना**[8] होकर सामिविलोकन[9] के द्वारा मु० शे० के प्रति अनुराग **प्रदर्शन नर्मस्फोट है**। मु० शे० द्वारा मञ्जरी की प्रथम प्राप्ति का अवसर—जब वह मञ्जरी के समागम सुख को प्राप्त करने ही वाला था कि उसका पति जग गया और वह वहाँ से भाग गयी—नर्मस्फिज नामक कैशिकी वृत्ति के भेद के अन्तर्गत आता है।[10]

---

१. श्लो० ७४-७६।
२. श्लो० ९०।
३. श्लो० ९२, ९६, ९८।
४. श्लो० १०१, १०२।
५. श्लो० १०९-१११।
६. श्लो० १४४-१४५।
७. श्लो० १४७।
८. पृ० ६२
९. श्लो० २१३, २१४
१०. श्लो० २२१।

भारती वृत्ति

कैशिकी वृत्ति के इन भेदो के अतिरिक्त भाण मे वाग्व्यापार प्रधान भारती वृत्ति का भी बहुलतया प्रयोग हुआ है। सक्षेप मे उसके अङ्गो का विवेचन इस प्रकार है।

वीथ्यंग

आरम्भ मे कमलापीड से डरे हुए मित्र वसन्तक को अभयदान देने के प्रसङ्ग मे मु० शे० अत्यधिक शेखी मारता हुआ कहता है कि 'सैकड़ों सहस्रो तथा लाखो कमलापीड भी हो तो क्या ? ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी मेरे मित्र का कुछ नही बिगाड़ सकते—असद्भूत आत्मस्तुति होने से **प्रपञ्च** नामक वीथ्यंग है।[1] क्रुद्ध कमलापीड के भय से बात बनाकर कलवाणी के बच निकलने की बात कलकंठ बड़े कौशल से कहता है। कमलापीड द्वारा कलवाणी की हत्या की आशङ्का से वसन्तक दुखी होकर कहता है कि मेरी प्रिया की रक्षा किसी ने नहीं की होगी। कलकंठ कहता है कि अवश्य ही उसकी रक्षा किसी ने नही की। इस उत्तर से दुःखी वसन्तक कलवाणी की याद करके रोने लगता है—तभी कलकंठ अपने वाक्य को पूरा करता हुआ कहता है कि उसका अभिप्राय यह है कि अपने बुद्धि कौशल के अतिरिक्त अन्य किसी ने उसकी रक्षा नही की।[2] इस प्रकार वसन्तक की प्रस्तुत बात से भिन्न होने के कारण कलकंठ का यह कथन **गण्ड** है। मु० शे० और मयूरक के वार्तालाप में कराकगताप्रिया सौदामिनी के चले जाने पर दुखी मयूरक को समझाते हुये मु० शे० कहता है—'कठिन हृदय: कामम्, मयूरक इसका सीधा अर्थ लगा लेता है कि मै कठिन हृदय हूँ जो कि प्रिया के चले जाने पर भी जीवित हूँ। इस पर अपनी बात का पूरा आशय बताते हुए मु० शे० कहता है कि तुम तो अन्यथा समझ गये। मेरी पूरी बात तो सुनो। मैं तुम्हें कठिन हृदय नहीं बता रहा हूँ। बल्कि मेरा अभिप्राय है कि कामदेव अत्यन्त कठिन हृदय है फिर तुम्हारी कुशल कैसे सम्भव है। (कठिन हृदय. कामः कथं कुशलं तव)[3] इस प्रकार प्रस्तुत से भिन्न अर्थ द्वारा मयूरक के बजाय कामदेव को कठिन हृदय कहने मे यह भी **गण्ड** है। साथ ही अपनी कही हुई बात की कौशल पूर्वक दूसरी व्याख्या कर देने से यह प्रसङ्ग **अवस्यन्दित** भी हो सकता है।

---

१ पृ० १० (सखे मा भैषीः, तिष्ठतु कमलापीडानां शतं सहस्रमयुत वा)।

२. वसन्तक—केनापि न रक्षिता निज वल्लभा कमलापीडेन व्यापाद्यमाना
कलकंठ—अथ किं, केनापि न रक्षिता सा।

मु० शे०—अरे, किं ब्रवीषि—**एवमिदम्**। एष मम वचनं समग्रं न शृणोति। समग्रमेव तावत्कथय।

कलकंठ—श्रूयतां तावत्। एतत्कथ्यते न केनापि रक्षिता सात्मनो बुद्धिमन्तरेण। (पृ० १३)

३. पृ० ३६।

कन्दुक क्रीडा करती हुई मल्लिका से भु० शे० कहता है—हे पयोजाक्षि, अनेक बार तुम्हारे चरणों में पड़ने वाले इस कन्दुक को क्यो ताडित कर रही हो। इस पर मल्लिका कहती है—पैरो पर पड़ने पर भी बाद मे उच्छृंखलता करने वाले कन्दुक और कापुरुष को हाथ मे आने पर कौन नही ताडित करती।[1] इस प्रश्नोत्तर मे उच्छृंखल नायक को दंडित करने का अर्थ गूढ होने से **उद्घात्यक** है। अथवा यह पूरा प्रसङ्ग **अवस्यन्दित** भी हो सकता है। मयूरक, मल्लिका एवं भु० शे० के वार्तालाप[2] मे सुन्दर मुहावरो के प्रयोग द्वारा गणिकाओ मे लज्जा का अभाव एव उनके नीच कर्म की व्यञ्जना होने से यह भी उद्घात्यक है। कन्दुक क्रीड़ा करती हुई मल्लिका को देखकर भु० शे० मयूरक से कहता है कि गुणी एवं सुवृत्त (१—आचारवान् २—गोल) कन्दुक को तन्वी द्वारा ताडित होता हुआ देखकर (दुखी होने के बजाय) उसका कुचभार प्रसन्न होकर नृत्य कर रहा है। इस पर मयूरक कहता है—ठीक तो है, कठोर व्यक्तियो को दया कहाँ?[3] (कुच कठोर जो ठहरे!) यहाँ भु० शे० की बात को कौशलपूर्वक अन्य शृंगारिक रूप दे देने से यह **अवस्यन्दित** नामक वीथ्यंग है।

प्रहसनांग

वीथ्यंगो के अतिरिक्त भारतीवृत्ति के भेद प्रहसन के भी अनेक अङ्ग प्रस्तुत भाण में मिलते हैं। कमलापीड से भयभीत वसन्तक को अभयदान देने के प्रसङ्ग में भु० शे० की आत्मख्या **अनृत** है।[4] मुद्गल भट्ट पौराणिक होते हुए भी अपने उस धार्मिक आचार को छोड़कर बालविधवाओ, गुर्जर निर्जरदास की गृहिणी एवं अन्य चोलागनाओं के साथ गूढरतिक्रीडायें—किया करता है।[5] अतः आत्मगृहीत आचार का परित्याग होने से यह **अवलगित** है। कलहंसक द्वारा अपनी प्रिया कमलिनी के साथ गूढ़समागम की घटना का वर्णन, कलहंसक का स्नान गृह मे छिपना, कमलिनी से देवर द्वारा धूमवर्ति (हुक्का, या बीड़ी) जलाने आना, कलहंसक द्वारा डरकर पानी का घड़ा लुढका देना, आदि[6] हास्य जनक संवाद होने से **व्यवहार** नामक प्रहसनांग है।

---

१. पतन्नपि पयोजाक्षि पादमूले तवासकृत्
कन्दुकः करलग्नोऽयमिति संतायड्ते कथम्। (श्लो० १४८)
किं ब्रवीषि ··················
पतितमपि पादभूले पश्चादुत्पतनशीलमविलम्बम्
कन्दुकमपि कापुरुषं करतललग्नं न ताडयेत् का वा (श्लो० १४९)

२. पृ० ४२।

३. भु० शे०—गुणिनमपि सुवृत्तं कन्दुकमालोक्य ताडितं तन्व्या परिनृत्यति कुचभारः······················
मयूरक—कर्कशवृत्तस्य कुत्र कारुण्यम्।

४. जिष्णुर्वा विष्णुर्वा स्रष्टालिकदृष्टिरष्टमूर्तिर्वा।
स्प्रष्टुं वा प्रष्टुं वा मत्सखमीष्टेऽपि नान्ततो द्रष्टुम् (श्लो० ३६)

५. पृ० २३-२५।

६. पृ० ५१-५४।

कैशिकी तथा भारती वृत्ति के इन अंगों के अतिरिक्त आरभटी वृत्ति का अवपात नामक अंग भी इस भाण के मध्य में[1] उस समय मिलता है जब उत्पात मचाता हुआ पुरवासियो को भयातुर करता हुआ बन्दर प्रासाद पर चढ़ रहा है।

प्रवृत्ति

प्राकृत का अत्यधिक प्रयोग इस भाण की अपनी विशेषता है। आरम्भ में प्रस्तावना मे नटी महाराष्ट्री प्राकृत बोलती है। कलकंठक का गद्य का अंश शौरसेनी प्राकृत एव पद्य का अश महाराष्ट्री प्राकृत मे है। मरालिका तथा मञ्जरी महाराष्ट्री एव शौरसेनी मिश्रित प्राकृत बोलती है, लवगिका केवल शोरसेनी। इस प्रकार नाटकों की ही भाति इस भाण मे निम्न वर्ग के पात्र नटी, उद्यानपालिका, मरालिका, सेवक कलकठ आदि प्राकृत बोलते है तथा उच्चवर्ग के पात्र भगवती जटावती मयूरक, कलहसक, वसन्तक, ज्योतिषी वीतिहोत्र आदि सस्कृत। नायक भु० शे० संस्कृत बोलता है तथा नायिका मञ्जरी प्राकृत।

मुकुन्दानन्द भाण में मुद्गल भट्ट तथा भु० शे० के वार्तालाप[2] में देश के भिन्न-भिन्न भागों के स्थानीय वेश, भूषा, तथा आचार पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। गुर्जरी स्त्रियाँ अपने वक्ष:स्थल को वस्त्रों से ढके रहती हैं तथा कच्छा नही बाँधती इसके विपरीत द्रविड़ अगनाये अपने वक्ष:स्थल को निरावृत रखती है और कच्छा बाँधती है।

भाण का काव्य सम्बन्धी विवेचन

आलोच्य भाण मे आविद्ध, चूर्णक तथा उत्कलिका, प्राय: तीनों ही प्रकार की गद्य शैलियो का प्रयोग है। सामान्यतया सवादो एव प्रसङ्गों में समासरहित आविद्ध शैली का प्रयोग मिलता है।[3] भाण का अधिकांश भाग इसी शैली में है। अल्पसमासप्रधान चूर्णक शैली का प्रयोग प्रकृति वर्णन में, वेशवाटिका पुरोहित वराह भट्ट का चित्र उपस्थित करने मे, पुरोद्यान, श्रीरग, आदि के वर्णन प्रसङ्गों मे किया गया है।[4] लम्बे-लम्बे समासों वाली उत्कलिका शैली का प्रयोग बहुत कम है। वेशवाट का स्वरूप उपस्थित करने मे[5] तथा कमलिनी के सौन्दर्य वर्णन मे[6] इस शैली की थोड़ी झलक मिल जाती है। इस प्रकार मुख्य रूप से आविद्ध एव चूर्णक ये दो गद्य शैलियाँ ही प्रस्तुत भाण मे अधिकतर मिलती हैं।

---

१. पृ० ४३।
२. पृ० २४, २५।
३. पृ० ७-१७, २०-३३, ३५-५०, ५६-५९, ६३-७४।
४. पृ० १८, २५, ३४, ४७, ४८, ५१, ६०।
५. पृ० २५।
६ पृ० ५३।

जहाँ तक रीति का प्रश्न है—इस भाण मे माधुर्य व्यञ्जक वर्णो द्वारा प्रधानतया वैदर्भी रीति का ही आश्रय लिया गया है । किन्तु बीच-बीच में कहीं-कही ओज: प्रधान वर्णनों मे कठोर वर्णो वाली गौडी रीति को भी अपनाया है । कमलापीड से डरे वसन्तक को अभयदान देने मे भु० शे० की गर्वोक्ति[१], शाखाभृग द्वारा समस्त वातावरण को क्षुब्ध करते हुये प्रासादाधिरोहण का प्रसङ्ग[२], ग्रीष्म की उग्रता आदि प्रसङ्ग गौडी शैली मे वर्णित है ।

भाण मे माधुर्य तथा-प्रसाद गुण के आधार पर वैदर्भी तथा ओज; गुण के आधार पर गौडी रीति पाई जाती है । इस प्रकार माधुर्य प्रसाद एव ओज तीनो ही गुण मिलते है ।

अलंकार

भाण में गद्य तथा पद्य दोनो मे अलकारों का प्रयोग है । परन्तु गद्य भाग की अपेक्षा पद्यों में प्रयुक्त अलकार अत्यन्त कम तथा चमत्कार रहित है । यह एक विचित्र बात है कि भाण के २६० श्लोकों मे लगभग ८,१० श्लोको मे ही अलकारो का प्रयोग हुआ है । भाण मे प्राय: उपमा[३], उत्प्रेक्षा,[४] रूपक[५], अर्थान्तरन्यास[६] तथा अनुप्रास[७] का ही प्रयोग हुआ है । इनमे भी उपमा तथा उत्प्रेक्षा अत्यन्त सामान्य तथा चमत्कारहीन है । रूपक और अर्थान्तरन्यास भी लगभग ऐसे ही है । अनुप्रास का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक चमत्कारपूर्ण है । पद्यों की अपेक्षा गद्य भागों मे प्रयुक्त अलकारों मे अधिक चमत्कार एव सौन्दर्य है । गद्य भाग में श्लिष्टोपमा[८] उत्प्रेक्षा[९] तथा विरोधाभास[१०] ये तीन अलकार प्रयुक्त हुये है ।

विशेष

मुकुन्दानन्द भाण की शैली एव अलकारो के इस प्रसग मे यह उल्लेखनीय है कि गद्य भाग के वर्णन मे कवि काशीपति बाण से पभावित हुआ लगता है । भाण में बाण जैसे लम्बे-लम्बे समास और वर्णन तो नहीं हैं, परन्तु शैली सर्वथा बाण जैसी

---

१. श्लोक ३६ ।
२. श्लोक १५४-१५६ ।
३. श्लोक २९, ११९, २३४, २३५ ।
४. श्लोक ३५, १५७, १५८ ।
५. श्लोक १३५ ।
६. श्लोक १५२ ।
७. श्लोक ११७ ।
८. पृ० २६, ५३, ५४, ६३ ।
९. पृ० ४८, ५१ ।
१०. पृ० ५४ ।

है। वेशवाट, कमलिनी का रूपवर्णन, स्नानगृह, वनराजि आदि सर्वत्र बाण जैसी ही शब्दावली, वैसी ही कल्पनाये—यहाँ तक कि श्लिष्टोपमा, विरोधाभास आदि अलकारों का प्रयोग भी बाणभट्ट के अनुकरण पर किया गया है।

इस भाण मे काव्य सम्बन्धी परम्परागत वर्णनो के अतिरिक्त कुछ नई सूझ एवं नई कल्पनायें भी हैं। प्रियावियुक्त मु० शे० के लिये जब कामदेव अशोक, पद्म, उत्पल, चूत एव मल्लिका ये पॉच बाण तैयार करता है तो इनका मुकाबला करने के लिये मु० शे० प्रिया के कर, आस्य, नेत्र, अधर एवं हास ये पॉच बाण तैयार कर लेता है।[1] मु० शे० के ये पॉच बाण कामदेव के पॉचो बाणो जैसे ही है। भाण की समाप्ति पर चन्द्रोदय के वर्णन मे भी इसी प्रकार नयी कल्पनाये मिलती है। कालरूपी भुजगम ने ससार को डस लिया। अन्धकार के रूप में यह उसी भुजगम का विष है। ब्रह्मा ने समस्त ससार का यह अन्धकार रूप विष चन्द्रमा को पिला दिया जो काले धब्बे में रूप मे उसमे अब भी स्थित है। यह विष मिलाकर ब्रह्मा ने चन्द्रमा को ज्योत्स्नामय पयस् (पानी) मे धकेल दिया।[2] लोक मे भी विष पीकर पानी मे कूद पडने पर उसका प्रभाव कम हो जाता है। एक अन्य कल्पना के अनुसार भगवान् शिव के मस्तक पर चिरकाल तक रहने के कारण चन्द्रमा ने अग्निमय तृतीय नेत्र से दाहशक्ति ग्रहण कर ली है। तभी तो वह वियोगियो को जलाया करता है।[3] इसी प्रकार चन्द्रोदय होने पर समुद्र ऊर्मिरूपी हाथो से छाती पीट-पीट कर रोता हुआ कहता है कि वियोगियों को मारने के लिये तू मेरे जठर मे क्यो उत्पन्न हुआ।[4]

मिश्रभाण

मुकुन्दानन्द भाण की प्रस्तावना से विदित होता है कि यह एक मिश्रभाण है। प्रस्तावना मे यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि मिश्रभाण होने से इसमें क्या विशेष बात है। भाण के अध्ययन से विदित होता है कि इसमे जहाँ एक ओर नायक मु० शे० तथा नायिका मञ्जरी के प्रेम, विरह तथा सयोग की कहानी है वहाँ दूसरी ओर यह कहानी भगवान् श्रीकृष्ण एव राधा के चिरन्तन प्रेम तथा वियोग वर्णन के प्रति समासोक्ति के रूप में सकेत भी है। इसीलिये मु० शे० को बीच-बीच में मुकुन्द, कृष्ण मुरलीवल्लभ आदि नामों से अभिहित किया गया है तथा मञ्जरी को राधा। विट की अनेक पूर्व प्रेयसी गणिकाये मञ्जरी रूपा राधा की सखियों के रूप मे सकेतित है।

---

१. श्लोक २५।
२. श्लोक २४८।
३. श्लोक २५२।
४. श्लोक २५४।

भाण का मुकुन्दानन्द यह नाम भी मुकुन्द अर्थात् श्रीकृष्ण के आनन्द विहार का द्योतक होने से सार्थक है ।

रस पाक

मुकुन्दानन्द भाण में आरम्भ से सरसता तथा आकर्षण है । ज्यों-ज्यों कहानी आगे बढती है उसके इन गुणों मे वृद्धि होती जाती है । वसन्तक, मयूरक तथा कलहंसक की साहसपूर्ण प्रणय घटनायें, विविध वारवनिताओ के साथ विट की चुहलबाजी, भु० शे० द्वारा रगनाथपुरी में मञ्जरी के प्रथम दर्शन से लेकर अब तक की घटना सुनाना, वीतिहोत्र की सहायता से मञ्जरी की विदा में विघ्न पड़ना, भगवती जटावती तथा मरालिका के प्रयत्न से मञ्जरी की प्राप्ति आदि घटनाये उत्तरोत्तर सरस एव आकर्षक है । अत: आदि, मध्य और अन्त सर्वत्र अगूर की भाँति स्वादुयुक्त होने से इस भाण मे **मृद्धीकापाक** है ।

इस प्रकार मुकुन्दानन्द सघर्षप्रधान भाणों मे कथानक एव रचना की दृष्टि से सर्वोत्तम भाण माना जा सकता है ।

पद्मप्राभृतक भाण

पद्मप्राभृतक भाण के रचनाकार कवि शूद्रक है। यह संघर्ष प्रधान वर्ग का है। इसका समय ईसापूर्व लगभग प्रथम या द्वितीय शताब्दी है। इसमे कर्णीसुत मूलदेव तथा देवसेना के प्रणय की कहानी है। यह एक लघु आकार का भाण है जिसमे ४४ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्री पात्र		पुरुष पात्र	
देवसेना—नायिका		कर्णीसुत मूलदेव	नायक
देवदत्ता नायिका की बड़ी बहन (कर्णीसुत की पूर्व प्रेयसी)		शश	नायक का सहायक, विट
रशनावतिका—वैयाकरण दत्तकलशि की प्रेयसी		सारस्वतभद्र	कवि
वारुणिका पवित्रक की प्रेयसी		विपुलामात्य	विपुला का संरक्षक
वनराजिका, ताम्बूलसेना, प्रियगुयष्टिका, शोणदासी	अन्य वारवनितायें	दत्तकलशि	वैयाकरण
		पवित्रक	वारुणिका का प्रेमी
प्रियवादिनिका—देवसेना की परिचारिका		मृदंगवासुलक, शैविलक, संधिलक	रसिकजन
		पुष्पांजलिक	देवदत्ता क परिचारक

नान्दी

यह भाण 'नान्यते ततः प्रविशति सूत्रधारः' इस वाक्य से आरम्भ होता है। किन्तु सूत्रधार प्रविष्ट होकर जिन पाँच श्लोकों को पढता है उनमे प्रथम भगवान् शिव के प्रति नमस्क्रिया रूप होने से नान्दी के अन्तर्गत ही माना जायेगा। श्लोक पाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह चतुष्पदा नान्दी है। नमस्कारात्मक होने से यह शुद्धा नान्दी है। नान्दी के पद्य का आरम्भ नगण से होने के कारण यह नायक को आयु देने वाला है तथा प्रथम अक्षर 'ज' नायक के लिए मित्रलाभ का द्योतक है। इस प्रकार गणतः एवं लिपितः दोनों ही दृष्टि से नान्दी शुद्धा है। इसमें विट शश द्वारा नायक मूलदेव के लिये नायिका देवसेना के पास से उसके प्रेम के चिह्नस्वरूप पद्मप्राभृतक (उपहार) लाना ही मुख्य घटना है।

स्थापना

नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार चार पद्यो मे वसन्त का वर्णन करता है। स्थापना के अन्तिम पद्य का आश्रय लेकर तदनुरूप ही वासन्ती तरुणाई का वर्णन करते हुए विट का प्रवेश होने मे यह आमुख के **प्रवृत्तक भेद** के अन्तर्गत आता है।

कथानक

स्थापना के बाद वसन्त का वर्णन करते हुए शश नामक विट रगमच पर आकर कहता है कि वसन्त के इस मादक समय मे देवदत्ता का प्रेमी कर्णीसुत देवसेना (देवदत्ता की बहिन) मे आसक्त है। शास्त्र एवं कलाओ का अभिज्ञ कर्णीसुत भी इस प्रकार मदनपीड़ित हो गया इससे काम की उद्दामता का पता चलता है। कर्णीसुत मूलदेव देवसेनाविषयक कामज्वर से पीड़ित है। विट कहता है कि आज देवदत्ता का परिचारक पुष्पाजलिक प्रातः आया था और उसने कर्णीसुत से देवदत्ता का यह सन्देश कहा कि कल मेरे न आने से आर्य नाराज न हो, बहिन चाण्डालिका (देवसेना) के अस्वस्थ हो जाने से मै नही आ सकी। आज अवश्य आऊँगी। पुष्पाजलिक को विदा करके कर्णीसुत ने मुझसे आग्रह पूर्वक कहा है कि देवदत्ता के यहाँ चले आने पर मै (शश) एकान्त मे देवसेना से मिलकर उसकी वास्तविक स्थिति का पता लगाऊँ और देवसेना से मित्र कर्णीसुत का सयोग कराऊँ। मैंने भी उसकी आज्ञा शिरोधार्य करके उसे आश्वासन दिया है कि मै उन दोनों के मनोरथ को समझता हूँ और अवश्य उसे पूरा करूँगा।

विट शश देवदत्ता के यहाँ चल देता है। मार्ग मे उसे भित्ति पर खडिया से काव्य रचना करता हुआ सारस्वत भद्र मिलता है। उसने वसन्त का वर्णन कर रक्खा है। उसे पढकर और आनन्द लेकर शश सुन्दर शकुन मानकर बढना ही चाहता है कि उसे दर्दुरक दीखता है। उससे बात करके शश और आगे चलता है कि उसकी विपुलामात्य से भेट होती है। कर्णीसुत को विपुला की ओर आकृष्ट न कर सकने के कारण विपुलामात्य कुछ लज्जित सा है। दोनों के वार्तालाप से पता चलता है कि कर्णीसुत मानगर्विता विपुला के पास शश के साथ गया था। किन्तु वहाँ विपुला ने कर्णीसुत का अपमान कर उसे भगा दिया। यह सुनकर विपुलामात्य विपुला को डाँटने चल देता है।

शश को आगे बढने पर साक्षात् विघ्नभूत, दन्दशूक का पुत्र, पाणिनि व्याकरण का पडित, दत्तकलशि मिल जाता है। वह बडा लड़ाकू और गणिका प्रिय है। नूपुरसेना की पुत्री रशनावतिका से इसका प्रेम है। दोनो की बातचीत से पता चलता है कि दत्तकलशि कातन्त्र वैयाकरणों से बहस कर चुका है। शश के साथ भी वह कड़ी भाषा वाली शैली अपनाता है जिसका शश विरोध करता हुआ कहता है कि स्वैरालाप तथा कचहरी के काम में सरल शैली का प्रयोग होना चाहिए। इसके बाद दत्तकलशि शश को अपनी प्रेयसी रशनावतिका के साथ हुई घटना सुनाता हुआ कहता है कि किस प्रकार जब मै हवन करा रहा था कि रिरंसा से पास आई हुई

रशनावतिका को मैने स्पर्श करने से रोक दिया था। इस पर शश उसे अलोकज्ञ कहकर समझाता है कि स्त्री के साथ कठोर वाणी या अपमान भरे वचनों का प्रयोग नही करना चाहिए।

और आगे बढकर शश को शिवालय के पास छिपकर खड़ा हुआ धर्मासनिक का पुत्र पवित्रक मिल जाता है। शश जानता है कि यह मत्तकाशिनी की पुत्री वारुणिका मे आसक्त है। बातचीत के प्रसङ्ग में शश उसकी सब पोलपट्टी खोल देता है। अपना रहस्य खुला जानकर पवित्रक उसका शिष्य बन जाता है। शश उसे ढोंग छोड़कर सुरत करने की सलाह और आशीर्वाद देकर चल देता है।

पवित्रक को विदा करके वसन्त की शोभा देखने मे व्यग्र शश को एक दूसरा दृश्य दिखाई पड़ता है। यहाँ उसे आर्य नागदत्त के घर से निकलता हुआ मृदंगवासुलक मिलता है जिसने खिजाब आदि के द्वारा अपना बुढापा छिपा रक्खा है। इसके अनन्तर द्यूत सभाभवन के खम्भे मे छिपा हुआ शैषिलक दीखता है। हँसी विनोद के बीच पता लगता है कि शैषिलक, मालतिका द्वारा दूती के रूप में भेजी गई भिक्षुणी के रूप पर ही आसक्त हो गया। अनन्तर विट को शाक्यभिक्षु सघिलक दीखता है जो वेश्या के घर से छिपकर भागा जा रहा है। शश उसे रोककर उसकी पोलपट्टी खोल देता है।

आगे चलकर विट को बरान्तवर्ती की पुत्री वनराजिका दीखती है जो अपने को सजाकर प्रिय मिलन हेतु जा रही है। शश उसे टोककर रोकता है। उसकी बासन्ती शोभा का वर्णन करता है। इसके बाद शश को इरिम (कोई विदेशी, संभवतः यूनानी) की प्रेयसी ताम्बूलसेना का घर दीखता है। वह विट का अतिशय आदर करती हुई घर के बाहर ही स्वागत करती है। विट तत्काल समझ लेता है कि घर के भीतर इरिम के होने से यह मेरा बाहर ही स्वागत कर रही है। किन्तु उसके रति चिह्नों को देखकर उसकी पोलपट्टी खोल देता है। इसके बाद विट को देवताओ को बलि देती हुई भाण्डीरसेना की पुत्री कुमुद्वती दीखती है। यह कुमुद्वती वेशवास के विरुद्ध अपने प्रिय मौर्यकुमार चन्द्रोदय—जो प्रवासी है—की प्रतीक्षा मे व्रत करके वियोग के दिन काट रही है। विट आगे बढता है। अब उसे कन्दुक क्रीडा मे व्यस्त पाचाल-दासी की पुत्री प्रियंगुयष्टिका मिलती है। सखियो के साथ उसने बाजी लगा रखी है। उसके १०० गोल करके जीत जाने पर विट उसे बधाई देकर बढता है। अब उसे नागरिका की पुत्री शोणदासी का घर मिलता है। शोणदासी चिन्तित बैठी हुई है। प्रिय के साथ प्रणय कलह हो जाने से यह वियोगिनी बनी मन्द मन्द स्वर से वीणा बजा रही थी। विट ने उससे पूछा तो पता चला कि सखियों के बहकाने पर वह प्रिय से मानकर बैठी और मदन ने मान को परास्त कर दिया है। विट उसके प्रेमी को मानकर दोनों का सयोग करा देने की प्रतिज्ञा कर आगे बढता है। अब विट को नागरिका की पुत्री वेश्या मगध सुन्दरी दीखती है जो सर्व श्रृङ्गार किये हुये किसी सुभग की प्रतीक्षा में बैठी है। विट के पूछने पर वह बताती है कि मैं

वसन्त मे उपवास कर रही हूँ। इस पर विट उसके दन्तक्षतों के प्रति सकेत करता है जिसे वह "बसन्त के तुषार युक्त पवन से ऐसा हो गया है" कहकर टाल देती है। विट उस पर अनेक प्रकार के व्यंग्यो की बौछार करते हुये आगे बढता है।

इस प्रकार वेशवाट पार करके शश देवदत्ता के घर पहुँचता है। देवदत्ता तो मूलदेव के पास चली गई है। देवसेना परिचायिका प्रियवादिनिका के साथ उपवन में एकान्तसेबन कर रही है। वह अत्यन्त कृशाङ्गी तथा परिपाण्डु निष्प्रभा हो गयी है। शश द्वारा बातचीत करने पर वह लज्जावश अपने मन की बात नही बताती है। अन्त में तालपत्र पर लिखी रखी हुई कुमुद्वती-प्रकरण की भूमिका में शूर्पकसक्ता राजदारिका कुमुद्वती को समझाती हुई धात्री की बाते पढ़ने से देवसेना के मनोगत भाव शश समझ लेता है और उसके स्पष्ट न बताने पर भी कर्णीसुत के प्रति उसके अनुराग की बात का पता लगा ही लेता है। अनन्तर शश उसे कर्णीसुत के प्रति उस समय अभिसरण की सलाह देता है जब कि देवदत्ता नृत्य की बारी अदा करने गई हो। चलते समय शश अपने मित्र नायक कर्णीसुत की प्राणरक्षार्थ उससे कोई उपहार माँगता है और देवसेना उसे अपना उपभुक्त पद्म दे देती है। इसके अनन्तर देवसेना को आशीर्वाद देता हुआ शश चला जाता है और भाण समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत भाण का शीर्षक 'पद्म प्राभृतक' इसी घटना के आधार पर दिया गया है। अर्थात् वह भाण जिसमें नायिका की ओर से पद्म का प्राभृत (उपहार) नायक को दिया गया हो।

इस भाण का नायक कर्णीसुत मूलदेव तथा नायिका गणिका देवदत्ता की बहिन देवसेना है। मूलदेव और देवदत्ता दोनो ही ऐतिहासिक व्यक्ति हैं[१]। समस्त भाणो में यही एक ऐसा भाण है जिसके दो पात्र ऐतिहासिक है। देवसेना के साथ मूलदेव का प्रणय प्रसंग इस भाण की अपनी विशेषता है।

सन्धि

देवसेना के प्रति अनुरागवान् नायक मूलदेव द्वारा शश की सहायता से देवसेना का मनोगत भाव, उसके अस्वास्थ्य या विरहपीडा की वास्तविकता का पता लगाना ही इस भाण की मुख्य कथा है। आरम्भ में देवसेना विषयक मूलदेव की विरहावस्था का तथा देवसेना के उन्मादक रूप का वर्णन **बीज**—अर्थप्रकृति है[२] एवं शश द्वारा उत्साहित होकर मूलदेव को धैर्य बँधाना, देवसेना के मनोभाव को विना

---

१. (अ) क० स० सा० १८/५/१२९--२३९।
(ब) का० सू० १/३/१६।
(स) त्रि० शे० को० २/८/२३।
(द) काद० (पूर्वभाग) पृ० ३९ (कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचलाशशोपगता च)।

२. श्लो० ७, ८।

जाने न लौटने की प्रतिज्ञा-औत्सुक्य होने से **आरम्भ** नामक कार्यावस्था हुई।[१] इन दोनों के संयोग से **मुख-सन्धि** बनी जिसमे शश द्वारा देवदत्ता तथा उसकी बहिन देवसेना का परिचय, कर्णीसुत की देवसेना मे आसक्ति, उसकी विरह पीडा, पुष्पा-जलिक द्वारा देवदत्ता का संदेश लाना, मूलदेव द्वारा शश को देवसेना के पास उसके अस्वास्थ्य का वास्तविक कारण जानने को भेजना, विट का वेशवाट मे होते हुये देवसेना के यहाँ जाना आदि घटनाये है। देवसेना के घर पहुँचकर उसे वृक्षवाटिका मे मनोमयव्याधि से पीडिता, कृशा और विवर्णा देखकर विट द्वारा उसके विरहिणी होने का अनुमान लगा लेना[२] **कार्य** अर्थप्रकृति है तथा देवसेना के साथ बातचीत करके उसके मूलदेव विषयक अनुराग का पता लगा लेना और विरही नायक की प्राणरक्षार्थ देवसेना द्वारा उपभुक्त पद्म रूप प्राभृतक लेकर उसे आशीर्वाद देते हुये चल देना **फलागम** है। इस प्रकार कार्य तथा फलागम के समन्वय से यह **निर्वहण** सन्धि हुई जिसमें एकान्त मे बैठी हुई देवसेना से विट का मिलना, देवसेना के हाव-भाव तथा चेष्टाओ से मूलदेव के प्रति उसका अनुराग जानना, मूलदेव की भी तद्विषयक मदन व्यथा कहना तथा पद्मप्राभृतक लेकर लौटने की घटना मुख्य है।

सन्ध्यंग

भाण के आरम्भ मे[३] बसन्त ऋतु एवं बसन्त की वायु के वर्णन प्रसङ्ग मे तिलक वृक्ष पर बैठी कोकिल की नायिका के केशपाश से, कुन्दपुष्प पर स्थित भ्रमर की कटाक्ष से, कुड्मल युक्त पद्मिनी की कन्या के अचिर प्ररूढ बालस्तनो से समता की गई है। यह संकेत इस भाण की लज्जा युक्ता नायिका देवसेना के प्रति है तथा 'इत्थं च मदनशरसतापकर्कशो बलवानयमृतुः' यह कामपीडित नायक कर्णीसुत के प्रति संकेत है। अत' नायक नायिका के स्वरूप एवं अवस्था का बीजरूप में ज्ञापक होने के कारण यह प्रसंग **उपक्षेप** है। इससे आगे के प्रसंग में[४] बताया गया है कि किस प्रकार देवदत्ता के साथ सुरतव्यापार से छका हुआ कर्णीसुत अब उपदंशभूता नवयौवनसम्पन्ना देवसेना से रति चाहता है। अतः उस बीजन्यास की विस्तारपूर्वक व्याख्या होने के कारण यह **परिकर** है। विट द्वारा मदनव्याधि की तीव्रता का वर्णन करते हुये कर्णीपुत्र का देवसेना के रूप, यौवन और लावण्य के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक बताया गया है और अब वह देवसेनाजन्य-मदनव्याधि से आतुर होकर उसके साथ समागम की आशा से किसी प्रकार प्राण धारण कर रहा है। इस प्रकार उपर्युक्त परिकर की बात को ही दृढ़ करने, उसकी निष्पत्ति देने के कारण यह

---

१. पृ० ८।

२. पृ० ५१-५२।

३. श्लो० ६।

४. पृ० ४-५।

परिन्यास है ।[१] देवदत्ता के कर्णीपुत्र के पास चले आने पर कर्णीपुत्र देवसेना की व्याधि का वास्तविक कारण तथा अपने ऊपर उसके प्रेमभाव को जानने के लिये मित्र शश को उसके पास भेजता है । शश कर्णीपुत्र को आश्वासन देता है कि वह अवश्य ही देवसेना का वास्तविक भाव ज्ञात करेगा अतः उद्देश्य पूर्ति के लिये सम्प्रधारण या एक प्रकार का निर्णय ले लेने के कारण यह प्रसग **युक्ति** नामक मुखसन्ध्यग है ।[२]

देवदत्ता के घर पहुँचने पर विट को दर्दुरक मिलता है । उसके हाथ से आचार्य का पत्र पढने पर विट उसे कार्यसिद्धि का साधक शुभ शकुन मानता है । अत· बीज के प्रति संकेत होने से यह प्रसंग **सन्धि** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है[३] । दर्दुरक द्वारा लाये गये कुमुद्वती भूमिका प्रकरण की देवसेना द्वारा उपेक्षा, वृक्षवाटिका मे कृश शरीर एवं पाण्डुवदना होकर एक मात्र परिचारिका के साथ उदास बैठना आदि के द्वारा शश उसकी मनःस्थिति को समझने मे बहुत कुछ सफल होता है । उसका अनुमान सही निकलता है । अत कार्य (देवसेना का कर्णीसुत के प्रति अनुराग) का मार्गण होने से यह **विबोध है** ।[४] अत्यन्त लज्जालु देवसेना के कर्णीसुत मे अनुराग विषयक भाव किसी प्रकार जानकर शश उसे प्रकट करता है । अतः कर्णीसुत विषयक देवसेना के भावों के शश द्वारा उपक्षिप्त (उपसंहृत) करने से यहाँ **ग्रथन है**[५] । देवसेना के कर्णीपुत्र मे अनुराग को सुपात्रगत बताते हुये शश उसे उचित बताता है । विट का यह कथन **निर्णय** है ।[६] भाण के अन्त मे शश, देवसेना तथा परिचारिका प्रियवादिनिका का वार्तालाप मिथ जल्प होने से **परिभाषा** है ।[७] शश द्वारा कर्णीपुत्र और देवसेना का सयोग करा देने का आश्वासन देने पर देवसेना तथा प्रियवादिनिका की प्रसन्नता एवं कर्णीपुत्र मूलदेव के प्रति देवसेना का अनन्य अनुराग जानकर शश की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति **समय** है ।[८] भाण की समाप्ति पर देवसेना का कर्णीपुत्र के प्रति अनुराग प्रकट हो जाने पर विट अपने मित्र के प्राणधारणार्थ देवसेना से उसके द्वारा उपभुक्त कमल मागता है । यह कमल देवसेना के प्रेम का प्रतीक तथा मूलदेव की प्राणरक्षा का साधन है । अत. मूलदेव के अनुराग रूप अर्थ के स्थिरीकरण से यह

---

१. पृ० ६–७ ।
२. पृ० ८
३. पृ० ५०—५१ ।
४. पृ० ५०—५२ ।
५. पृ० ५३–५६ ।
६. पृ० ५७–५८ ।
७. पृ० ५८–५९ ।
८ पृ० ५९ ।

कृति है।[1] अन्त मे विट शश चलते समय देवसेना को आशीर्वाद देता है कि उसका अभिसरण मफल हो और उसमे साक्षात् कामदेव सहायक हो। अत. उत्तम फल प्राप्ति होने से यह उपमहार नामक **निर्वहण** सन्ध्यङ्ग है।

सन्ध्यन्तर

अपने सुरत चिह्नो के प्रकट हो जाने पर ताम्बूलसेना बड़ी चतुराई से उत्तर देती है कि सोकर उठने के कारण यह अस्तव्यस्तता है, अन्यथा शंका का अवकाश नही। इस पर शश ने भी चुभता हुआ सव्यंग्य उत्तर देकर रति-चिह्नो की अगोपनीयता बताई है। इस प्रकार ताम्बूलसेना तथा विट दोनो का उत्तर प्रत्युत्तर **प्रत्युत्पन्नमतित्व** है।[2] इसी प्रकार प्रिय की प्रतीक्षा मे बैठी हुई मगध सुन्दरी की चेष्टाओं एवं भावो पर ज बविट व्यग्य करता है तब वह कहती है कि ऐसा नही, मै ब्रह्मचारिणी हूँ और बसन्त का उपवास कर रही हूँ। इस पर उसके सरस दन्तक्षत के प्रति विट द्वारा सकेत किये जाने पर वह तत्काल बात बनाकर कहती है कि ठन्डी बर्फीली हवा से ओष्ठ पर यह घाव हो गया है, दन्तदात नही है। अत: अवसरोचित हाजिरजबाबी के कारण यह प्रसग भी **प्रत्युत्पन्नमतित्व** का उदाहरण है।[3] देवसेना कर्णीसुत के प्रति अपने मदनभाव को स्पष्ट नही कहती, अत्यन्त लज्जा का भाव दिखाती है। शश उसके पास रखी हुई कुमुद्वती प्रकरण की भूमिका मे शूर्पक मे आसक्त राजकुमारी के प्रेमप्रसंग से तथा अन्य उपायो से किसी प्रकार उसके इस भाव (कर्णीसुत के प्रति आसक्ति) को जान पाता है। इस प्रकार देवसेनाका सलज्ज व्यवहार ह्री है।[4] देवसेना द्वारा वसन्त ऋतु के कारण मन के औत्सुक्य एवं सन्तापयुक्त होने को बात कहकर अपने वास्तविक भाव (कर्णीसुत के प्रति अनुराग) को छिपा लेना **संवरण** नामक सन्ध्यन्तर है।[5],

नाट्यालंकार

देवसेना का मनोभाव जानने के लिये विट की यह प्रतिज्ञा कि बिना उसे

---

१. पृ० ५९।

२. किं ब्रवीशि, सद्यः सुप्तोत्थिताहं किमप्याशंकसे इति'। भवतु संज्ञप्ता' स्मः। नहि ते सूक्ष्ममपि किंचिदग्राह्यं पश्यमि किन्तु—

स्वप्नान्ते नखदन्तविक्षतमिदं शंके शरीरं तव
प्रीयन्ता पितरः स्वधास्तु सुभगे वासोऽपसव्यं हि ते
किचान्यत्त्वरया न लक्षितमिद धिक् तस्य दु.शिल्पिनो।
मोहाद्येन तवोभयोश्चरणयोः सव्ये कृते पादुके (पृ० ३६)

३. "मा मैवम्। ब्रह्मचारिणी खल्वहम्। वसन्तमुपवसामि, इति।" श्रद्धेयमेतत्। अयमिदानी सरसदन्तक्षतोऽ धरोष्ठः किमिति वक्ष्यति? कि ब्रवीषि- "सावशेषतुषारपरुषस्य वसन्तवायोः पदान्येतानीति" (पृ० ४९)।

४. पृ० ५४–५५।

५. पृ० ५४।

ठीक किये नहीं आऊँगा **अध्यवसाय** है।[१] इसी प्रसंग मे देवसेना के यहाँ विट का चल देना **उद्यम** है। मूलदेव द्वारा किये गये विपुला के अपमान से विपुलामात्य का अपने को अपमानित मानकर क्रुद्ध होना **अक्षमा**[२] तथा मूलदेव के प्रति ईर्ष्या कलुषा विपुला के मान करने पर उसकी सखी सुन्दरी का उसको समझाना **उपदेशन है**।[३] वेश्यागामी असाधु होते हुये भी अपने को साधु तथा पवित्र समझने वाले धर्मासनिक के पुत्र पवित्रक के आचरण का भण्डाफोड़ **उत्प्रासन**[४] शश द्वारा पवित्रक को विटत्व ग्रहण कर स्वैराचारपूर्वक कान्तासुखोपभोग का आशीर्वाद देना **आशीः**,[५] शाक्यभिक्षु संधिलक के आचरण की भी विट द्वारा पोलपट्टी खोला जाना **उत्प्रासन** है।[६] प्रिय से मान करके वियोग में दुखी शोणदासी को विटद्वारा मान छोड़ देने की सलाह देना **उपदेशन**[७] तथा सखी के कहने पर मानवती होकर प्रिय का तिरस्कार करके अब उसका पछताना, अश्रुमोचन आदि **पश्चात्ताप** है, विट द्वारा देवसेना के मूलदेव विषयक अनुराग को उचित पात्रगत बताते हुये दोनो को सुन्दर कहकर देवसेना को उत्साहित करना **प्रोत्साहन**,[८] प्रियवादिनिका द्वारा यह निश्चय किये जाने पर कि स्वामिनी (देवसेना) स्वय आर्य मूलदेव के पास जायेगी–विट का प्रसन्न होना **प्रहर्ष**[९] तथा देवसेना को जाते समय आशीर्वाद देना **आशी**.[१०] है।

भाण्यग:—

मूलदेव द्वारा विट से देवसेना विषयक अपनी मदनपीडा कहना-**विन्यास**,[११] इरिम की प्रेयसी ताम्बूलसेना का दिवासुरतचिह्नों से युक्त होकर भी विट से बहाना करना[१२] तथा मगध सुन्दरी का अपने सुरतचिन्हो को तुषारयुक्त वसन्त वायु का चिह्न बताकर मिथ्याख्यान करना **साध्वस** नामक भाण्यग है। भाण के अन्त मे विट देवसेना के मूलदेव विषयक प्रेम को उचित बताता हुआ उसे उदाहरणो से पुष्ट करता हुआ कहता है कि एक ही पिता की सन्तान दक्षपुत्री तारिकाये चन्द्रमा से रमण

---

१. पृ० ८।
२. पृ० १२।
३. पृ० १५।
४. पृ० २१–३२।
५. श्लो० १६।
६. पृ० ३२–३३।
७. श्लो० ३३।
८. पृ० ५७–५८।
९. पृ० ५६।
१०. पृ० ६०।
११. पृ० ८।
१२. पृ० २६।

नही करती, और क्या दो लताये एक सहकार पर नही चढती ? इसी प्रकार **देवदत्ता** और तुम दोनो बहिने यदि मूलदेव से प्रेम करती हो तो क्या अनुचित है ? इस प्रकार निदर्शन का उपन्यास होने से यह **निवृत्ति** है ।[१] अन्त मे देवसेना के मनोभाव को जानकर विट का प्रसन्न होना, मूलदेव की प्राणरक्षार्थ पद्म का प्राभृतक लेकर देवसेना को आशीर्वाद देते हुए चले जाना-कार्य की समाप्ति का द्योतक होने से **सहार** नामक भाण्यंग है ।[२]

शिल्पकाङ्ग

भाण के आरम्भ मे कर्णीसुत द्वारा देवसेना के भाव जानने के लिए विट को देवदत्ता के घर भेजना, देवसेना विषयक अपनी मनोव्यथा का निवेदन **विलाप** है[३] । ताम्बूलसेना[४] तथा मगध सुन्दरी[५] द्वारा अपने संभोग चिह्नों की वास्तविकता को छिपाकर विट से बहाना बना देना **अवहित्था**, सखी के बहकावे मे आकर मानवती शोणदासी का प्रियविरह मे तड़पना, रो-रोकर अपनी व्यथा विट से कहना[६] तथा देवसेना का मनोभाव जानने के प्रयत्न मे जब विट उसके पास से उठकर चल देता है तो उसका (देवसेना का) रोने लगना[७] **अश्रु** नायक शिल्पकाङ्ग हैं । देवसेना का मूलदेव विषयक प्रेम जानकर विट का प्रसन्न होना **प्रहर्ष** तथा देवसेना को समझाना उसके प्रेम का औचित्य बताना **आश्वास** शिल्पकाङ्ग है ।

लास्याङ्ग

भाण के आरम्भ मे कवि सारस्वत भद्र तथा विट का वार्तालाप प्रसादयुक्त प्रश्नोत्तरात्मक होने से **उक्तप्रत्युक्त** है ।[८] विपुलामात्य के मिलने पर विट उसे बताता है कि किस प्रकार मेरे (विट के) साथ प्रणयक्रुद्धा विपुला को मनाने के लिये मूलदेव के जाने पर विपुला ने क्रुद्ध होकर मूलदेव का अपमान किया । कोप तथा अधिक्षेपयुक्त उसके अपमान पूर्ण व्यवहार का उल्लेख होने से यह प्रसंग **उत्तमोत्तमक** है[९] अथवा यही प्रसंग **प्रच्छेदक** नामक लास्याङ्ग भी हो सकता है, क्योकि यहाँ नायक मूलदेव की अन्य नायिका मे आसक्ति की आशंका करती हुई नायिका विपुला ने साधिक्षेप वचनों से अपना प्रेमच्छेद प्रकट किया है । वेशवाट के इस प्रसग मे विट को भाण्डीर-सेना की पुत्री कुमुद्वती अपने प्रेमी मौर्यकुमार चन्द्रोदय के वियोग में देवताओं को

१. पृ० ५८ ।
२. पृ० ५९-६० ।
३. पृ० ८ ।
४. पृ० ३९ तथा ४९ ।
५. पृ० ४९ ।
६. पृ० ४५ ।
७. पृ० ५७ ।
८. पृ० १० ।
९. श्लो० १६ ।

बलि देती हुई दिखाई देती है । अपने प्रेमी के वियोग मे वह मलिनवसना, अप्रसाधितगात्रा, शिथिलवलया हो गई है । यह प्रसंग **आसीन** लास्यांङ्ग है ।[१] नागरिका की पुत्री शोणदासी का निर्मुक्तभूषणा होकर वल्लकी को अंकाधिरूढ करके धीरे-धीरे बजाते हुये कैशिक के सहारे उदास बैठकर धीमे काकली स्वर मे गाना **गेयपद**,[२] भाण के लगभग मध्य में नागरिका की पुत्री मगधसुन्दरी का अपने प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में कपाट के पास खड़े होकर षड्ज ग्राम पर आधारित वल्लभा नाम की चौपदी का गान करना **द्विमूढक**[३] तथा कर्णीसुत मे आसक्त देवसेना की विरह दशा का वर्णन **आसीन**[४] नामक लास्यांग है ।

पात्र

पद्मप्राभृतक भाण का नायक कर्णीसुत मूलदेव है । यह धीर ललित प्रकृति का दक्षिण नायक है । क्योंकि देवसेना के प्रति अनुरागवान् होते हुये भी प्रथम नायिका देवदत्ता के प्रति उसका आदर भाव है और वह उसे अपने व्यवहार से दुखी नहीं करना चाहता । इसीलिये अपने प्रति देवसेना के भावको जानने के लिये वह विट को तब भेजता है जब देवदत्ता उसके (मूलदेव के) पास चली आती है और देवसेना घर पर अकेली रह जाती है । भाण मे नायक मूलदेव के चरित्र का विकास नही दिखाया गया है । नायक मे शोभा, विलास आदि गुण हैं ।

विट शश इस भाण में नायक मूलदेव का परम सहायक है । आरम्भ से अन्त तक वही समस्त भाण मे प्रमुख पात्र है । इसी से उसके नायक होने का भ्रम होने लगता है । किन्तु फलप्राप्ति मूलदेव को होने के कारण विट नायक नहीं हो सकता । इस भाण मे परानुभूत धूर्तचरित का वर्णन विट करना है । साथ ही आनुषंगिक फलप्राप्ति के अभाव में विट अनुनायक भी नही हो सकता । विट के अतिरिक्त इस भाण में सारस्वतभद्र, विपुलामात्य, वैयाकरण दत्तकलशि, पवित्रक, शैषिलक, सधिलक आदि पुरुषपात्र स्वय में एक निदर्शन है और मुख्य कथावस्तु से साक्षात् सम्बन्धित न होते हुये भी उसके विकास मे सहायक अवश्य है ।

प्रस्तुत भाण की नायिका देवसेना है । देवदत्ता नायक की पूर्व प्रेयसी है । देवदत्ता अपनी छोटी बहिन देवसेना और नायक मूलदेव के परस्पर अनुराग की बात से अनभिज्ञ है । मूलदेव डरता है कि कही देवदत्ता उसके इस प्रणय प्रसंग को न जान जाये । इस प्रकार कह सकते हैं कि देवदत्ता ज्येष्ठा तथा देवसेना कनिष्ठा

---

१. पृ० ४० ।

२. पृ० ४४ ।

३. पृ० ४७ ।

४. श्लो० ३७, ३८, ५३ ।

नायिका है। मूलदेव के प्रति प्रथम अनुराग में अत्यन्त सलज्ज व्यापार के कारण देवसेना मुग्धा नायिका है तथा अवस्था की दृष्टि से अभिसारिका।[1]

देवसेना के अतिरिक्त प्रियजन के पास जाती हुई वनराजिका दिवासुरत को छिपाने वाली ताम्बूलसेना, प्रिय की प्रतीक्षा मे व्रतोपवास करने वाली कुमुद्वती, कन्दुक क्रीडा मे व्यस्त प्रियंगुयष्टिका, प्रिय से मान करके पछतानेवाली शोणदासी, सरसदन्तक्षतादि सम्भोगचिह्नो को बर्फीली बासन्तीहवा के कारण ओठों का फूट जाना बताने वाली मगधसुन्दरी आदि स्त्री पात्र भी पुरुष पात्रों की भाँति स्वतन्त्र निदर्शन है तथा कथानक के पूरक अंश न होते हुये भी उसके विकास में सहायक है।

रस

भाण में अयोग विप्रलम्भ शृंगार मुख्य रस है। इसमें परस्त्री अनुरक्त नायक तथा नायिका दोनों ही **आलम्बन** और **आश्रय** है। दोनों ही एक दूसरे पर आसक्त हैं। देवदत्ता रूपी बन्धन के कारण दोनो मिल नही पाते। वसन्त ऋतु, देवसेना का मुग्ध यौवन तथा मूलदेव का महान् व्यक्तित्व उद्दीपन है। नायक का मदन व्याधि से संतप्त होकर प्रत्यूषचन्द्र की भाँति पीला पड़ जाना, चिन्ता से दुबला हो जाना, जंभाई लेते रहना, चन्द्र बसन्त, माल्य आदि से द्वेष करना, नायिका के हाव, हेला आदि **अनुभाव** तथा व्रीडा, अवहित्था, वितर्क आदि **सचारी** भाव है। इसके अतिरिक्त हवन करते समय वैयाकरण दत्तकलशि के पास रिरंसा से रशनावतिका का आना, दत्तकलशि का उसे दूर-दूर कह कर अपमानित करना आदि प्रसंग[2] तथा धर्मासनिक के पुत्र पवित्रक के हास्यास्पद धार्मिक ढकोसलो का वर्णन-गौण रूप से हास्य रस के अन्तर्गत आता है।

कैशिकी वृत्ति

विपुला द्वारा मूलदेव की अन्य नायिका में आसक्ति जानकर मान के रोष में उसकी अवहेलना तथा सखी के बहकावे में आकर शोणदासी द्वारा मान करके अपने प्रियचन्द्रधर की उपेक्षा करना **मानशृंगारनर्म** है। इरिम के साथ दिवा सुरत चिह्नों से उपेत ताम्बूलसेना तथा सरसदन्तक्षत को तुषारयुक्त वासन्ती पवनजन्य बताने वाली गणिका मगधसुन्दरी **संभोगशृंगारनर्म** की उदाहरण है। देवसेना अत्यन्त लज्जालु होने के कारण मूलदेव विषयक अपने किसी भाव को स्पष्ट रूप से प्रगट नही करती, केवल कुमुद्वती प्रकरण की भूमिका तथा कुछ चेष्टाओ और भावों से थोड़ा सा

---

१. यद्यपि देवसेना ने भाण मे अभिसरण नही किया है, किन्तु विट तथा प्रियवादिनिका के बीच यह निश्चय हो जाता है कि देवदत्ता की अनुपस्थिति मे कल यह प्रिय के पास अभिसरण करेगी।

२. पृ० १९।

अपना मनोगत भाव सूचित करती है। यह भाव **नर्मस्फोट** है[१]। साथ ही यह पूरा ही प्रसंग देवसेना द्वारा स्वानुरागनिवेदन होने से **आत्मोपक्षेप शृंगारनर्म** भी है।

भारती वृत्ति

वीथ्यंग

विट शश तथा कवि सारस्वत भद्र का छोटे-छोटे वाक्यो मे उत्तरप्रत्युत्तर के रूप में किया हुआ वार्तालाप[२], वैयाकरण दत्तकलशि तथा विट का सवाद[३] तथा धर्मासनिक के पुत्र पवित्रक और विट की नोक झोक[४] **वाअकेली** है। मानवती विपुला द्वारा ईर्ष्या कषायिता होकर चिरौरी विनती करने आये हुए मूलदेव को संरम्भ एवं आक्षेपयुक्त वचनो से डाटना **गण्ड** है।[५] विट द्वारा शाक्य भिक्षु संघिलक के बहाने से किये गये वेश्या प्रसग की पोलपट्टी खोली गई है। पहले तो सघिलक अपने इन कुकृत्यो को स्वीकार नही करता किन्तु विट द्वारा सप्रमाण उसका ढोग खोले जाने पर वह क्षमा माँगने लगता है। इस प्रकार विवाद, अपवाद, एव आक्षेप का प्रसंग होने से यह अ्रश भी **गण्ड** है।[६] शश तथा विपुलामात्य के वार्तालाप के प्रसग मे शश द्वारा कहे गये श्लोक के बिना श्लेष आदि के ही श्रुतिसाम्य के आधार पर दो अर्थों (एक विपुला के पक्ष मे—तथा दूसरा मति के पक्ष मे) की योजना **त्रिगत** नामक वीथ्यंग का उदाहरण है।[७] ताम्बूलसेना द्वारा इरिम के साथ दिवा रति अस्वीकार करने पर विट द्वारा उसके सुरत चिह्नो तथा अन्य शारीरिक अस्तव्यस्तताओ की व्यंग्य पूर्वक अन्यथा व्याख्या करना **अवस्यन्दित** है। इसी प्रकार मगधसुन्दरी विट से वसन्त ऋतु मे अपने उपवास करने एवं ब्रह्मचारिणी होने की बात कहती है। विट द्वारा तात्कालिक दन्तक्षतो के प्रति संकेत किये जाने पर वह उसे तुषार युक्त वासन्ती

---

१. पृ० ५२–५६।
२. पृ० १०–११।
३. पृ० १६–२०।
४. पृ० २२–२४।
५. श्लो० १६।
६. पृ० ३२–३४।
७. कलाविज्ञानसंपन्ना गर्वैकव्रतशालिनी।
न खल्वत्यन्तधीरा सा खिन्ना ते विपुला मतिः (श्लो० १२)
इस श्लोक के दो अर्थों की योजना इस प्रकार है। **विपुला वेश्या के पक्ष में**—कला विज्ञान से युक्त, अत्यन्त गर्वीली एव धैर्य शालिनी तुम्हारी विपुला (वेश्या) क्या खेद को प्राप्त नही हुई? अर्थात् अवश्य हुई। **विपुलामात्य की बुद्धि के पक्ष में**- कला एवं विज्ञान से पूर्ण, सदा गर्वीली, अत्यन्त धीरा भी तुम्हारी महती बुद्धि क्या खिन्न नही हुई?

पवनजन्य घाव बताती है। इस पर विट और भी व्यंग्य करते हुए दन्तक्षत को चुम्बनरूपी चान्द्रायणव्रत बताता है। इस प्रकार मगध सुन्दरी तथा विट दोनों के कथन मे कौशल पूर्वक अन्यार्थ निहित होने से यह भी **अवस्यन्दित** वीथ्यंग है।

प्रहसनांग

विट तथा वैयाकरण दत्तकलशि का संवाद हास्य परक होने से **व्यवहार है**।[1] धर्मासनिक का पुत्र पवित्रक वैष्णव होते हुए भी प्रच्छन्न पुंश्चलीक तथा मत्तकाशिनी की पुत्री वारुणिका में आसक्त है। शश द्वारा भेद खोले जाने पर वह वैष्णवत्व का ढोंग छोड़कर विटत्व स्वीकार कर लेता है। अत: पूर्वगृहीत वैष्णव आचार का परित्याग करने के कारण यहाँ **अवलगित**[2] है। शाक्य भिक्षु संघिलक अपने बौद्धधर्म की पवित्रता और आचार छोडकर छिपकर बहाने से वेशवाट का पथिक बना। संघिलक अपने पाप को बहुत छिपाने का प्रयत्न करता है किन्तु विट उसके चरित्र की पोल पट्टी खोलता हुआ उसे डाँटता है। इस प्रकार संघिलक द्वारा आत्मगृहीत बौद्ध धर्म के पवित्र आचरण को छोड़कर वेशवाट के अपवित्र आचरण को ग्रहण करने से यह प्रसंग भी **अवलगित** प्रहसनाग है।[3] ताम्बूलसेना के नखविक्षत शरीर, दायें कन्धे पर ओढा हुआ उत्तरीय तथा दोनो ही पैरो मे बायें पैर की जूती आदि सम्भोग चिह्नों तथा हड़बड़ाहट मे बाहर आने के कारण इन अस्तव्यस्ताओ को उचित सिद्ध करते हुये विट उस (ताम्बूल सेना) पर व्यग्य करता है। इस प्रकार असत्य स्तुति होने से यह **अनृत** है।[4] मगधसुन्दरी जब अपने को ब्रह्मचारिणी उपवास परायणा कहती हुई, दन्तक्षत को बर्फीली ठन्डी वायुजन्य विकार बताती है तो विट उसकी ही उक्ति का व्यंग्यपूर्वक समर्थन करते हुये कहता है कि तू वास्तव मे चुम्बनरूप चान्द्रायणव्रत कर रही है। जिस प्रकार चान्द्रायण व्रत मे आहार की मात्रा घटती बढती रहती है वैसे ही तेरे प्रेमी के चुम्बन घटते बढ़ते रहते है। यहाँ लोक प्रसिद्ध चान्द्रायणव्रत की उक्ति के द्वारा उसके दन्तक्षत पर व्यग्य होने से यह **उपपत्ति** नामक प्रहसनाग है।[5]

इस प्रकार रोचक कथानक, सुन्दर तथा तीखे व्यंग्यों एवं मृदुल उपदेशप्रद सूक्तियो के कारण पद्मप्राभृतक, सघर्षप्रधान वर्ग मे एक उत्तम भाण है। यही एक मात्र ऐसा भाण है जो यद्यपि परिभाषानुसार कल्पित वृत्त (मूलदेव और देवसेना का प्रेम) वाला है किन्तु मुख्यपात्रो के ऐतिहासिक होने से इसमें इतिवृत्तात्मकता (मूलदेव का देवदत्ता से प्रेम आदि) का भी पुट है।

---

१. पृ० १६–२०।
२. श्लो० २७।
३ पृ० ३१–३५।
४. श्लो० २७।
५. श्लो० ३५।

पंचायुध प्रपंच भाण

पंचायुध प्रपंच भाण कवि त्रिविक्रिम की कृति है। इसका समय १७२७ शक सवत् या १८०५ ई० है। इसमे विट कदर्पविलास तथा विलासबन्धु की पत्नी कलहंसलीला के प्रेम की कहानी है। यह संघर्ष प्रधान वर्ग के अन्तर्गत आता है। यह भाण उपलब्ध हुये प्राय. सभी प्रकाशित एवं अप्रकाशित भाणों मे बड़े आकार का है। इसमे ३५० पद्य तथा शेष गद्य हैं।

पात्र

स्त्रीपात्र	**पुरुषपात्र**
कलहंसलीला—नायिका	कन्दर्प विलास - नायक
कामागमजरी—मन्दार शेखर की प्रेयसी	मन्दार शेखर—पताका नायक
भगवती भद्रजटा—तपस्विनी, नायक के प्रेम प्रसगो की सहायिका	शृङ्गारचषक—नायक का मित्र
	यति—एक ढोंगी सन्यासी
रसोर्मिका—शृङ्गारचषक की प्रेयसी	केवलमेद्—ब्राह्मण वटु
कमनज्योत्स्ना—कलहंसलीला की सखी	मदनमगल—क० वि० तथा म० शे० का मित्र

विलास वैजयन्ती
बसन्तकलिका
कान्तिमती
अनंगलीला
मदन मंजुला
मित्र नन्दा
शिवभक्ति मंजरी
हेमप्रभा
अनंगरसतरंगिणी
चमत्कारवैखरी
विभ्रमतरंगिणी
मदनमंगला
} वारवनिताये

नान्दी

भाण की द्विपद्यात्मक नान्दी में प्रथम मे भगवान् विष्णु द्वारा लक्ष्मी के प्रति किये गये व्यङ्ग्य का तथा दूसरे में श्रीकृष्ण द्वारा सत्यभामा के कुचों पर पत्रावली के बहाने राधा का चित्र बना देने पर क्रुद्ध सत्यभामा द्वारा लीलारविन्द से श्रीकृष्ण को ताडित करने का वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर पदगणना करने से यह

अष्टपदा तथा आशीर्वादात्मक होने से शुद्धा नान्दी है। आरम्भिक गण **मगण** है जो नायक को श्री देने वाला है। आरम्भिक अक्षर 'आ' विष्णु परक होने से मंगलवाची है। इसप्रकार गणतः तथा लिपितः दोनो ही दृष्टि से शुद्धा नान्दी है।

प्रस्तावना

नान्दी के बाद रंगमंच पर सूत्रधार आता है। पुण्यपुर निवासी नागरिको ने भगवान् काम के वसन्त पूजोत्सव में सूत्रधार को आज्ञा दी है कि वह कोई नया रूपक अभिनीत करे। सूत्रधार कवि त्रिविक्रम की कृति इस भाण की प्रशंसा करते हुये उसका परिचय देता है। सूत्रधार कहता है कि तर्कशास्त्र के पठन पाठन से कठोर हुई भी कवि की वाणी साहित्य रचना में सरल है। **प्ररोचना** के द्वारा सूत्रधार काल, कवि तथा स्वयं अपनी नाट्यकला की प्रशसा करते हुये विट कंदर्पविलास के आने की सूचना देता है।

कथानक

विट कंदर्प विलास रंगमंच पर प्रविष्ट होकर किसी सुन्दरी के कटाक्ष पात से अपने को पीडित बताता हुआ कभी कामदेव को दोष देता है तो कभी अपने चित्त की निन्दा करता है। उसके बाद विट अपनी प्रिया की खोज मे निकल पड़ता है। प्रात. का समय है, चन्द्रमा अस्त हो रहा है, कुमुदिनी मुरझा रही है, रतिश्रमालस कामी सो रहे है, कामिनियाँ भी शिथिलभुजबन्धा होकर विश्राम कर रही हैं। विट को यहाँ अपने कान्त के वियोग से उत्पन्न मनोवेदना को शिरोवेदना के बहाने छिपाती हुई कामिनी दीखती है। उससे हास-परिहास कर विट आगे बढ़ता है।

अब विट की मित्र मन्दारशेखर से भेंट होती है। बातचीत के प्रसंग में मन्दारशेखर बताता है कि कामागमंजरी से उसका बचपन का सम्पर्क है। वे दोनों एक पाठशाला में पढ़े हैं। बडे होने पर फूल चुनते हुए एक दिन उसके शरीर का संस्पर्श हुआ। उसी दिन से दोनो के प्रेम का सूत्रपात हुआ। कुछ दिन बाद पतिगृह आती हुई कामांगमजरी ने मन्दारशेखर को पत्र लिखा कि तुम्हारी सखी रूपी भृंगी कमल मुकुल मे नियन्त्रित है, हे भृ ग, उसे शीघ्र निकालो। मन्दारशेखर कहता है कि इस पत्र को पाकर मैने उसे खोजने का प्रयत्न किया। किन्तु वह नही मिली। उसके बाद उपालम्भ से भरा हुआ उसका दूसरा पत्र मिला। उसके बाद भगवान् शकर के उत्सव को देखने के बहाने मैं मणिमण्डन नामक गॉव मे गया। वहाँ संकेत-स्थल पर प्रतीक्षा करने पर भी वह नही आई। अनन्तर उसके घर जाने पर भी प्रियादर्शन नही हुआ। निराश होकर लौटते हुये मैने यह पद्य लिखकर उसके पास भेज दिया—'गन्ध के द्वारा बुलाये जाने पर भृ ग के केतकी के निकट आ जाने पर भी पत्तों से ढके हुये अपने मुख को क्यो नही उठाती हो! क्या मिलिंद चला जाये?' इस पर प्रिया ने लिख दिया—'भृंग, चंचलता मत करो। बन्द कमल के भीतर स्थित भृंगी निकलने की प्रतीक्षा कर रही है। धैर्य न छोड़ो। इस पत्र को पढ़कर

मै कुछ आशावान् हुआ। इधर प्रिया ने अपने व्यवहार से सबको सतुष्ट कर लिया। रात में भूताविष्ट की भाँति घर के द्वार पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी—घरवालों ने मान्त्रिक-तान्त्रिको द्वारा उपचार कराया। किन्तु वह ठीक नही हुई और भूताविष्ट की भाँति-बोली 'सुनो रे मै मणिभद्र नामक वैश्रवण हूँ। पुराने युग मे एक बार अलकनन्दा के किनारे दम्पति औशीनर के पुत्र प्राप्त्यर्थ तपस्या करने पर मैने जब औशीनर की पत्नी को वासनापूर्वक देखा तो मेरे स्वामी ने मुझे पत्थर हो जाने का शाप दिया। मेरे अनुनय विनय करने पर स्वामी ने कृपापूर्वक मुझसे कहा मणिभद्र, अगले जन्म मे ये दोनो दम्पति कामांगमंजरी तथा प्रगल्भ नाम से पैदा होगे। तब तुम इस कामागमजरी के पुत्र प्राप्ति पर्यन्त इसके घर या पर्वत-कन्दरा में इसके साथ यथा सुख भोग करना। इसप्रकार अपने स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर मै यहाँ आया हूँ।' यह सुनकर कामागमंजरी के बन्धुबान्धवो ने 'सर्वनाशे समुत्पन्नेऽर्ध त्यजति पण्डितः' के अनुसार मणिभद्र को यथेच्छा विहार की आज्ञा दे दी। साथ ही कामागमंजरी मे आविष्ट मणिभद्र बोला—'कामरूपधारी मणिभद्र को जो देखेगा वह मर जायेगा।' यह कहकर वह गिर पड़ी। जब वह होश मे आई तो सब समाचार बान्धवो से सुनकर बोली-स्वप्न मे भी मैने पर पुरुष का अंगस्पर्श नही किया। यक्ष के साथ कैसे अग सग प्राप्त करूँगी ? इसप्रकार दोनों कुल कलकित होगे। किन्तु लोगों के समझाने बुझाने पर वह तैयार हो गई और एक सुन्दर केलिगृह मे उसके एकाकिनी जाने पर मैने उसके साथ रमण किया। यह सुनकर विट कदर्प विलास कामागमंजरी की प्रतिभा की प्रशसा करता है।

इसी बीच नगर विलासिनियो के वृत्तान्त का पूर्ण अभिज्ञ मित्र शृंगारचषक आ पहुँचता है। शृगारचपक कदर्पविलास को लीलाधर की पुत्री रसोर्मिका के साथ अपनी प्रणयगाथा सुनाते हुये कहता है—एकबार मै किसी अन्य प्रसग से रसोर्मिका की ससुराल पहुँचा। वहाँ समस्त स्त्री समूह मे से उठकर रसोर्मिका ने अनुराग भरी लज्जापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैने प्रिया को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। बच्चो को खिलौनो से बहकाया, वृद्धो को उनके अनुकूल कथालापो द्वारा फुसलाया। इसी बीच प्रिया का देवर संगीत प्रिय होने के कारण हमारा मित्र बन गया। एक दिन अवसर पाकर मैने प्रिया का अंगाभिमर्दन भी किया। शृंगारचषक कहता है कि मेरी प्रिया रसोर्मिका आज अश्वत्थ पूजन के लिये यहाँ आई है। उससे यहाँ मिलने का प्रयत्न करूँगा।

शृङ्गारचषक की प्रणय कहानी सुनने के बाद कदर्पविलास तथा मन्दारशेखर वेशवाटी की ओर मुडते है। यहाँ इन दोनो को ताम्बूलचर्वण करते हुये एक यति मिलता है। ताम्बूलचर्वण, वेशवाटी भ्रमण और ईश्वराराधना मे सामंजस्य पूछने पर यति कहता है कि किसी भी उपाय से यदि किसी को सतोष दे सके तो यही ईश्वराराधन है। मैं (सन्यासी) भक्ति भाव पूर्ण कामिनियो के द्वारा दिये गये ताम्बूल का भक्षण करता हुआ तथा रति सम्बन्धिनी उनकी इच्छापूर्ति के द्वारा भगवदाराधन करता हूँ।

उससे विदा लेकर दोनो मित्र आगे बढते हैं । अब उन्हें रतिमर्दिता विलास-वैजयन्ती, केशविन्यास व्यापृता वसन्तकलिका, शुक को पढाती हुई अनगलीला दीखती है । इसी बीच दोनो मित्रो को शृंगारवल्ली की माता अर्थतृष्णा मिल जाती है । वह आकर मन्दारशेखर को डाँटती है कि उसको शृगारवल्ली का उचित धन क्यो नही दिया । थोड़ा और आगे बढने पर दोनो मित्रो को विनोदचन्द्रिका, प्रसादकन्दली, नक्षत्रमाला आदि गणिकाये मिलती है ।

दोनो मित्र वेशवाट मे घूम ही रहे थे कि उनके पास एक ब्राह्मण वटु आता है । मालूम होता है प्रभासकौमुदी के साथ रति करके प्रतिश्रुत धन दिये बिना वह भाग आता है । प्रभासकौमुदी उसका पीछा कर रही है । पूछने पर पता चलता है कि गृहस्थ का घर जानकर वटु उसके यहाँ भिक्षाटन को गया था और वहाँ उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया ।

दोनो मित्रों को अब कुण्डमुण्ड शर्मा नामक ब्राह्मण का पुत्र केवलमेढ़ मिल जाता है । विदित होता है कि यह हेलावती की बहिन हेमप्रभा के प्रथमरंगाधिरोहण उत्सव मे स्वस्तिवाचन के लिये गया था । वहाँ सहसा शृंखलादाम खुल जाने पर एक बन्दर भाग आया और समस्त रग अस्त व्यस्त हो गया । नृत्य करती हुई हेमप्रभा कवलमेढ़ के ऊपर गिरी जिससे उसके माथे में चोट लग गई । इस घटना को ये दोनो मित्र उस ब्राह्मण का सौभाग्य बताते हुये आगे बढ़ते है ।

यहाँ उन्हे पानीयशाला मिलती है जिस पर युवक पानी पीकर तृप्त होकर भी अतृप्त की भाँति चेष्टाये करते हुये पानी पिलाने वाली के सौन्दर्य को देखा करते है । इसके बाद दोनो मित्र अनगरसतरगिणी, चमत्कार वैखरी तथा विभ्रमतरगिणी से हास परिहास करते हुये आगे बढ़ते है । इसी समय उन्हे मित्र मदन मंगल दीखता है । उसका विप्रलम्भ विकार देखकर दोनों उससे कारण पूछते हैं । वह बताता है है कि कामपूजन के लिये आई अनेक कामिनियों मे एक अत्यन्त सुन्दरी को देखकर मै उस पर मुग्ध हो गया । उसकी चेष्टाये मेरे प्रति अनुराग बताती थी । उसे देहरी द्वार तक पहुँचाकर अपना हृदय वही छोड़कर शरीर मात्र से लौट आया हूँ । इसी समय दोनो को कमनज्योत्स्ना दीखती है जो कंदर्पविलास के प्रति कलहंसलीला के अनुराग एव विरह वेदना का वर्णन करती है । यह सुनकर कदर्पविलास बड़ा प्रसन्न होता है और मित्र मन्दारशेखर को पुरस्कार देता है । म० शे० मित्र की प्रिया का कुशलवृत्त जानने को चल देता है ।

इसके बाद इसी समय एकाकी घूमते हुए कन्दर्पविलास को अपनी पत्नी को पीटता हुआ मदनमङ्गल दीखता है । पूछने पर पता चलता है कि पड़ोसिन तो प्रतिवर्ष पुत्र उत्पन्न करती है और उसकी पत्नी अभी अपुत्रा है । इसीलिये पड़ोसिन के पुत्रो को देखकर दुखी होकर वह उसे मार रहा है । यह सुनकर कदर्पविलास उससे कहता है कि पुत्र की अनुत्पत्ति मे केवल पत्नी का ही नही तुम्हारा भी दोष हो सकता है ।

इसी बीच हाँफती हुई एक युवती आती है। कन्दर्पविलास के पूछने पर वह बताती है कि धर्मोज्जीवन नामक मेरे स्वामी के मध्यमपुत्र विलासबन्धु की अद्वितीय सुन्दरी पत्नी शिरोवेदना से अत्यन्त पीडित थी। अत: बच्चे बूढे सब जब देवता के दर्शन को गये तो उसे मेरी देखरेख मे छोड़ गये। मैने प्रथम तो उसे उपवन में घुमाया, किन्तु वेदना समाप्त नही हुई। तो फिर उसे केलिगृह मे ले गई। वहाँ मेरे देखते-देखते वह अदृश्य हो गई। यह सुनकर विट बड़ा दुखी होता है। अपने भाग्य की निन्दा करता हुआ विट कहता है कि मेरे कारण ही कलहंसलीला की यह दशा हुई। उसी समय एक दासी आती है जो इन दोनो को बताती है कि किस प्रकार कलहंसलीला के पति देवी पूजन कर रहे थे तो देवी ने कहा कि तुम्हारी पत्नी को योगिनीगणो ने गायब कर दिया है। क्योंकि तुमने अकेले मन्दिर मे आकर आर्य मर्यादा का उल्लंघन किया है। यदि उसका जीवन चाहते हो तो तीन मास तक बलि, पूजा, होम आदि यहाँ करो। यह सुनकर कन्दर्पविलास अपने आपको कोसता है। कलहसलीला को सम्बोधन करके विलाप करता है। इसी समय कमनज्योत्स्ना आती है। कं० वि० द्वारा पूछे जाने पर वह बताती है कि भगवती भद्रजटा की तिरस्करिणी विद्या के बल मे यह सब हुआ था। अब कलहसलीला पुनः आ गई है और स्वस्थ है। साय तुम्हारा संयोग हो जायेगा। उसके चले जाने पर मन्दारशेखर कन्दर्पविलास को धैर्य बँधाता है।

इस प्रकार कन्दर्प विलास वियोग सागर मे निमग्न ही था कि कमनज्योत्स्ना के साथ भद्रजटा आती है। विट उसे अपनी वियोग गाथा सुनाता है। भगवती भद्रजटा उसे धेर्य बँधाती हुई कहती है कि तीन मास तक अब तुम अपनी प्रेयसी का उपभोग करो। कलहंसलीला के अदृश्य होने आदि के सम्बन्ध मे पूछने पर भगवती बताती है कि कामसंतप्ता कलहंसलीला को देखकर उसे अदृश्य करना, देवी के रूप में उसके पति से तीन मास तक वही रहकर पूजा होम आदि की बात कहना यह सब मेरा ही काम था। इसके बाद भगवती अपनी तिरस्करिणी विद्या हटा लेती है और कलहसलीला दीख जाती है। विट कन्दर्प विलास अपनी प्रिया से मिलता है। सब प्रसन्न होते है। भगवती भद्रजटा विट को आशीर्वाद देती है। भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

इस भाण मे नायक कन्दर्पविलास तथा नायिका कलहंसलीला का कथानक आधिकारिक है। प्रासगिक कथानक मन्दारशेखर तया उसकी प्रेयसी कामागमंजरी का है। यह पताका हो सकता है। क्योंकि आरम्भ से अन्त तक मन्दार शेखर विट के साथ रहता है, उसके सुख दु:ख का वह सहायक है। शृङ्गारचषक तथा रसोर्मिका का कथानक प्रकरी हो सकता है।

सन्धि

इस भाण में सन्धि विभाजन एक समस्या है। आरम्भ मे विट कन्दर्पविलास

प्रिया वियुक्त दिखाया जाता है । प्रातः का वर्णन करते हुए वह इधर उधर घूम ही रहा था कि उसका मित्र मन्दारशेखर मिल जाता है । इसके बाद मुख्य कथानक तो सर्वथा अदृश्य सा हो जाता है । भाण के दो तिहाई भाग समाप्त होने पर कही नायिका की चर्चा आती है । नायिका को प्राप्त करने मे नायक कोई प्रयत्न भी नही करता । अतः मुख सन्धि अपूर्ण सी ही रहती है । केवल निर्वहण सन्धि अपने अनेक अङ्गो के साथ प्राप्त होती है ।

भाण के आरम्भ मे विट कन्दर्पविलास द्वारा प्रिया कलहंसलीला का स्मरण, चिन्तन **बीज** अर्थप्रकृति तथा प्रिया की खोज में उसका चल देना **आरम्भ** कार्यावस्था हो सकती है और इन दोनो के संयोग से बनी **मुख** सन्धि मे विट द्वारा प्रिया वियोग मे उसका चिन्तन, प्रातः का वर्णन मन्दार शेखर का मिलन, वेशवाट का लम्बा प्रसङ्ग, शृङ्गारचषक तथा रसोर्मिका का प्रेमसम्बन्ध, कमनज्योत्स्ना द्वारा कलहंसलीला की शिरोवेदना तथा कलहंसलीला के तिरोभाव का वर्णन आदि कथानक मुख्य है । भगवती भद्रजटा का विट से मिलकर सब वृत्तान्त कहना, धैर्य बधाना, प्रेयसी के साथ तीन मास तक रमण करने की बात कहना **कार्य** अर्थ प्रकृति एवं तिरस्करिणी विद्या के हटते ही कलहंसलीला की प्राप्ति **फलागम** कार्यावस्था है । इनके समन्वय से बनी **निर्वहण** सन्धि का कथानक छोटा है । केवल भद्रजटा का विट के पास आना, कलहंसलीला के सम्बन्ध मे पूरी सूचना देना, दोनो का समागम कराना इसकी मुख्य घटना है ।

विट कन्दर्पविलास द्वारा नेत्रो के मार्ग से हृदय में प्रविष्ट हुई प्रिया कलहंसलीला का चिन्तन, स्मरण **उपक्षेप**[१] तथा इस प्रसंग को आगे और विस्तार पूर्वक कहना **परिकर** नामक मुख सन्ध्यंग है । प्रस्तुत भाण मे मुख सन्धि के ये ही दो अङ्ग मिलते है ।

प्रिया की प्राप्ति सूचक विट का दक्षिण नेत्र एवं भुजस्पन्दन बीजोपगमन होने से **सन्धि** है ।[२] भगवती भद्रजटा द्वारा प्रिया प्राप्ति की आशा बंधाना **आनन्द**[३], कमनज्योत्स्ना, भद्रजटा, कं० वि०, म० शे० आदि का परस्पर वार्तालाप **परिभाषा**[४], भगवती का यह कथन कि वत्स, तीन मास तक इसके साथ कलत्रवत् रमण करो **कृति**, भद्रजटा द्वारा यह समाचार कि उनकी तिरस्करिणी विद्या के प्रभाव से कलहंसलीला तिरोहित कर दी गई थी तथा देवी के मन्दिर मे कलहंसलीला के घर वालों को तीन माह तक मन्दिर मे ही रहकर पूजा करने की सलाह भद्रजटा ने दी—'आदि घटना अद्भुत कार्य होने से **उपगूहन**[५], विट द्वारा अन्त मे अपने भाग्योदय या वर्णन **भाषण**

१. पृ० २ ।
२. पृ० २५ ।
३. पृ० ३६ ।
४. पृ० ३६ ।
५. पृ० ४० ।

भगवती द्वारा विट से यह पूछना कि और तुम्हारा क्या प्रिय करे—**उपसंहार** तथा समाप्ति पर भरत वाक्य के रूप मे **प्रशस्ति** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है।

सन्ध्यन्तर

कामागमञ्जरी द्वारा अपने प्रिय मन्दार शेखर के पास पत्र भेजना **लेख**[१], कामांगमञ्जरी का उपपति से मिलने के लिए भूताविष्टा की भाँति आचरण करके परिवार वालो को मूर्ख बनाना **प्रत्युत्पन्नमतित्व**[२] है। इसी प्रकार शृङ्गारचषक द्वारा प्रिया रसोर्मिका की प्राप्ति के लिये किये गये विविध उपाय भी **प्रत्युत्पन्नमतित्व** के उदाहरण है।[३]

नाट्यालङ्कार

वेश्या प्रभासकौमुदी द्वारा सताये गये विप्र वटु की विट तथा मन्दारशेखर द्वारा सहायता **साहाय्य**[४], पड़ोसिन को पुत्रवती देखकर अपनी अपुत्रा पत्नी को पीटने वाले मदन मङ्गल को विट तथा मन्दार शेखर द्वारा फटकारना, उसकी भर्त्सना करना **परीवाद**[५], प्रिया कलहसलीला को कोई अदृश्य ज्योति उठा ले गई यह सुनकर विट का शोक विह्वल हो जाना, रुदन प्रलाप आदि **आक्रन्द**[६] विट द्वारा प्रिया के साथ की गई पूर्व रति क्रीडाओं का स्मरण **आख्यान**[७], चन्द्रोदय होने पर विट द्वारा प्रिया के प्राप्त होने की आशा तथा आकाक्षा **आशसा**[८] नामक नाट्यालङ्कार है।

शिल्पकांग

कलहंसलीला के वियोग मे विट कन्दर्पविलास का अपनी मदनजन्य मनोदशा व्यक्त करना **बिलाप**[९], विलासवन्धु की पत्नी कलहसलीला का शिरोवेदना के बहाने विट कन्दर्पविलास से सम्बन्धित विरह दशा को छिपाना, सन्तप्त होकर कही शान्ति न पाना **ताप**[१०], प्रिया की विरहवेदना के इस समाचार को जान कर विट का रोना **वाष्प**[११], इस अवसर पर मन्दार शेखर द्वारा धैर्य बधाना **आश्वास**, कमनज्योत्स्ना के मिलने पर विट का पुनः परिवेदन **विलाप**[१२] नामक शिल्पकाग है।

१. पृ० ४।
२. पृ० ५–६।
३. पृ० ८।
४. पृ० २२।
५. पृ० ३२।
६. पृ० ३३।
७. पृ० ३४।
८. पृ० ३९।
९ पृ० २।
१० पृ० ३२।
११ पृ० ३२।
१२. पृ० ३४।

पात्र

प्रस्तुत भाण का नायक विट कन्दर्पविलास धीरललित प्रकृति का है। नायिका कलहंसलीला को जब से उसने देखा है उसके विरह मे पीडित है। उसकी खोज में घूमते हुये वह नर्मालाप करते हुये मित्र मन्दारक के साथ वेशवाट से होकर कलहंसलीला के यहाँ आता है। वहाँ भगवती जटावती के प्रयत्न से तीन मास तक के लिये प्रिया को प्राप्त कर प्रसन्न होता है। इस प्रकार विट के चरित्र मे न कही मोड है और न कही संघर्ष। नायक प्रिया के लिये लेशमात्र भी प्रयत्न नही करता है। वस्तुत: नायक के चरित्र का विकास हो ही नही पाया है।

मन्दार शेखर भाण का पताका नायक है। क्योकि आरम्भ से अन्त तक मन्दार शेखर विट के साथ रहता है उसके सुख दुःख का वह सहायक है। किन्तु मन्दारशेखर को नायक के साथ कोई फल प्राप्ति नही होती। उसे तो अपनी प्रिया की प्राप्ति पहले ही हो चुकी होती है। अत: मन्दारशेखर पताकानायक ही है, अनुनायक नही। मन्दार शेखर नायक का परम मित्र है। उसमे अधिक साहस और उत्साह है। विट के सुखदुःख मे आरम्भ से अन्त तक उसका साथ देता है। शृंगार-चषक नायक का परम सहायक मित्र है।

भाण की नायिका कलहंसलीला विलासबन्धु की पत्नी होने से परोढा है। अवस्था की दृष्टि से यह विरहोत्कठिता है। नायक को देखने के बाद काम बाणों से आहत होकर व्याकुल रहने लगती है। भगवती भद्रजटा के संयोग से उसे तीन मास का उपपति का समागम सुख मिलता है। कामागमंजरी मन्दार शेखर की प्रेयसी है। बचपन से ही उसका मन्दार शेखर से सहज अनुराग रहा है। इसी से विवाहिता होकर जब वह आने लगती है तो प्रिय को एक पत्र लिखकर अन्योक्ति से उसे अपनी ससुराल बुलाती है। उसके वहाँ जाने पर पारिवारिक परतंत्रताओं के कारण जब संकेतित स्थल पर वह समय पर नहीं पहुँचती है, तो बहुत बड़े साहस और त्याग का परिचय देते हुये वह भूताविष्टा होने का नाटक करती है तथा उसमें पूर्ण सफल होकर अपने प्रिय को प्राप्त करती है। मन्दार-शेखर के साथ उसका पत्रव्यवहार और भूताविष्टा होने का नाटक दोनों से पता चलता है कि कामागमंजरी अत्यन्त चतुर, व्युत्पन्नमति तथा साहस-पूर्णा स्त्री है। शृंगारचषक की प्रेयसी रसोर्मिका का चरित्र विकसित नही हुआ है। वैसे वह भी चतुर तथा चालाक है। शृंगारचषक से मिलने के लिये इसने भी कपटा-चरण किया था। इसके अतिरिक्त शेष विलासवैजयन्ती, वसन्तकलिका आदि स्त्री पात्र सामान्य गणिकाये हैं।

रस तथा वृत्ति

आलोच्य भाण में अयोग विप्रलम्भ शृंगार मुख्य रस है। क्योकि नायक नायिका का यह प्रेम दर्शनमात्र से हुआ है। उनका पूर्व संयोग नही होता है। इस शृंगार के नायकनायका **आलम्बन**, वसन्तऋतु, उद्यान, सामाजिक स्वतंत्रता आदि **उद्दीपन**, नायक-नायिका दोनो का विरहाग्निमे तपना, कृशता एवं पाण्डुता, कार्यों में अरुचि, झुझलाहट आदि **अनुभाव** तथा व्रीडा, औत्सुक्य, अवहित्था आदि **संचारी**

भाव हैं। इनके संयोग से बना शृंगार रस ही समस्त भाण मे अंगीरस है। वैसे आलम्बन भेद से हास्य भी मिलता है किन्तु गौण रूप से।[1]

कैशिकी वृत्ति

विट तथा मन्दारशेखर द्वारा वसन्तकलिका से परिहास, उसके केशबन्धन को प्रेमियो का बन्धन बताना, बसन्तकलिका द्वारा भी 'कुटिल व्यक्ति को बाँधना ठीक होता है' कहकर उसका समर्थन करना आदि प्रसंग **हास्यनर्म**[2] है। ईर्ष्याकषायिता अनंगलता द्वारा मानपूर्वक अपना रोषमिश्रित अनुराग प्रकट करना **माननर्म** है।

भारतीवृत्ति

वीथ्यग:—इस भाण में वीथ्यंग बड़े रोचक तथा सरस हैं। **उद्घात्मक** वीथ्यंग का सम्भवतः यहाँ से अच्छा उदाहरण अन्य किसी भाण में नही है। कामांगमंजरी द्वारा पति की पराधीनता में दुखी होकर भेजे गये पत्र मे—'कमलमुकुल मे बन्द हुई भृंगी परवशा है। मिलिन्द यदि तुम सरसी में आजाओ तो प्रिया से भेट हो सकती है।' यह सकेत स्पष्ट ही अन्योक्ति के रूप मे व्यक्त कर रहा है कि पति गृह मे परतंत्रा मुझे तुम यदि प्राप्त करना चाहते हो तो यही आजाओ। अतः गूढार्थ पद होने से यह **उद्घात्यक**[3] है। इस पत्र को पाकर मन्दार शेखर उसके पतिगृह जाता है। किन्तु वहाँ कामागमजरी से किसी प्रकार भी समागम प्राप्त न कर सकने के कारण निराश लौटते हुये म० शे० ने एक पत्र लिखकर उसके पास भेज दिया जिसका आशय था कि गन्ध से बुलाये गये मिलिन्द के आने पर पत्तों में आच्छन्न तुम अपना मुँह भी नही दिखाती—तो क्या मिलिन्द लौट जाये। इस पर कामागमंजरी ने तत्काल उत्तर दिया—'भृंग चचलता मत करो। मुकुलित पंकज में रुंधी होने से देर हो रही है। शीघ्र ही भृंगी समागम की योजना करेगी' धैर्य मत छोडो।' स्पष्ट ही दोनो पत्रो मे अन्योक्ति रूप मे प्रेमी प्रेमिका के अपने मनोगत भावो की अभिव्यक्ति भृंग भृंगी के माध्यम से की गई है। अत. यह भी गूढार्थ पदावली होने से **उद्घात्यक** है।[4] विट कंदर्पविलास तथा शृंगारचषक का उक्ति

१. (कामांगमजरी का भूताविष्टा होना, विप्रवटु की कौपीन तथा दण्ड का छीन लिया जाना एव कलहंसलीला के तिरोभाव का प्रसंग हास्य रस के स्थल है।) पृ० ५–६,२२–२३ तथा ३६।

२. पृ० ११।

३. श्लोक ४२।

४. मन्दार शेखर का पत्र—गन्धाहूतमिलिन्दे केतकिनिकटं समागते भृंगे।
पत्रच्छन्नामुखमपि नोन्नमयसि किमिह गच्छतु मिलिन्दः। (श्लो० ४९)
कामांगमंजरी का उत्तरः—
अलमलमयि भृंग (चापलैस्ते मुकुलितपंकजगर्भवासरुद्धा।
अभिगमय समय तवाद्य भृंगी कलयति चेतसि मा जहीहि धैर्यम्।
(श्लो० ५०)

प्रत्युक्तिपूर्ण वार्तालाप **वाक्केली** है ।[1] बसन्तकलिका के केशबन्धन को विट तथा म० शे० द्वारा प्रेमी जनो का बन्धन बताना तथा बसन्तकलिका द्वारा भी उसका समर्थन करते हुये यह कहना कि कुटिल को ऐसे ही बाँधना चाहिये ताकि वह अन्यासक्त न हो-**उद्घात्यक**[2] है ।

प्रहसनांग

वीध्यगो की ही भाँति प्रहसनाग भी इस भाण के बड़े सरस तथा रोचक है । कामागमजरी द्वारा भूठे ही भूताविष्टा होकर हाथ पैर पटकना, क्रुद्धलाल-लाल नेत्रो से देखना, चिल्लाना, भूमि पर पड़ना, विलखना आदि आचरण करके परिवार वालो को धोखे मे डालना **विप्रलम्भ** है ।[3] ब्राह्मणयति द्वारा अपना धर्म छोड़कर पान खाते हुये वेशवाट में घूमना, वेश्याओ से हास परिहास, ईश्वराराधन और धर्म की उल्टी व्याख्या करना[4] यति एवं ब्राह्मण धर्म के विपरीत होने से **अवलगित**[5] है । ब्राह्मण वटु द्वारा गुरु आज्ञा से भिक्षाटन के प्रसंग मे वेश्या प्रभासकौ-मुदी के घर हो रहे संगीत को सामवेद की ध्वनि समझकर वहाँ भिक्षाटन करने जाना **विभ्रान्ति**[6] है । विट तथा म० शे० का विप्रटु से हास परिहास पूर्ण वार्तालाप **व्यवहार**[7] नामक प्रहसनाग है ।

इस प्रकार पचायुधप्रपच भाण अन्य भाणो की अपेक्षा अधिक सरस तथा गतिमान् है । दूसरे शब्दो मे यह एक जीवन्त भाण है जिसके पढ़ने मे कुतूहल, उत्सुकता एवं रोचकता है । मुहावरो का अत्यधिक प्रयोग, सरल भाषा, रोचक तथा सरस सवाद संघर्ष प्रधान घटनाये तथा अत्यंत सरस एव सरल शैली के कारण यह भाण संघर्षप्रधान वर्ग मे अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

---

१. पृ० ८
२. पृ० ११ ।
३. पृ० ५–६
४. येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः ।
सतोषं जनयेत्प्राज्ञस्तदेवेश्वरपूजनम् ।। (पृ० ९)
५. पृ० ९–१० ।
६. पृ० २२ ।
७. पृ० २२–२३ ।

कर्पूरचरित

कवि वत्सराज द्वारा रचित कर्पूरचरित एक लघु आकार का भाण है। इसका समय १२ वी शता० का उत्तरार्ध है। इसमें कर्पूरक के छल, कपट एवं धूर्ततापूर्ण व्यवहारों तथा विलासवती से प्रेमप्रसंगो का वर्णन है। संघर्षप्रधान वर्ग के इस भाण मे ३२ पद्य तथा शेष गद्य हैं।

पात्र

स्त्रीपात्र	पुरुषपात्र
विलासवती —नायिका	कर्पूरक —नायक
कलावती —नायिका की मां, कुट्टिनी	चन्दनक—अनुनायक
चन्द्रसेना —वेश्या, हारदत्त की प्रेयसी	मजीरक—विलासवती का प्रेमी, नायक का प्रतिद्वन्द्वी
	हारदत्त—चन्द्रसेना का प्रेमी, चन्दनक का प्रतिद्वन्द्वी
	चतुरक—हारदत्त का सेवक
	विरोधक—कर्पूरक का मित्र

नान्दी

प्रस्तुत भाण की द्विपद्यात्मक नान्दी मे भगवती पार्वती के साथ परिरम्भण एवं कण्ठाश्लेष का पण लगाकर विविध प्रकार के विनोद और चातुर्य करते हुए भगवान् शिव का आशीर्वाद तथा स्तुति परक वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह अष्टपदा नान्दी है। प्रथम पद्य में सूर्य तथा द्वितीय में चन्द्र का नाम आने से यह **नीली** है। आशीर्वाद तथा स्तुति परक होने से यह शुद्धा नान्दी है। आरम्भिक गण मगण होने से नायक को श्री देने वाला है तथा आरम्भिक अक्षर 'द' सौख्य प्रद है। अत गणतः एवं लिपितः शुद्धा भी नान्दी है।

प्रस्तावना

नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार रंगमंच पर आकर कहता है कि नीलकण्ठ के यात्रा महोत्सव मे आये हुए सामाजिको ने श्रीपरमर्दिदेव के अमात्य वत्सराज कवि द्वारा निर्मित कर्पूरचरित भाण के अभिनय के लिए कहा है। इस भाण मे प्रस्तावना आकाशभाषित द्वारा की गई है और इसलिये वह भाण का एक अंग है।

आकाश भाषित के द्वारा सूत्रधार धूर्त कर्पूरक से बातचीत करता हुआ दिखाया जाता है। कर्पूरक सूत्रधार को डाटता है कि धूर्त व्यक्तियो से तो देवता भी

डरते हैं। फिर मनुष्य की तो बात ही क्या ? यह सुनकर सूत्रधार 'यह कर्पूरक नामक धूर्त क्रुद्ध होकर इधर ही आ रहा है' ऐसा कहते हुए चला जाता है और कर्पूरक का रंगमच पर प्रवेश होता है। यहा सूत्रधार द्वारा "कर्पूरको नाम धूर्तोऽयमित' नाम क्रुद्धोऽम्युपेति" ऐसा कहकर पात्र का प्रवेश कराया जाता है। अतः यह **प्रयोगातिशय** नामक आमुख का भेद हुआ।

कथानक

रंगमंच पर प्रविष्ट होकर कर्पूरक माया-विद्या के निन्दक मार्ष को डाटता हुआ कहता है कि राम द्वारा बालि को मारना, इन्द्र द्वारा अहिल्यागमन, बलि का दमन आदि सब माया द्वारा ही सपन्न हुआ है। इस प्रकार उसे डॉटता हुआ वह दुरोदर शाला (द्यूतशाला) को जाना चाहता है कि उसे चन्दनक मिल जाता है। चन्दनक उसे बताता है कि विलासवती मे आसक्ति के कारण तू आजकल द्यूतशाला मे नही आ रहा है और इस प्रसग मे उसे अपनी प्रिया विलासवती के साथ किये गये विनोद, कामकेलि, मान आदि स्मरण हो आते है। इस समय वह अपनी प्रिया से वियुक्त है। कर्पूरक उस वीणा को लिये हुये है जिसे विलासवती बजाया करती थी। एक बार भगवती रुद्राणी के मदिर मे वीणा बजाते हुये उसने भगवती से यही माँगा था कि हे रुद्राणि ! उस सुभग (कर्पूरक) से मेरा वियोग न हो। एक बार सखी को सुनाने के बहाने उसने चन्द्र को उपालम्भ दिया था। कर्पूरक की ये बाते सुनकर चन्दनक हसकर बताता है कि तुम बड़े भाग्यशाली हो। कर्पूरक चन्दनक को विस्तार पूर्वक वह घटना सुनाता है कि किसप्रकार कर्पूरक विलासवती की मा कलावती का दूत बनकर विलासवती के प्रेमी अपने प्रतिद्वन्द्वी मजीरक के पास गया और उसको संदेश सुनाया कि 'बेटा मजीरक, विलासवती तुम्हारी है और तुम्हारे वियोग मे दुखी है।' इस पर मजीरक ने उसे बताया कि कलावती के ऐसा कहने से क्या होता है। विलासवती तो कर्पूरक को चाहती है। मैं यदि पास पहुँच जाता हूँ तो विरक्ता की भांति मुझ से व्यवहार करती है तथा नामसाम्य से शिशिर मे भी कर्पूर से अंग लेपित करती है। कर्पूरक कहता है कि उसकी यह बात सुनकर मैंने उससे कहा कि आर्य आप कलहायित है इसलिये ऐसा कहते है। वस्तुतः स्वामिनी आपको चाहती हैं। मेरी यह बात सुनकर पारितोषिक के रूप में दीनार सहस्र देकर मुझे विदा किया और स्वयं ताम्बूल, चन्दन, नवीनाशुक धारण कर चलने को तैयार हो गया। कर्पूर कहता है कि मित्र चन्दनक, देखो यह मंजीरक कितना मूर्ख है। ऐसी दुर्बुद्धि का ऐसा ही फल होता है। इस (मजीरक) ने गणिका चन्द्रसेना के धन की चोरी की और जब यह जेल मे जायेगा तो क्या होगा। चन्दनक के पूछने पर कर्पूरक बताता है कि मैने ही चन्द्रसेना के चीनाशुक को चुराकर कपटप्राभृत के रूप मे मजीरक को दे दिया था। चन्दनक यह सुनकर बड़ा प्रसन्न होता है और कहता है कि तुमने उस दुष्टा चन्द्रसेना का धन चुराकर बहुत अच्छा किया। क्योकि उसने हारदत्त मे अनुरक्त हो

कर मेरा सर्वस्व अपहृत कर लिया। यदि कदाचित् तुम हारदत्त को कभी संकट मे डाल दो, तब तो तुम्हारे साथ मैत्री का पूर्ण फल प्राप्त हो जाये। कर्पूरक उसे धैर्य बंधाता है कि यह भी फलित होगा।

चन्दनक के पूछने पर कर्पूरक विस्तार से सुनाता है कि किस प्रकार चन्द्रसेना के यहाँ से चोरी हुई। वह कहता है कि मैने चन्द्रसेना को हारदत्त का हार लाकर दिया और कहा—स्वामिनी ! स्वामी हारदत्त ने द्यूत में सब का धन जीत लिया है और मुझे तुम्हे बधाई देने को भेजा है। चन्द्रसेना ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस हार को हृदय से लगा लिया। हारमात्र से हारदत्त के आने जैसा महोत्सव होने लगा। उसकी मां मायावती ने मुझ से कहा कि सब परिजन मदिरा मे प्रसन्न है। यह सब धन तुम्हारा है, इससे सावधान रहना। सबके सो जाने पर चन्द्रसेना का सब धन लेकर में भाग आया तथा मणिभद्र (कोई स्थानीय देवता) के मदिर में गया और वहाँ मैंने पूजा करके मणिभद्र से प्रार्थना की। इसी समय एक विचित्र बात हुई। एक पुरुष ने आकर मणिभद्र को प्रणाम किया और कहा कि भगवान्, यह आपका ही प्रभाव है कि हमारे स्वामी हारदत्त द्यूत मे विजयी हुये है। लो यह मेरी पूजा स्वीकार करो। विदेश गया हुआ मेरा छोटा भाई जब आ जायेगा तो मैं आपको सर्वस्व देकर संतुष्ट करूँगा। ऐसा कह कर वह (चतुरक) चला गया और मै उसके पीछे लग लिया। चतुरक एक शौण्डिकागार में घुस गया। वहाँ पास ही स्थित होकर मैने कपट शोकाभिनय करते हुये करुणरुदन आरम्भ कर दिया। मैं रोकर कहने लगा कि संसार मे मेरे सभी सबधी है, केवल सहोदर नही है। मेरे प्राण कितने कठोर है कि भाई चतुरक के वियोग मे भी नही निकलते। चतुरक बाहर आया। मुझे देखकर बोला–भद्र, तुम हमारे छोटे भाई निपुणक हो क्या ? मैने चुपचाप उसके चरण पकड़ लिये। उसके बाद तो उसने मुझे गले लगा लिया। मैने कहा-आर्य आप मुझे छोड़ दे। मै आपका झूठा भाई हूँ। क्योकि मैने सदा आपको दु:ख ही पहुँचाया है। कर्पूरक कहता है कि मित्र मेरे इस चातुर्यपूर्ण व्यवहार का परिणाम तो देखो। उसने (चतुरक ने) दुकानदार से कहा कि मेरा चिर वियुक्त भाई मिल गया है। अत: हम और मदिरा पान करेंगे। हारदत्त द्वारा दिया गया वह हार तुम लेलो। उस समय मैने अपने पुराने वस्त्र खण्ड से थोड़ा सुवर्ण निकालकर देते हुये चतुरक से कहा कि, आर्य, आप इसे ग्रहण करें। मैंने बहुत सा धन कमाया है। उसने छोटे भाई का धन कहकर पहले तो अस्वीकार कर दिया। किन्तु मैने उसे समझाया। उसके बाद वह मदिरालस होकर निद्रा मग्न हो गया। मैने मदिरा के प्याले का चुम्बन मात्र किया था, उसे पिया नहीं। अत: मुझे नशा नही हुआ था। उसके सो जाने पर मैने उसके गले से हार निकाल लिया और चलता बना।

इसी बीच घबराया हुआ सा विरोधक आता है। पूछने पर पता चलता है कि वह चन्दनक को बधाई देने आया है। क्योंकि राजपुरुषों द्वारा हारदत्त पकड़कर निकाला जा रहा है। इसके भृत्य चतुरक ने नकली सोना देकर शौण्डिक को ठगा है

तथा दूसरे भृत्य निपुणक ने हारदत्त का हार देने के बहाने ठगी गई चन्द्रसेना का सर्वस्व चुरा लिया और तुम्हारी (कर्पूरक की) प्रतिपक्षभूता कुट्टिनी कलावती को उसकी पुत्री विलासवती ने गणिकाओ के सामने ही कसम खिलाकर जन्म भर के लिये छोड़ दिया। यह सुनकर कर्पूरक को बड़ी प्रसन्नता होती है। वह कहता है कि अब पीयूषसिन्धु नक्र रहित हो गया, काव्यगोष्ठी दुर्जनकथा रहित हो गयी और चन्दनलता भुजगी रहित हो गयी।

कर्पूरक के पूछने पर विरोधक कहता है कि मैने एकान्त में कलावती से कहा कि यह तुम्हारी पुत्री द्यूतकर कर्पूरक मे आसक्त है। तुम्हारा सब धन खोदकर उसे दे देगी। अत उससे सावधान रहना। फिर विलासवती से यो कहा कि तुम्हारी यह माता तुम्हारे कर्पूरक के प्रति आकृष्ट होने से नाराज है और तुम्हारा धन लेकर भाग जायेगी। अत. रात मे उसकी चौकसी रखना। वही हुआ। रात्रि के प्रथम प्रहर मे कलावती को विलासवती ने पकड़ लिया और उसका जुट्टा खीचकर मारा और निकाल दिया।

कर्पूरक चन्दनक से कहता है कि भगवान् मणिभद्र की कितनी कृपा है। दो तीन दिन मे ही हम लोग कृतकृत्य हो गये। उसी समय आकाशवाणी होती है—'वत्स कर्पूरक! मै तुम्हारी भक्ति से उतना प्रसन्न नही हूँ जितना कि उस दिन के तुम्हारे रोष भरे उपालम्भ से। बोलो तुम्हारा क्या प्रिय करूँ'। कर्पूरक आश्चर्य और प्रसन्नता में कहता है—भगवन्! प्रसन्न हो, मेरी दुर्विनय क्षमा करे। आपने हमारे शत्रु को विपत्ति मे डाल दिया और हमारा मनोरथ सफल किया। मेरे प्रमदासुख के सब अन्तराय समाप्त हुये। अत मै तो कृतार्थ हूँ। इसके बाद कर्पूरक द्वारा पढे गये भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

बहुत छोटा होते हुए भी कथानक संघर्षप्रधान एवं रोचक है। छल, माया तथा कपट द्वारा प्रतिद्वन्द्वी को परास्त करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। मुख्यपात्र कर्पूरक है, यही नायक है। इसकी प्रेमिका विलासवती ही इस भाण की नायिका है।

छोटा होते हुए भी कथानक पूर्ण है। कपूरक तथा विलासवती की कहानी तो आधिकारिक है तथा चन्दनक और चन्द्रसेना का प्रसंग पताका। इस पताका में चन्दनक कर्पूरक (नायक) का अनुनायक है क्योंकि इसे भी अपने प्रतिद्वन्द्वी हारदत्त के सगटग्रस्त हो जाने से चन्द्रसेना रूप फल की प्राप्ति हुई है।

सन्धि

कर्पूरक द्वारा माया, छल आदि का महत्त्व बताना **बीज** अर्थ प्रकृति है। उस माया और छल की कहानी का आरम्भ (कर्पूरक का मंजीरक के यहाँ दूत बनकर जाना आदि) **आरम्भ** कार्यावस्था है। इनके समन्वय से बनी **मुख** सन्धि मे कर्पूरक द्वारा अपनी प्रेमिका विलासवती से सम्बन्ध की कहानी विस्तर सुनाना, मंजीरक के यहाँ विलासवती की माँ का दूत बनकर जाना, चन्द्रसेना का सर्वस्व चुरा लेना,

चतुरक को धोखा देकर उसके गले में पडा हार लेकर चम्पत हो जाना आदि मुख्य घटनाये हैं। राजपुरुषो द्वारा हारदत्त के पकडे जाने की प्रसन्नता में विरोधक का चन्दनक को बधाई देना तथा कर्पूरक को यह सूचना देना कि तेरी प्रतिपक्षभूता कुट्टिनी कलावती को विलासवती ने सदा के लिए निकाल दिया है—**कार्य** अर्थ प्रकृति है तथा कर्पूरक का यह कथन कि मित्र चन्दनक, भगवान् मणिभद्र की कृपा से दो तीन दिन मे ही हम सब कृतकृत्य हो गये—**फलागम** कार्यावस्था है। इन दोनों के संयोग से बनी **निर्वहण सन्धि** मे विरोधक द्वारा हारदत्त के पकडे जाने का समाचार तथा विलासवती द्वारा अपनी जरती कलावती का निकाला जाना, कर्पूरक और चन्दनक का प्रसन्न होना आदि मुख्य घटनायें है।

सन्ध्यंग

इस भाण मे छल तथा धूर्तता की प्रधानता है। अत. माया (कपट, छल) की महत्ता, बताना **उपक्षेप** नामक मुख सन्ध्यंग है।[1] मुख सन्धि के शेष अंग यहाँ प्राप्त नही होते।

कर्पूरक का अपनी प्रिया विलासवती के कुट्टिनी विरहिता होने से अत्यन्त प्रसन्न होना **समय**[2], कर्पूरक का चन्दन से यह कथन कि मित्र, भगवान् मणिभद्र की कृपा से दो तीन दिन मे ही हम कृतकृत्य हो गये—**आनन्द**[3], आकाशवाणी द्वारा भगवान् मणिभद्र का कर्पूरक से यह कथन कि वत्स, हम तेरी भक्ति से उतने प्रसन्न नहीं हुए जितने कि तेरे रोषगर्भ उपालम्भ से—लब्धार्थ-शमन होने से **कृति**[4], कर्पूरक का अपनी मनोरथ पूर्ति से प्रसन्न होकर यह कथन कि हमारे शत्रु विपत्ति मे पड़े—**भाषण**[5] तथा अन्त मे भरतवाक्य के रूप मे लोककल्याणकामना **प्रशस्ति** नामक निर्वहण सन्ध्यग है।

नाट्यालंकार

भवानी के मन्दिर मे वीणा बजाकर विलासवती द्वारा यह प्रार्थना कि मेरा कर्पूरक से वियोग न हो **याच्ञा**[6], कर्पूरक द्वारा चन्दनक को वह सब वृत्तान्त सुनाना जब कि वह (कर्पूरक) विलासवती की कुट्टिनी कलावती का दूत बनकर मंजीरक के पास गया—**आख्यान**[7] है। कर्पूरक द्वारा कलावती का दूत बनना, चतुरक को उसका भाई निपुणक बनकर धोखा देना आदि **कपट** नामक नाट्यालंकार है।

---

१. श्लो० ७।
२. श्लो० ३०।
३. पृ० ३५।
४. पृ० ३५।
५. श्लो० ३१।
६. श्लो० १०।
७. पृ० २७–२९।

लास्यांग

मदनोत्तापिता विलासवती द्वारा प्राकृत मे पढी हुई गाथा **स्थितपाठ्य**[1] तथा विलासवती का भवानी के मन्दिर मे वीणा बजाते हुये विविध प्रकार का गान **गेयपद** लास्यांग है।[2]

पात्र

कर्पूरक इस भाण का मुख्य पात्र है, नायक है। वह विलासवती वेश्या में अनुरागवान् होते हुये भी धीरोद्धत प्रकृति का नायक है तथा छल, माया, कपट में बड़ा कुशल है। मजीरक के पास विलासवती की कुट्टिनी कलावती का दूत बनकर गया और उसे मूर्ख बनाया, चन्द्रसेना को धोखा दिया तथा उसका धन चुरा लिया, चतुरक का भाई बनकर उसे धोखे मे डाला और उसका हार लेकर चम्पत हो गया, विलासवती तथा कुट्टिनी कलावती को ऐसी चाल पट्टी पढाई कि विलासवती ने सदा के लिये कुट्टिनी को भगा दिया। विलासवती की प्राप्ति मे वह कोई विघ्न नही चाहता था। इसीसे भाण के अन्त मे वह कहता है कि प्रमदा सुख में जो अन्तराय था वह समाप्त कर दिया। इस प्रकार कपट, माया, छल, धोखा, चोरी आदि सभी बातो मे कर्पूरक प्रवीण है।

कर्पूरक का सहायक उसका मित्र चन्दनक है, जो इस भाण का अनुनायक है। क्योकि अपने प्रतिद्वन्द्वी हारदत्त को अपमानित होना हुआ देखना उसका उद्देश्य था जो सफल हो गया। मजीरक तथा चतुरक का चरित्र भी कथा विकास मे सहायक है।

नायिका विलासवती का चरित्र विशेष विकसित नही हो सका है। कर्पूरक द्वारा बताई गई घटना से पता चलता है कि विलासवती मुग्धा नायिका है जिसका कर्पूरक के प्रति अनन्य अनुराग है। मन्दिर मे देवी भवानी से वह कर्पूरक से सदा अवियुक्त रहने की प्रार्थना करती है। मजीरक के प्रति उसका अनुराग लेशमात्र भी नहीं है। गणिका चन्द्रसेना हारदत्त की प्रेयसी है। उसके चरित्र का विकास नही दिखाया गया है।

रस तथा वृत्ति

कर्पूरचरित भाण मे सभोग शृंगार मुख्य रस है। नायक नायिका उसके **आलम्बन**, चन्द्रबिम्ब, मान के कारण दीर्घ वियोग **उद्दीपन**, अन्य कार्य मे मन न लगना, प्रिय का गोत्राक ग्रहण, भगवती से प्रार्थना आदि **अनुभाव** तथा लज्जा आदि **सचारीभाव** है। नायक विलासवती की रति मे किसी प्रकार का विघ्न नही चाहता।

---

१. पृ० २५ (प्राकृत गाथा)

२. श्लो० १०।

इसी से कुट्टिनी कलावती को प्रिया के पास से हटा देने के लिये वह धूर्तता भी करता है। उसे हटवा कर निर्विघ्न प्रमदासुख प्राप्ति से वह आनन्दित होता है। कर्पूरक द्वारा दूत बनकर मजीरक के पास जाना, चतुरक का भाई बनकर उसे धोखे मे डालना आदि प्रसंगो मे गौण रूप से हास्य रस भी है।

कैशिकीवृत्ति

विलासवती द्वारा चन्द्रातप से आहत होकर मान छोड़कर प्रिय से स्पष्ट कह देना कि चाहे सखियाँ मेरी इस दुर्बलता पर ठट्ठा देकर हँसे, पर मै तो मान छोड़ बैठी तथा तुम्हारे समस्त अपराध इस चन्द्र ने दूर कर दिये—आदि कथन **माननर्म** है[1]। भवानी के मन्दिर में वीणा बजाती हुई विलासवती की यह प्रार्थना कि मेरा प्रिय से अवियोग रहे—**आत्मोपक्षेप**[2]**नर्म** है।

भारतीवृत्ति

वीथ्यंग—कर्पूरक द्वारा द्यूतक्रीडा विहीन तथा वेश्याओ से विमुख व्यक्ति के धन को स्वप्न धन कहना—दोषो मे भी गुणो का आख्यान करने से **मृदव** है।[3] विलासवती का चन्द्रमा मे अग्नि की स्थिति बताते हुये प्रकारान्तर से अपनी मदन-व्यथा प्रकट करना अन्यार्थपरक होने से **अवस्यन्दित** है।[4] विलासवती के केलिगृह मे लिखे हुये श्लोक मे मंजीर तथा कर्पूर पदो का व्यक्तिपरक से भिन्न अन्यार्थ (नूपुर तथा कपूर) ग्रहण करने से यह भी **अवस्यन्दित** है।[5] दूत के रूप मे कर्पूरक का मजीरक को यह विश्वास दिलाना कि विलासवती आप मे ही अनुरक्ता है, उसका अन्य व्यापारो मे मन नही लगता—यह कथन द्वयर्थक है। दूसरा अर्थ है कि आप जैसे भोडे आदमी मे बिल्कुल अनुरक्ता नहीं है। अतः श्रुतिसाम्य के आधार पर अनेकार्थ होने से यह **त्रिगत** नामक वीथ्यग है।[6]

प्रहसनांग

कर्पूरक द्वारा विलासवती की कुट्टिनी कलावती का दूत बनकर मंजीरक के पास जाना और उससे विलासवती के प्रेम की द्वयर्थक, झूठी तथा छल फरेब की बाते करना, हास्यजनक होने से **व्यवहार** है। साथ ही कर्पूरक द्वारा चतुरक का भाई निपुणक बनकर उसे धोखे मे डालना, चतुरक के शराब पीकर बेहोश हो जाने पर उसका हार उतार लेना—यह प्रसग भी हास्य परक होने से **व्यवहार** नामक प्रहसनाग है।

---

१. श्लो० १३।
२. श्लो० १०।
३. श्लो० ८।
४. श्लो० १२।
५. श्लो० २०।
६. सा रागभृतहृदया असदृशरूपस्य सकलसुजने।
तव विग्रहस्य विरतिमभिलषत्यनन्यव्यापारा॥ (श्लो० २१)

कर्पूरचरित अन्य भाणो की अपेक्षा कुछ विलक्षणता लिये हुये है । इसमे अनेक परम्पराओ का निर्वाह नही किया गया है । उदाहरणार्थ यह प्रथम भाण है जिसमे प्रस्तावना आकाशभाषित द्वारा की गई है और इसलिये वह भाण का एक अंग है । जब कि अन्य भाणो मे प्रस्तावना भाण का अग नही होती । क्योकि उसमे सूत्रधार, नटी, मारिष आदि पात्र साक्षात् उपस्थित होते है । दूसरे, अन्य भाणो की अपेक्षा इसमे प्राकृत का अत्यधिक प्रयोग हुआ है । तीसरे, केवल यही एक ऐसा भाण है जिसमें नायक धीरोद्धत है । अन्य सभी भाणो की भाँति धीरललित नही । चौथी विशेषता इस भाण की यह है कि इसमे अन्य भाणो की भाँति वेशवाट की झाँकी, मेषयुद्ध, कुक्कुट युद्ध आदि मनोरंजन तथा प्रातः दोपहर एवं सायं के समय प्रकृति-वर्णन का सर्वथा अभाव है । इसका कथानक भी अन्यो की अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकार का है । छल, माया, कपट, धूर्तता आदि का जितना निदर्शन इस भाण मे है उतना अन्यत्र नही । आकार में अत्यन्त छोटा होते हुये भी इसका कथानक अपने मे पूर्ण, सरस तथा रोचक है । इस प्रकार भाण साहित्य मे कर्पूरचरित एक नई विद्या तथा नई व्यवस्था लिये हुये है ।

शृङ्गारतिलक-भाण

(अय्याभाण)

कवि रामभद्र दीक्षित द्वारा विरचित शृंङ्गारतिलक भाण का दूसरा नाम अय्याभाण भी है। कवि का समय १७वीं शताब्दी का अन्त तथा १८वी शताब्दी का आरम्भ है। इसमे नायक भुजगशेखर द्वारा प्रेयसी हेमागी से प्रणय प्रसंग एव उसकी विदा मे मन्दारक की सहायता से विघ्न डलवा देना मुख्य कथा है। सघर्षप्रधान वर्ग मे आने वाला यह एक मध्यम आकार का भाण है जिसमे २३४ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र	पुरुषपात्र
हेमागी—नायिका	भुजंगशेखर—नायक
वासन्ती—मन्दारक की प्रेयसी (राजन्यचित्रसेन की पत्नी)	मन्दारक—अनुनायक—
मरालिका—कलहस की प्रेयसी	कलहंस—पताकानायक
सारगिक—गणदत्त उपाध्याय की विधवा-कन्या	नारायण भट्ट—ढोगी, पौराणिक
चन्द्रलेखा, चित्रलेखा } मित्रविन्द की नृत्य शिष्याये	गणदत्त उपाध्याय—ढोगी, भोग-परायण ब्राह्मण
लीलावती, कमलावती, पद्मावती, कमलिनी, रत्नावली, मधुरवाणी, इन्दुवदना, नवमालिका आदि } गणिकाये	धनमित्र—श्रेष्ठी
	मदनाचार्य—विवाद निर्णायक
	मित्रविन्द—नृत्य शिक्षक
	इन्दुचूड—अनगलता का प्रेमी
	कामन्तक—हेमागी का पिता
चन्द्रकला—पाण्डयराज की परिगृहीता	
मयूरिका—मरालिका की सखी	
निपुणिका—चन्द्रकला की चेटी	
सुचरिता—उधानपालिका	

नान्दी—

शृङ्गारतिलक भाण मे द्विपद्यात्मक नान्दी है। प्रथम मे भगवती सीता की लज्जालु संकोचशीला दृष्टि का तथा दूसरे मे उनके त्रपातरलित एवं प्रेम से विस्तृत कटाक्षाकुर का वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह अष्ट-पदा नान्दी है। आशीर्वादात्मक होने से यह शुद्धा है। नान्दी का आरम्भिक अक्षर

'प' नायक को सुखावह होने से यह लिपितः शुद्धा है। आरम्भिकगण तगण होने से यद्यपि नियमानुसार नायक के धनापहरण का द्योतक है। किन्तु रघुपति तथा सीता साक्षात् विष्णु और उनकी आदि शक्ति होने से—तत्परक वर्णन का आरम्भ तगण से होने पर भी मगलावह ही है।[1] अत. गणत भी नान्दी शुद्धा है।

प्रस्तावना

नान्दी के बाद सूत्रधार किसी मृगनयनी की चेष्टाओ का वर्णन करते हुये पारिपार्श्वक से कहता है कि सुन्दरेश भगवान् शिव के नित्य निवास से समस्त नगरो मे श्रेष्ठ मधुरा (आधुनिक मदुरा) नगरी मे मीनाक्षी परिणय महोत्सव देखने आये हुये वैदेशिको ने आज्ञा दी है कि मै किसी नवीन रूपक का अभिनय प्रस्तुत करूँ। स्मरण पूर्वक सूत्रधार पारिपार्श्वक को रामभद्र दीक्षित का परिचय देता हुआ उन्ही के द्वारा निर्मित नवीन भाण का अभिनन करने को कहता है। प्ररोचना के द्वारा सुन्दर काव्य, रसज्ञ सामाजिक, नृत्य कला मे अपनी कुशलता तथा सुन्दर वसन्त काल की प्रशंसा करते हुए सूत्रधार तैयारी करने का आदेश देता है। इसी समय उसे नेपथ्य मे गाया जाता हुआ एक पद्य सुनाई पड़ता है। उसे सुनकर नेपथ्य की ओर देखकर वह आने वाले पात्र का परिचय देता हुआ कहता है कि मेरी बुआ का लडका कमलेक्षक इस समय हेमागी वियुक्त भुजगशेखर की भूमिका मे आ रहा है, अतः मै चलूँ। ऐसा कहकर सूत्रधार चला जाता है। इस प्रकार यहाँ पात्र का प्रवेश वलित नामक आमुख भेद के द्वारा कराया गया है।

कथानक

रगमंच पर आकर विरहविह्वल भुजगशेखर नेपथ्य मे पढ़े हुए श्लोक को पुनः पढ़कर प्रिया वियोग का कारण बताता हुआ कहता है कि किस प्रकर रात्रि बीतते ही प्रिया हेमागी मुझे छोड़कर चली गई और उसका देवर वाभ्रव्य आज उसे यति के पास ले जायेगा। अब सभवत· प्रिया से मेरी भेट नही होगी। इस प्रकार वह सोच ही रहा था कि उसका प्रिय मित्र मन्दारक भयभीत दशा में आता हुआ दीखता है। पूछने पर विदित होता है कि मन्दारक ने राजवंश के व्यक्ति चित्रसेन की पत्नी वासन्ती के साथ प्रणय विहार किया है। अत: चित्रसेन उसे (मन्दारक को) मारना चाहता है। भु० शे० उसे अभयदान देता है। मन्दारक के पूछने पर भु० शे० भी अपनी प्रणय कथा उसे कान मे सुनाता है। मन्दारक प्रतिज्ञा करता है कि आज रात्रि के पूर्व मे तुम्हारा संयोग करा दूँगा।

इसी समय दोनो को पौराणिक नारायण भट्ट मिलता है। मन्दारक बताता है कि यह श्रोत्रिय ऊपर से तो बड़ा पुजारी पुराण पाठक एव धार्मिक लगता है किन्तु यह विधवाओ को लोभ देकर उनसे रतिरंग करता है।

१ यहा भी नैषध के प्रथम श्लोक मे निपीय मे 'जगण' के अशुभ होने पर भी नलपरक वर्णन होने से मगलवाची मानने की भाँति राम एव सीतापरक वर्णन होने से तगण भी मगलवाची ही माना जायेगा।

मन्दारक विट को यह आश्वासन देकर कि सायकाल तक अपने मित्र कामन्दक से मिलकर मैं तुम्हारी प्रेयसी से भेट करा दूगा—चला जाता है। कामज्वर पीडित विट मन्दारक की बातो पर विश्वास करता है। इसी समय भु० शे० को उसका मित्र कलहंस मिलता है। यह वेशवाट मे चन्द्रकला के द्वार पर होने वाले ऐन्द्रजालिक के खेल को देखने के लिए जा रहा है। विट भी वही अपने मित्र से बातचीत का अच्छा अवसर देखकर वेशवाट को चल देता है।

वेशवाट में घूमते हुए विट को देवरात ब्रह्मचारी आता हुआ दीखता है। उसका सिर तथा शिखा मुड़ी हुई है। पूछने पर विदित होता है कि उसने (देवरात ने) अपने गुरु गणदत्त उपाध्याय की नूतन प्राप्तवैधव्या सारगिका नाम की पुत्री (जो दो मास तक भु० शे० की प्रणयिनी रह चुकी है) के साथ अग्निहोत्र भवन के कोने मे अवसर पाकर विहार किया। यह दृश्य गणदत्त ने स्वय देख लिया और देवरात की यह दुर्दशा की। देवरात कहता है कि मै भी शीघ्र ही धनमित्र से मिलकर इसका बदला लूगा। क्योकि धनमित्र भी गणदत्त से इसलिए क्रुद्ध है कि उसकी (धनमित्र की) द्वितीय पत्नी जब देहली द्वार पर सो रही थी तो इस गणदत्त ने चुपके से आकर उसके साथ विहार किया। भु० शे० देवरात को स्वच्छन्द होकर कामोपभोग सुख प्राप्त करने का उपदेश देता है।

अब विट वेशकी विविध गणिकाओ से मिलता हुआ आगे बढता है। बालातप सेकती हुई लीलावती, भवनद्वार पर बैठी हुई कमलावती, छोटी बहिन की वेणी गूथती हुई पद्मावती, केलीमयूर द्वारा वेणी खिचवाती हुई रत्नावली, वितर्दिका पर बैठी हुई मधुरवाणी आदि वारनिताओ को सभावित करता हुआ आगे बढता है। यहाँ उसे अक्षक्रीडा मे व्यस्त इन्दुवदना तथा कलभाषिणी मिलती है। भु० शे० कलभाषिणी की और से द्यूत खेलता है। साथ ही इन्दुवदना तथा उसकी सखियों से प्रेमालाप भी करता जाता है। द्यूत की शर्त निश्चित होती है—जो जीतेगा हारने वाले का अधरपान करेगा। किन्तु विट भु० शे० खेल समाप्त होने के पहले ही ऐन्द्रजालिक का खेल देखने चल देता है। मार्ग मे विट को नवमालिका दीखती है। विट उससे बात कर ही रहा था कि नवमालिका की वृद्ध जरती जीर्ण शूप लेकर गालियाँ देती हुई जा पहुँचती है। भु० शे० ने कलत्रपत्रिका के अनुरूप उसकी बेटी को धन नही दिया—यही उसका आरोप है। दोनो विवादपरिच्छेत्ता मदनाचार्य के पास जाते है। भु० शे० बुढिया पर यह आरोप लगाता है कि यह अपनी पुत्री को अधिक धन देने वाले अन्य प्रेमी की कलत्र बनाना चाहती है। मदनाचार्य दोनो का विवाद शान्त करते है।

इसी प्रसग मे विट को नृत्य शिक्षाविशारद मित्रविन्द मिलजाता है, जो अपनी शिष्या चन्द्रलेखा तथा चित्रलेखा का नृत्य दिखलाता है। मित्रविन्द के कहने से भु० शे० चन्द्रलेखा को कलत्र बनाता है।

दूसरी और विट को एक विचित्र दृश्य दीखता है। अनगलता वकुलमाला से इन्दुचूडको बाधकर खीच रही है। चम्पकलता (अनगलता की छोटी बहिन) भी

उसके साथ है। पूछने पर विदित होता है कि छः मास से कलत्र पत्रिका के अनुसार अनंगलता इन्दुचूड की पत्नी है। किन्तु इन्दुचूड चम्पकलता को भी चाहने लगा है, इसलिये उसे यह दण्ड दिया जा रहा है। मु० शे० इन्दुचूड का पक्ष लेकर इस झगड़े को समाप्त करता है।

इसी बीच पाण्ड्यराज की परिगृहीता चन्द्रकला की बेटी निपुणिका आती है तथा मु० शे० से कहती है कि चन्द्रकला आज किसी ऐन्द्रजालिक का खेल आपके साथ देखेगी। अत उन्होने आपको बुलाया है। मु० शे० निपुणिका के साथ ही चल देता है। मार्ग मे कुक्कुट, मेष तथा मल्लयुद्ध देखता हुआ चन्द्रकला के सौध पर पहुँचता है। साक्षात्कार होने पर चन्द्रकला बताती है कि आज उसका स्वामी मृगया हेतु गया है। अत वह अपने स्वामी के मित्र के साथ ऐन्द्रजालिक का खेल देखना चाहती है। खेल आरम्भ होता है। ऐन्द्रजालिक इन्द्र, अर्जुन, ब्रह्मा और विष्णु को पृथ्वी पर दिखा देता है। समुद्र उमड़ते हुए दिखाया जाता है। शिव के पृथ्वी पर दिखाई देते ही खेल बन्द कर दिया जाता है। ऐन्द्रजालिक को पारितोषिक मिलता है। इसी बीच एक गन्धहस्ती मतवाला होकर उपद्रव मचाता हुआ तोड फोड करता हुआ निकलता है। उसके डर से चन्द्रकला अन्दर चली जाती है। विट आगे बढता है।

वेशवाट से निकलकर विट वेगवती नदी के किनारे पहुँचकर हेमागी विरह-ताप से सन्तप्त अपने अङ्गो को कुछ शीतलता प्रदान कर ही रहा था कि उसे उसका मित्र कलहंस मिल जाता है। कलहंस विट से पूछता है कि तुम्हारे शरीर मे ज्वर कैसा ? मु० शे० हेमांगी विरह को ही ज्वर का कारण बताता है। कलहंस के यह पूछने पर कि कहाँ तो तुम मधुरा (मदुरा) नगर के रहने वाले और कहाँ रग-पुरी की रहने वाली हेमागी—तुम्हारा संयोग कैसे हुआ ? मु० शे० अपनी प्रणय गाथा सुनाते हुये कहता है—कुछ दिन से हेमांगी को उसका बड़ा भाई कलाधर रंग-नगर से यहाँ ले आया और यही मेरा उससे संयोग हुआ। कल रात चन्दोदय होने पर जब मै वेशवाट को जा रहा था उस समय राजभवन से छूटे हुये राजशार्दल के डर से मै हेमांगी के पिता कामान्तक के निष्कुटवन में अकेला ही जा घुसा। वहाँ कामान्तक के घर से आती हुई मनोहर गानध्वनि का अनुसरण करता हुआ घर में प्रविष्ट हुआ। वहाँ धान्य कुम्भी से अपने को छिपाकर मैने देखा कि मां के पास बैठी हुई हेमागी गा रही है। मै वही प्रतीक्षा करता रहा। परिवार के समस्त व्यक्तियों के सो जाने पर मैने अवसर पाकर सोती हुई हेमागी को उठा लिया और उसी के निष्कुट वन मे ले गया। थोड़ी देर मे उसके जगने पर मै छिप गया तथा उसके आश्चर्य करने पर मैने सामने आकर अपना नाम बताया तो मुझ मु० शे० को पहचानकर आश्वस्त होकर उसने मेरे साथ प्रणय किया। किन्तु शीघ्र ही वह यह कहकर चली गई कि मै आज ही देवर के साथ पतिगृह चली जाऊंगी। कलहंस मु० शे० को समझाता हुआ कहता है कि मन्दारक उसकी विदा मे विघ्न अवश्य डालेगा।

इसी समय उद्यान पालिका सुचरिता के सूचना देने पर दोनों मित्र उपवन में

जाते है जहाँ उन्हे मित्र मन्दारक मिल जाता है। मन्दारक बताता है कि तुम्हारा काम बन गया। सखी शारिका की सहायता से तुम दोनो के उद्यान मे पुनर्मिलन का समय भी निश्चित हो गया है। मन्दारक कहता है—मैने उसकी विदा के समय ही छीक करवादी। ज्योतिपी मालव ने छीक को अपशुकन बताया और निश्चित कर दिया कि आगामी तीन मास तक अब विदा का कोई मुहुर्त नही है। अत. विदा की तैयारी समाप्त हो गई। हेमागी निप्कुट वन मे जाकर तुम्हारे वियोग मे तड़प ही रही थी कि उसी समय वहाँ शारिका पहुँची। उसे तुम्हारी सखी जानकर हेमागी ने विरह दशा अभिव्यक्त की। शारिका ने भी तुम्हारी दशा का वर्णन किया तथा आज रात मे मन्दिरोद्यान मे लाकर उसे तुमसे मिला देगी।

मन्दारक के यह पूछने पर कि पतिगृह मे रहती हुई हेमागी से तुम्हारा प्रेम कैसे हुआ—भु० शे० कहता है—एकवार मै अपने मित्र कलहंस के साथ रगनगरी पहुँचा। वहाँ श्रीरंगनाथ के दर्शनार्थ पडोसिन के साथ आई हुई हेमांगी को देखकर मै उस पर मुग्ध हो गया। वह सुन्दरी भी मुझ पर आसक्त होगई। एक दिन उसने नव किसलय पर नख से लिखकर एक पत्र मेरे पास भिजवाया जिसमे लिखा था—'प्रिय, भीमभुजगावृत चन्दनलता को यदि कोई रसिक नहीं लेता है तो इसमे उस लता का क्या बिगड़ता है।' पत्र पढकर मैने पत्रवाहिका चन्द्रिका से कह दिया कि हेमागी जब अपने मायके जायेगी तो मै उससे मिल लूँगा। उसके बाद की घटना तो तुम्हे मालूम ही है।

इसी समय मरालिका की सहचरी मयूरिका फूल चुनती हुई दिखायी देती है। पूछने पर मालूम होता है कि कलहस के वियोग मे मरालिका की बहुत बुरी दशा है। उसी के शिशिरोपचारार्थ फूल लेने जा रही हूँ। भु०शे० कलहस को मयूरिका के साथ मरालिका से मिलने भेज देता है।

इसी बीच सूर्यास्त हो जाता है। चारो ओर अंधेरा छा जाता है। भु० शे० हेमागी के आने मे देर होते देखकर बेचैन होने लगता है। इसी बीच रक्ताशोक के पास पदशब्द सुनाई देता है। ढूंढने पर शारिका तथा उसके साथ हेमांगी दिखायी पड़ती है। हेमागी भु० शे० के सामने लज्जावनत हो जाती है। शारिका उसे समझाती है। इस प्रकार नायक नायिका की मनोरथ पूर्ति के बाद भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

इस भाण मे भु० शे० तथा हेमागी का कथानक मुख्य होने से **आधिकारिक** तथा मन्दारक और कलहंस के कथानक क्रमश. **पताका** और **प्रकरी** है। इस भाण के कथानक में यह एक विचित्र बात है कि मुख्य कथा के आरम्भ के बाद वेशवाट का लम्बा चौडा प्रसङ्ग चलता है और भाण की लगभग समाप्ति पर मुख्य कथा का विस्तार और विकास होकर तब उपसंहार होता है।

पताकास्थानक

आलोच्य भाण मे अनेकत्र पताकास्थानक का प्रयोग हुआ है। आरम्भ मे रजनी के कारण वियुक्त चक्रद्वन्द्व तथा रात भर नवकुमुदिनी का भोग करके प्रात. खिले हुये कमल का आनन्द लेने वाले चचरीक का वर्णन नायक भु० शे० द्वारा हेमागी के साथ किये गये रमण और वियोग का द्योतक होने से **तुल्यसविधान पताकास्थानक** है।[1] इसी प्रकार शशाक द्वारा रजनी का स्वच्छन्द उपभोग करके चले जाने का सकेत भी भु० शे० के प्रति होने से—यह भी **तुल्यसविधान पताकास्थानक** है।[2] भाण के अन्त मे सूर्यास्त के वर्णन मे कहा गया है कि सूर्य मानिनी प्रिया पद्मिनी को मनाकर, दिग्वधुओ का परिरम्भण प्राप्त करके अब अनुरक्ता दिनश्री के साथ एकान्त मे विहार करने के लिये वह पश्चिम गिरि पहुँच गया। यह वर्णन भी यहाँ भु० शे० तथा कलहस की प्रणय कथाओ के प्रति संकेत होने से **तुल्यसविधानपताकास्थानक** है।[3]

सन्धि

भाण के आरम्भ मे भु० शे० द्वारा यह कल्पना कि इस निष्कुटवन में कदम्ब वृक्ष के नीचे प्रिया के साथ अब पुन सुरत होगा कि नहीं—**बीज**[4] अर्थप्रकृति है तथा दक्षिणभुज फडकने से उस मनोरथ के पूर्ण होने की आशा और उत्साह **आरम्भ**[5] कार्यावस्था है। इन दोनो के सयोग से बनी **मुखसन्धि** मे नायक द्वारा अपना विरह-कथन, मन्दारक की सहायता, पौराणिक नारायण भट्ट, ब्रह्मचारी देवरात, आचार्य गणदत्त आदि के आडम्बर ओर ढकोसले तथा वेशवाट का लम्बा वर्णन है। भाण का लगभग दो तिहाई भाग समाप्त होने पर विट द्वारा हेमागी का पुनः स्मरण **कार्य**[6] अर्थप्रकृति तथा मन्दारक द्वारा हेमागी की प्राप्ति का सन्देश देना—**फलागम**[7] कार्यावस्था है। इन दोनो के समन्वय से बनी **निर्वहण** सन्धि मे भु० शे० द्वारा कलहस से हेमांगी विषयक अपनी प्रीतिकथा आरम्भ से अन्त तक सुनाना, मन्दारक के प्रयत्न से हेमांगी की विदा मे विघ्न पड जाना, कलहंस को मरालिका, की प्राप्ति, शारिका के दौत्य से भु० शे० को हेमागी की प्राप्ति आदि घटनाये सम्मिलित है।

सन्ध्यग

भजङ्गशेखर द्वारा निष्कुटवन मे कदम्ब वृक्ष के नीचे प्रेयसी हेमांगी के साथ पुनः सुरत की कामना **उपक्षेप**[8], दक्षिणभुज फडकने से विट को मनोरथ प्राप्ति की

१ श्लो० २२।
२. श्लो० ३१।
३. श्लो० २१९।
४. श्लो० १६।
५. पृ० ७ (स्पन्दत इवैष दक्षिणोभुजदण्ड। तन्मे फलिष्यति मनोरथः।)
६. पृ० ५०।
७. श्लो० ६०, ६१।
८. पृ० १६।

आशा **परित्याग**[१], मन्दारक द्वारा यह आश्वासन कि आज सायकाल से पूर्व तुम्हारा प्रेयसी से सयोग करा दूँगा—बीज का कथन होने से **समाधान**[२] नामक मुखसन्ध्यग है ।

वेगवती के किनारे उद्यान मे बैठकर भु० शे० को हेमागी का पुन. स्मरण हो आना बीज का स्मरण होने से **सन्धि** है ।[३] मन्दारक द्वारा हेमागी को पतिगृह जाने से रोकने के लिये किये गये उपाय का कथन **विबोध**[४] है । मन्दारक द्वारा हेमागी की विदा मे विघ्न डालने विषयक समाचार विस्तार पूर्वक सुनाना, भु० शे० द्वारा हेमागी से रंगनगरी मे हुये पुराने प्रणय सम्बन्ध का कथन अनुभूत आख्या होने से **निर्णय**[५] है । शारिका द्वारा हेमागी के अभिसरण पूर्वक आने की सूचना से भु० शे० का प्रसन्न होना **आनन्द**[६], विट की प्रसन्नता, हेमागी का रूप वर्णन, अधरामृत प्राप्त करने की इच्छा दु खसमाप्ति की द्योतक होने से **समय**[७], भु० शे० द्वारा मन्दारक की सहायता, अपनी सफलता, स्वयं मन्दारक की प्रतिज्ञापूर्ति आदि का वर्णन **भाषण**[८] तथा अन्त मे भरत वाक्य के रूप मे शुभाकाक्षा **प्रशस्ति** नामक निर्वहण सन्ध्यग है ।

सन्ध्यन्तर

मन्दारक द्वारा राजन्यदारा वासन्ती से प्रेम और जीवन को खतरे मे डालकर उसका निर्वाह **साहस**[९] तथा मन्दारक द्वारा हेमागी की विदा में विघ्न डालना, पुरोहित को उत्कोच देकर उससे यह कहलवा देना कि अभी तो तीन माह तक विदा की शुभ लग्न नही है—आदि घटना भी **साहस** है ।[१०] हेमागी द्वारा नख से नव-किसलय पर लिखकर चन्द्रिका के हाथ भु० शे० को दिया गया पत्र **लेख**[११], हेमागी का भु० शे० के पास आना, लज्जावती होकर खड़े हो जाना **ह्री** नामक सन्ध्यन्तर है ।[१२]

नाट्यालंकार—

नायक भु० शे० का निष्कुटवन मे कदम्ब वृक्ष के नीचे अपनी प्रेयसी के साथ

---

१. पृ० ७ ।
२. श्लो० ४३ ।
३. पृ० ५० ।
४. पृ० ६१ ।
५. पृ० ६१–६४ ।
६ पृ० ६८ ।
७. पृ० ६६ ।
८. श्लो० २३३ ।
६. पृ० ८ ।
१० पृ० ६१ ।
११. श्लो० २१३ ।
१२. पृ० ६६ ।

पुनः रमण की इच्छा **स्पृहा**[1], प्रिया का वक्त्राम्बुज पुनः प्राप्त करने की आशा **आशसा**[2], उस मृगशावविलोचना से पुन भेंट होने की विधि से याचना करना **याच्ञा**[3] नायक मु० शे० द्वारा मन्दारक को चित्रसेन से बचाने की प्रतिज्ञा **अध्यवसाय**[4], तथा मन्दारक के लिए दिया गया आश्वासन **साहाय्य** नाट्यालंकार है। मन्दारक द्वारा मु० शे० को हेमागी से मिला देने की प्रतिज्ञा **अध्यवसाय**[5], विट द्वारा मन्दारक से बातचीत करते हुए पौराणिक नारायण भट्ट के साथ अपने प्राचीन सम्बन्धो तथा उन घटनाओ का स्मरण करना **आख्यान** है। वेश मे प्रविष्ट हुए मु० शे० की कल-कठी के साथ रमणेच्छा **स्पृहा**, अनगलता तथा चम्पकलता को निरन्तर सुरतोत्सव प्राप्न करने का आशीर्वाद **आशीः**[6], मदनाचार्य तथा मु० शे० में परस्पर विदा होने के समय का प्रेम और विनय भरा व्यवहार **अनुवर्तन**[7] है। कलहस द्वारा मु० शे० को मित्र मन्दार के प्रयत्न पर विश्वास करने को कह उसकी मनोरथ प्राप्ति के लिये उत्साहित करना **प्रोत्साहन** नामक नाट्यालकार है।[8]

भाण्यङ्ग

ब्रह्मचारी देवरात द्वारा अपने गुरु श्रोत्रिय गणदत्त उपाध्याय से प्रतीकार लेने का निश्चय तथा क्रोध पूर्वक उन्हे उपालम्भ देना **समर्पण** है।[9] विट द्वारा रत्नावली से यह पूछने पर कि तुम्हारी वेणी खीचने वाले इस केलिमयूर को क्यो मार रही हो—रत्नावली कहती है—कि तुम्हारे द्वारा आचरणीय व्यवहार (वेणी पकड़ना आदि शृंगार चेष्टाये) यह दुष्ट कर रहा है। अत. अन्य प्रसग से अपना अभिप्राय कथन किये जाने से यह **उपन्यास** नामक भाण्यग है।

शिल्पकांग

विट द्वारा हेमांगी के साथ सुरत की कामना **आशंसा** और हेमागी के अपने देवर के साथ चले जाने की कल्पना से मु० शे० का साश्रु गद्गद रुदन **वाष्प** है।[10] विट का सशय कि हेमागी आज ही पतिगृह चली जायेगी, तब यह मन्दारक मेरा

---

१. श्लो० १६।
२. श्लो० १७।
३. श्लो० २०।
४. श्लो० २४।
५. पृ० १०।
६. श्लो० १३६।
७. पृ० ४३।
८. पृ० ५६।
९ पृ० १६, १७।
१०. श्लो० १६।

उससे सम्बन्ध कैसे करा सकेगा—**सन्देह** नामक शिल्पकांग[1] है। प्रिया की विरह वेदना मे विट का परितप्त होना—**ताप**, कलहंस द्वारा भु० शे० को प्रिया प्राप्ति के प्रति आश्वासन पूर्वक धैर्य बंधाना **आश्वास**, विट द्वारा कलहंस को अपने चातुर्य और साहस की बात बताना कि किस प्रकार सोती हुई हेमागी को निष्कुट वन मे ले गया—**वैशारद्य**, हेमागी द्वारा पुन. निष्कुट वन में प्रविष्ट होकर भु० शे० जन्य विरह वेदना मे सतत रति प्रसङ्गो, कामकेलियो को स्मरण करके दुखी होना **विलाप**[2], मरालिका की वियोग दशा का वर्णन **ताप**, हेमागी की प्राप्ति से भु० शे० का प्रसन्न होना **प्रहर्ष** तथा मन्दारक द्वारा हेमागी की विदा मे विघ्न डलवाना तथा दोनो का सयोग करा देने का कार्य **प्रयत्न** नामक शिल्पकांग है।

लास्याङ्ग

आलोच्य भाण मे लास्याग बहुत कम है। मधुर वाणी का अपने प्रेमी की स्तुति मे पढा गया प्राकृत श्लोक—जिसमे उसकी मदनव्याधि स्पष्ट है—**स्थितपाठ्य**[3] तथा मित्रविन्द की चन्द्रलेखा, चित्रलेखा आदि शिष्याओ द्वारा ताललयानुसार किया गया नृत्त **पुष्पगण्डिका** नामक लास्यांग है।[4]

नेता

शृंगारतिलक भाण का नायक भु० शे० है। यह धीरललित प्रकृति का शठ नायक है। क्योंकि प्रधान नायिका हेमागी के अतिरिक्त रत्नावली, कचनलता, चन्द्रलेखा आदि से भी इसका सम्पर्क है। यही नही मदनाचार्य के कहने पर विट चन्द्रलेखा को कलत्र तक बना लेता है। नायक भु० शे० जहाँ एक ओर प्रेमी तथा रसिक प्रकृति का है वहाँ दूसरी ओर वीर तथा साहसी भी है। मित्र मन्दारक की चित्रसेन से रक्षा करता हुआ वह अकेला ही सहस्रो योद्धाओ का सामना करने को प्रस्तुत रहता है।

नायक के दो घनिष्ठ मित्र है—मन्दारक तथा कलहस। मन्दारक भु० शे० का प्रत्येक उचित अनुचित उपाय द्वारा हित साधन करते हुये अपनी भी स्वार्थसिद्धि (भु० शे० द्वारा अभयदान) प्राप्त करने से अनुनायक है। मन्दारक अपने बुद्धि चातुर्य से नायक की बहुत बडी सहायता करता है और इसलिये वह उसका सबसे बडा हितैषी है। कलहस नायक का मित्र अवश्य है परन्तु इस प्रसंग में उससे वाचिक आश्वासन के अतिरिक्त नायक को कोई विशेष सहायता नही मिलती है। साथ ही कलहस को अपनी प्रेयसी मरालिका भी प्राप्त हो जाती है जिसके साथ प्रणय सम्बन्ध की इसके पूर्व कोई चर्चा नही की गई है। कलहंस का यह प्रसङ्ग

१. श्लो० ४८।
२. पृ० ६१।
३. श्लो० ७६।
४. श्लो० ११८-१२०।

प्रकरी होने से वह प्रकरी नायक माना जायेगा। इन दो के अतिरिक्त अन्य पुरुष पात्रो मे पौराणिक नारायण भट्ट, ब्रह्मचारी देवरात, आचार्य गणदत्त, मदनाचार्य, इन्दुचूड आदि के प्रसङ्ग भी कथानक के विकास मे सहायक है।

हेमागी इस भाण की परोढा मुग्धा नायिका है। अवस्था की दृष्टि से यह अभिसारिका है। क्योकि विदा मे विघ्न पड़ने के बाद शारिका की सहायता से सूर्यास्त के बाद घोर अन्धेरा छा जाने पर वह छिपकर उपवन में जाती है जहाँ पहले से ही उपस्थित भु० शे० से उसका समागम होता है। हेमांगी के अतिरिक्त अन्य तरुणियो रत्नावली, काचनलता, चन्द्रलेखा आदि) से भी नायक का सम्बन्ध है। किन्तु इससे अपरिचित होने के कारण हेमागी के लिये ये तरुणियाँ ईर्ष्या का विषय नही बनती। अनुनायिका राजन्यदारा वासन्ती तथा कलहंस की प्रेमिका प्रकरीनायिका मरालिका के चरित्र का विकास भाण में नही हुआ है। शेष लीलावती, कमलावती, रत्नावली आदि वेशरमणियो के प्रसंग आरम्भ होकर वही समाप्त हो लेते है। अतः कथानक के उन्नयन में ये विशेष सहायक नही होते।

रस तथा वृत्ति

शृंगार तिलक भाण में मुख्य रस विप्रलम्भ शृंगार है। निष्कुटवन मे सयोग के बाद भु० शे० तथा हेमागी का वियोग होता है। यहाँ नायक तथा नायिका **आलम्बन**, नायिका का देवर के साथ पतिगृह जाने का निश्चय, हेमागी का अद्भुत रूप, वसन्त ऋतु की मादकता आदि **उद्दीपन**, नायक नायिका का मदन-सन्ताप से जलना, नायक का मदनव्याधि से जीवन ही संशय मे पड़ जाना, नायिका का निष्कुटवन मे आकर पूर्वभुक्त पदार्थों का, नायक की रति चेष्टाओ का स्मरण, चिन्तन आदि **अनुभाव** तथा लज्जा, स्मृति, औत्सुक्य आदि **संचारीभाव** है। इनके संयोग से निष्पन्न हुआ शृगार यहाँ मुख्य रस है।

इसके अतिरिक्त गौण रूप से ऐन्द्राजालिक द्वारा इन्द्रजाल (सागरों का बहने लगना, इन्द्र,-अर्जुन,-ब्रह्मा,-विष्णु, महेश के दर्शन आदि) प्रदर्शन के अवसर पर **अद्भुत** तथा पौराणिक नारायण भट्ट और ब्रह्मचारी देवरात के आचरण वर्णन प्रसग में **हास्यरस** भी मिलता है।[1]

कैशिकी वृत्ति

शृंगारसानुकूल कैशिकीवृत्ति के कुछ अंग इसप्रकार हैं—मन्दारक द्वारा अपनी प्रेयसी वासन्ती के साथ की गई विविध रति चेष्टाओ का भु० शे० से कथन **सम्भोगनर्म** है।[2] इसीप्रकार रतिसम्भ्रम के कारण विलुलित कौशेय तथा खिसकती हुई कांची को दोनो हाथो से सम्भालती हुई, नखाकों को छिपाती हुई संकेत मन्दिर

१. श्लो० ३५ तथा ४७।
२. श्लो० २६।

से निकलकर हड़बड़ाहट मे जाती हुई बाला का वर्णन भी **संभोगनर्म** है ।[१] विट द्वारा कमलिनी के साथ की गई रतिचेष्टाओ का कथन[२] मित्रविन्द द्वारा विट से चन्द्रलेखा तथा चित्रलेखा की भिन्न-भिन्न प्रकार की रतिभगिमाओ का वर्णन[३] भी **सभोगनर्म** है । इसप्रकार इस भाण मे कैशिकी का सम्भोगनर्म भेद पग पग पर मिलता है ।

भारतीवृत्ति

वीथ्यङ्ग

भु० शे० ब्रह्मचारी देवरात को वेदाध्ययन, तप, कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत आदि गुणो को दोष बताते हुये उन्हे छोडकर रमणी रमण करने की सलाह देता है । अत गुण को दोष और दोष को गुण के रूप में वर्णित किये जाने से यह प्रसग **मृदव** वीथ्यंग है ।[४] विट तथा कलकंठी का वार्तालाप—जिसमे वल्लकी और परतप गूढार्थवाची (वल्लकी = कलकठी, परतप—भु० शे०) होने से **उद्घात्यक** है ।[५] कौशल पूर्वक अन्यार्थ द्योतित होने से यह प्रसग **अवस्यन्दित** भी है । नवमाल्लिका के करस्पर्श से उपकृत, उसके पैरों पर गिरते हुए कन्दुक के वर्णन मे नायक के अर्थ की अभिव्यक्ति **अवस्यन्दित** है ।[६] भु० शे० द्वारा हेमागी का पत्र पढकर देवरानी, जिठानी, सास, ननद आदि के बन्धन को कारागार शृखला आदि बताकर गुणो को दोष के रूप में वर्णन करने से यह प्रसग **मृदव**[७] है ।

प्रहसनांग

पौराणिक नारायण भट्ट द्वारा पुराणो की कथा समाप्ति पर विधवाओ को बहकाकर उनसे प्रणय व्यापार करना—आत्मगृहीत आचार का परित्याग होने से **अवलगित** है ।[८] साथ ही श्रोत्रिय गणदत्त उपाध्याय द्वारा अपना पवित्र श्रोत्रियोचित आचार छोडकर धनमित्र की द्वितीय गृहिणी प्रियवदा के साथ चौर्यरति करना भी **अवलगित** नामक प्रहसनाग है ।[९]

इसप्रकार शृगारतिलकभाण के उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि यह एक सर्वांगपूर्ण भाण है—जिसका कथानक अत्यन्त रोचक, सरस तथा घटनाप्रधान है । समाज की कुरीतियों, कुप्रथाओ तथा चारित्रिक दोषो के प्रति इस भाण मे बहुत गहरे तथा तीखे व्यङ्ग्य है । इसप्रकार सघर्ष प्रधान वर्ग का यह एक और महत्वपूर्ण भाण है ।

---

१. श्लो० ३८ ।
२. श्लो० ७१ ।
३. श्लो० १२३, १२४ ।
४. श्लो० २३ ।
५. श्लो० ६४ ।
६. श्लो० ६४ ।
७. पृ० ६५ ।
८. पृ० १२ ।
९. पृ० १७ ।

कामकलाविलास भाण

कामकलाविलास भाण कवि प्रधान बेंक भूपति की कृति है। नान्दी एवं प्रस्तावना के अनन्तर रंगमच पर नायक पल्लवशेखर अपनी प्रिया चम्पकलता के वियोग में तड़पता दिखाया गया है। वह चाहता है कि किसी प्रकार उसकी प्रिया से उसके पतिगृह जाने के पूर्व भेट हो जाये। इसी बीच चतुर्दशी के गौरी महोत्सव को देखने के लिये पौरांगनाये आती है। यहाँ उसकी मित्र नूपुरक से भेट होती है जिसे पल्लवशेखर चम्पकलता से हुए प्रणय की पूरी कहानी सुनाता है। इसी बीच सूचना मिलती है कि चम्पकलता का पतिगृह जाना स्थगित हो गया है। सन्देश-वाहक के हाथ पल्लवशेखर अपनी प्रिया का पत्र पाकर और भी प्रसन्न होता है।

नायक पल्लवशेखर शठ नायक की प्रकृति का है जो प्रिया चम्पकलता से प्रेम करता हुआ भी अन्य गणिकाओ के प्रति भी अनुराग वान् है।

इस भाण के वर्णन रोचक तथा साहित्यिक कल्पनाओं से ओत-प्रोत हैं, उनमें चमत्कार है। कवि ने जिस दृश्य को लिया है उसका चित्र उपस्थित कर दिया है। कवि प्रधान बेंक भूपति वेणी सहार नाटक से बहुत प्रभावित है तथा उसके 'चञ्चद्भुजभ्रमित…' श्लोक के आधार पर श्लोक भी लिखा है। साथ ही गद्य भाग मे अलंकारो में बाण के श्लिष्टोपमा, परिसंख्या, विरोधाभास आदि का अनुकरण किया गया है।

पाण्डुलिपि के अव्यवस्थित होने से अन्य नाटचतत्त्व दुष्प्राप्य हैं। इसप्रकार अन्य भाणों की तुलना में यह एक सामान्य कोटि का भाण है।

गोपाललीलार्णव भाण

यह भाण कवि गोविन्द की कृति है। पाण्डुलिपि के विश्रृंखलित होने से भाण के अनेक अंश प्रायः अस्पष्ट हैं। रंगमंच पर नायक गोपाल प्रविष्ट होकर अपनी प्रिया कालिन्दी के वियोग मे विरह पीडित दीखता है। प्रिया की खोज मे चलते हुए उसे वेशवाट मे अनेक कामिनियाँ मिलती हैं। उनसे हास-परिहास एवं व्यङ्ग्य-विनोद करता हुआ गोपाल आगे बढ़ता है। अन्त में ज्योतिषी वेंकटदेशिक की सहायता से कालिन्दी के मन्दिर मे प्रिया कालिन्दी से भेंट होती है।

वैसे भाण पूर्ण है किन्तु कथानक कुछ विश्रृखलित और असम्बन्ध सा दीखता है। इसी से नाटच-तत्वों की व्यवस्था भी कुछ स्पष्ट नही है।

सामान्यतया भाण का कथानक रोचक तथा गतिमान् है। साहित्यिक वर्णनो मे नवीनता है। इस भाण मे भी गद्य भाग मे बाणभट्ट की शैली पर अलंकार योजना की गयी है। भाण मे रामानुज सम्प्रदाय की बड़ी खिल्ली उड़ायी गयी है। उनके वेदान्त सम्बन्धी सिद्धान्तो पर व्यङ्ग्य किया गया है।

इस प्रकार न केवल साहित्यिक दृष्टि से वरन् भाण के अंगो के अभाव के कारण भी गोपाललीलार्णव एक अत्यन्त साधारण कोटि का भाण है।

इस भाण के विवेचन के साथ ही संघर्ष प्रधान वर्ग समाप्त होता है।

चतुर्थ अध्याय

भाण-समीक्षा

भाव प्रधानवर्ग

भाव प्रधान वर्गपरिचय

१. उभयाभिसारिका

२. अनंगजीवन भाण

३ शृङ्गारसुधाकर भाण

४. शृङ्गारसर्वस्व भाण

५. कुवलयानन्द भाण (पा० लिपि)

६. शृङ्गारमंजरी भाण (पा० लिपि)

भाव प्रधान वर्ग

जैसा कि इसका नाम है—इस वर्ग के भाणों में भाव की प्रधानता होती है। नायक तथा नायिका दोनो मे मिलने की तीव्र उत्कंठा रहती है। दोनो की विरहजन्य दशा अपनी चरमावस्था पर पहुँच जाती है। किसी दूती या सखी के प्रयत्न से अन्त मे दोनो का संयोग होता है। यह सयोग इस वर्ग मे आने वाले प्राय: सभी भाणों में थोड़े बहुत अन्तर से लगभग एक प्रकार का दिखाया गया है। नायक की विरहा-वस्था के प्रति उसका कोई मित्र सहानुभूति प्रगट करता हुआ उसके प्रेमपात्र को मिला देने का आश्वासन देता है। उस मित्र की सहायता से अथवा स्वतः ही नायक को नायिका की दूती या सखी मिल जाती है। वह नायिका की नायक विषयक कामावस्था का वर्णन करती है और अन्त मे या तो अभिसरणार्थ आई हुई नायिका से उसका संयोग करा देती है अथवा नायक को ही ले जाकर किसी पूर्व निश्चित निष्कुटवन, प्रमदवन सौधस्थल आदि पर पहुँचाकर विरहोत्कंठिता नायिका से मिला देती है।

इन भाणो मे नायिका प्राय. मुग्धा—अभिसारिका होती है जो किसी महो-त्सव आदि सार्वजनिक स्थान पर नायक को देखकर, उस पर मुग्ध होकर एक बार ही उस पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर बैठती है और बदले मे उसे मिलती है तपने और तड़पने के लिए विरहाग्नि। यही स्थिति नायक की भी होती है। सौन्दर्यजन्य होने के कारण दोनों का अनुराग सहज और स्वाभाविक होता है। उसमें न कोई शर्त होती है और न किसी प्रकार का प्रतिज्ञापत्र। यहाँअ नुराग केवल अनुराग के लिए होता है।

इस वर्ग मे आने वाले छ: भाणो का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है। भाणों का क्रम यहाँ भी उनके महत्त्व की दृष्टि से है। अर्थात् इस वर्ग के भाणो में उभयाभिसारिका सर्वश्रेष्ठ है। उसके बाद क्रमशः शेष भाणों का स्थान है। यहाँ आरम्भिक चार भाण तो अपने समस्त अंग प्रत्यङ्गो से पूर्ण हैं। अन्तिम दो भाण—कुवलयानन्द तथा शृंगारमंजरी पाण्डुलिपि के अव्यवस्थित एवं दुष्पाठ्य होने से अपूर्ण है। इनके कथानक का सूत्र भी किसी प्रकार जोड़ा जा सका है। इसीलिए उनके सन्ध्यंग, नाटयालंकार, लास्यांग, रस, वीथ्यंग आदि पर विचार प्राय: नही किया गया है और अत्यन्त सक्षेप मे उनका परिचय भर दिया गया है।

उभयाभिसारिका

उभयाभिसारिका भाण कवि वररुचि की कृति है । इसका समय लगभग ५०० ई० पू० है । इसमे नायक कुबेरदत्त तथा नायिका नारायणदत्ता द्वारा वसन्त की मादकता से मदनपीडित होकर एक दूसरे के प्रति अभिसरण करना ही मुख्य कथा है । भाव प्रधान वर्ग मे आने वाला यह एक लघु आकार का भाण है जिसमे ३५ पद्य तथा शेष गद्य है ।

पात्र

स्त्रीपात्र	**पुरुषपात्र**
नारायणदत्ता—नायिका	कुबेरदत्त—नायक
विलासकौण्डिनी—परिव्राजिका	विट—नायक का सहायक मित्र
मदनसेना—नारायणदत्ता की प्रतिद्वन्द्विनी	नागदत्त—महामात्र का पुत्र (अनगदत्ता का प्रेमी)
अनगदत्ता—नागदत्त की प्रेयसी	समुद्रदत्त—धनदत्त सार्थवाह का पुत्र (माधवसेना का प्रेमी)
माधवसेना—समुद्रदत्त की प्रेयसी	
सुकुमारिका -- रामसेन की प्रेयसी	रामसेन—राजश्यालक (सुकुमारिका का प्रेमी)
रतिसेना—धनमित्र की प्रेयसी	
रामसेना, चरणदासी, प्रियगुसेना } अन्य गणिकाये	धनमित्र—वेश्या प्रेम मे निस्व एक श्रेष्ठी पुत्र
कनकलता -- नारायणदत्ता की बेटी	विश्वावसुदत्त—एक गृहस्थ

नान्दी

भाण की एक पद्यात्मिका नान्दी मे खण्डिता नायिका की अपराधी प्रिय के प्रति कोपाभिव्यक्ति का वर्णन है । श्लोक पाद को पद मानने के अनुसार यह चतुष्पदा नान्दी है । यहाँ समासोक्ति के द्वारा प्रणयकुपिता नारायणदत्ता की कुबेरदत्त के प्रति कोपाभिव्यक्ति का सकेत होने से यह पत्रावली के अन्तर्गत आ सकती है । आरम्भिक अक्षर 'क' लक्ष्मी तथा आरम्भिक गण 'मगण' श्री का देनेवाला होने से यह लिपि एव गण दोनो ही दृष्टि से शुद्धा नान्दी है ।

स्थापना

सूत्रधार रगमच पर आकर सभासदो को कुछ कहना ही चाहता है कि नेपथ्य मे पढा गया एक श्लोक उसे सुनाई देता है—जिसका आशय है कि मित्रकार्य से घबडाये हुए विट की भाँति वसन्त ऋतु के इस सुन्दर समय मे लोध्रवृक्ष शोभा हीन हो गया है । यह सुनते ही सूत्रधार चला जाता है और वसन्त का वर्णन करते

हुए विट का रगमच पर प्रवेश होता है। अतः वसन्त ऋतु मे लोध्रवृक्ष के समान (श्रीहीन) पात्र विट का वसन्त का वर्णन करते हुए प्रवेश आमुख के **प्रवृत्तक** नामक भेद के अन्तर्गत आता है।

कथानक

रंगमंच पर आकर विट वसन्त का वर्णन करते हुए कहता है कि सागरदत्त श्रेष्ठी के पुत्र कुवेरदत्त और नारायणदत्ता की कुछ अनवन हो गई है। इसी से कुवेरदत्त ने मेरे पास अपने परिचारक सहकार के द्वारा सन्देश भिजवाया है कि भगवान् विष्णु के मदिर मे आयोजित सगीत मे मैने (कुवेरदत्त ने) मदनसेना की प्रशसा की थी। इससे मै मदनसेना में अनुरक्त हो गया–इस आशका से नारायणदत्ता मुझ से प्रणय कुपिता हो गई है। मेरे द्वारा पादपतन की भी उपेक्षा करके चली गई। आप कृपया हम दोनों का आज ही सयोग करा दें ताकि आज की रात्रि सहस्रों रात्रि जैसी लम्बी न हो। विट कहता है—मित्र कुवेरदत्त का यह कार्य करने हेतु आज मै सायंकाल ही निकल पड़ा। यद्यपि गृहिणी ने अन्यथा शका करते हुए रोकना चाहा परन्तु मैं नारायणदत्ता का कोप शान्त करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। इस प्रकार विट नारायणदत्ता के पास चल देता है।

मार्ग मे वह सर्वप्रथम पाटलिपुत्र की अपूर्व शोभा का वर्णन करता है। इसी प्रसङ्ग मे उसे चरणदासी की पुत्री अनगदत्ता मिल जाती है। सुरत चिह्नों से युक्त अनंगदत्ता को विट शुभ शकुन मानता है। बातचीत से पता चलता है कि महामात्र के पुत्र नागदत्त के घर से वह आ रही है। निर्धन नागदत्त से भी प्रेम करके अनगदत्ता ने वेश्योपचार विरुद्ध कार्य किया है। उसे आशीर्वाद देकर विट आगे बढ़ता है। अब उसे विष्णुदत्ता की पुत्री माधवसेना मिलती है जो माँ के कारण अनचाहे व्यक्ति के साथ से दुखी है। विदित होता है कि वह धनदत्त सार्थवाह के पुत्र समुद्रदत्त के घर से आ रही है। धनी होने से माँ के कहने पर वह वहाँ चली तो गई किन्तु उसमे अनुरक्त नही है। विट उसकी माँ की इच्छा के अनुकूल कुरूप और अप्रिय भी समुद्रदत्त से प्रेम करने को कहकर आगे बढता है। अब उसे विलासकौण्डिनी नाम की परिव्राजिका मिलती है जो सुरत चिह्नो से युक्त होकर भी विट से वैशेषिक शास्त्र, षट्पदार्थ, साख्यदर्शन आदि पर विवाद करती है। विट उसके ढोंग पर व्यंग्य करता हुआ उससे पिण्ड छुड़ाता है। आगे चलकर विट को चारणदासी की माँ रामसेना मिलती है जो बुढ़ापे मे भी विलासपूर्ण चेष्टाये कर रही है। इसके अनन्तर विट को सुकुमारिका मिलती है। वह राजश्यालक रामसेन के घर से आ रही है। विट से अपना दुखड़ा रोते हुए वह कहती है कि उसका प्रेमी राजश्यालक रामसेन गणिका परिचारिका रतिलतिका में अनुरक्त हो गया है। मैने जब उसे इस धृष्टता के लिए डाटा तो वह मेरे पैरो पर गिर पडा। मैंने उसे फिर भी क्षमा नही किया तो वह हठात् मुझे अपने घर खीच ले गया और रात मे सोती हुई मुझे छोड़कर वह पुनः रतिलतिका के पास चला गया। अतः मैं आपके पास अपना दुःख लेकर

आई हूँ। आप किसी प्रकार उससे मेरी सन्धि करादे। विट मित्रकार्य के बाद उसकी सन्धि कराने का आश्वासन देकर आगे बढता है।

यहाँ विट को पार्थक सार्थवाह् धनमित्र मिलता है जो लुटा हुआ सा दीखता है। विट के पूछने पर धनमित्र बताता है कि मै रतिसेना मे अनुरक्त हूँ। अपना सर्वस्व उसे दे चुका हूँ और अब निःस्व होने के कारण अपने घर से नहाने की साड़ी पहनाकर उसने मुझे अशोक वन की बावड़ी के पास जाकर छोड दिया। रक्षको ने भी मेरी वास्तविकता जानकर मुझे वहाँ से भगा दिया। अतः मे गरीबी मे अपना जीवन कैसे बिता सकता हूँ। इसलिए आपको देखकर सहायतार्थं आया हूँ। विट के यह पूछने पर कि यह सब रतिसेना ने स्वयं किया या कि माँ के संकेत पर—धनमित्र बताता है कि रतिसेना तो उससे प्रेम करती है, उसकी खाला ने ही यह सब कुछ किया है। विट उसे सहायता का वचन देकर आगे चलता है। अब विट को प्रियगुसेना मिलती है। पूछने पर वह बताती है कि कुसुमपुर नरेश के यहाॅ पुरन्दर-विजय नामक सगीतक मे देवता के साथ ही उसे भी (प्रियंगुसेना को) बयाना मिलता है। विट उसके रूप, यौवन की प्रशंसा करता हुआ आगे बढता है।

अब विट को सहसा नारायणदत्ता की चेटी कनकलता मिल जाती है। पूछने पर वह बताती है—वसन्त की मादकता तथा सखियों के समझाने बुझाने से नारायणदत्ता का मान कुछ कम हुआ और आयुष्मान् (प्रेमी कुवेरदत्त) की प्रतीक्षा किये बिना ही वह मेरे (चेटी कनकलता) साथ चल दी। उधर स्वामी कुवेरदत्त भी वसन्त की मादकता से धैर्य खोकर अपनी प्रिया नारायणदत्ता से मिलने चल दिये। मार्ग में ही वीणाचार्य विश्वावसुदत्त के द्वार पर दोनों की भेट हो गई और इस प्रकार विश्वावसुदत्त के घर वे दोनो रात भर रहे। प्रातः स्वामिनी ने मुझे आपको बुलाने के लिए भेजा है। यह सुनकर विट प्रसन्न होकर चेटी को आशीर्वाद देता है। दोनो विश्वावसुदत्त के यहाॅ जाते है। वहाँ पहुँचकर विट कहता है कि वसन्त के कारण परस्पर आकृष्ट आप दोनो ने सन्धि कराने के श्रेय से मुझे तो वंचित ही कर दिया। नारायणदत्ता तथा कुवेरदत्त दोनों ही विट को अपने इस पुनर्मिलन का श्रेय देते है। विट भरत वाक्य पढ़ता है और भाण समाप्त होता है।

वस्तु

आलोच्य भाण मे नायक कुवेरदत्त तथा नायिका नारायणदत्ता का कथानक मुख्य होने से आधिकारिक है, धनमित्र और रतिसेना, रामसेन और सुकुमारिका के प्रसङ्ग प्रकरी मे आ सकते है।

सन्धि

भाण का पूरा कथानक दो भागो मे बाँटा जा सकता है। प्रथम मे—मदन को भी विचलित कर देने वाले वसन्त की शोभा का वर्णन **बीज** नामक अर्थ प्रकृति तथा विट का नारायणदता का प्रणयकोप शान्त कराने, कुबेरदत्त से उसका संयोग करा

देने हेतु घर से निकलना, उत्साह प्रधान होने से **आरम्भ** नामक कार्यावस्था है। इन दोनो के सम्बन्ध से बनी इस **मुखसन्धि** मे विट का घर से निकलना, मार्ग मे उसे अनगदत्ता, विलास कौण्डिनी, रामसेना आदि का मिलना, उनके सुख दु:ख के प्रसंगो मे सहानुभूति प्रकट करना आदि कथानक आता है। दूसरे भाग में—भाण की लगभग समाप्ति पर नारायणदत्ता की चेटी कनकलता द्वारा यह सूचना देना कि चन्द्रमण्डल का दर्शन, मादक दक्षिण पवन, निरन्तर मधुकरो की गुजार आदि से हमारी स्वामिनी का मान शिथिल हो गया और वह स्वय प्रिय का अभिसरण करने निकल पडी[1] **कार्य** नामक अर्थ प्रकृति है, तथा इसी प्रकार वसन्त की शोभा से कुबेरदत्त का भी धैर्य टूट जाना, उसका भी अभिसरण करना, दोनो का विश्वावसुदन्त के घर मिलन, यथेष्ट प्राप्ति होने से[2] **फलागम** नामक कार्यावस्था है। ये दोनों मिलकर **निर्वहण** सन्धि बनाती है–जिसमे नारायणदत्ता की चेटी कनकलता का विट से मिलना, नारायणदत्ता की विरहवेदना का वर्णन, वासन्ती मादक शोभा से मान की शिथिलता, उभयाभिसार, विट का नायक नायिका के पास जाकर आशीर्वाद देना आदि कथानक आता है।

सन्ध्यंग

वसन्त की मादकता के कारण ही इस भाण के नायक कुबेरदत्त तथा नायिका नारायणदत्ता अपने-अपने आग्रह और मान छोडकर एक दूसरे का अभिसरण करते हैं। अतएव कामदेव को भी विचलित कर देने वाली उस वासन्ती मादकता का वर्णन समस्त कथानक का बीजभूत होने से **उपक्षेप** नामक मुख-सन्ध्यंग है।[3] विट विस्तारपूर्वक बताता है कि किस प्रकार आज कुबेरदत्त के परिचारक ने आकर यह सन्देश दिया कि कुबेरदत की प्रेमिका नारायणदत्ता मानवती होकर उसे अधिक्षिप्त करके चली गई और मैं आज अवश्य उन दोनो की सन्धि करा दूँ, क्योकि कुबेरदत्त वसन्त के इस मादकता भरे वातावरण में एक रात भी उसके बिना नही रह सकता[4]। अत. उस बीज की व्याख्या होने से, उसका बाहुल्य होने से यह **परिकर** है। बसन्त की रूपश्री और उसका मादक वातावरण ही रूठी हुई कामिनी को मना लेता है। उसके लिए किसी सहायक की आवश्यकता नही होती। विट का यह सोचना कि नारायणदत्ता इस वासन्ती छटा में विरह वेदना को न सह सकने के कारण अपने आप मान छोड़ देगी, मैं (विट) तो निमित्त मात्र बनूँगा—निश्चय और निष्पत्ति होने से **परिन्यास** है[5]। कुबेरदत्त से नारायणदत्ता का मिलन इस कथानक का

१. पृ० १४४–१४५।
२. पृ० १४५।
३. श्लोक ३।
४. पृ० १२२–१२३।
५. श्लोक ४–५।

मुख्य उद्देश्य है, वही उसका बीज है। अत. विट द्वारा उस बीज का कथन, उसकी चर्चा होना[1] **समाधान**, विट द्वारा मित्र के कार्य का बार-बार स्मरण तथा कथन **करण** है। विट प्रियंगुसेना से विदा होकर, वेशवाट के प्रसंग को समाप्त कर नारायणदत्ता से मिलने वाला है। अतः सहृतभेदन (पात्रों का अलग-अलग होना) होने से यह **भेद** नामक मुख सन्ध्यंग है।

विट के साथ बातचीत करते हुये कनकलता बताती है कि किस प्रकार आर्या नारायणदत्ता मदनातुरा होकर किसी अपरिचित व्यक्ति के वक्त्रापरवक्त्र छन्दों के भाव को समझकर शिथिलीभूतमानपरिग्रहा होकर स्वयं अभिसरण को जा रही थी कि वसन्त के कारण शिथिलीभूत धैर्य वाले आर्य कुबेरदत्त आर्या को मनाने के लिए आते हुए मार्ग मे ही मिल गये और वीणाचार्य विश्वावसुदत्त के निवास पर दोनो का मिलन हो गया[2]। इस प्रकार कार्य (कु० दु० तथा ना० द० का मिलन) का मार्गण होने से यह **विबोध** नामक निर्वहण सन्ध्यग है। नायक नायिका के मिलन का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के बाद चेटी कनकलता इस प्रसग को समाप्त करती हुई विट से कहती है कि आर्या नारायणदत्ता की आज्ञा से आपको बुलाने आई हूँ, आप मेरे साथ चले। अतः कार्यमार्गण का उपक्षेप-उपसंहार होने से यह वाक्य **ग्रथन है**[3]। नायक नायिका का परस्पर मिलन कराना ही विट का मुख्य कार्य है। उस कार्य को प्रकृति (वसन्त की मादकता) ने ही सम्पन्न कर दिया। अत· इस वाछित प्राप्ति के कारण यह **आनन्द** है[4]। नायक नायिका को अशीर्वाद देता हुआ विट कहता है कि यद्यपि वसन्त ने मेरे आने के पूर्व ही आप लोगों का समागम कर दिया किन्तु इसमें बसन्त के पदार्थ (चन्द्र आदि) ही कारण नही बलिक नायक नायिका के उत्कृष्ट गुण ही एक दूसरे को आकृष्ट करने वाले है। तुम दोनों के राग ने मुझे ठग लिया। इस प्रकार लब्धार्थ (दोनो की प्राप्ति) का शमन, उसकी पुष्टि होने से यह **कृति** है।[5] विट को आदर और प्रशंसा देते हुये कुबेरदत्त कहता है कि हम दोनो के इस प्रेम तथा समागम

---

१. पृ० १३४, १३५।

२. पृ० १४४–१४५।

३. पृ० १४५।

४. "आनन्दो वांछितावाप्तिः" के अनुसार अभीष्ट प्राप्ति तो वस्तुत. नायक कुबेरदत्त को नायिका ना० द० की प्राप्ति से हुई है। अत· सामान्यतया कुबेरदत्त की अभीष्ट प्राप्ति का सूचक वाक्य ही **आनन्द** होना चाहिए। किन्तु यह मिलन प्रसंग भी कनकलता द्वारा वर्णित किये जाने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से अभीष्ट प्राप्ति जन्य सुख का द्योतक होने से आनन्द के अन्तर्गत ही आना चाहिये।

५. श्लोक ३२।

के कारण आप ही है। समस्त पाटलिपुत्र आपकी वाक्चातुरी का आनन्द ले रहा है। इस प्रकार विट को सम्मान प्राप्ति के कारण यह **भाषण** है।[1] सुरत-तृषित प्रेमी प्रेमिका को रति का अवसर देते हुये विट का जाने का उपक्रम उत्तम फलप्राप्ति का सूचक होने से **उपसहार** तथा अन्त में शुभाशंसा के रूप मे **प्रशस्ति** नामक निर्वहण संन्ध्यंग है।

सन्ध्यन्तर

चरणदासी की पुत्री अनंगदत्ता से विट के यह पूछने पर कि निर्धन नागदत्त के घर तू माँ की इच्छा के विरुद्ध क्यों गई—उसका (नागदत के प्रति हार्दिक प्रेम होने के कारण) लज्जापूर्वक हस जाना **ह्री** है[2]। विलासकौण्डिनी तथा विट की नोक झोक और व्यंग्यभरी बातें जिनमे दार्शनिक शब्दावली का भोग परक अर्थ लिया गया है--**प्रत्युत्पन्नमतित्व** का उदाहरण है।[3] विट और प्रियंगुसेना के सवाद में विट द्वारा प्रियंगुसेना की कला की प्रशसा करते हुए विट के यह कहने पर कि--अपनी ललित चेष्टाओ से ही लोगों के मनो को नचाती हो, तुम्हें नृत्य से क्या ? प्रियंगुसेना लजा जाती है। अत· यह **ह्री** नामक सन्ध्यन्तर है।[4]

नाट्यालंकार

प्रस्तुत भाण मे नाट्यालकारो की संख्या पर्याप्त है विट द्वारा अनंगलता, माधवसेना प्रियगुसेना तथा कनकलता को आशीर्वाद देने के प्रसंग मे[5] **आशी.** नाट्यालंकार है। भाण के आरम्भ में सहकारक द्वारा कुवेरदत्त का सन्देश सुनकर विट द्वारा नायक नायिका की सन्धि करा देने की प्रतिज्ञा करना **अध्यवसाय** है[6]। परिव्राजिका विलासकौण्डिनी है तो बड़ी विलासिनी और भोगपरायणा, परन्तु ऊपर से दिखाती ऐसा है जैसे कि वह वैशेषिक दर्शन मे निष्णात और शास्त्र चिन्तन में अनुरक्ता हो। इस प्रकार अपने को विदुषी, शास्त्रपरायणा मानने वाली विलासकौण्डिनी की विट द्वारा पोलपट्टी खोलना, उसका उपहास करना **उत्प्रासन**[7] है। विट का बार-बार अपने मुख्य कार्य (नायक नायिका का सयोग करा देना) का स्मरण करना उसके प्रति उन्मुख होना—कार्यग्रहण होने से **उल्लेख** है।[8] विट तथा कनकलता

---

१. पृ० १४६।
२. पृ० १२७।
३. पृ० १३०–१३३ (किं ब्रवीषि-न वैशिकाचलेन प्रयोजनं, सांख्यमस्माभिर्ज्ञायतेऽअलेपको निर्गुणः क्षेत्रज्ञ. पुरुष इति)
४. पृ० १४३।
५. श्लोक ८, ११, १३, २७ तथा ३२।
६. पृ० १२७।
७. पृ० १२९–१३३।
८. पृ० १३५–१३८, १४०।

का आरम्भिक वार्तालाप अत्यन्त विनम्रता एवं उपचारपूर्ण होने से **अनुवर्तन**[1] है तथा भाण के अन्त मे कनकलता द्वारा नायक नायिका के स्वय एक दूसरे के प्रति अभिसरण के कारण दोनो के संयोग का समाचार सुनकर विट का प्रसन्न होगा **प्रहर्ष** नामक नाट्यालंकार है ।[2]

भाण्यंग

आलोच्य भाण मे केवल दो भाण्यग मिलते है । प्रथम रामसेन के रतिलतिका मे अनुरक्त हो जाने पर कोपपूर्वक उसे उपालम्भ देना **समर्पण**[3] तथा दूसरा, विट द्वारा नायक नायिका का समागम रूप कार्य का समापन **सहार** नामक भाण्यग हैं ।[4]

शिल्पकांग

जरती की अनिच्छा होते हुए भी अनंगदत्ता का नागदत्त से प्रेम करने का विट द्वारा अनुमान लगाना **तर्क** है[5] । इसी प्रकार माधवसेना को बिना अनंग चिन्हो के देखकर विट का यह अनुमान लगा लेना कि माँ के लोभ के कारण न चाहते हुये भी यह समुद्रदत्त से प्रेम करती है **तर्क** है[6] । विट का आरम्भ से अन्त तक नारायण दत्ता और कुवेरदत्त की सन्धि कराने हेतु किया गया उद्योग **प्रयत्न** तथा वेश्या रतिसेना और उसकी जरती द्वारा तिरस्कृत धनमित्र का विट के सामने दुखी होकर रोना **बाष्प** है ।[7] दक्षिण पवन से नारायणदत्ता के सन्ताप का बढ जाना **ताप**, कनकलता से नायक नायिका के मिलन का समाचार सुनकर विट की अत्यधिक प्रसन्नता **प्रहर्ष** तथा कुवेरदत का प्रिया समागम से आनन्दित होना **प्राप्ति** नामक शिल्पकाग है ।

लास्यांग

संगीत समारोह मे कुवेरदत्त ने मदनसेना के अभिनय की प्रशसा की । उसकी प्रेयसी नारायणदत्ता ने इसे अन्य नायिकासक्ति समझा और कुपित होकर कुवेरदत्त द्वारा किये गये अनुनय विनय तथा पादपतन की भी उपेक्षा करके चली गई । अत. अन्यासग की आशंका से नारायणदत्ता द्वारा किया गया प्रेमच्छेद प्रकटन **प्रच्छेदक** लास्याग है । इसी प्रकार राजश्यालक रामसेन के गणिका परिचारिका रतिलतिका मे आसक्त हो जाने पर सुकुमारिका द्वारा ईर्ष्याभिभूत होकर उस (रामसेन) पर रोष प्रगट करना, मानवती हो जाना **प्रच्छेदक** है ।[1] विट द्वारा प्रियंगुसेना की नृत्य और कला अभिनय की विशेषता बताते हुये नृत्य की विविध विधाओ पर प्रकाश डालना-चित्रार्था-भिनय का वर्णन होने से **द्विमूढक** है । भाण में विट अनंगदत्ता, माधवसेना, प्रियंगुसेना

---

१. पृ० १४३ ।
२. पृ० १४५ ।
३. पृ० १३६–१३७ ।
४. पृ० १४६ ।
५. पृ० १२६–१२७ ।
६ पृ० १२८–१२९ ।
७. पृ० १४० ।

तथा कनकलता से प्रसादपूर्ण, प्रश्नोत्तरात्मक वार्तालाप **उक्तप्रत्युक्त**[1] तथा आनोद्य रहिता, शोकचिन्तान्विता, परित्यक्तस्नानभोजना शृंगारविहीना नारायणदत्ता का **वर्णन आसीन** नामक लास्यांग है[2]।

पात्र

प्रस्तुत भाण में नायक कुबेरदत्त धीरललित प्रकृति का है। नारायणदत्ता उसकी प्रेयसी है। यद्यपि मदनाराधन सगीतक मे कुबेरदत्त द्वारा मदनसेना की प्रशंसा करने के कारण नारायणदत्ता कुबेरदत्त की मदनसेना मे आसक्ति की आशंका मात्र से ईर्ष्याकलुषा हो जाती है और नायक के पादपतन को भी तिरस्कृत कर देती है। परन्तु मदनानुतप्त होने के कारण नायक एक रात भी नारायणदत्ता के बिना नहीं काट सकता। यही कारण है कि विट को बीच मे डालकर सन्धि करा लेना चाहता है। इस प्रकार कुबेरदत्त **दक्षिण** नायक है।

विट वैशिकाचल नायक का सहायक है। दोनों (नायक नायिका) की सन्धि करानें हेतु वह प्रयत्न करता है। किन्तु उसके प्रयत्न के पूर्व ही वसन्त की मादकता दोनों को एक दूसरे के प्रति अभिसरण कराने को बाध्य कर देती हैं और इस प्रकार अनायास ही दोनो के परस्पर पुनर्मिलन से विट प्रसन्न हो जाता है। वस्तुत. विट ही समस्त भाण मे मुख्य पात्र है। पूरे कथानक की बागडोर विट के ही हाथ मे है। फिर भी फलप्राप्ति कुबेरदत्त को होने के कारण विट सहायक पात्र है।

भाण की नायिका नारायणदत्ता एक साधारणी स्त्री है और यहाँ खण्डिता के रूप मे दिखाई गई है। कुबेरदत्त के मदनसेना मे आसक्त हो जाने की आशंका से मानवती होकर वह प्रथम तो उसका तिरस्कार कर देती है किन्तु ज्यो-ज्यों वसन्त की मादकता बढती है उसका मान शिथिलित होता जाता है। अन्त में वेदना असह्य हो जाने पर वह स्वयं प्रिय का अभिसरण करती है। अतः इस प्रकार नारायणदत्ता अभिसारिका भी है।

अनगदत्ता, मदनसेना, रामसेना, सुकुमारिका आदि वेश की गणिकाये हैं, उनकी अपनी-अपनी समस्याये हैं। विट उन्हे सहायता का वचन देता हुआ अपने मुख्यकार्य में प्रवृत्त होता है। परिव्राजिका विलासकौण्डिनी का चरित्र, विट के साथ उसका व्यंग्य भरा वार्तालाप इस भाण का मुख्य आकर्षक केन्द्र बिन्दु है।

रस तथा वृत्ति

इस भाण मे विप्रलम्भ शृंगार मुख्य रस है। नायक नायिका इसके **आलबन तथा आश्रय है**। वसन्त की मादकता, दक्षिण पवन तथा अपरिचित व्यक्ति द्वारा पढे गये वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों में दो श्लोक **उद्दीपन** है। नायक तथा नायिका

---

१. १२५–१२७, १२७–१२९, १४०–१४३, १४३–१४५।

२. पृ० १४४।

की विरह दशा, नारायणदत्ता द्वारा वियोग मे स्नान, भोजन, अलकार आदि छोड़ देना **अनुभाव** तथा ईर्ष्या, **औत्सुक्य**, हर्ष आदि संचारी भाव है।

कैशिकी

इस भाण मे कैशिकी वृत्ति का केवल नर्म नामक भेद मिलता है। विट द्वारा अनंगदत्ता के सयोग चिह्नो के प्रति सकेत करना **संभोगशृंगारनर्म** है[1]। परिव्राजिका विलास कौण्डिनी द्वारा यह कहने पर कि मेरा संबंध वैशिकाचल से नही बल्कि वैशेषिकाचल से है–विट का उसके सुरतोत्सवप्रकरण के प्रति सकेत करना, उस पर व्यग्य करना तथा उसके रूप, यौवन आदि को वैशेषिक दर्शन का द्रव्य, गुण, कर्म आदि बताना **हास्य नर्म** है।[2]

भारती

वीथ्यङ्ग

विट वैशिकाचल तथा परिव्राजिका विलासकौण्डिनी के सवाद मे अनेक गूढार्थ पदो का प्रयोग हुआ है। परिव्राजिका के यह कहने पर कि मुझे वैशिकाचल से कोई काम नही, मै तो वैशेषिकाचल अर्थात् वैशेषिक दर्शन के विद्वान् को चाहती हूँ-विट कहता हैं कि तेरी चेष्टाओ एव गति से लगता है कि तेरे प्रिय ने तुझे रतिरूप पदार्थवाला वैशेषिक शास्त्र पढाया है। परिव्राजिका के यह कहने पर कि साख्य के अनुसार पुरुष **अलेपक**, **निर्गुण** और **क्षेत्रज्ञ** है–विट एक दम चुप हो जाता है। इन शब्दो मे भोगपरायण पुरुषो के प्रति गहरा व्यंग्य समझकर विट निरुत्तर हो जाता है। इस प्रकार यहाँ विट द्वारा वैशेषिक एव साख्य दर्शन परक शब्दो का गूढार्थ ग्रहण कर लेन से यह संवाद **उद्घात्यक** है।[3] इस पूरे ही प्रसग में परिव्राजिका द्वारा प्रयुक्त दार्शनिक शब्दो का विट द्वारा कौशल पूर्वक अन्यार्थ ग्रहण **अवस्यन्दित** वीथ्यग है अथवा इस प्रसग मे परिव्राजिका के वाक्यो का हास्य एव व्यग्यपरक अन्यार्थ ग्रहण करने के कारण इसे **छल**[4] नामक वीथ्यग भी माना जा सकता है। विट का रतिसेना एव कनकलता के साथ हुआ संवाद उक्तिप्रत्युक्तिपूर्ण होने से **वाक्केली**[5] है। सुकुमारिका के बांझ एवं नपुसिका होने के कारण उसका रजस्वला न होना, गर्भधारण न करना आदि दोषो को भी विट द्वारा गुण बताना **मृदव**,[6] है तथा उसे (बन्ध्या सुकुमारिका को) बहुपुत्रा होने का आशीर्वाद देना असंबद्ध वाक्य होने से **असत्प्रलाप** नामक वीथ्यंग है।[7]

१. श्लो० ७।
२. श्लो० १६, १८।
३. पृ० १३०–१३३।
४. भरत द्वारा की गई छल की परिभाषा के अनुसार ही यहाँ छल वीथ्यंग हो सकता है, अन्य आचार्यों के अनुसार नही।
५. पृ० १३३–१३४, १४३।
६. श्लो० २३।

प्रहसनांग

भाण के लगभग मध्य में विट वैशिकाचल की भेट परिव्राजिका विलास कौण्डिनी से होती है। विलासकौण्डिनी परिव्राजिका होने पर भी बड़ी विलासिनी है। उसके वस्त्रो की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भौरे आम्रमजरियों को छोड़कर उस पर टूटे पड रहे हैं। विट जब उसके चरित्र पर व्यग्य करता है तो वह (वि० कौ०) उसकी बातों की दार्शनिक व्याख्या करती हुई पहले तो टालने का प्रयत्न करती है किन्तु विट द्वारा उसके बहुत अधिक भोग- परायणा होने की बात कहने पर अपनी पोलपट्टी छिपते न देख विलासकौण्डिनी भी गहरा व्यंग्य करती हुई यहाँ तक कह देती है कि मै भी सांख्य जानती हूँ। पुरुष **अलेपक, निर्गुण** तथा **क्षेत्रज्ञ** होता है।[१] इस प्रकार भोगपरायणा होकर विलास कौण्डिनी द्वारा परिव्राजिका के आचार का परित्याग करने के कारण यह प्रसंग **अवलगित** है।[२] साथ ही विट और विलास-कौण्डिनी का यह संवाद हास्ययुक्त होने से **व्यवहार** भी हो सकता है। नपुंसिका-सुकुमारिका के प्रसंग में विट द्वारा उसकी व्यंग्य भरी स्तुति **अनृत**[३] तथा विट और घनमित्र का संवाद भी व्यंग्य एव हास्ययुक्त होने से **व्यवहार** नामक प्रहसनाग है।

इस प्रकार यह एक सर्वांगपूर्ण भाण है। इसमे नायक तथा नायिका दोनो के एक दूसरे के प्रति अभिसरण करने के कारण ही इसका नाम उभयाभिसारिका पड़ा। कथाप्रसगो की रोचकता, प्रवाहपूर्ण शैली एव सुन्दर संवादों के कारण इस वर्ग का यह सर्वश्रेष्ठ भाण है।

---

१. पृ० १३३ (साँख्यमस्माभिर्ज्ञायते–अलेपको, निर्गुणः, क्षेत्रज्ञः पुरुषः इति)
२. पृ० १२६–१३३।
३. पृ० १३७।
४. पृ० १३६।

अनंगजीवन भाण

अनंगजीवन भाण कवि कोचुन्निभूपालक की रचना है। कवि का समय १८५८–१९२६ ई० है। विट शृङ्गारसार की सहायता से राजा भद्रसेन का आनन्दवल्ली को प्राप्त करना इसकी मुख्य कथा है। भावप्रधान वर्ग मे आने वाला यह एक लघु आकार का भाण है जिसमे १०० पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र

आनन्दवल्ली—नायिका

माणिक्यमाला, कस्तूरिका, धनरञ्जिनी, युवमर्दिनी, मरतकावली, मदनलक्ष्मी, मन्दारमंजरी, शृगार लहरी, चित्रलेखा, काचनलेखा, कलहारकलिका, कामलोला, घर्घरस्वरा, संगीतसरणी — वारवनितायें

पुरुषपात्र

राजा भद्रसेन—नायक

विट शृंगारसार—नायक का सहायक मित्र

वसुमित्र—आनन्दवल्ली का प्रेमी, नायक का प्रतिद्वन्द्वी

भूतिमत्त—एक विलासी

विप्रदास—भूतिमत्त का साथी

कण्टकदत्त—एक प्रेमी

खरस्वन—एक ब्राह्मण

नान्दी

भाण की द्विपद्यात्मिकानान्दी में प्रथम मे भगवान् शिव के मस्तक पर गंगा को देखकर ईर्ष्या कषायिता गौरी के भर्तृमस्तकताडनोद्यत पाद का तथा दूसरे मे विघ्न विनाशक एकदन्त के दन्त का आशीर्वादात्मक वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह अष्टपदा नान्दी है। दोनों ही पद्यों मे चन्द्रवाची एणांक तथा हिमकर के प्रयोग से यह नीली तथा आशीर्वाद परक होने से यह शुद्धा नान्दी है। इसका प्रथम गण मगण तथा प्रथम अक्षर 'त' नायक को क्रमश. श्री तथा सुख देने वाले हैं। अत: गणत. एवं लिपितः शुद्धा यह नान्दी है।

प्रस्तावना

लिए कविश्रेष्ठ कोचुन्नि भूपालक की कृति अनंगजीवन भाण को अभिनीत करने की बात कहता है। प्ररोचना द्वारा कवि प्रशसा, सुहावना समय, विद्वत्समाज की उपस्थिति का सुन्दर योग बताता हुआ वह वसन्त ऋतु का वर्णन करता है तथा भ्रमर के उपवन मे प्रवेश वर्णन के साथ ही विट शृगारसार के वेशवाट मे प्रवेश की सूचना **प्रयोगातिशय** के द्वारा देता हुआ सूत्रधार चला जाता है तथा रंगमंच पर शृंगारसार का प्रवेश होता है।

कथानक

विट शृंगारसार कान्ता विरह से व्याकुल दीखता है। वह कहता है कि कामुको को सुख देने वाली रात्रि समाप्त हो गयी। पूर्वदिशा रूपी रक्ता नायिका का किरणरूपी हाथों से आलिगन करके यह सूर्य उसके साथ कामक्रीड़ा कर रहा है। प्रात. कृत्यों से निवृत्त होकर विट अलंकारादि धारण करता है। स्वर्णसूत्र मण्डित उत्तरीय, सुन्दर अन्तरीय, स्वर्णमणि निर्मित कुण्डल, अँगूठी एवं छड़ी—ये उसके शृंगार प्रसाधन है। अपने को अलंकृत करके विट वेशवाट में प्रविष्ट होकर दिन बिताना चाहता है। इधर-उधर घूमने पर उसे माणिक्यमाला मिल जाती है। उससे हास परिहास करके वह आगे बढता है। यहाँ उसे भेरी की ध्वनि सुनायी देती है। विट समझ जाता है कि राजा भद्रसेन महोत्सव दर्शनार्थ आ रहे हैं। इसी प्रसंग मे विट को स्मरण हो आता है कि राजा आनन्दवल्ली के दर्शन मात्र से काम पीडित हो गये थे और मुझसे कहा था कि मित्र तुम्हीं मेरे इस रोग के चिकित्सक हो। मैं शिव के महोत्सव के समय जाऊँगा। मैं तो यह भूल ही गया था और महाराज आ पहुँचे। विट तुरन्त वहाँ से चल देता है। मार्ग मे उसे माणिक्यमाला की माता विद्यावती मिल जाती है। वह विट को रोकना चाहती है किन्तु वह राजकार्य की बात कहकर चल देता है। दक्षिण की ओर मुड़ते ही उसे आनन्दवल्ली का घर दीख पड़ता है। उसे राजा के प्रति अनुरक्त करने के उद्देश्य से विट उसके पास जाता है और उसे संतप्ता देखकर विट इसका कारण पूछता है। वह सकोचवश पहले तो रोग के कारण यह संताप है, ऐसा बताती है किन्तु विट द्वारा साग्रह पूछने पर वह भद्रसेन के प्रति अपना अनुराग बताती है। विट को अनायास ही कार्य सिद्धि से बड़ी प्रसन्नता होती है। उसी समय महाराज भद्रसेन की सवारी आती है। वे घोड़े पर सवार होकर वेशवाट में प्रविष्ट होते है। आनन्दवल्ली लज्जालु हो जाती है। विट उसे राजा के आगमन की सूचना देता है। आनन्दवल्ली की माँ के द्वारा वसुमित्र को आनन्दवल्ली का भर्ता स्वीकृत कर लिया गया है। किन्तु आनन्दवल्ली उसे नही चाहती। विट वसुमित्र को भद्रसेन और आनन्दवल्ली के बीच का रोड़ा समझकर उसे हटा देने की दृष्टि से वसुमित्र से बातचीत करता है। वसुमित्र बताता है कि प्रिया का आलिगनादि तो दूर रहा मुझे तो उसका पादताडन भी प्राप्त नही हुआ। ऐसे तिरस्कृत जीवन से तो मरण ही अच्छा है। विट वसुमित्र को झाँसा देकर वहाँ से

टरका देता है और स्वयं सायंकाल राजा के साथ आने का निश्चय करके इधर-उधर घूमने लगता है। इसी समय गौरी वन्दनार्थ आती हुई मयूरकठी मिल जाती है। उससे बात करता हुआ विट उसकी बहिन कस्तूरिका के विषय मे पूछता है तो पता चलता है कि वह घर में ही है। विट कस्तूरिका के पास जाकर उसके माथे पर चन्दन तिलक की रचना करता है। कस्तूरिका भी विट के माथे पर तिलक लगाती है। दोनो मे प्रेमालाप होता है।

सामने विट को विलासी भूतिमत्त मिलता है। पता चलता है कि इसने अपनी प्रिया धनरजिनी को तो छोड़ दिया है और वह युवमर्दिनी में आसक्त है। इसी बीच भूतिमत्त का साथी विप्रदास भी आ जाता है। भूतिमत्त अपनी प्रिया के पतिव्रत की घटना सुनाता हुआ कहता है कि एक बार वहाँ के राजा का मन्त्री उसके पास रमण करने गया किन्तु मुझमें अनुरक्त होने के कारण प्रिया ने उसे फटकार दिया। विट भूतिमत्त के भोले पन पर हँसता हुआ आगे बढता है।

अब वह मरतकावली के घर वेणुनाद सुनकर वहाँ जाता है। वह उसका सत्कार करती है। इसी समय दो हाथियो के युद्ध के कारण भगदड़ मच जाती है। विट मरतकावली के साथ प्रासाद पर चढ़ जाता है। युद्ध समाप्त होने पर विट वहाँ से चल देता है। कुछ आगे चलकर विट मदनलक्ष्मी तथा मन्दारमजरी से मिलता हुआ श्रृंगारलहरी के घर पहुँचता है।

यहाँ उसे श्रृंगारलहरी से बातचीत करती हुई चित्रलेखा दीखती है जो श्रृंगारलता को बताती है कि विट श्रृगारसार आज आनन्दवल्ली से बातचीत कर रहा था। यह सुनकर श्रृंगारलहरी प्रणयकुपिता हो जाती है। विट के पूछने पर पता चलता है कि उसने (विट ने) जो आनन्दवल्ली के साथ वार्तालाप किया उसी से यह कुपिता है। विट उसे समझाता है कि राजा भद्रसेन के अनुकूल करने के लिए मैंने उससे बातचीत की थी। विट के पादपतन से प्रसन्न होकर श्रृंगारलहरी उसे एकासन पर बिठाल लेती है। इसके अनन्तर आगे चलकर विट को कांचनलता, कल्हारकलिका, कामलोला, अनंगदीपिका मिलती है। इसके अनन्तर वेशवाट मे घूमते हुए उसे कण्टकदत्त की प्रिया घर्घरस्वरा तथा संगीतसरणी मिल जाती है। यही विट को श्रृगाल के स्वर मे गाता हुआ खरस्वन नामक ब्राह्मण मिलता है।

अब विट को सायकाल हो जाता है। वह राजपुर में प्रविष्ट होकर राजा भद्रसेन मे मिलता है। राजा भी आनन्दवल्ली के वियोग मे उसकी कल्पना में ध्यानमग्न था। विट उसे आज सन्ध्या समय आनन्दवल्ली के यहाँ चलने को कहता है। राजा विट के साथ चल देता है। आनन्दवल्ली को प्राप्त कर राजा भद्रसेन प्रसन्न होता है। विट उसे भीतर छोड़कर लौटने लगता है तो राजा प्रसन्न होकर उसे अपनी माणिक्यमाला दे देता है। इसी समय चन्द्रोदय होता है और भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

आलोच्य भाण मे राजा भद्रसेन तथा गणिका आनन्दवल्ली का कथानक आधिकारिक है। विट इन दोनो का सहायक है, दोनों का ही विश्वासपात्र है। इस कथानक में पताका और प्रकरी का प्रायः अभाव है।

सन्धि

भाण में दोनो सन्धियों की स्थिति स्पष्ट है। राजा भद्रसेन का विट से यह कथन कि मित्र, आनन्दवल्ली के वियोग से पीड़ित मेरे तुम्ही चिकित्सक हो—**बीज** अर्थप्रकृति[1] तथा विट का उत्साह पूर्वक राजा के कार्य साधन मे लग जाना **आरम्भ** कार्यावस्था है।[2] इनके संयोग से बनी **मुखसन्धि** मे विट का माणिक्यमाला से संलाप, भद्रसेन द्वारा विट से सहायता माँगना, विट का आनन्दवल्ली के पास जाना, आनन्दवल्ली द्वारा भी विट से भद्रसेन की प्राप्ति मे सहायक बनने की प्रार्थना, विट द्वारा वसुमित्र को बहाने से आनन्दवल्ली के यहाँ से भगा देना तथा वेशवाट की रमणियों से नर्मालाप करते हुए राजा भद्रसेन के यहाँ पहुँचने तक का कथानक है। विट का भद्रसेन से यह कथन कि महाराज, परमानन्द प्राप्ति का समय आ गया है, पधारे, आनन्दवल्ली आपका दर्शन करना चाहती है—**कार्य** अर्थप्रकृति तथा विट द्वारा दोनों का संयोग करा देना **फलागम** कार्यावस्था है। इनके समन्वय से बनी **निर्वहण** सन्धि मे विट का राजा के यहाँ जाना, उनसे आनन्दवल्ली के यहाँ चलने की प्रार्थना करना, दोनो का वहाँ जाना, नायक-नायिका का मिलन, महाराज द्वारा विट को माणिक्यमाला का पुरस्कार प्राप्त होना आदि कथानक सम्मिलित है।

सन्ध्यंग

भद्रसेन द्वारा विट से यह प्रार्थना कि आनन्दवल्ली के वियोग में पीडित मेरे तुम्ही चिकित्सक हो, मेरा हित साधन तुम्हारे हाथ में है—**उपक्षेप**[3], राजा के इस अनुराग का विट द्वारा विस्तारपूर्वक वर्णन **परिकर**, आनन्दवल्ली का अनुराग भी भद्रसेन गत है—यह जानकर कार्य सिद्धि की सुगमता से विट का प्रसन्न होना, सुख मिलना **प्राप्ति**[4] है। विट द्वारा दिये गये आश्वासन से आनन्दवल्ली को प्रसन्नता किन्तु वसुमित्र (जिसे वह नही चाहती) की वहाँ उपस्थिति से आशंका—यह सुख दुःख की स्थिति **विधान** है।[5] इसी प्रसग में राजा भद्रसेन के गुणो का वर्णन **विलोभन** तथा विट का आनन्दवल्ली से यह कथन कि मैं आज ही राजा से तुम्हारा संयोग करा दूंगा—बीज का कथन होने से **समाधान** नामक मुख सन्ध्यंग है।

---

१. पृ० ७।
२. पृ० ११।
३. पृ० ७।
४. पृ० ६। (अथ सर्वसुघटितं हस्तप्राप्तश्च मे मनोरथः)
५. पृ० ६।

भाण के अन्त में राजद्वार पर पहुँचकर विट द्वारा पुनः राजा और आनन्द-वल्ली का मनोरथ पूरा करने का अपना निश्चय दुहराना बीजका स्मरण होने से **सन्धि** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है[१]। इसके अनन्तर महाराज और विट का संवाद **परिभाषा**[२], आनन्दवल्ली को देखकर राजा को सुखानुभूति **आनन्द**[३], महाराज का विट के प्रति कृतज्ञता प्रकाश, पुरस्कार स्वरूप अपनी माणिक्यमाला देना **कृति**[४], कथा की समाप्ति सूचक विट का राजा से यह कथन कि आपका और कौन-सा प्रिय करूँ—**उपसंहार** तथा अन्त मे शुभाशंसन **प्रशस्ति** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है।

सन्ध्यन्तर

आनन्दवल्ली का अपने मन की बात बताने में संकोच के कारण लज्जा का अनुभव तथा तुरंग पर चढ़कर जाते हुए राजा को देखकर उसका लज्जा से अवनत मुखी हो जाना भी ह्री नामक सन्ध्यन्तर है।[५]

नाट्यालंकार

विट द्वारा आनन्दवल्ली से यह प्रतिज्ञा करना कि मै आज ही राजा से तुम्हारी भेंट करा देने का प्रयत्न करूँगा **अध्यवसाय**[६], महाराज का आनन्दवल्ली की कल्पना में उसके रूप, यौवन आदि के विषय मे सोचना **आशंसा**[७] तथा आनन्दवल्ली की प्राप्ति से महाराज का प्रसन्न होना, विट को पुरस्कृत करना **प्रहर्ष** नामक नाट्या-लङ्कार है।[८]

शिल्पकांग

आनन्दवल्ली का राजा भद्रसेन के वियोग में निःश्वास, कृशता, पांडुता आदि **ताप**[९], आनन्दवल्ली को वसुमित्र के कारण राजा भद्रसेन की प्राप्ति मे अनिश्चय **सन्देह**[१०], विट द्वारा आनन्दवल्ली को धैर्य बंधाना **आश्वास**[११], वसुमित्र द्वारा रोकर अपनी मनोव्यथा कहना **बाष्प**[१२] तथा विट का महाराज एवं आनन्दवल्ली के समागम के लिये किया गया उद्योग **प्रयत्न** नामक शिल्पकाग है।

---

१. पृ० २६।
२. पृ० ३०।
३. श्लो० ६५।
४. पृ० ३२।
५. पृ० ६, १०।
६. पृ० ११।
७. श्लो० ६१, ६२।
८. पृ० ३२।
९. श्लोक २५।
१०. पृ० ६।
११. श्लोक ३५।
१२. श्लोक ३७।

लास्यांग

विट का आनन्दवल्ली के साथ संलाप सुनकर ईर्ष्याकषायिता शृङ्गारलहरी द्वारा उसे (विट को) एकासन न देना, सरस वचन न बोलना—प्रेमच्छेद होने से **प्रच्छेदक**[1] तथा मृदंग बजाती हुई रत्नमाला के साथ संगीत-सरणि का गान गेयपद[2] नामक लास्यांग है।

पात्र

भाण का नायक भद्रसेन है। क्योंकि फलप्राप्ति उसी को होती है। किन्तु इसके अतिरिक्त कि वह एक राजा है और वेश्या आनन्दवल्ली मे अनुरक्त है—उसके विषय मे अन्य कुछ भी ज्ञात नही होता। भाण मे उसके चरित्र का विकास नहीं हुआ है। राजा भद्रसेन धीरललित प्रकृति का नायक है। विट शृङ्गारसार उसका सहायक मित्र है जिसके प्रयत्न तथा प्रयास से राजा को आनन्दवल्ली की प्राप्ति होती है। नायक-नायिका को संयोजित कराने के अतिरिक्त वह एक और काम करता है। आनन्दवल्ली की माँ कुट्टिनी ने धन के लोभ से वसुमित्र को अपने यहाँ पुत्री के भर्ता के रूप में रख लिया था। किन्तु आनन्दवल्ली राजा के प्रति अपने प्रणय मार्ग मे उसे बहुत बडा बाधक समझती थी। विट ने झासा देकर एक आवश्यक काम के बहाने उसे भेजकर वहाँ से हटा दिया।

स्त्रीपात्रो मे आनन्दवल्ली ही मुख्य है। वह नायिका है। देखते ही राजा भद्रसेन मे वह अनुरक्त हो जाती है। अवस्था की दृष्टि से आनन्दवल्ली विरहोत्कण्ठिता नायिका है। विट शृङ्गारसार इसका भी सहायक है तथा उसी की (विट की) सहायता से राजा से आनन्दवल्ली का सयोग होता है। आनन्दवल्ली के अतिरिक्त भाण में माणिक्यमाला, मयूरकण्ठी, मदनलक्ष्मी, शृङ्गारलहरी, काचनलेखा, सौदामिनी आदि अनेक गणिकाओ के प्रसङ्ग भी है जो भाण की मुख्य कथा से असम्बद्ध, केवल उसके कलेवर को बढाने मे सहायक है।

रस तथा वृत्ति

प्रस्तुत भाण मे अयोगविप्रलम्भ शृङ्गार रस है। नायक नायिका इसके **आलम्बन**, वसन्त ऋतु, मलयपवन आदि **उद्दीपन**, कार्श्य, पाण्डुता, अलसता, निःश्वास आदि **अनुभाव** तथा लज्जा, औत्सुक्य, अवहित्था आदि **संचारीभाव** है। नायक नायिका एक दूसरे को देखने मात्र से आसक्त हो जाते हैं और दोनो को मदनजन्य विकार सताने लगते हैं।

शृङ्गार के अतिरिक्त गौण रूप से हास्य भी यत्र तत्र भाण मे मिल जाता है। खरस्वन नामक पारदेशिक ब्राह्मण का गीत सुनकर विट का पहले तो उसे क्रोष्टुनाद, फिर किसी का उच्च हास्य, फिर किसी का रुदन तथा अन्त में वास्तविकता का ज्ञान हास्यपरक होने से हास्य रस है।

१. पृ० २१, २२।
२. श्लो० ८२, ८३।

भाण मे कैशिकी वृत्ति के अंग अत्यल्प मात्रा में प्राप्त होते है। मत्तमराल द्वारा काचनलेखा से सम्बन्धित अपनी रतिकालिक क्रियाओं की चर्चा **सम्भोगनर्म**[1] का उदाहरण है।

भारती वृत्ति

वीथ्यग

विट शृङ्गारसार तथा माणिक्यमाला का संवाद उक्तिप्रत्युक्तिपूर्ण होने से **वाक्केली** है।[2] माणिक्यमाला का यह कथन कि सौभाग्य से शरत्काल के चन्द्रमा को प्राप्तकर कौन चकोरिका उसकी किरणो के आस्वाद के लिये चञ्चला नही हो जायेगी—अन्यार्थपरक (प्रेयसी द्वारा सौभाग्य से प्राप्त हुये प्रेमी के साथ रतीहा) होने से **अवस्यन्दित**[3] वीथ्यंग है।

अनंगजीवन भाण में **प्राकृत** का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। आधुनिक युग मे लिखे गये भाणो मे यह प्रथम भाण है जिसमें प्राकृत का इतना प्रयोग हुआ है। इस भाण की एक और विशेषता यह है कि इसमे महाभारत एव रामायण के अनेकत्र प्रसङ्ग आये है।[4] यह विशेषता अन्य भाणो मे नही है। अनंगजीवन भाण के सम्वाद अत्यन्त छोटे, रोचक तथा सरस है। उनमे इतना अधिक प्रवाह है कि पढ़ते पढ़ते पाठक का मन प्रसाद करते है। अब तक उपलब्ध भाणो मे यह प्रथम भाण है जिसकी शैली मे इतना प्रवाह और सरलता है। इस प्रकार भाव प्रधान वर्ग के भाणो मे अनंगजीवन का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

---

१. श्लोक ६९–७१।

२. पृ० ६।

३. सम्प्राप्य दिष्ट्या सम्पूर्णशरत्कालसुधाकरम्।
कथं तत्किरणास्वादलोला न स्याच्चकोरिका ॥ (श्लो० १९)

४. श्लो० ४७, ६३ तथा पृ० २५।

श्रृंगारसुधाकर भाण

श्रृंङ्गारसुधाकर भाण अश्वति तिरुनालराम वर्मा की कृति है। इसका समय १८वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। भावप्रधान वर्ग के इस भाण में नायक श्रृङ्गारशेखर तथा नायिका रतिरत्नमालिका के प्रेम की कहानी है। यह एक लघु आकार का भाण है जिसमे ६८ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र		**पुरुषपात्र**
रतिरत्नमालिका	— नायिका	श्रृङ्गारशेखर—नायक
सहकारमञ्जरी	— नायिका की सखी	वसन्तशेखर —विट
मन्दार वल्लरी	वारवनिताये	विशाख शर्मा—सेठ
चम्पकलता	वारवनिताये	पटीरदास का पुरोहित
शिरीषसीमन्तिनी	वारवनिताये	
विद्युत्लतिका	वारवनिताये	
चन्द्रलेखा	वारवनिताये	
कर्पूरशलाकिका	वारवनिताये	
केतकीशिखा	वारवनिताये	
कस्तूरिका	वारवनिताये	
लावण्यतरगिणी	वारवनिताये	
लीलावती	वारवनिताये	
सुमनोवती	वारवनिताये	
कलापवती	वारवनिताये	
बकुलमञ्जरी	वारवनिताये	

नान्दी

यहाँ एक पद्यात्मक नान्दी है जिसमें भगवान् शिव और पार्वती का अर्ध-नारीनटेश्वर के रूप मे वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर पदगणना के अनुसार यह चतुष्पदा नान्दी है। आशीर्वादात्मक होने से यह शुद्धा है। नान्दी का आरम्भिक गण मगण होने से यह नायक को 'श्री' देने वाली है। अतः गणतः परिशुद्धा है। आरम्भिक अक्षर 'व' नियमानुसार नायक को व्यसनप्रद है किन्तु शिव और पार्वतीरूप देवता का वर्णन होने के कारण यह भी मङ्गलप्रद है। अत. लिपितः परिशुद्धा भी नान्दी है।

प्रस्तावना

नान्दी के बाद प्रविष्ट होकर सूत्रधार पारिपार्श्वक से कहता है कि भगवान् पद्मनाभ के चैत्रोत्सव को देखने के लिये दिग्दिगन्त से आए हुये सामाजिकों ने मुझसे कहा है कि वे किसी रूपक का अभिनय देखना चाहते है। पारिपार्श्वक के यह कहने पर कि इस समय श्रृङ्गारयुक्त रचनाओ का अभाव है—सूत्रधार कवि अश्वति

तिरुनालराम वर्मा द्वारा रचित शृङ्गारसुधाकर भाण का परिचय देता है। पारिपार्श्वक वसन्त का वर्णन करता है। सूत्रधार वसन्त ऋतु और विट की तुलना करता हुआ चला जाता है। रगमंच पर विट का प्रवेश होता है। सूत्रधार द्वारा वसन्त ऋतु और विट के तुलनात्मक वर्णन के साथ ही विट का प्रवेश कालसाम्यसमाक्षिप्त होने से **प्रवृत्तक** आमुखभेद के अन्तर्गत आता है।

कथानक

रंगमंच पर आकर विट वसन्तशेखर प्रभात का वर्णन कर ही रहा था कि उसका परम मित्र शृङ्गारशेखर मिल जाता है। औपचारिक वार्तालाप के बाद वह विट को अपनी मनोव्यथा बताता है कि उसका मन त्रिभुवन सुन्दरी रतिरत्नमालिका में अनुरक्त हो गया है। अपने मिलन प्रसंग का वर्णन करते हुये शृङ्गारशेखर बताता है कि जब गिरिजा के मन्दिर के बाहर वह अपने मित्रो के साथ खड़ा था उसी समय वह अपनी सखियो के साथ उधर से निकली। उसकी सखी सहकारमंजरी ने वितान पर चित्रित रति को देखने को कहा। उसे देखकर वह अत्यन्त चकित रह गई। इस पर सहकारमजरी ने उसकी चुटकी लेते हुये कहा कि प्रिय सखि, क्या तुम अपने इस रूप से तरुणो को मोहित नही करती हो। इस समय स्फटिक मणियो के फर्श और दीवालो मे प्रतिबिम्बित होने वाले मेरे (शृ० शे०) रूप को देखकर रतिरत्नमालिका ने उसे भी चित्रित हुआ समझा। किन्तु सहकारमजरी द्वारा तथ्य बताये जाने पर वह स्वेद रूप सात्विक भाव को व्यक्त करती हुई ठगी सी खड़ी रह गयी। सखी द्वारा अम्बिका दर्शनार्थ प्रेरित किये जाने पर किसी प्रकार उदास मन से गयी। इस प्रकार उसके रूप सुधा का पान करता हुआ मै इस दशा को प्राप्त हो गया हूँ।

विट शृङ्गारशेखर को आश्वासन देता है कि आज रात मे वह उस कमलाक्षी से उसकी भेट अवश्य करा देगा। इसके बाद दोनो मित्र वहाँ से चल देते है। विट को मार्ग में श्रेष्ठी पटीरदास का पुरोहित विशाख शर्मा मिल जाता है। पूछने पर विदित होता है कि महाशय मन्दारवल्लरी से प्रेम करते है और उसे दश सहस्ररुपये सेठ से लेकर देने का आश्वासन दिया है। किन्तु अब तक प्रतिश्रुत धन न दे सकने के कारण उसकी जरती माँ ने वेश मे पकडकर गालियाँ दी और झाड़ू से पीटा। विट उसे शीघ्र खिसक जाने की सलाह देकर अपना पिंड छुड़ाता है।

वहाँ से चलकर विट कुछ मनोविनोद करने के लिये मन्दारवल्लरी के घर जाता है। सद्य. सुरत चिह्नो के विषय में पूछने पर वह विट को यह कहकर बहकाने का प्रयत्न करती है कि पानी से भरा घड़ा लाने से परिश्रान्त हूँ तथा नलग्रन्थि में उलझने से यह खरोच लग गई है, नखक्षत नही है। साथ ही चचरीकयुक्त पुष्प सूँघने से यह चचरीक ने काट लिया है, दन्तक्षत नही है। उसके इस कृत्रिम उत्तर को सुनकर विट उसके प्रेम का रहस्य खोल देता है। आगे बढ़ने पर विट को चम्पकलता मिलती है। विट को शिरीषसीमन्तिनी मे अनुरक्त जानकर चम्पकलता उसे मृदुल उपालम्भ देती है।

इसी समय दोपहर हो जाता है। विट सूर्य की प्रखरता का वर्णन करता है। दोपहरी बिताने के लिये जब वह वेशवाट मे घूम रहा था तो उसकी भेंट विद्युल्लतिका, चन्द्रलेखा, कर्पूरशलाकिका कैतकीशिखा, कस्तूरिका, लावण्यतरंगिणी तथा लीलावती आदि से होती हैं।

आगे चलने पर विट को अरसिक श्रोत्रिय समाज मिलता है। विट उन्हे चिढ़ाने को कुछ व्यंग्य करता है। इस पर क्रुद्ध होकर वे कहते है कि कामदेव हमारा क्या बिगाड़ सकता है। हम उसे अपने ब्रह्मचर्य की अग्नि में क्षणमात्र में जला सकते हैं। विट उन्हे काम की अपराजेयता बताते हुये स्मर रहस्य का उपदेश देता है। इसके पश्चात् विट को सुमनोवती मिलती है। पूछने पर पता चलता है कि वह बसन्तमहोत्सव देखने आये हुये रसिक जनों के समाज में नाट्यकला के प्रदर्शनार्थ जा रही है। विट उसे पुनः आने का आश्वासन देकर आगे बढता है। अब उसे कन्दुकक्रीडा करती हुई कलापवती तथा नृत्यक्रीडा मे व्यस्त वकुलमजरी मिलती है। उनसे मनोविनोद करता हुआ विट आगे बढ़ता है।

वेशवाट से निकलकर विट को अब मित्र शृङ्गारशेखर के कार्य का ध्यान आता है। मदन व्याकुल शृङ्गारशेखर भी उसे यही मिल जाता है। वह अत्यन्त क्षीण हो गया है। उष्ण निश्वासे, शून्य दृष्टि, शिथिल इन्द्रियाँ, उसकी विरह दशा के परिचारक है। विट उसे धैर्य बधाता है। इसी समय सायकाल हो जाता है। विट उसका विशद वर्णन कर ही रहा था कि उसको पता चलता है कि रति रत्नमालिका सहकारमंजरी के साथ चन्द्रशाला मे बैठी है। विट वही पहुँचता है।

रतिरत्नमालिका की बुरी दशा है। नलिनीपत्र पर शयन किये वह दिखायी पड़ती है। उसका शरीर क्षीण हो गया है। कम्पयुक्त श्वास लेती हुई वह किसी प्रकार जीवित है। विट को देखकर वह शिष्टाचारवश उठना चाहती है। किन्तु विट मना कर देता है। पास बैठकर विट उससे इस दशा का कारण पूछता है। रतिरत्नमालिका विट को स्पष्ट बता देती है कि मूर्तिमान् शृङ्गारस्वरूप शृङ्गारशेखर को जबसे देखा है, ऐसी दशा हो गई है। विट उसे आश्वासन देकर बाहर शृङ्गारशेखर को लेजाकर दोनो का सयोग करा देता है एव चन्द्र और चन्द्रिका की भाँति उन दोनो को एक दूसरे से अवियुक्त होने का आशीर्वाद देता हुआ भरतवाक्य पढता है और भाण समाप्त होता है।

वस्तु

प्रस्तुत भाण मे शृङ्गारशेखर तथा रतिरत्नमालिका के प्रेम की कथा आधिकारिक है। भाण मे प्रासगिक कोई कथा नही है।

सन्धि

नायक शृङ्गारशेखर का यह कथन कि मेरा मन त्रिभुवन सुन्दरी रतिरत्नमालिका मे अनुरक्त हो गया है—**बीज** अर्थ प्रकृति तथा विट द्वारा यह निश्चय करना

कि आज सायंकाल मै अवश्य उस पक्ष्मलाक्षी से आपका सयोग करा दूँगा—**आरम्भ** कार्यावस्था है। इन दोनो के समन्वय से बनी मुखसन्धि मे शृङ्गारशेखर तथा रतिरत्नमालिका का एक दूसरे को देखकर आसक्त हो जाना, शृङ्गारशेखर द्वारा विट को तथा रतिरत्नमालिका द्वारा सखी सहकार मजरी को अपनी मन.स्थिति बताना, विट द्वारा एतदर्थ प्रयत्नारम्भ, पुरोहित विशाख शर्मा का आचरण, विट का अनेक वेश सुन्दरियो से मनोविनोद तथा अरसिक श्रोत्रियो के साथ उसकी नोकझोक, उन्हें ढकोसला छोड़कर कामाराधन की सलाह देना आदि कथानक सम्मिलित है। कथानक बहुत छोटा होने से भाण मे निर्वहण सन्धि कुछ अस्पष्ट है। विट द्वारा शृङ्गार-शेखर को पुन: यह आश्वासन देना कि बहुत शीघ्र वह उसका मनोरथ पूर्ण करेगा **कार्य** अर्थप्रकृति तथा नायक नायिका का सयोग **फलागम** कार्यावस्था है। इनके संयोग से बनी निर्वहण सन्धि मे विट की मदन व्याधि से पीडित शृङ्गारशेखर से पुन: भेट, सायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन, रतिरत्नमालिका के निकेत का लम्बा वर्णन, उसकी विरह दशा तथा नायक नायिका का सयोग मुख्य कथानक है।

सन्ध्यग

शृङ्गारशेखर का यह कथन कि उसका मन अनुपम सुन्दरी रतिरत्नमालिका में अनुरक्त हो गया है **उपक्षेप**[१], इस अनुराग का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए शृङ्गारशेखर का यह कथन कि किस प्रकार गिरिजा मन्दिर के पास मित्रो के साथ वह खड़ा था उस समय वह प्रियतमा उसकी दृष्टिगोचर हुई और किस प्रकार स्फटिक मणियो की भित्ति मे प्रतिविम्बित मुझे देखकर वह मुझ पर आसक्त हो गई—उस अनुराग रूप बीज का बाहुल्य होने से **परिकर** है।[२] विट का यह आश्वासन कि आज सायकाल तक वह शृङ्गारशेखर की रतिरत्नमालिका से भेट करा देगा—**परिन्यास**[३] है। चम्पकलता के पास से चलने पर विट अन्य वारागनाओं के पास इसलिए नहीं जाना चाहता कि इससे मित्रकार्य मे कही विलम्ब न हो जाये। अत: बीज का स्मरण होने से यह **समाधान**[४] नामक मुखसन्ध्यंग है।

विट द्वारा शृङ्गारशेखर से उसका मनोरथ पूरा करने की पुनः प्रतिज्ञा **सन्धि**[५], विट का रतिरत्नमालिका के घर जाना, उससे मिलकर उसके दु:ख का कारण जानना **विबोध**[६], नायक नायिका का सयोग करा देने से दोनो को अभीष्ट

---

१. पृ० ५।
२. पृ० ५–७।
३. श्लो० १९।
४. पृ० १५।
५. पृ० २४।
६. पृ० २७, २८।

प्राप्ति **आनन्द**[1], विट द्वारा दोनो से यह पूछना कि तुम्हारा और क्या उपकार करें **उपसहार** तथा अन्त मे भरतवाक्य द्वारा शुभाशंसन **प्रशस्ति** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है।

सन्ध्यन्तर

अपने सद्य सुरतजन्य चिह्नो को छिपाती हुई मन्दारवल्ली कहती है कि मेरे शरीर मे यह श्रम -- सरोवर से घड़ा भरकर पानी लाने के कारण है (सुरत के कारण नही), शरीर मे यह खरोचे नल ग्रन्थि मे उलझ जाने के कारण है, (नखक्षत नही) तथा ओष्ठ पर यह घाव चंचरीकयुक्त नालीकपुष्प सूघने से है (यह दन्तक्षत नही है) यह कथन **प्रत्युत्पन्नमतित्व** है।

नाट्यालङ्कार

विट तथा शृङ्गारशेखर का आरम्भिक वार्तालाप अत्यन्त विनय एव प्रश्रय-युक्त होने से **अनुवर्तन**[2], विट की यह प्रतिज्ञा कि आज रतिरत्नमलिका को शृङ्गार-शेखर से अवश्य मिला देगा **अध्यवसाय** है।[3]

विट द्वारा मन्दारवल्ली को अपने पूर्व दिनो का स्मरण दिलाना[4] **उत्कीर्तन**, विट द्वारा चम्पकलता के अधरपान आदि रतिप्रसङ्गो की इच्छा **स्पृहा**[5], अरसिक-श्रोत्रियो द्वारा कामदेव को अपने ब्रह्मवर्चस् की अग्नि मे जला देने की बात **गर्व**[6], विट द्वारा उन श्रोत्रियो को स्वाध्याय, मन्त्र, जप आदि छोड़कर सद्यः सुखप्रद मृगनयनियो का सेवन करने की शिक्षा देना **उपदेशन** है।[7] शृङ्गारशेखर का प्रिया के वियोग मे दुखी होते हुये प्रकृति के सुखदायक पदार्थों को दुख देने वाले बताते हुये अपनी दीन दशा की अभिव्यक्ति[8] **पश्चाताप** तथा भाण के अन्त मे विट द्वारा नायक नायिका को चन्द्र तथा चन्द्रिका की भाँति अवियुक्त रहने का आशीर्वाद **आशीः** नाट्यालङ्कार है।

भाण्यग तथा शिल्पकांग

चम्पकलता द्वारा ईर्ष्याभिभूता होकर कोपपूर्वक विट को सोपालम्भ बातें कहना **समर्पण**[9] नामक भाण्यंग है।

---

१. पृ० २८।
२ पृ० ४।
३ श्लो० १९।
४. श्लो० २७।
५. श्लो० २०।
६. पृ० १९।
७. श्लो० ६८।
८. श्लो० ८३।
९. पृ० ११, १२।

प्रिय के वियोग मे अत्यन्त क्षीणकाय, लम्बी-लम्बी सासे लेते हुये श्रृङ्गारशेखर की वियोग दशा, **ताप**[1], विट का श्रृङ्गारशेखर को धैर्य बंधाना **आश्वास**[2], रतिरत्नमालिका की वियोग दशा, उसके शरीर की क्षीणता आदि **ताप**[3], उसका अश्रुप्रवाह **बाष्प** शिल्पकांग है।

लास्यांग

विट तथा मन्दारवल्ली का प्रश्नोत्तरात्मक, प्रसादयुक्त वार्तालाप **उक्तप्रत्युक्त**[4], शिरीष सीमन्तिनी के साथ विट के सम्बन्ध के कारण सेर्ष्या चम्पकलता द्वारा दिया हुआ उपालम्भ **प्रच्छेदक**[5] तथा वकुलमजरी का नृत्य **पुष्पगण्डिका**[6] नामक लास्याग है।

पात्र

आलोच्य भाण का नायक श्रृङ्गारशेखर धीरललित प्रकृति का है। वह रतिरत्न मालिका को देखते ही उसपर अनुरक्त हो जाता है। भाण मे नायक की किसी अन्य नायिका के प्रति आसक्ति नही दिखाई गई है। प्रेमी नायक के अतिरिक्त श्रृङ्गारशेखर के अन्य किसी प्रकार के चरित्र का विकास भाण मे नही दिखाया गया है।

विट वसन्तशेखर नायक का मित्र है तथा नायक की नायिका से भेट कराने के लिये वह प्रयत्नशील रहता है। उसकी न तो स्वयं की कोई समस्या है और न स्वार्थ। पुरोहित विशाख शर्मा तथा अरसिक श्रोत्रिय गण के प्रसङ्ग कथानक के विकास मे सहायक हैं।

भाण की नायिका रतिरत्नमालिका है। यह मुग्धा प्रकृति की अभिसारिका नायिका है। श्रृङ्गारशेखर के प्रति उसका अनन्य अनुराग है। सहकारमजरी नायिका की परमविश्वास पात्र सखी है। अधिक मुह लगी होने से वह नायिका से कुछ विनोद व्यङ्ग्य भी कर लेती है। इसके अतिरिक्त मन्दारवल्लरी चम्पकलता, विद्युल्लतिका, वकुलमजरी आदि गणिकाओ के प्रसङ्ग मे कथानक के कलेवर की शोभा है।

रस तथा वृत्ति

श्रृङ्गार सुधाकर भाण मे अयोग विप्रलम्भश्रृङ्गार मुख्य रस है। क्योंकि नायक नायिका दोनो दर्शनमात्र से एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हो जाते है। समस्त भाण मे सयोग के पूर्व की वियोग दशा का वर्णन है। नायक नायिका इस श्रृङ्गार के **आलम्बन**, वसन्त ऋतु, सखी सहकार मंजरी की व्यङ्ग्य भरी बाते, परिवार

१. श्लो० ८२।
२. पृ० २४।
३. श्लो० ९४।
४. पृ० १०।
५. पृ० ११।
६. श्लो० ७८।

के सदस्यों से दूर गिरिजा का मन्दिर आदि **उद्दीपन**, रोमांच, श्वास, स्वेद, देवीदर्शन के प्रति अन्यमनस्कता, कृशता, क्षीणता आदि **अनुभाव** तथा लज्जा आदि **सचारीभाव** है। पुरोहित विशाख शर्मा का प्रसङ्ग तथा अरसिक श्रोत्रियों से विट का वार्तालाप आदि हास्य रस के प्रसङ्ग है।

कैशिकी वृत्ति

नायिका रतिरत्नमालिका द्वारा नायक को देखकर अन्यमनस्का होकर देवी दर्शनार्थ जाना, जाते समय साकूत विलोकन आदि भाव **नर्मस्फोट**[1] है। सखी सहकार मजरी द्वारा रतिरत्नमालिका के युवक विमोहक रूप की चुटकी लेना **हास्यनर्म**[2] तथा मन्दारवल्लरी के सद्य सम्भोगचिह्नों को लक्ष्य करके विट द्वारा किया गया व्यङ्गय **सम्भोगनर्म** है।[3]

भारतीवृत्ति

वीथ्यंग

विट से बातचीत करती हुई मन्दारवल्ली द्वारा 'सरोवर से भरा हुआ घड़ा लाने से श्रान्त हो गई हूँ'—कहकर रतिजन्य थकावट को, नलग्रथि के द्वारा लगी हुई खरोंच बताकर स्तनों के नखक्षत को तथा भ्रमरयुक्त पुष्प सूघने से हुआ घाव कहकर अधरक्षत को छिपाना—कौशलपूर्वक अन्यार्थ कथन होने से **अवस्यन्दित** वीथ्यंग है।[4] विट द्वारा अरसिक श्रोत्रियो को स्वाध्याय, मंत्र, जप, वेदाध्ययन, पूजा आदि कष्टसाध्य विधियो को छोडकर सद्यः सुखदायक मृगनयनियो का सेवन करने का उपदेश-गुणो को दोष और दोषो को गुण बताने के कारण **मृदव** वीथ्यग है।[5]

प्रहसनांग

प्रस्तुत भाण में प्रहसनांग बहुत कम हैं। पुरोहित विशाख शर्मा द्वारा पुरोहितायी मे अर्जित धन वेश्याओं पर लुटा देना—अपने ब्राह्मणोचित आचार के विरुद्ध होने के कारण **अवलगित** प्रहसनाग है।[6]

प्रस्तुत भाण मे प्रकृति बर्णन अन्य भाणों की अपेक्षा अधिक सरस, सुन्दर तथा नयी कल्पनाओ से ओत-प्रोत है। भाण की शैली सामान्यतया सरस तथा सरल है किन्तु कही-कही विशेष दृश्य उपस्थित करने के प्रसङ्ग में कवि की शैली अधिक क्लिष्ट तथा दीर्घ समास युक्त हो गई है। इस प्रकार अपनी सरस शैली, रोचक कथानक तथा सुन्दर संवादों के कारण श्रृङ्गारसुधाकर इस वर्ग का एक महत्वपूर्ण भाण है।

---

१. श्लो० १७, १८।
२ श्लो० १६।
३. पृ० १०।
४. पृ० १०।
५. श्लो० ६८।
६. पृ० ७–८।

शृङ्गारसर्वस्व भाण

शृङ्गार सर्वस्व भाण कवि नल्ला दीक्षित की रचना है। इसका समय १७वीं शता० का अन्त तथा १८वी शता० का आरम्भ है। इसमे नायक अनंगशेखर द्वारा नायिका कनकलता की प्राप्ति मुख्य कथा है। भावप्रधान वर्ग का यह मध्यम आकार का भाण है जिसमे १६१ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र

कनकलता—नायिका
चन्द्रमुखी—नायिका की सखी

विद्युल्लता, कान्तिमती, पद्मावती, वक्रमुखी, सरसाक्षी, मुक्तावली, कलकण्ठी, पक्ष्मलाक्षी, अरविन्दमुखी, कम्बुकण्ठी, कृशोदरी, मारवल्लरी — वारवनिताये

पुरुषपात्र

अनंगशेखर—नायक
विटशेखर—विटाधिप
वसन्तक—कलकण्ठी का पति
कामन्तक—एक प्रेमी (प्रकरी का नायक)

नान्दी

भाण मे त्रिपद्यात्मिका नान्दी है। प्रथम पद्य मे शिव तथा गौरी के विवाहावसर का आशीर्वादपरक वर्णन, दूसरे मे गणेश की स्तुति और तीसरे मे भगवती सरस्वती तथा कवियो के प्रति नमस्कार का वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर यह द्वादशपदा नान्दी है। आशीर्वादात्मक तथा नमस्कारात्मक होने से यह शुद्धा है। आरम्भिक गण मगण होने से नायक को 'श्री' देने वाला है। अत: गणत: शुद्धा नान्दी है। साथ ही आरम्भिक अक्षर 'व' यद्यपि नायक के विनाश का द्योतक है, किन्तु देवतापरक[1] होने से वह भी मंगलदायक ही है। अत. लिपित: शुद्धा भी नान्दी है।

---

१ विष्णुब्रह्मपुरन्दरादिबिबुधैः······(श्लो० १)

प्रस्तावना

पारिपार्श्वक के साथ वार्तालाप करता हुआ सूत्रधार मध्यार्जुन नामक नगर में भगवान् शिव के वसन्तोत्सवदर्शनार्थ आये हुये वैदेशिक विद्वानो के सम्मान मे नल्ला कवि द्वारा रचित शृङ्गार-सर्वस्व भाण के अभिनय का आदेश देता है। प्ररोचना के द्वारा सूत्रधार कवि की सरसवाणी, सभासदों के पाण्डित्य तथा नाट्यकला में अपनी प्रवीणता की प्रशंसा करता हुआ वसन्त ऋतु का वर्णन करता है। इसी समय नेपथ्य में पढे हुये श्लोक के साथ रंगमंच पर आये हुये पात्र का परिचय देता हुआ बताता है कि यह मेरा साला है जो इस समय कनकलता से वियुक्त अनंगशेखर की भूमिका ग्रहण कर उपस्थित हुआ है। यहाँ पात्र का प्रवेश चलित नामक आमुख भेद के अन्तर्गत आता है।

कथानक

कनकलता से वियुक्त अनंगशेखर प्रिया के विरह में व्याकुल है। इसी समय प्रात काल हो जाता है। पण्यवीथिका में प्रवेश करके अनंगशेखर अपनी पूर्व प्रेयसी विद्युल्लता से मिलता है। वह अपना वलयरहित हाथ विट को दिखाती है। इसी समय एक वलय विक्रेता आता है। जिससे विट अपनी प्रिया के लिये वलय खरीदता है। इसके अनन्तर विट को आगे बढने पर किसी युवती को वलय पहनाते हुये एक युवक दीखता है। युवती वलय पहनते समय रतिकालिक विभ्रमो से उस वलय पहनाने वाले को प्रसन्न करती है। विट उसके भाग्य की सराहना करता हुआ आगे बढ़ता है। अब उसे कांचनमाला की छोटी बहिन कान्तिमती मिलती है। उसे एक वृद्ध खीच रहा था। यह वृद्ध वलय विक्रेता है। पूछने पर वह बताता है कि कान्तिमती ने उसके बहुमूल्य वलय तोड़ डाले हैं और अब वलय विक्रेता उसके पति के पास उसे लिये जा रहा है। अनंगशेखर उस वलय के मूल्य के रूप मे अपना बहुमूल्य कटक दे देता है। कान्तिमती उऋण हो जाती है।

इसके अनन्तर विट वेश वीथी मे प्रवेश करता है जहाँ उसे धूप सेंकती हुई पूर्व प्रेयसी पद्मावती मिलती है। विट का प्रेम वक्रमुखी से है—यह जानकर पद्मावती उससे कुपिता है। किन्तु अनंगशेखर के पैर पड़ने पर वह प्रसन्न हो जाती है और दोनों की मैत्री पुन. पूर्ववत् हो जाती है। इसके अनन्तर अनगशेखर को विटाधिप विटशेखर सरसाक्षी से कलह करता हुआ मिलता है। पूछने पर विदित होता है कि मणिगुप्तक नामक क्रीडा विहार में विटशेखर जीत गया है। किन्तु सरसाक्षी उसका कलत्रभाव इसलिये स्वीकार नही करती क्योंकि विटशेखर ने उसकी छोटी बहिन मुक्तावली के साथ बलात्कार किया है। अनंगशेखर दोनों का विवाद शान्त करता है। आगे विट को चक्षुरपिधान नामक खेल खेलती हुई काचनमाला तथा अम्बर-करण्डक खेल खेलती हुई कलकण्ठी मिलती है। कलकण्ठी विट को अपना पूर्ववृत्तान्त बताती हुई कहती है कि कुछ दिन पूर्व वसन्तक के साथ उसका सम्बन्ध हुआ—कलत्र

पत्र लिखा गया। किन्तु एक रात मे वसन्तक मेरे आभूषण चुराकर भागा ही था कि उसे पकड़ लिया गया और जीर्ण शूप से मारकर भगा दिया। कुछ और आगे चलकर विट को कन्दुकक्रीडा करती हुई वसन्तकलिका, अक्षक्रीडा मे व्यस्त पक्ष्मलाक्षी, दोलाविहार का आनन्द लेती हुई अरविन्दमुखी तथा युग्मायुग्मदर्शन नामक विहार करती हुई कम्बुकण्ठी मिलती है। इसी प्रसंग मे विट को मजपक्तिकुसुमकन्दुक विहार मे व्यस्त कृशोदरी तथा चतुरगविभ्रमविहार का आनन्द लेती हुई मारवल्लरी मिलती है।

इसके अनन्तर अनगशेखर को कामाक्षीमहोत्सव देखकर कांचीपुरी से लौटता हुआ कामन्तक दीखता है। पूछने पर कामन्तक अपनी विरहकथा सुनाते हुये कहता है—एक दिन सायकाल के समय एक कमनीय सरोवर के किनारे मैने एक सुन्दरी को देखा। उसके चले जाने पर विरह से मेरी विचित्र दशा हो गई। तीव्र दाहज्वर से मैं पीड़ित होने लगा। इसी बीच एक चपलाक्षी ने मेरी इस दशा का कारण पूछा। मेरे बताने पर उसने कहा कि यह मेरा सौभाग्य है जो आपके दर्शन हुये। मैं तो आपको ही खोज रही थी। मेरी सखी भी तुम्हारे विरह मे पीड़ित है। आज रात्रि मे निष्कुटवन मे आकर उसे जीवनदान दो। मै यथासमय निष्कुटवन पहुँचा और उस तरुणी से मेरी भेंट हुई। यह कथा सुनकर विट प्रसन्न होता है। कामन्तक के पास ज्योतिः सिद्धान्तसारावली नामक ग्रन्थ को देखकर विट अपना मनोरथ पूछता है। कामन्तक गणित लगाकर उसे बताता है कि तुम किसी कामिनी का समागम चाहते हो और आज रात मे ही उससे तुम्हारा संयोग हो जायेगा। कामन्तक द्वारा पूछने पर अपनी प्रणयकथा सुनाते हुये अनगशेखर कहता है कि मै अनिन्द्यसुन्दरी बाला कनकलता को देखकर उस पर आसक्त हो गया हूँ। यद्यपि मेरा अभी उससे वार्तालाप मात्र हुआ है किन्तु मेरा मन उसमे ही उलझ गया है।

आगे बढने पर विट को भगवान् शकर के यात्रोत्सव मे उनकी सवारी आती दीखती है। भगवान् आज कावेरी के तट पर मणिमण्डप को सुशोभित करेगे। अनंगशेखर भगवान् शिव को प्रणाम करके अपनी प्रिया से शीघ्र भेंट होने का वरदान माँगता है। इसी बीच एक मदालस हाथी के उपद्रव के कारण भगदड मच जाती है। इस भगदड़ मे विट का मित्र कामन्दक भी भाग जाता है। गजानन के रूप में स्तुति किये जाने पर हाथी प्रसन्न होकर लौट जाता है।

एक विविक्त रमणीय प्रदेश में बैठकर विट विश्राम करते हुये अपनी प्रिया का स्मरण कर ही रहा था कि उसे चन्द्रमुखी मिल जाती है। वह कनकलता की विरह व्यथा बताती हुई कहती है कि वह अत्यन्त क्षीणकाया हो गई है उसकी माँ ने मुझसे कहा है कि जैसे भी हो मेरी बेटी का मनोरथ पूरा करवाओ। चन्द्रमुखी विट को बताती है कि आज चन्द्रशाला में कनकलता के साथ तुम्हारा संयोग करा दूंगी।

दोनों चन्द्रशाला में जाते है। चन्द्रमुखी के प्रयत्न से विट अनंगशेखर कनकलता को प्राप्त करता है और भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

प्रस्तुत भाण मे अनंगशेखर और कनकलता का कथानक आधिकारिक तथा कामन्तक और उसकी प्रेयसी का कथानक प्रकरी है।

पताकास्थानक

प्रस्तावना मे वसन्त-ऋतु के वर्णन प्रसग में सूत्रधार गुंजार करते हुये, वन-वन घूमने वाले भ्रमर को विलाप करते हुये वियोगी का अनुकरण करता हुआ बताता है। यह संकेत भाण के वियोगी नायक अनंगशेखर के प्रति होने से यह तुल्यसंविधान पताकास्थानक माना जायेगा।

सन्धि

भाण के आरम्भ में वियोगी अनंगशेखर द्वारा अपनी प्रिया के वियोग का कथन **बीज** अर्थप्रकृति तथा चन्द्रमुखी द्वारा उसे धैर्य बँधाना, उससे उत्साहित होकर अनंगशेखर का आश्वस्त होना, प्रिया प्राप्ति के प्रति आशावान् होना **आरम्भ** कार्यावस्था है। इन दोनो के सयोग से बनी **मुखसन्धि** में अनगशेखर का विरहातुर होना, प्रभात का वर्णन, पण्यवीथिका एवं शृगारवीथिका के दृश्य, स्त्रियो के विविध प्रकार के खेलो का परिचय, कामन्तक का वियोग तथा उसकी मनोरथ सिद्धि तक का कथानक लिया जा सकता है। ज्योतिष.शास्त्र के पण्डित कामन्तक द्वारा अनंगशेखर को प्रिया प्राप्ति रूप मनोरथसिद्धि की बात कहना **कार्य** अर्थप्रकृति एवं चन्द्रमुखी के प्रयत्न से कनकलता की प्राप्ति **फलागम** कार्यावस्था है। इन दोनो के योग से बनी निर्वहण सन्धि में अनंगशेखर द्वारा कनकलता से सम्बन्धित वियोग की घटना सुनाना, नटागनाओ द्वारा उपस्थित किया गया सर्कस, मल्लयुद्ध, कुक्कुटयुद्ध आदि का वर्णन और चन्द्रमुखी की सहायता से कनकलता की प्राप्ति आदि कथानक सम्मिलित है।

सन्ध्यंग

प्रिया के वियोग में दुखी अनंगशेखर द्वारा उसके रूपलावण्य का स्मरण **उपक्षेप**[1], उसका कामदेव को कोसना, प्रेयसी की निर्दयता और अदाक्षिण्य का कथन उपक्षेप का विस्तार पूर्वक कथन होने से **परिकर** है।[2] किन्तु चन्द्रमुखी द्वारा दिये गये आश्वासन से अनंगशेखर का धैर्य धारण करना, प्रिया मिलन के प्रति आशावान् होना **परिन्यास**[3] तथा विद्युल्लता के मुख, नेत्र, अधर आदि की शोभा का वर्णन विलोभन नामक मुख सन्ध्यंग है।[4]

---

१ श्लो० १७।

२. श्लो० १८–२०।

३. पृ० ५।

४. श्लो० २७, २८।

पण्यवीथिका, वेशवाट आदि के वर्णन प्रसङ्ग के बाद जब अनंगशेखर की कामन्तक से भेंट होती है वही निर्वहण सन्धि आरम्भ होती है। ज्योतिषी कामन्तक गणना करके अनंगशेखर को बता देता है कि प्रिया प्राप्ति ही तुम्हारा मनोरथ है और वह आज पूरा हो जायगा। कामन्तक द्वारा पूछे जाने पर अनंगशेखर द्वारा प्रिया विरह की घटना सुनाना—बीज रूप मे कही हुई बात का पुनः कथन होने से यह **सन्धि** नामक मुखसन्ध्यंग है।[1] हाथी के आतंक के बाद अनंगशेखर द्वारा एकान्त मे खड़े होकर यह निश्चय करना कि चन्द्रमुखी सब ठीक कर देगी तथा उसी समय चन्द्रमुखी का आगमन-कार्यमार्गण होने से **विबोध** है।[2] अनंगशेखर के वियोग मे चन्द्रमुखी द्वारा कनकलता की विरहदशा का वर्णन **निर्णय**, प्रिया कनकलता के पास पहुँचकर अनंगशेखर द्वारा विलम्ब से आने की अपनी भूल स्वीकार करते हुए प्रिया मिलन से प्रसन्न होना **आनन्द**[3], चन्द्रमुखी द्वारा कनकलता को प्रिय मिलन के लिए प्रेरित करना **समय**, अनंगशेखर द्वारा चन्द्रमुखी से अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने, अपनी मनोरथपूर्ति रूप उत्तम फल प्राप्ति कथन **उपसहार** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है।

सन्ध्यन्तर

अनंगशेखर द्वारा विद्युल्लता से वलय भग का कारण पूछने पर उसका लजा जाना **ह्री**[4] तथा कलकण्ठी द्वारा 'पतित' शब्द का भूमि पर पड़ा हुआ प्रसङ्ग प्राप्त अर्थ न लेकर अनगशेखर के प्रति किये गये स्नेहानुबन्ध विषयक अर्थग्रहण द्वारा व्यग्योक्ति **प्रत्युत्पन्नमतित्व** है।[5]

नाटचालङ्कार—

अनगशेखर द्वारा अपनी प्रिया कनकलता के परिष्वजन की कामना **स्पृहा**[6], विद्युल्लता से किये गये पूर्वकालिक गुप्त रतिप्रसङ्गो का कथन **उत्कीर्तन**[7], अनगशेखर द्वारा वेशवाट में ईर्ष्याकषायिता पद्मावती को पूर्व मैत्री का स्मरण दिलाना **आख्यान**[8], उसकी कलकठी के साथ पुनः रिरंसा **स्पृहा**[9], विट द्वारा कलकंठी को सैकड़ों वर्षों तक

१. श्लो० १२१–१२५।
२. पृ० ३६।
३. श्लो० १४८–१४९।
४. श्लो० १५७।
५. श्लो० १५८।
६. पृ० ८।
७ श्लो० ३८।
८. श्लो० ५५–५६।
९. श्लो० ७३।

अम्लानयौवना रहने का आशीर्वाद **आशी**.[1] है। विट द्वारा पूर्वकाल में वसन्तकलिका के साथ की गई कन्दुक क्रीड़ा का स्मरण दिलाना तथा उसका कथन पूर्ववृत्तोक्ति होने से **आख्यान**[2], चन्द्रमुखी द्वारा अनंगशेखर को प्रसन्न रहने का आशीर्वाद आशी:[3] तथा प्रिया प्राप्ति से उसका प्रसन्न होना **प्रहर्ष** नामक नाटचालंकार है।

भाण्यंग

विटशेखर द्वारा मुक्तावली के साथ की गई बलात्रति अस्वीकार किये जाने पर सरसाक्षी द्वारा उसका उदाहरण (दन्तनखक्षतादि चिह्न) प्रस्तुत किया जाना **निवृत्ति** है।[4] भाण के अन्त मे कनकलता की प्राप्ति रूप मनोरथ सिद्धि होने पर चन्द्रमुखी से आशीर्वाद प्राप्त करना, उसे विदा करना, शुभाशंसा आदि के द्वारा कार्य समाप्त करना **संहार** है।

शिल्पकाङ्ग

वलय टूट जाने से कांतिमती का रुदन **वाष्प**[5], अनंगशेखर के वियोग मे पीडिता कनकलता की दशा का वर्णन **ताप**[6], कनकलता द्वारा सखी से अपनी मनोवेदना का कथन **विलाप**[7] तथा अनंगशेखर की प्रिया प्राप्ति पर प्रसन्नता **प्रहर्ष**[8] नामक शिल्पकाङ्ग हैं।

लास्याङ्ग

विद्युल्लता तथा विट का प्रसादयुक्त प्रश्नोत्तरात्मक वार्तालाप **उक्तप्रत्युक्त**[9], अनगशेखर की अन्यासक्ति से ईर्ष्याकषायिता पद्मावती का कोपप्रकाशन **प्रच्छेदक**[10], विट एवं कलकठी का संवाद प्रसादयुक्त प्रश्नोत्तर होने से **उक्तप्रत्युक्त**[11] तथा अरविन्द-मुखी द्वारा बीणा बजाते हुए स-रे-ग म-आदि सप्त स्वरों के उच्चारण पूर्वक मनोहर गान **गेयपद** नायक लास्याङ्ग है।[12]

पात्र

प्रस्तुत भाण का नायक अनंगशेखर धीरललितप्रकृति का दक्षिण नायक है। वह

१. पृ० १६।
२. श्लो० ८२।
३. श्लो० १५६।
४. श्लो० ६०।
५. पृ० ११।
६. श्लो० ११८, ११६।
७. श्लो० १५६।
८. श्लो० १६०।
६. पृ० ७।
१०. पृ० १३।
११. १७–१८।
१२. पृ० २४।

कनकलता का प्रेमी है । जबसे उसे देखा है कामबाण मे आहत हो गया है । वेशवाट मे घूमते हुए अनेक गणिकाओ से हास परिहास करता हुआ, अनेक के विवादो को निपटाता हुआ कामन्तक से मिलता है । यही उसे कनकलता की सखी चन्द्रमुखी मिलती है जिसकी सहायता से विट की नायिका से भेट हो जाती है । कथानक मे नायक के आद्योपान्त प्रमुख रूप से रहते हुए भी उसके चरित्र का विकास नही दिखाया जा सका है ।

नायक अनंगशेखर के इस प्रेम प्रसग में पुरुष पात्रों में कामन्तक सर्वाधिक सहायक होता है । उसकी विरहवेदना के तीव्र हो जाने पर ज्योतिषी कामन्तक विचार करके नायक को शीघ्र ही प्रिया मिलन की भविष्यवाणी करके धैर्य बंधाता है । कामन्तक यहाँ प्रकरी नायक है । वह अपनी प्रेयसी से वियुक्त होकर चपलाक्षी की सहायता से उसे प्राप्त कर लेता है ।

भाण की नायिका कनकलता मुग्धा है जो सभवत नायक को देखकर कामदेव के बाणो से प्रथम बार घायल हुई है । अवस्था की दृष्टि से यह अभिसारिका है जो कामार्ता होकर नायक को अपने पास बुलाती है । कनकलता के अतिरिक्त नायक की पद्मावती, कलकंठी आदि अन्य प्रेयसियाँ भी है जो उसे वेशवाट मे मिलती हैं । इनके अतिरिक्त कनकलता की सखी चन्द्रमुखी नायक नायिका का संयोग कराने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई है । वह कथानक के विकास मे सर्वाधिक सहायक है ।

रस तथा वृत्ति

आलोच्य भाण में अयोग शृगार मुख्य रस है । नायक नायिका में रति **स्थायी** भाव है । दोनो ने एक दूसरे को देखा अवश्य है किन्तु अपरिचित होने से तथा सामाजिक बन्धनो के कारण दोनो का सयोग नही हो पाता । इसमे नायक नायिका परस्पर **आलम्बन**, उनके रूपलावण्य, शीतलपवन, पिक-कूजन, चन्द्रकिरण आदि **उद्दीपन**, शरीर की शिथिलता, संताप का बढना, आहार तथा मण्डन में अरुचि, अश्रु प्रवाह, चन्द्र एवं चन्दन से भी प्रमुदित न होना **अनुभाव** तथा ताप, औत्सुक्य, व्रीडा ईर्ष्या आदि **संचारी** भाव है ।

कैशिकी

अनंग शेखर द्वारा कलभाषिणी के साथ कावेरी के तट पर नीप विपिन के लता कुंजो में किये गये प्रणय व्यापारो[1] का, पद्मावती से प्राक्तनी मैत्री के प्रसंग में किये गये गाढालिंगन, अधरास्वाद आदि रतिव्यापारों का स्मरण करना[2] **संभोगनर्म** है । मदनपीडिता कनकलता द्वारा सखी चन्द्रमुखी से कामजन्य पीडा की व्याकुलता

---

१. श्लो० ३८ ।

२. श्लो० ५५-५७ ।

व्यक्त करते हुये जीवनदायी प्रिय के प्रति स्वानुराग निवेदन **आत्मोपक्षेप नर्म**[1] नामक कैशिकी वृत्ति का अंग है।

भारती

वीथ्यंग— विट के साथ बातचीत मे विद्युल्लता बताती है कि पातिव्रत के संकट से अपने को जैसे तैसे छुड़ाकर अब कामदेव की उपासना करती हुई स्वच्छन्दाचरण में प्रवृत्त हो गई हूँ। विट पतिगृह में कामिनियों के वास को दूषण बताता है। इस प्रकार पातिव्रत पालन, पतिगृह में सदाचार पूर्वक निवास आदि गुणो को भी दोष बताने से यह प्रसंग **मृदव** है।[2] इसी प्रकार विट द्वारा कलभाषिणी को सास ननद आदि के बन्धन रूप गुण को भी दोष बताया जाना भी **मृदव** है।[3] विट के द्वारा प्रयुक्त पतित शब्द का कलकठी द्वारा अन्यार्थ में प्रयोग **अवस्यन्दित** है।[4] विट और कलकंठी का यह संवाद **वाक्केली** भी हो सकता है।

प्रस्तुत भाण मे प्रहसनांग अप्राप्य हैं।

श्रृंगारसर्वस्व भाण की शैली अत्यन्त रोचक तथा सरल है। सवाद छोटे छोटे एवं प्रवाह युक्त हैं। किन्तु कथानक सरस एवं रोचक होते हुए भी प्रवाह रहित है। इस प्रकार भाव प्रधान वर्ग में यह एक मध्यम कोटि का भाण है।

---

१. पृ० १५६।
२. पृ० ७।
३. पृ० ६।
४. पृ० १७।

कुवलयानन्द भाण

कवि रामचन्द्र कृत यह भाण पाण्डुलिपि मे प्राप्त है तथा कथानक के सूत्र किसी प्रकार जोड़े जा सके है ।

द्विपद्यात्मक आशीर्वाद परक नान्दी मे भगवान् शिव एवं विष्णु की स्तुति है । सूत्रधार के रगमच से चले जाने पर कथानक आरम्भ होता है । नायक भुजंगशेखर तथा उसका मित्र कलकण्ठ कौण्डिनी नदी के तट पर बैठकर अपनी अपनी विरह सम्बन्धी मनोव्यथा का वर्णन करते है । कलकण्ठ धनंजय की पत्नी कमलिनी से प्रेम करता है और भुजंगशेखर कला निधि की छोटी पुत्री कामलता से प्रेम करता है । कलकण्ठ की सहायता से भुजंगशेखर को कामलता प्राप्त होती है ।

भाण मे सन्धियो की स्थिति बहुत ही क्षीण रूप में है । भाण का नायक भुजगशेखर धीर ललित प्रकृति का है । कलकण्ठ उसका परमसहायक मित्र है । कामलता भाण की नायिका है और स्वभाव से मुग्धा है । विप्रलम्भ शृंगार मुख्य है ।

भाण का कलेवर यद्यपि मध्यम कोटि का है किन्तु कथानक मे न तो प्रवाह है और न घटनाओ मे बहुलता । साहित्यिक दृष्टि से भाण महत्त्वहीन है । कवि ने वेणीसंहार नाटक का अनुकरण किया है तथा 'चञ्चद्भुज···' के अनुकरण पर कोई श्लोक लिखे है ।

भाण में शेषअंक प्रायः नही है ।

शृङ्गारमञ्जरी भाण

अत्यन्त लघु आकार के कवि रतिकर कृत इस भाण मे नायक शृगारशेखर द्वारा नायिका शृंगार मंजरी को प्राप्त करने का कथानक है। नान्दी एव प्रस्तावना के अनन्तर रगमच पर विट प्रविष्ट होकर अपने मित्र शृगार शेखर के लिए उसकी प्रिया शृगारमंजरी का भाव जानने का उद्योग करता है। मित्र शृगारशेखर के प्रति उसके प्रेम को जानकर विट उसकी सराहना करता है। अन्त मे शृगारमजरी की सखी विजयमालिका की सहायता से आनन्दकन्दन उद्यान में दोनो की भेट होती है।

कथानक को देखकर ऐसा लगता है कि भाण अधूरा रह गया हो। इसे आरंभ मे भाण कहा गया है किन्तु कथानक के मध्य मे पहुँचकर नाटक-प्रकरण की भाँति पात्र स्वयं बोलने लगते है तथा आकाश भाषित का अभाव है। इसके वर्णनों मे अभिज्ञानशाकुन्तलम् का बहुत अधिक अनुकरण है।

नाट्य तत्त्वो का प्राय: इसमे अभाव है।

इसके साथ ही भावप्रधान वर्ग समाप्त होता है।

पञ्चम अध्याय

भाण-समीक्षा

व्यङ्ग्य प्रधानवर्ग

व्यङ्ग्य प्रधान वर्ग-परिचय

१. पादताडितक भाण

२. धूर्तविट संवाद भाण

३. श्यामला भाण (पा० लिपि)

व्यंग्य प्रधान वर्ग

जैसाकि इसका नाम है—इस वर्ग मे वे भाण रखे गये है जिनमे किसी विशिष्ट जाति, समाज या व्यक्ति पर व्यंग्य किया जाता है, उनके दोष तथा बुराइयों को किसी घटना के द्वारा व्यक्त किया जाता है। यो तो सभी भाणो मे व्यग्य होता है, किन्तु इस वर्ग मे वे भाण आते है जिनमें अन्य कथानक का प्राय· अभाव रहता है। सभी घटनाये व्यग्यपरक ही होती है।

व्यंग्य की प्रधानता होने से इस वर्ग मे आने वाले भाणो का आधिकारिक कथानक प्राय. कुछ भी नही होता। नायक का कोई विशिष्ट लक्ष्य नही होता, कुछ प्राप्तव्य नही होता। इसी से इन भाणों मे सन्धि-निर्माण नही हो पाता। क्योकि जब मुख्य लक्ष्य ही नही है तो बीज और आरम्भ तथा कार्य और फलागम कहाँ से आये ? फलस्वरूप सन्धि तथा उसके सन्ध्यगो का यहाँ प्राय. अभाव रहता है। आधिकारिक कथानक के अभाव में इन भाणों में नायक नायिका प्रसग का अभाव होता है। मुख्य पात्र को यहाँ नायक सज्ञा उसके प्रधान मात्र होने के कारण दी गयी है। उसकी कोई नायिका नही होती। यही स्थिति रस की भी है। नायक नायिका के प्रसग के अभाव मे श्रृंगार यहाँ पुष्ट नही होता। वेशवाट के विविध प्रसंगो मेंश्रृंगार युक्त वर्णन होते अवश्य हैं किन्तु यहाँ श्रृगार प्रायः आलम्बन मात्र रह जाता है, रसकोटि तक नही पहुँच पाता। वीर रस का यहाँ कोई प्रसग नहीं होता है। अतएव अंग रूप में तो श्रृंगार हास्य आदि रस मिल जाते है, परन्तु अगी रूप मे इनका यहाँ प्रायः अभाव रहता है।

आलोच्य वर्ग मे तीन भाणो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इनमें प्रथम अर्थात् पादताडितक बडा महत्त्वपूर्ण भाण है। प्रधानतया व्यग्य परक होते हुए भी इसके कथानक का एक मुख्य उद्देश्य है—विष्णुनाग के लिये विट द्वारा प्रायश्चित का उपाय निश्चित करना ! इसी से इसमे सन्धि निर्माण भी हो जाता है तथा भाण का अधिकाश भाग मुख्य कथानक से असबद्ध होते हुये भी सन्ध्यग भी मिल जाते है। इसी प्रकार नायक नायिका के प्रसग के अभाव में अगीरस न होते हुये भी अधिकाश दृश्य और घटनाये तत्परक होने से श्रृगार को भी प्रधानता मिल गई है, और कैशिकी वृत्ति के अग भी यहाँ मिल जाते है। किन्तु शेष धूर्तविट सवाद एवं श्यामला भाण मे न तो सन्धि तथा सन्ध्यग है और न श्रृगार या अन्य कोई मुख्य रस। श्यामला भाण में विट समाज, जाति एवं व्यक्तिगत दोषों की, उनके चारित्रिक. अध:पतन की प्रत्यक्ष निन्दा करता है, उनसे घृणा करता है। इस दृष्टि से भाणों की प्रवृत्ति के विरुद्ध यह एक नई परम्परा, नई दिशा है।

पादताडितक–भाण

पादताडितक भाण के रचनाकार कवि श्यामिलक है। यह भाण व्यंग्यप्रधान वर्ग का है। इसका समय लगभग गुप्तयुग माना गया है। वेश्या मदनसेना द्वारा पादताडन से अपने को अपावन मानकर विष्णुनाग द्वारा प्रायश्चित की व्यवस्था प्राप्त करना इसकी मुख्य घटना है। यह एक मध्यम आकार की रचना है जिसमे १४८ पद्य तथा शेष गद्य हैं।

पात्र

स्त्रीपात्र

मदनसेना–गणिका (विष्णुनाग के सिर पर चरणताडन करने वाली)
अनंगसेना—चौक्ष विष्णुदास की प्रेयसी
सरणिगुप्ता—स्थाणुमित्र " "
प्रियंगुयष्टिका—वैद्य हरिश्चन्द्र " "
पराक्रमिका—काशी की एक गणिका
रामदासी—भद्रायुध की प्रेयसी
शूरसेन सुन्दरी—विट की पूर्व प्रेयसी
कुसुमावतिका—शिवस्वामी पर अनुरक्ता
मदयन्ती—उपगुप्त की प्रेयसी
मयूरसेना—हरिशूद्र " "
बर्बरिका—जयन्तककी "
राका—मयूरकुमार की प्रेयसी
कर्पूरतुरिष्ठा—यवनी गणिका, वराहदास की प्रेयसी

पुरुषपात्र

विष्णुनाग—नायक (मुख्यपात्र)
विट—एक प्रमुखपात्र, विष्णुनाग के प्रायश्चित में परम सहायक।
दद्रुणमाधव—एक हसोड़ ब्राह्मण
विष्णुदास—ढोंगी वैष्णव
वाष्प—बाह्लिक पुत्र
स्थाणुमित्र—एक रसिक
हरिश्चन्द्र—वैद्य ईशानचन्द्र का पुत्र
भट्टिमघवर्मा—सेनापति सेनक का पुत्र
हिरण्यगर्भक—इन्द्रस्वामी का रहस्य-सचिव
भद्रायुध—उदीच्य बाह्लिक का राजा
शिवस्वामी—एक मल्ल रसिक
उपगुप्त—मोटा रसिक बनियाँ
सूर्यनाग—रूपदासी की परिचारिका कुब्जा का प्रेमी
तलवरहरिशूद्र—विदर्भवासी एक रसिक
जयन्तक—सौराष्ट्रिक शककुमार
मयूरकुमार—राजश्यालक
वराहदास—शार्दूलवर्मा का पुत्र
विटप्रवाह—एक धनी रसिक
भट्टिजीभूत—विटो का मुखिया
धावकि—एक अन्य विट

नान्दी—

पादताडितक मे द्विपद्यात्मिका नान्दी है। श्लोकपाद को पद मानने के अनुसार यह अष्टपदा नान्दी है। प्रथम तथा द्वितीय दोनों ही पद्य आशीर्वादात्मक होने से यह शुद्धा भेद के अन्तर्गत आती है। नादी का आरम्भ भगण से होने के कारण यह नायक को 'श्री' प्राप्ति का सूचक तथा आरम्भिक अक्षर 'द' नायक को सौख्यप्रद है। अतः गण एवं लिपि दोनो ही दृष्टियो से नान्दी शुद्धा है।[1]

स्थापना

सूत्रधार सभासदो को प्रणाम पूर्वक निवेदन करता है कि वह आर्य श्यामिलक की कृति पादताडितक नामक भाण का अभिनय करने जा रहा है। इसके अतिरिक्त भाण का अन्य किसी प्रकार का परिचय वह नही देता और न प्ररोचना आदि का ही किसी प्रकार का प्रयोग है। इसी बीच घण्टानिनाद करता हुआ विट मण्डप मे घोषणा करता है कि विलासिनी का प्रिय के ऊपर उठाया हुआ महावर तथा नुपूरयुक्त पाद सदा विजयी हो। नेपथ्य मे हुई इस घोषणा को दुहराता हुआ सूत्रधार चला जाता है। उसके इन्ही शब्दो को ग्रहण करके विट रगमंच पर प्रविष्ट होता हुआ कहता है कि प्रणय कलह मे उठाये गये, मदविह्वल कामिनी के नूपुरमुखरपाद की तो सदा विजय ही है। इस प्रकार भावी इतिवृत्त के अनुकूल (कामिनी के चरण की विजय रूप) सूत्रधार के वाक्य को दुहराते हुये विट का प्रवेश होने से यह आमुख का **कथोद्घात** भेद है।

कथानक

रंगमंच पर आते ही विट दद्रुणमाधव से उसके हंसने का कारण पूछता है तो वह बताता है कि कल ही तो सौराष्ट्र की मुख्य गणिका मदनसेना ने समदना होकर तौण्डिकोकि विष्णुनाग को चरणताडन का प्रसाद दिया है। किन्तु विष्णुनाग ने इसे

---

१. प्रस्तुत भाण का आरम्भ 'नान्द्यते तत. प्रविशति सूत्रधार.' इस वाक्य से होता है। इसके अनन्तर कामदेव की प्रशस्ति मे आशीर्वादात्मक दो श्लोक है और तब सूत्रधार अपनी बात आरम्भ करता है। भाण मे नान्दी नाम से कोई मंगलाचरण नही है। यही व्यवस्था चतुर्भाणी के शेष भाणो मे भी है। भले ही इन चारो भाणो मे नान्दी नाम से नान्दी पाठ न किया गया हो किन्तु वास्तविकता यह है कि अन्य भाणों मे तथा इसमे भी आरम्भ के श्लोक आशीर्वादात्मक होने से निश्चित रूप से नान्दी के अन्तर्गत आते हैं। अन्तर केवल इतना है कि अन्य (चतुर्भाणी के अतिरिक्त) में आरम्भिक मागलिक श्लोकों को नान्दी नाम से अभिहित किया गया है। यहाँ उन्हे स्थापना में अन्तर्भूत कर दिया है। प्रतीत होता है कि चतुर्भाणी के कवियो ने इस प्रकार की किसी प्राचीन परम्परा का निर्वाह करने के लिये ऐसा किया है।

अपना अपमान समझकर बहुत खरीखोटी सुनाई। घबराकर मदनसेना ने उसके चरण पकड़ लिये और भविष्य मे कभी ऐसा न करने की प्रतिज्ञा की। किन्तु विष्णुनाग का क्रोध दूर नही हुआ और उन्होने उसे झटककर स्पर्श करने को मना कर दिया। विट विष्णुनाग के इस पोगापन का परिहास करता है। दद्रुणमाधव इस घटना को और आगे सुनाता हुआ कहता है कि विष्णुनाग के इस व्यवहार पर मैंने उसे डांटा परन्तु वह चुपचाप ब्राह्मणो की पीठिका में घुस गया। मैं भी उसके पीछे पीछे वहाँ पहुँचा तो विष्णुनाग को ब्राह्मणो के सामने गिड़गिड़ाते पाया कि मेरे (विष्णुनाग के) सिर पर वेश्या ने आज पैर मारा है। इस का क्या प्रतिकार है। ब्राह्मणो ने कहा कि हमने समस्त मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थ पढे है। किन्तु इस पाप का कोई प्रतीकार नही है। तुम विटो के पास जाकर इस पाप का प्रक्षालन पूछो। यह सुनकर विष्णुनाग प्रसन्न हुआ। दद्रुणमाधव विट को ब्राह्मणो को सन्देश देते हुए बताता है कि तुम्हे (विट को) विटो की सभा इकट्ठा करने के लिए ब्राह्मणो ने आदेश दिया है।

यह सुनकर विट दद्रुणमाधव को विट के लक्षण बताते हुये आगे बढता है और सार्वभौम नगर (उज्जयिनी) की शोभा देखकर प्रसन्न हो जाता है। यही विट को वेत्रदण्ड और कुण्डिका लिये हुये चौक्ष विष्णुदास दिखायी देता है। विट उसे अनंगसेना की उपेक्षा न करने की सलाह देता है।

अब उसे विपणिवीथिका मिलती है जिसमे भारी भीड़ है। पानागारो का शोर-शराबा, दुकानो की चहल-पहल तथा धक्का-मुक्की से घबराकर विट वेशवाट मे जाना चाहता है क्योकि उसे अनेक विट इकट्ठे करने है।

वेशवाट मे पहुँचकर विट को मदिरापान किये हुए बाह्लिकपुत्र नाचता हुआ दीखता है। यही विट को पुरानी पुश्चली सरणिगुप्ता मिलती है जो कामदेवायतन से लौट रही है। विट स्थाणुमित्र के साथ उसके प्रणयप्रसंगों की चर्चा करता हुआ आगे बढता है। अब विट वास्तविक वेश मे प्रविष्ट होकर उसकी अनुपम शोभा का वर्णन करता है। वहाँ की कला और साजसज्जा उत्तम है। वेश्याओ के पास कामी आ जा रहे हैं। निर्धन उनकी खालाओ द्वारा तिरस्कृत किये जा रहे हैं। धनियों का सम्मान हो रहा है। आगे बढ़ने पर विट को मित्रो का जमाव दीखता है जहाँ बाह्लिक देश का रहने वाला काकायनगोत्रीय वैद्य ईशानचन्द्र का पुत्र हरिश्चन्द्र मिल जाता है। हरिश्चन्द्र यशोमती की बहिन प्रियगुयष्टिका मे अनुरक्त है। पूछने पर वह बताता है कि प्रियङ्गुयष्टिका की शिरोवेदना की दवा देकर आ रहा हूँ। विट कहता है कि शिर का दर्द वेश्याओ के लिये लाखो व्याधियो का दहेज है। आगे बढ़ने पर विट को पुष्पदासी के द्वार पर भट्टिमधवर्मा मिलता है। विट उससे बात करता हुआ लाट देश के गुण्डो के कारनामो की निन्दा करता है। दोनों में पर्याप्त नोंक-झोंक होने के बाद विट उसे आशीर्वाद देता हुआ आगे बढ़ता है। अब उसे

काशी की प्रसिद्ध गणिका पराक्रमिका के घर से निकलता हुआ इन्द्रस्वामी का रहस्य सचिव हिरण्यगर्भक मिल जाता है। वह अपने स्वामी के मनोविनोद के लिये इसे बुलाने आया था। इसी प्रसङ्ग मे विट को गणिका रामदासी के घर से निकलता हुआ उदीच्य वाह्लीक देश का राजा भद्रायुध मिल जाता है। विट उसके चरित एवं शौर्य का वर्णन करता है। अब विट को दाशेरकाधिपति के पुत्र गुप्तकुल का सेवक पिशाच जैसा रूप बनाये वेशवाट मे अपने स्वामी के लिये गणिका की खोज में आया हुआ दीखता है। विट उसे बहकाकर आगे बढता है।

अब विट को अपनी पूर्व प्रेयसी शूरसेन सुन्दरी का घर मिलता है जिसमे प्रविष्ट होकर शिलातल पर उत्कीर्ण श्लोक पढता है। शूरसेन सुन्दरी द्वारा समझाने पर उस श्लोक की वास्तविकता समझ मे आयी कि किस प्रकार शूरसेन सुन्दरी की सखी कुसुमावतिका चित्राचार्य शिवस्वामी मे अनुरक्त हो गयी। जब वह अभिसरण के लिये उसके पास गई तो उस अरसिक ने रात के प्रथम मे तो प्रहर मल्लकथा सुनायी, दूसरा प्रहर तिल, गुड़ आदि की बातो मे बिताया, तीसरा शरीर को पुष्ट बनाने की कथा मे तथा चौथा प्रहर भी यो ही बिता दिया। इस प्रकार शिवस्वामी के प्रेम से वंचित होकर उसकी सखी वहाँ से निराश लौट आयी। विट शिवस्वामी की अरसिकता की खिल्ली उड़ाता है। यहीं विट को गणिका दारिकाओ द्वारा कुतूहल-पूर्वक देखा जाता हुआ कुठला जैसा गोलमटोल उपगुप्त दीखता है। पता चलता है कि यह महाशय मदयन्ती से प्रेम करते थे। जब उसकी माँ ने रुपया माँगा तो नहीं दिया। जरती ने घसीटा और पीटा। इस समय यह कुमारामात्य के अधिकरण से आ रहा है। अब विट को सूर्यनाग मिलता है जो रूपदासी की परिचारिका कुब्जा मे अनुरक्त है। आगे विट को सिहलदेश की मयूरसेना के घर से निकलकर आता हुआ विदर्भवासी तलवर हरिशूद्र मिलता है। हरिशूद्र के कावेरी मे अनुरक्त हो जाने पर मयूरसेना ने उसे डाटा था। किन्तु अब हरिशूद्र ने उसे मना लिया है। पूछने पर पता चलता है कि एक नृत्य समारोह मे मयूरसेना के भूल करने पर भी हरिशूद्र ने उसका पक्ष लिया और उसे पुरस्कार दिलवाया। इस पर मयूरसेना ने प्रसन्न होकर उसके सब अपराध क्षमा कर दिये।

इसी बीच सायंकाल हो जाता है। उज्जयिनी के वेश के महापथ पर सायं-कालीन सजावट हो रही है। छिड़काव लग रहा है। वेश्यायें सजावट कर रही हैं। यहीं विट को घटदासी बर्बरिका में अनुरक्त जयन्तक, राका मे अनुरक्त राजश्यालक मयूरकुमार, यवनी वेश्या कर्पूरतुरिष्ठा का प्रेमी वराहदास आदि दीखते हैं। यहीं अपना प्रेमिका को हथिनी पर बिठाले हुये विट प्रवाल मिल जाता है।

इस प्रकार घूमते-घामते वह विटो मे श्रेष्ठ भट्टिजीमूत के घर पहुँचता है जहाँ बहुत से विट एकत्र हैं। परिचारक गण उनकी सेवा में तत्पर हैं। विट यहाँ प्रविष्ट होकर अन्य विटो से कहता है—हे धूर्ताचार्यो, काम की जय हो, यौवन विभ्रमों की जय हो। आपको प्रणाम करके मैं निवेदन करता हूँ कि साँप की भाँति

भूमि पर पड़े हुये इस दुखी विष्णुनाग की आप रक्षा करे। इसके सिर पर समदना गणिका मदनसेना ने नूपुराकित चरणताडन किया है। भट्टिजीमूत की आज्ञा से विट अन्य विटो को शपथ ग्रहण कराते हुये कहता है कि आप लोग अट संट नही कहेगे। इसी बीच धावकि नामक विट कहता है कि वास्तव मे प्रणय की रीति न जानने वाली मदनसेना की ही भूल है। क्योकि जो चरण अशोक को पुष्पित करता है, जिसमे सशर कामदेव निवास करता है, वह पवित्र चरण इसके अपवित्र सिर पर रखकर उसने वास्तव में अपराध किया। अतः प्रायश्चित तो गणिका को करना चाहिए। यद्यपि विट उसकी बात को सत्य मानता है किन्तु विष्णुनाग के दुखी होने से उस पर कृपा करने के लिए आग्रह करता है। इसी समय कई विटो ने अपने अपने सुझाव प्रायश्चित के रूप मे रक्खे। अधिकाश विटो ने विष्णुनाग को मदनसेना के चरण के अयोग्य ही बताया। एक विट ने सुझाव दिया कि विष्णुनाग मदनसेना के पैर दबाये, दूसरे ने कहा कि मदनसेना के पैर के धोवन से उसका सिर धोना चाहिये। किसी ने विष्णुनाग का सिर मुडा देने की सलाह दी। अन्त मे विटाधिप भट्टिजीमूत ने एक सर्वमान्य सुझाव दिया —किसी सुन्दरी के सुन्दर सुकुमार हाथो से इसके केश बहुत काल तक प्रसाधित न हो, ऐसे ही सूखे पडे रहे तथा उस मदनसेना के लिए दण्ड यह है कि वह मदमाती अपनी मेखला संभालती हुई सालक्तक चरण से मेरा स्पर्श करे और यह विष्णुनाग टुकुर-टुकुर देखता रहे। भट्टिजीमूत का यह सुझाव सर्वसम्मति से पास हो जाता है। विष्णुनाग अपने को अनुगृहीत मानता है और भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

आलोच्य भाण मे समदना गणिका मदनसेना द्वारा विष्णुनाग के सिर पर पादताडन के कारण ही इसका नाम पादताडितक पड़ा। विष्णुनाग द्वारा प्रायश्चित के लिये किया गया प्रयत्न तथा विट समाज द्वारा उसका निश्चय भाण की आधिकारिक कथा है। भाण में यों तो अनेक प्रसंग प्राप्त घटनाये चित्रित हैं किन्तु पताका या प्रकरी के रूप मे वे नही है।

सन्धि[1]

भाण के आरम्भ मे विट द्वारा मदनविह्वला कामिनी के नूपुरमुखरपाद की जय जयकार करना बीज नामक अर्थप्रकृति तथा मदनसेना से पादताडन से अपमानित और दुखी विष्णुनाग का ब्राह्मणों के पास जाकर उनसे इस महापातक से छूटने के लिये प्रायश्चित पूछना **आरम्भ**[2] कार्यावस्था है। इन दोनों के समन्वय से बनी

---

१. यद्यपि इस ग्रन्थ के परिभाषा प्रकरण के अनुसार व्यंग्य प्रधान भाण मे सन्धि का होना आवश्यक नहीं है। किन्तु इस भाण में कथानक के तदनुकूल होने से सन्धि तथा सन्ध्यंग मिल जाते हैं।

२. पृ० १५६।

मुखसन्धि मे पादताडन की घटना, विष्णुनाग का ब्राह्मणो के पास जाना, ब्राह्मणों द्वारा कोई प्रायश्चित न बताकर उसे विटों के पास भेजना आदि घटना सम्मिलित है। भाण के अन्त मे भट्टिजीमूत के घर एकत्र विटो को विट द्वारा प्रस्तुत विषय की ओर प्रेरित करना, विष्णुनाग के लिये प्रायश्चित पूछना **कार्य** अर्थप्रकृति है एवं भट्टिजीमूत द्वारा सर्वसम्मत प्रायश्चित की व्यवस्था दे देना, उससे विष्णुनाग का प्रसन्न होना **फलागम** कार्यावस्था है। इन दोनो के समन्वय से बनी **निर्वहण** सन्धि में एकत्रित विट समाज को वास्तविक घटना से परिचित कराना, अनेक विटो द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रायश्चितो का सुझाव दिया जाना, अन्त में भट्टिजीमूत द्वारा दिये गये सुझाव पर सबका सहमत हो जाना, विष्णुनाग द्वारा कृतज्ञताप्रकाशन आदि मुख्य कथानक है।

सन्ध्यंग

भाण के आरम्भ मे[१] विट द्वारा कामिनी के नूपुरमुखरपाद की जय जयकार करना इस भाण की मुख्य घटना—मदनसेना द्वारा विष्णुनाग के सिर पर चरण प्रहार—के प्रति सकेत होने से **उपक्षेप**, बीज रूप मे संकेतित इस घटना का स्पष्टीकरण, विस्तारपूर्वक उसका कथन **परिकर**[२] है। उस बीजभूत घटना को युक्तियुक्त ठहराना, उसके परिणाम के सम्बन्ध मे निश्चय करना, कामकला से अनभिज्ञ रूक्ष वैयाकरण विष्णुनाग को मदनसेना द्वारा किए गये इस सत्कार के अयोग्य बताना **परिन्यास** है।[३] ब्राह्मणो द्वारा धर्मवचन की दुहाई देते हुये विष्णुनाग को विटो के पास जाने को कहना, विष्णुनाग का यह सुनकर प्रसन्न होना आदि प्रायश्चित विधान का समाधान होने से **युक्ति** है।[४] हरिशूद्र से विदा होकर विट प्रायश्चित की व्यवस्था कराने के लिए विट समाज के पास जाना चाहता है। अत. प्रकृत का आरम्भ होने से यह प्रसंग **करण** नामक मुख सन्ध्यग है।[५]

अन्य विटो की उपस्थिति में विट कामदेव को प्रणाम करके सभा के आयोजन का उद्देश्य बताना है।[६] अत. बीज (विष्णुनाग के लिये प्रायश्चित का उपाय) का उद्-भावन होने से यह **सन्धि**, विष्णुनाग के प्रायश्चित के हेतु अनेक विटों द्वारा विविध प्रकार के उपाय बताना तथा भट्टिजीमूत द्वारा बताये गये उपाय पर सबका सहमत हो जाना[७]

१. श्लो० ८।
२. पृ० १५२–१५४।
३. पृ० १५४–१५५।
४. पृ० १५८।
५. पृ० २३१।
६. पृ० १४५।
७. पृ० २५०–२५८।

कार्य का मार्गण होने के कारण **विवोध**, अभीष्ट प्रायश्चित का विधान पाकर प्रसन्न होकर विष्णुनाग द्वारा भट्टिजीमूत को कृतज्ञता प्रकट करना **प्रसाद**[१], विष्णुनाग को भट्टिजीमूत द्वारा अनुकूल प्रायश्चित की प्राप्ति **उपसहार** तथा अन्तिम पद्य शुभशसन होने से **प्रशस्ति** नामक निर्वहण सन्ध्यंग है ।

सन्ध्यन्तर

वेश्या के चरणताडितक को अपमान समझकर विष्णुनाग द्वारा क्रुद्ध होकर उसे फटकारना **क्रोध** है । ब्राह्मणों द्वारा इस भारी अपराध के लिये प्रायश्चित न बताये जाने पर विष्णुनाग का भयभीत हो जाना, अपने को अधःपतित समझना, भयविह्वल होकर अपने वंश की रक्षा चाहना **भय**[२] नामक सन्ध्यन्तर है । पुष्पदासी की सलज्ज चेष्टाओ का वर्णन ह्री नामक सन्ध्यन्तर है ।

नाट्यालंकार

भाण के आरम्भ मे विष्णुनाग की मदनसेना को रोषपूर्ण फटकार **क्षोभ**[३], मदनसेना द्वारा भयभीत होकर अपने किए गये (पादताडन रूप) अनुचित कार्य की क्षमा माँगना और पुन· ऐसा न करने का निश्चय **परिहार**[४] है। इसी प्रसंग मे पैरो पर गिरने के लिए अपने पास आती हुई मदनसेना को विष्णुनाग द्वारा डाँटना, उसे स्पर्श करने को भी मना करना, उसका परीवाद होने से **भर्त्सना**[५] तथा दद्रुणमाधव द्वारा दुखी मदनसेना को समझाना, शिक्षा देना **उपदेशन**[६] है । ब्राह्मणो द्वारा प्रायश्चित विधान न बताने पर विष्णुनाग का रुदन एवं विपन्नता **आक्रन्द**[७] है । भाण के लगभग मध्य मे भर्ट्टिमधवर्मा को विट द्वारा कामिनी की रति प्राप्ति का आशीर्वाद **आशी**.[८] है । पराक्रमिका के रूप एव चेष्टाओ का विट द्वारा कथन **आशंसा** है ।[९] विट द्वारा बौद्ध भिक्षु निरपेक्ष को अपनी प्रेयसी राधिका की उपेक्षा करने के कारण उसे उपालम्भ देना, कर्तव्य कथन करना **निवेदन**[१०], अपने को सज्जन, साधु समझने वाले निरपेक्ष का विट द्वारा किया गया उपहास **उत्प्रासन**[११] तथा इसी प्रसग

१. पृ० २५८ ।
२. श्लो० १३ ।
३. श्लो० ६ ।
४. श्लो० १० ।
५. पृ० १५४ ।
६. पृ० १५५ ।
७. पृ० १५६, १५७ ।
८. श्लो० ५० ।
९. श्लो० ५१, ५२ ।
१०. पृ० १९८–२०१ ।
११. पृ० १९८–२०० ।

में विट द्वारा निरपेक्ष को उसकी प्रिया से संयोग होने का आशीर्वाद **आशीः** है। तलवर हरिशूद्र के अन्य नायिका मे आसक्त हो जाने पर कावेरिका द्वारा की गई डाट फटकार **भर्त्सना**[1] है। इसी प्रसंग मे तलवर हरिशूद्र मयूरसेना के साथ पुनः संयोग की बात सुनाते हुए बताता है कि किस प्रकार उसने द्रौणिलक के घर मयूरसेना के लास्य की प्रशसा की जिससे मयूरसेना को पुरस्कार प्राप्ति हुई। इससे प्रसन्न होकर मयूरसेना उसके (हरिशूद्र) घर आई और दोनों का रति समागम हुआ।[2] पूर्ववृत्त होने से यह वर्णन **आख्यान** नामक नाट्यालंकार है।

भाण्यंग

विष्णुनाग द्वारा दुखी होकर ब्राह्मणो के सामने अपने चरित्र, कुल एवं कार्य की दुहाई देते हुए उनकी शरण में जाना **विन्यास** है।[3] ताण्डिकोकि सूर्यनाग वेश मे अपनी प्रेयसी से मिलने आता तो है, किन्तु पूछने पर विट से कह देता है कि मैं अपने मामा हरिदत्त की पूर्व प्रणयिनी की कुशल मंगल पूछने आया था। विट उसका रहस्य खोलता है।[4] अत. सूर्यनाग द्वारा मिथ्याख्यान होने से यह **साध्वस** है। तलवर हरिशूद्र नायिका मे आसक्त हो गया है। पूर्व प्रणयिनी कावेरिका का उसे कोप तथा पीडापूर्वक उपालंभ देना **समर्पण**[5] है। भाण के अन्त मे अनुकूल प्रायश्चित की घोषणा पर सन्तुष्ट होकर विष्णुनाग के चले जाने पर विट द्वारा कार्य समाप्ति सूचक शुभशंसन **सहार** है।

शिल्पकांग

पादताडितक भाण में शिल्पकाग बहुत कम है। आरम्भ में विष्णुनाग द्वारा क्रोध में मदनसेना को फटकारना **सम्फेट**, रोते चिल्लाते हुए विष्णुनाग का ब्राह्मणो की शरण जाकर प्रायश्चित का उपाय पूछना **विलाप** है। विट द्वारा विष्णुनाग के प्रायश्चित निश्चयार्थ समस्त विटो को एकत्र करना, उन्हे वास्तविक घटना से परिचित कराना, विष्णुनाग के उद्धार के लिए सरल उपाय की व्यवस्था आदि **प्रयत्न** है—जो भाण के आरम्भ से अन्त तक मिलता है।

लास्यांग

हिरण्यगर्भक तथा विट का संवाद प्रसादयुक्त, सोपालम्भ प्रश्नोत्तर होने से **उक्तप्रत्युक्त** है। बौद्ध भिक्षु निरपेक्ष के वियोग मे उसकी उदासीनता के कारण दुखी वियोगिनी राधिका की वियोग दशा का वर्णन **आसीन**[6] तथा शूरसेन सुन्दरी एवं विट

---

१. श्लो० ९६।
२. पृ० २२५–२२८।
३. पृ० १५६–१५७।
४. पृ० २१९।
५. श्लो० ९६।
६. श्लोक ६४।

का वार्तालाप शिवस्वामी के प्रति साधिक्षेप एव कोपयुक्त प्रश्नोत्तर होने से **उक्तप्रत्युक्त** है। तलवर हरिशूद्र ने अन्य नायिका मे अनुरक्त होकर पूर्व प्रेयसी कावेरिका को कुपित कर दिया। हरिशूद्र द्वारा पादपतन आदि उपायों से मनाये जाने पर भी मानिनी नायिका कावेरिका उसे डाँटती हुई नई प्रेमिका के पास जाने को कहती है। अतः यहाँ प्रेम विच्छेद पूर्वक नायिका का मन्यु वर्णन होने से यह **प्रच्छेदक** लास्यांग है।[1] यद्यपि मयूरसेना हरिशूद्र से क्रुद्ध है परन्तु नृत्य प्रतियोगिता मे हरिशूद्र द्वारा मयूरसेना के नृत्य की प्रशसा किए जाने पर वह उस पर प्रसन्न हो जाती है और अपने हाव तथा शृङ्गार चेष्टाओ द्वारा उसे उपकृत करती है। अतः प्रसाद जन्य साधिक्षेप हाव, हेला, तथा शृङ्गार चेष्टाओ का वर्णन होने से यह **उत्तमोत्तमक** लास्यांग हैं।

पात्र

भाण का नायक तौण्डिकोकि विष्णुनाग है। यद्यपि पूरे भाण मे विट ही क्रियाशील तथा महत्त्वपूर्ण पात्र होने से उसे नायक समझने का भ्रम हो जाता है किन्तु जिस उद्देश्य से भाण का आरम्भ होता है—विष्णुनाग के लिए प्रायश्चित का उपाय ढूँढना—उसकी अन्त मे पूर्ति से विष्णुनाग ही लाभान्वित होता है, उसे ही प्रसन्नता होती है। भाण के शीर्षक 'पादताडितकम्' मे भी इसी घटना के प्रति मुख्य रूप से सकेत है। विट का प्रयत्न भी विष्णुनाग के हित साधन के लिये ही होता है। अतः फलप्राप्ति होने के कारण एवं समस्त भाण का उद्देश्य तत्परक होने से विष्णुनाग ही उसका नायक माना जायेगा। किन्तु भाण के एक विशिष्ट प्रकार के कथानक के कारण नायक विष्णुनाग भी एक विशिष्ट नायक माना जायेगा। उसे धीरोदात्त आदि चारों भेदो में नही रक्खा जा सकता है। नायिका का अभाव होने से वह अनुकूल, दक्षिण आदि किसी भेद के अन्तर्गत भी नही आता। वह तो एक शुष्कहृदय, रूक्ष वैयाकरण, ब्राह्मणत्व का अन्धाभिमानी, क्रोधी, ब्राह्मण है।

भाण मे दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र विट है। वही आरम्भ से अन्त तक भाण में सक्रिय है। नायक को प्रायश्चित की प्राप्ति हेतु ही उसका समस्त प्रयत्न होता है। दूसरे शब्दो मे विट नायक का प्रमुख सहायक एवं इस भाण का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। प्रासंगिक कथान्तर न होने से वह पताका या प्रकरी नायक नही माना जा सकता है।

विष्णु नाग तथा विट के अतिरिक्त चौक्षामात्य विष्णुदास, वाष्प, स्थाणुमित्र, भिषक् हरिश्चन्द्र, भट्टिमधवर्मा, महाप्रतीहार भद्रायुध, चित्राचार्य शिवस्वामी, तुंदिल उपगुप्त आदि अनेक स्वतन्त्र पात्र भी है जो वेश-वाट मे घूमते हुए विट को मिल जाते हैं। प्रत्येक पात्र की अपनी व्यक्तिगत विशेषता है। प्रत्येक पात्र अपने मे पूर्ण है, कथानक का एक अग है, एक इकाई है।

---

१. श्लो० ९६।

नायक से अधिक भाण में नायिका की समस्या है। समदना मदनसेना द्वारा पादताडन से विष्णुनाग उसे बुरी तरह फटकारता है। वह बेचारी काँप जाती है। विष्णुनाग के पैरो पर गिरकर उससे क्षमा माँगती है और फिर कभी ऐसा न करने की प्रतिज्ञा करती है। भाण के आरम्भ मे आई हुई इस घटना के बाद मदनसेना की कोई चर्चा नही है। अत. आरम्भ मे ही आकर सदा के लिए समाप्त हो जाने वाली तथा नायक की कोप एवं घृणा की पात्र मदनसेना नायिका नहीं हो सकती। नायक का अन्य किसी स्त्री जन से भी कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः भाण मे नायिका के रूप में कोई पात्र नही है।

मदनसेना के अतिरिक्त पादताडितक मे अनंगसेना, सरणिगुप्ता, प्रियगुयष्टिका, पुष्पदासी आदि अनेक वारवनिताये भी कथानक के विकास मे सहायक है।

रस

आलोच्य भाण मे नायक-नायिका की ही भाँति रस भी एक समस्या है। आरम्भ मे रौद्र रस मिलता है जिसका मदनसेना **आलबन**, विष्णुनाग **आश्रय**, मदनसेना का पाद **उद्दीपन**, विष्णुनाग का भौहे तरेरना, शिरःकम्पन, दाँतो से ओठो को चबाना, हाथ से हाथ मसलना, दीर्घश्वास आदि **अनुभाव** तथा औग्र्य, अमर्ष आदि **संचारी** भाव है। मदनसेना द्वारा विष्णुनाग के सिर पर पादताडन रूप यह प्रसङ्ग हास्य परक होने से हास्य रस भी है। पुराणपुश्चली सरणिगुप्ता तथा मार्दगिक स्थाणुमित्र का वर्णन प्रसङ्ग—जिसमे स्थाणुमित्र द्वारा चुम्बन किये जाने पर सरणिगुप्ता का दाँत टूटकर स्थाणुमित्र के मुँह मे चला जाता है—**वीभत्स** रस है। विष्णुनाग की सहायता के लिए विट सतत प्रयत्नशील है। समस्त विटो को जुटाकर वह सुगम प्रायश्चित की व्यवस्था करवाता है। आरम्भ से अन्त तक विट मे इस कार्य के लिए उत्साह पाये जाने के कारण **वीररस भी** है। वेशवाट मे प्राप्त हुए अनेक विटों एवं प्रच्छन्न रसिकों के प्रसङ्ग में शृङ्गार है। इस प्रकार अनेक रसो की योजना यहाँ मिलती है किन्तु रौद्र, हास्य तथा वीभत्स तो प्रसङ्ग प्राप्त होने से गौण हैं, वीर भी नायक गत न होने के कारण मुख्य रस नही हो सकता। यद्यपि नायक-नायिका के प्रसङ्ग के अभाव मे शृङ्गार आद्योपान्त पुष्ट नही होता। किन्तु भाण के लगभग तीन चौथाई भाग मे शृङ्गार रस प्रधान वेशवाट का वर्णन होने से शृङ्गार को ही यहाँ मुख्य रस माना जा सकता है।[1] वेशवाट मे प्राप्त होने वाले विविध रसिक जन एवं उनसे सम्बन्धित गणिकाजन इसके **आलंबन**, उनके सौन्दर्य आदि उद्दीपन, विरह, ताप तथा शृङ्गार चेष्टाये **अनुभाव** एवं लज्जा औत्सुक्य आदि **संचारी** है।

---

१. व्यंग्य प्रधान वर्ग में सामाजिक तथा व्यक्तिगत व्यंग्य प्रकाशन ही कवि का मुख्य उद्देश्य होता है। शृङ्गार या अन्य रस की अभिव्यक्ति गौण।

दे० परिभाषा, द्वि० अध्याय

कैशिकी वृत्ति

प्रस्तुत भाण मे कैशिकी वृत्ति का नर्म और उसमे भी संभोग नर्म अपने सभी भेदों के साथ विपुलमात्रा मे मिलता है। भिषक् हरिश्चन्द्र की प्रेयसी प्रियंगुयष्टिका की शृङ्गार चेष्टाये वाक् तथा चेष्टा सम्बन्धी **संभोग नर्म** है। भट्टिमधवर्मा द्वारा पुष्पदासी के साथ किये गये रति व्यापारो का चिन्तन भी सभोग नर्म है। इसी प्रकार विट का भट्टिमधवर्मा को दिया गया आशीर्वाद[1] **वाक् सभोग नर्म** है। पिछोला बजाती हुई काशी की वारमुख्या पराक्रमिका का विलास[2] **वेशसंभोग नर्म** है। हरिशूद्र तथा मयूरसेना की शृङ्गार एव रति चेष्टाये वाक तथा चेष्टा **संभोगनर्म** है। सायं होते ही चन्द्रमा की चाँदनी छिटकने पर घोडे पर बैठकर जाते हुये एक जोडे का वर्णन—जिसमे पीछे बैठी हुई युवती अपने कुचभार से युवक का आलिङ्गन करती है तथा युवक भी घूमकर उसका चुम्बन करता है[3]—**चेष्टासभोगनर्म** है।

भारती वृत्ति

वीथ्यंग

पादताडन से अपमानित और क्रुद्ध विष्णुनाग का सरम्भ, आक्षेपयुक्त शब्दो मे मदनसेना को फटकारना **गण्ड** है। मदनसेना की विष्णुनाग के प्रति अनुरक्ति को कोयल का उल्लू के पीछे लगना कहना[4]—हास्य परक अन्यार्थ वाक्य होने से **छल** है। इसी प्रकार दद्रुणमाधव मदनसेना के प्रति विष्णुनाग द्वारा किये गये क्रूर व्यवहार की भर्त्सना तथा निन्दा करता है। उसका प्रत्येक वाक्य[5] (फूलो को मूसल से न कूट, वीणा को लकुटिया से न बजा आदि) अन्यार्थ एव हास्यपरक होने से छल वीथ्यंग है। विट तथा चौक्ष विष्णुदास का उत्तर प्रत्युत्तर पूर्ण वार्तालाप[6], विट तथा प्रियंगुयष्टिका के प्रेमी हरिश्चन्द्र का हास परिहास एव व्यंग्य पूर्ण प्रश्नोत्तरात्मक संवाद[7] **वाक्केली** है। विट तथा भट्टिमधवर्मा की नोक-झोक एव व्यंग्यपूर्ण वार्तालाप[8], विट एव निरपेक्ष नामक बौद्ध भिक्षु का सवाद[9], अपवाद तथा आक्षेपयुक्त विवाद होने से **गण्ड** है। यवनी वेश्या कर्णूरतुरिष्ठा की बातो को बदरिया की 'खाँव-खाँव' और

---

१. श्लो० ५० ।
२. श्लो० ५१ ।
३. श्लो० ११० ।
४. पृ० १५४ (कष्टं भोः कोकिला खलु कौशिकमनुवर्तते)
५. पृ० १५५ ।
६. १६४–१६५ ।
७. पृ० १७८–१८० ।
८. पृ० १८३–१८७ ।
९. पृ० १९६–२०१ ।

चीत्कार बताकर विट द्वारा हास्यपरक व्यग्य करना[1] **प्रपंच** है । भट्टिजीमूत के यहां अन्य विटों से बातचीत करते हुये विट द्वारा माँ की आज्ञा मानना, पिता की सेवा करना, विनयशील होना, दूध लड्डू खाना, विवाहिता से संतुष्ट रहना आदि गुणों को दोष मानकर इन गुणो से युक्त होने का शाप दिया गया है ।[2] अतः गुणों को दोष मानने के कारण यह **मृदव** वीथ्यग है ।

प्रहसनांग

प्रस्तुत भाण में प्रहसनागो की संख्या पर्याप्त है । विट तथा दद्रुणमाधव का संवाद-जिसमे वेश्या मदनसेना द्वारा विष्णुनाग के सिर पर पादताडन एवं अपमानित होकर विष्णुनाग द्वारा उसे खरी खोटी सुनाना मुख्य है[3]—हास्य युक्त होने से **व्यवहार** है । अपमानित विष्णुनाग द्वारा अपने को महापातकी समझना, ब्राह्मणो द्वारा भी इसका कोई प्रायश्चित न बताना, एतदर्थ विट समाज का एकत्र होना आदि प्रायश्चित की बेतुकी अयोग्य बात को भी उचित और योग्य सिद्ध किये जाने से यह **प्रलाप** है । विष्णुदास चौक्ष एव प्राड्विवाक होते हुए भी अनंगसेना के प्रति अनुरक्त है ।[4] अतः आत्मगृहीत आचार (न्यायाधीश का पद तथा पवित्र चौक्ष भागवताचरण) के प्रतिकूल आचरण करने से यह **अवलगित** प्रहसनांग है । इसी प्रकार विट तथा बौद्ध भिक्षु निरपेक्ष के संवाद[5] से पता चलता है कि निरपेक्ष बौद्धभिक्षु होने पर भी वीतराग नही है और अब भी राधिका तथा अन्य गणिकाओ मे अनुरक्त है एवं विषयों के प्रति वैराग्य का ढोग रचता है । अत. पूर्वगृहीत आचार का मोहवश परित्याग और निन्दा करने से यह भी **अवलगित** है । विट तथा शूरसेन सुन्दरी के सवाद में कुसुमावतिका के गुग्गुल पिये हुये शिवस्वामी के साथ किये गये प्रेम प्रसंगों का वर्णन हास्यपरक होने से **व्यवहार** है ।[6] इसी प्रकार सूर्यनाग की प्रेयसी कुब्जा के रूप एवं चेष्टाओं का हास्यपरक वर्णन भी **व्यवहार** है ।[7] भाण के अन्त मे विटो की सभा में विष्णुनाग के लिये प्रायश्चित का विचार किया जा रहा है । समदना गणिका द्वारा इस प्रकार पादताडन कामशास्त्र के अनुसार उचित होते हुये भी विटों द्वारा अनेक प्रकार के प्रायश्चितो का सुझाव, अन्य विटों द्वारा उनका खंडन आदि प्रसंग, अयोग्य बात के लिये अपनी अपनी व्यवस्था देना, उसके लिये विवाद करना, स्वस्वयोग्यत्वयोजना होने से **अवस्कन्द** नामक प्रहसनांग है ।

---

१. पृ० २४० ।
२. पृ० १२८–१२६ ।
३. पृ० १५२–१५४ ।
४. पृ० १६३–१६५ ।
५. पृ० १६७–२०१ ।
६. पृ० २०४–२०६ ।
७. पृ० २२०–२२१ ।

प्रवृत्ति

पादताडितक के अध्ययन से तत्कालीन समाज के आचार व्यवहार तथा सभ्यता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भाण का स्थान उज्जयिनी है। यह नगरी उन दिनों सम्भवत: भारत का केन्द्र स्थान थी। यहाँ देश विदेश की वेश्याओं का निवास था। अपरान्तक, बाह्लीक, शक, यवन, तुषार, पारसीक, मगध, किरात, कलिंग, वंग, महिषक, चोल, पाण्ड्य, केरल आदि देशो के लोग यहाँ आया करते थे।[१] इस प्रकार उज्जयिनी नगरी अनेक सस्कृतियो तथा सभ्यताओ का संगम थी।

इन दिनों लाट देश के गुण्डे (डिण्डी) बड़े प्रसिद्ध थे। भट्टिमधवर्मा से वार्तालाप के प्रसंग मे[२] विट लाट वासियो के रहन सहन का खाका खीचता हुआ कहता है कि ये लोग भीड़ में भी नग्न होकर जल मे स्नान करते है, स्वयं अपने कपड़े धोते हैं। लम्बे बाल रखते हैं, बिना पैर धोये सो जाते है, मार्ग मे चलते चलते खा लेते हैं, फटे हुए वस्त्र भी पहन लेते है तथा सकट मे पडे हुए व्यक्ति की सहायता करने के स्थान पर उस पर चोट करने मे नही चूकते। लाट देश के गुण्डे कान में श्वेतवर्ण का लकड़ी का कोई आभूषण पहनते थे जो कलश कहलाता था। ये लोग केशो के जूडे भी बना लिया करते थे। लाट देश वासियों की भाषा मे 'ज' तथा 'श' वर्ण का प्रयोग अधिक होता था। ये लोग उत्तरीय पहनकर कमर मे रेशमी पटका बांधते थे।[३] लाटी स्त्रियां कानो में सोने के तालपत्र पहनती थी, वेणी मे मणि एवं मोती गूँथ लेती थी तथा बिना बाँह की चोली पहनती थी।[४]

नाटको मे हण्डे (निम्न कोटि की दासी को संबोधन) संबोधन केवल स्त्री के लिए माना गया है। किन्तु पादताडितक के समय इसका प्रयोग इतना सामान्य हो गया था कि स्त्री पुरुष का भेद किये बिना ही पुरुष के लिए भी यह संबोधन अत्यधिक प्रयुक्त होने लगा था।[५]

पादताडितक के समय निम्नस्थिति के लोग प्राकृत मे बोलते थे। अपरान्त की स्त्रियाँ[६] तथा गुप्तकुल का सेवक (मदनदूत) दाशेरक[७] प्राकृत बोलते हैं।

काव्यालोचन

आलोच्य भाण का गद्य 'आविद्ध' शैली मे है। परन्तु यत्र तत्र चूर्णक का भी प्रयोग मिलता है। वेश के वर्णन मे[८] तथा मयूरसेना की शृंगार चेष्टाओं के प्रसंग मे[९]

१. श्लो० २३–२४।
२. श्लो० ४३।
३. श्लो० ५७–५९।
४. श्लो० ११३।
५. पृ० १८९, २१३, २१९, २५०, २५५।
६. पृ० १९६।
७. पृ० २०२।
८. पृ० १७१-१७६।
९. पृ० २२८।

चूर्णक ही है। शुकनामोपदेश के अन्तिम भाग की भाँति पादताडितक में भट्टिजीमूत भवन के वर्णन के अवसर पर[1] कर्मवाच्य प्रधान ङन्त क्रियाओं से युक्त केवल एक दो शब्दो वाली अत्यन्त सरल शैली का प्रयोग भी मिलता है। भाण मे माधुर्य एवं प्रसादगुण है तथा तदनुरूप ही कैशिकी वृत्ति प्रधान वैदर्भी रीति अपनायी गयी है।

अलकार, छन्द तथा शैली

भाण के गद्य भाग मे अलकारो का प्राय. अभाव है। गद्य मे केवल एक उत्प्रेक्षा[2] और एक उपमा[3] ये दो अलकार मिलते है। पद्य भाग मे उपमा अलकार का प्रयोग बहुतायत से किया गया है। भाण मे कुल मिलाकर १७ बार उपमा, चार बार उत्प्रेक्षा तथा एक बार भ्रान्तिमान् अलकार का प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त यत्र तत्र अनुप्रास तो मिल जाता है पर शेष अलकारो का प्राय. अभाव है।

भाण मे प्रचलित छन्दो के अतिरिक्त १५ अक्षरो वाले **दण्डक** छन्द का प्रयोग भी किया गया है[4] यह छन्द काव्य नाटच मे सामान्यतया कम प्रचलित है।

पादताडितक भाण की भाषा एव शैली न केवल आधुनिक भाणो की अपेक्षा ही अधिक सुन्दर और परिनिष्ठित है अपितु चतुर्भाणी के शेष तीन भाणो की तुलना में भी यह अधिक उत्कृष्ट शैली एव सरस सुन्दर पदविन्यास युक्त भाण है। इसकी भाषा मे पद पद पर मुहावरे तथा लोकोक्तियो का प्रयोग मिलता है। ये प्रयोग कोरे काल्पनिक ही नही वरन् लौकिक जीवन एव व्यवहारों से सम्बद्ध है।

रसपाक

पादताडितक भाण का आरम्भ कुछ नीरस सा लगता है। असहृदय, रूक्ष, वैयाकरणखसूची विष्णुनाग का समदना कोमलागी मदनसेना को डाटना, प्रायश्चित के लिये ब्राह्मणो के पास जाना, ब्राह्मणों द्वारा स्मृतियो मे इस महापातक के लिये प्रायश्चित विधान का अभाव बताना तथा विटो का लक्षण आदि कुछ आरम्भिक प्रसंग नीरस से हैं। किन्तु वेशवाट मे विट के पहुँचने पर प्रत्येक चरित्र के वर्णन में, कामिनियो की विविध शृगार चेष्टाओं एवं रति व्यापारो के वर्णन मे क्रमश सरसता आती जाती है। अत. वेर (बदर) के फल की भाँति आरम्भ मे कुछ नीरस एवं मध्य तथा अन्त में सरस होने के कारण इस भाण मे **बदरपाक** है।

इस प्रकार पादताडितक अपने व्यंग्यपूर्ण कथानक तथा उत्कृष्ट एवं रोचक रचना शैली के कारण न केवल व्यंग्य प्रधान वर्ग मे अपितु संभवत. समस्त भाण साहित्य मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाण है।

---

१. पृ० २४२।
२. पृ० १७६।
३. पृ० २१६।
४. श्लो० ३६-३६।

धूर्तविट संवाद

कवि ईश्वरदत्त प्रणीत धूर्तविटसंवाद भाण व्यग्य प्रधान वर्ग का है। इसका रचनाकाल लगभग तीसरी चौथी शताब्दी ईस्वी है। इसमे विश्वलक द्वारा किये गये कामतत्र सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नो का विट दैविलक द्वारा उत्तर दिया जाना ही मुख्य कथा है। यह एक मध्यम आकार का भाण है, जिसमें ७१ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र	**पुरुषपात्र**
सुनन्दा—विश्वलक की प्रेयसी (एक वृद्धा वेश्या)	विट देविलक—नायक
माधवसेना—कृष्णिलक की प्रेयसी	विश्वलक—सुनन्दा के घर रहने वाला उसका प्रेमी
प्रद्युम्नदासी—रामिलक की प्रेयसी	कृष्णिलक—एक रसिक श्रेष्ठि-पुत्र
वारुणिका—मदनसेना की परिचारिका	रामिलक—वेशपथिक
	कुजरक— ,,

बन्धुमतिका, रामदासी, रतिसेना } गणिकाये

नान्दी

प्रस्तुत भाण मे एक पद्यात्मिका नान्दी है। सुप्तिङन्त के आधार पर पद गणना के अनुसार यह द्वादशपदा है। नान्दी का आरम्भिक गण रगण[1] होने से यह नायक के विनाश का तथा प्रथम अक्षर 'व' नायक के व्यसन प्राप्ति का द्योतक है। किन्तु विद्या शब्द सरस्वती अर्थात् देवता वाचक होने से लिपि और गण दोनों ही दृष्टि से परिशुद्धा नान्दी ही मानी जायेगी।

स्थापना

सूत्रधार आर्यजनो की प्रीत्यर्थ कोई रूपक खेलना चाहता है। नटी से वह वर्षा ऋतु के अनुकूल गीत गाने को कहता है तथा उसके गान के पूर्व ही वर्षा ऋतु की विट से तुलना करता हुआ वह कहता है कि मेघो का खिजाब लगाये हुए, विद्युत के आलिंगन से कम्पनयुक्त, कुटजरूप वस्त्रों को धारण किये हुए वर्षाकाल विट जैसा लगता है। ऐसा कहकर सूत्रधार चला जाता है। उसके इस वर्षा वर्णन का आश्रय

---

१. विद्यया।

लेकर ही विट का प्रवेश होता है। अतः कालसाम्य के आश्रय से विट का प्रवेश होने से यह **प्रवृत्तक** नामक आमुख भेद है। साथ ही सूत्रधार के '**विटो यथा भांति धन समय.**' इस वाक्य के तुरन्त बाद विट का प्रवेश होने से यह **प्रयोगातिशय** भी हो सकता है।

कथानक

रंगमंचपर उपस्थित होकर वर्षा का वर्णन करते हुए विट देविलक कहता है—कितना रमणीय काल है। वीणा सुखायी जा रही है, दर्पण पोछे जा रहे है, छतों से बचा हुआ बरसाती पानी मोती की माला की भाँति गिर रहा है। ऐसे समय मे अपने उत्सुक मन को बहलाने के लिये विट केवल एक धोती पास मे रह जाने से, निर्धनता के कारण द्यूत सभा मे न जाकर वेशवाट जाने का निश्चय करता है। जाते समय अपनी पत्नी को द्वार बन्द करने को कहता है। वह कहती है कि बाबी की तरह इस घर मे अनेक द्वार हो गये है। वह किस-किस को बन्द करे। खण्डहर हो जाने से लोगो ने घर मे से होकर ही मार्ग बना लिया है। यह सुनकर विट अपनी निर्धनता पर किंचित् दुखी होता है। पत्नी को उत्तर प्रत्युत्तर न करने को कहकर वह चल देता है। कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) की धनाढ्यता तथा सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसे श्रेष्ठिपुत्र कृष्णिलक दीखता है, जो पिता से छिप कर गणिका मे आसक्त हो गया है। बातचीत से पता चलता है कि वह माधवसेना मे अनुरक्त है। इस प्रसग मे कृष्णिलक सुरतमार्ग मे बाधक होने के कारण पितृ समाज की घोर निन्दा करता है। यहाँ तक कि परशुराम की भाँति फरसा लेकर वह सारे संसार को पितृ शून्य कर देना चाहता है। विट भी उसकी 'हाँ मे हाँ' मिलाता हुआ कुल बधुओं की सलज्ज चेष्टाओ, उनके घूघट आदि के कारण उन्हे पशु बताकर उसे खुश करता है। आगे बढने पर कुसुमपुर के लोगो की व्यवहार कुशलता की प्रशसा करता हुआ विट वेश मे प्रविष्ट होता है। वेशवाट की उत्तम शोभा, गणिका परिचारिका एवं गणिका दारिकाओं का रूपयौवन देखकर विट का मन प्रसन्न होता है। मदनसेना की परिचारिका वारुणिका से एक दो बाते करके आगे बढता है। अब वह कांचीदाम को संभालती हुई बन्धुमतिका की शोभा देखकर उससे नर्मालाप करके आगे बढ़ता है। अब उसे रोती हुई रामदासी मिलती है। पूछने पर पता चलता है कि परयुवतिचिह्नित ओष्ठवाले अपने नायक को इसने पहले तो दुत्कार दिया। पर अब वर्षाकाल आने पर भी वह नही आया, इसी से वह रो रही है। विट रामदासी को प्रिय के पास अभिसरण करने की सलाह देकर आगे बढता है। अब विट को रतिसेना मिलती है। उससे बाते कर वह आगे बढ़ा ही था कि रामिलक के घर से आती हुई प्रयुम्न-दासी मिलती है। उससे व्यंग्य और विनोद करके विट आगे बढ़ता है। अब विट विश्वलक तथा सुनन्दा के द्वार पर पहुँचता है। विश्वलक बाहर आकर विट का स्वागत करता है। दोनो निश्चिन्त होकर बैठते है। बातचीत के प्रसग मे विश्वलक विट के समक्ष कामतन्त्र सम्बन्धी कुछ शंकाये रखता है—वेश्या के रूठने पर उसे कैसे मनाया जाये, नखदन्तक्षत आदि पीड़ा कर होने पर भी कामिनियो को क्यो अच्छे

लगते है, गोत्रस्खलन होने पर कामिनी को कैसे मनाया जाये आदि। विट उसका तर्कयुक्त उत्तर देता है। इस प्रसग मे विट स्वर्गसुख को भी वेश्यासुख के आगे तुच्छ तथा हेय बतात। हुआ कहता है—स्वर्ग मे जहाँ रूठना नही, वियोग नही, मात्सर्य, शाठ्य एवं प्रणय नही वहाँ कैसा सुख ? सोने के घर, सोने के वृक्ष,—कैसे स्त्रियाँ वहाँ श्रृंगार करती होगी ? नीद वहाँ नही, मदिरा वहाँ नही। ऐसे स्वर्गसुख की अपेक्षा तो वृद्ध श्रोत्रिय के पास बैठना अच्छा है।

विश्वलक की शकाओ का समाधान करके विट वहाँ से चलना चाहता है, किन्तु सुनन्दा और विश्वलक उसके पैरो पर पड़कर आग्रह पूर्वक रोक लेते है। विट देविलक उनकी इच्छा का अनुगमन करता है और शुभाशंसन के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

धूर्तविट सवाद भाण की व्युत्पत्ति दो प्रकार से हो सकती है। एक तो धूर्त विश्वलक तथा विट का सवाद[1] और दूसरी धूर्तविट का अन्य विश्वलक आदि से सवाद।[2] इनमे प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त लगता है। इस भाण मे विट का विश्वलक और कुण्णिलक इन दो व्यक्तियो से ही अधिक सवाद, प्रश्नोत्तर होता है।

भाण का कथानक अत्यन्त अल्प है। वर्षा से घिर जाने के कारण कई दिन से विट बाहर नहीं निकल पाया है। उसका मन ऊब गया है। बाहर मनोबिनोदार्थ निकलकर वह दो स्थानों पर जा सकता है—एक तो द्यूत सभा और दूसरा वेशवाट। निर्धन होने के कारण वह द्यूत सभा मे न जाकर वेशवाट को ही पसन्द करता है। अपने मन की उत्सुकता को शान्त करने के लिये बाहर जाना ही कथानक का मुख्य उद्देश्य है। विश्वलक के साथ उसका सवाद तो प्रसग प्राप्त है। वह कथानक का उद्देश्य नही। कोई विशेष कथानक न होने के कारण, किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति का अभाव होने से इस भाण मे सन्धि निर्माण नही हो पाता। यदि विट के औत्सुक्य की चर्चा को बीज और उसे शान्त करने के लिये उसकी वेशवाट जाने की इच्छा को आरम्भ मानकर मुखसन्धि बना भी ली जाये तो उसका कोई अंग नही मिलता। निर्वहण सन्धि की स्थिति और भी कठिन है। यहाँ न कार्य मिलता है और न फलागम। इस प्रकार मुख एव निर्वहण दोनो ही सन्धियो का यहाँ अभाव है। निर्वहण सन्धि के अन्तिम दो एक अंग—परिभाषा, प्रशस्ति आदि अवश्य भाण मे मिल जाते है किन्तु इनकी स्थिति तो भाण की समाप्ति सूचक होने से सहज ही है।

नाट्यालंकार

विट देविलक कुण्णिलक को समझाता है कि पिता की आज्ञा मानना, विवाह करना नरक के बराबर है। वेश्यारूपी महापथ को छोड़कर कुलवधू रूपी संकरी गली

---

१. धूर्तस्य (विश्वलकस्य) विटस्य च सवादो यत्र स भाण.।

२. धूर्तश्वासौ विटः धूर्तविटः, तस्य अन्येन विश्वलकादिना सह संवादः यत्र

मे कौन जायेगा। विट का यह कथन **प्रोत्साहन** नाट्यालकार है।[१] साथ ही मदनाराधन की शिक्षा होने के कारण यह प्रसग **उपदेशन** भी है। विट द्वारा युवावस्था मे किये गये खेल, हास, विलास एवं काम व्यवहारो का स्मरण और कथन **उत्कीर्तन**[२] है। विट और विश्वलक के संवाद मे विट द्वारा विश्वलक को कामतत्र की शिक्षा देना **उपदेशन** है।

शिल्पकांग

ईर्ष्याकषायिता होकर मानवती रामदासी द्वारा अपमानित कुजरक के चले जाने पर तथा वर्षा काल मे भी न आने पर उसके विरह मे रामदासी का तडपना, रोना, **वाष्प**[३] है। साथ ही रामदासी द्वारा अपना दुख निवेदन होने से यह प्रसग **विलाप** भी है। विट द्वारा कामतत्र का उपदेश देने पर सुनन्दा, विश्वलक तथा स्वयं विट को भी आनन्दागम होने से **प्राप्ति**[४] नामक शिल्पकाग है।

लास्यांग

अपने प्रिय के अन्य नायिकासक्त होकर आने पर रामदासी द्वारा उसे फटकारना और उसका अपमानित होकर चला जाना, नायिका द्वारा प्रेमच्छेद प्रकट करने के कारण **प्रच्छेदक**[५] है। वेश्याओ के हाव भाव, विलास चेष्टाओ एवताललयान्वित गीत का वर्णन **पुष्पगण्डिका**[६] है। विट का वेशवाट मे वन्धुमतिका, रतिसेना तथा अन्त मे सुनन्दा से प्रश्नोत्तरात्मक, प्रसादपूर्ण वार्तालाप **उक्तप्रत्युक्त** लास्याग है।

पात्र

इस भाण मे मुख्य पात्र विट देविलक है, वही नायक है। उसका न कोई सहायक है और न उसकी कोई समस्या है। कथानक के अभाव मे देविलक का चरित्र विकसित नही हो पाया है। नि सन्देह कृष्णिलक तथा विश्वलक के साथ हुए उसके सवाद से पता चलता है कि वह बहुत ही रसिक प्रकृति का व्यक्ति है। वेश्या प्रसंग के लिए समाज की समस्त मर्यादाओ और मान्यताओ को एक ताख मे धर देने वाला तथा कामतत्र की वारीकियो, उनकी विधाओ का वह प्रकाण्ड पण्डित है। विश्वलक के साथ वार्तालाप मे जो उसने कामिनियो और वेश्याओं के भावो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है वह न केवल भाणो मे अपितु समस्त सस्कृत साहित्य मे एक अद्भुत और अनोखी वस्तु है।

विट देविलक के अतिरिक्त दो मुख्य पुरुषपात्र और इस भाण मे है—

१. पृ० ७०, ७४।
२. श्लो० १५।
३. श्लो० २१, २२।
४. पृ० ११९, १२०।
५. पृ० ८२, ८३।

कृष्णिलक और विश्वलक । दोनो ही वेश के पथिक है । कृष्णिलक अभी नौसिखिया है । तभी तो पिता से डरता है, विवाह बंधन पर विचार करता है । विट द्वारा पितृ समाज की तथा वैवाहिक बन्धन की निन्दा करने पर उसे बोध होता है । विश्वलक पुराना घाघ है । पैसा उसके पास नही है । बुड्ढी सुनन्दा के यहाँ पड़ा रहता है । कामशास्त्र सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न वह विट से करता है ।

भाण मे कोई नायिका नही है और जिस प्रकार का यह कथानक है उसमे उसकी कोई आवश्यकता भी नही थी । स्त्री पात्रो मे कोई विशेष उल्लेखनीय नही है ।

रस

प्रस्तुत भाण में अंगीरस की स्थिति अस्पष्ट है । भाण में यत्र तत्र शृगारिक वर्णन होते हुए भी नायक नायिका के अभाव मे शृगार पुष्ट नही होता । गणिकाओ की शृगार चेष्टाये एव सुरत के वर्णन भी आलम्बन तक ही सीमित रहते है । अतः शृगार अगीरूप मे यहाँ नही है । वीर के भी प्रसिद्ध चारो भेदो मे यहाँ कोई स्पष्ट नही है । क्योकि नायक विट न तो युद्ध प्रिय है, न दान और दया का कोई प्रसग है और न धर्म की ही कोई स्थिति है । इस प्रकार वीर भी अगीरस नही हो सकता ।

भाण का निकट से अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो लेता है कि विट कामशास्त्र का पण्डित है, विद्वान् है । आरम्भ मे ही मदन मार्ग मे प्रवृत्त कृष्णिलक से बातचीत के प्रसग मे वह उसे तत्सबन्धी अनेक उपदेश देता है । विश्वलक तो विट को कामतत्र का साक्षात् आचार्य मानता है । स्वयं इस विषय का आजीवन अनुभव प्राप्त किये हुए होने पर भी विट को वह प्रमाणभूत आचार्य मानता है ।[1] विश्वलक के सभी प्रश्नो का युक्तियुक्त साधिकार वह उत्तर देता है । कामतत्र से सबन्धित विट का यह व्याख्यान उसके पाण्डित्य का द्योतक है । अत. यहाँ **पाण्डित्यवीर** रस होना चाहिए ।[2] इसका **आश्रय** तो स्वयं विट है, **आलम्बन** कृष्णिलक तथा विश्वलक हैं, इनके प्रश्न एवं शंकाये **उद्दीपन**, विट का जोश मे आकर पितृ वर्ग को गाली देना, स्वर्ग सुख की भर्त्सना, वेश्याओं के समक्ष अप्सराओ की हीनता आदि का वर्णन **अनुभाव** तथा धृति, गर्व, सुमति आदि सचारीभाव है । इनके सयोग से **पाण्डित्यवीर** रस यहाँ पुष्ट हो रहा है । गौण रूप से आश्रय भेद से हास्य तथा विप्रलम्भ शृगार भी मिलते है ।

---

१. तत्र यद्भावो वक्ष्यति तन्नः प्रमाणं भविष्यति । पृ० ८९)

२. वीर रस के युद्ध, दान, दया तथा धर्म के अतिरिक्त तीन भेद और माने गये हैं—पाण्डित्यवीर, बुद्धिवीर तथा बलवीर । (दे० र० गं० पृ० ४९, तथा लाज एन्ड प्रेक्टिस आफ् सस्कृत ड्रामा पृ० २८२)

भारती वृत्ति

वीथ्यंग

विट तथा कृष्णिलक के वार्तालाप[1] में पिता एवं पितृबन्धन की निन्दा की गई है। विट पिता को स्वच्छन्दाचरण एव वेश्यागमन मे बहुत बड़ा बाधक समझता है। वह पिता को मूर्तिमान शिरोरोग मानता है। वह पितृवर्ग को गाली देता हुआ कहता है कि ये दासीपुत्र स्वय तो यौवन के आनन्द से वंचित रहे—हमारी भी रेढ मारते है। यह प्रसंग असद्भूत एवं हास्यजनक होने से **प्रपच** वीथ्यग है। साथ ही पिता का बन्धन, उसका उपदेश, वैवाहिक जीवन का सुख, कुल वधुओ की लज्जा, उनका सौम्य, निष्कपट व्यवहार आदि सद्गुणो को भी दोष के रूप मे वर्णन किए जाने के कारण यह प्रसंग **मृदव** है। विट तथा विश्वलक का पूरा संवाद-जिसमें श्रोत्रियो के शुद्ध, पवित्र चरणो की निन्दा कर—कामिनियों के चरणों की प्रशसा की गयी है,[2] श्रोत्रिय के उपदेश, आर्जवयुता नारी आदि सद्गुणो को काम वासना का अन्त करने वाले कहकर दोष बताना,[3] वेश्यागमन एव उस पर धन लुटाना, सामाजिक दोष होते हुए भी विट द्वारा गुण बताना आदि प्रसग[4] भी **मृदव** है। विट तथा विश्वलक की भेट के समय जो प्रगाढ मैत्री के कारण एक दूसरे मे अनौपचारिक एवं अशिष्ट वार्तालाप हुआ है वह असद् एवं हास्यजनक होने से **प्रपच** है।[5] इसी प्रकार वेश्याओ के चरणो की तुलना मे वृद्ध श्रोत्रियो के पैरो की हास्यपरक निन्दा का प्रसंग भी **प्रपच** है।[6] विट तथा विश्वलक की भेट के समय की नोकझोक जिसमें विट द्वारा विश्वलक को शाप देना[7], बाद में उसका प्रायश्चित बताना आदि ऊपर से कठोर होते हुए भी अन्यार्थपरक होने से मृदुल एव नर्मयुक्त है। अत: यह **छल** नामक वीथ्यंग है। विट और विश्वलक का आरम्भिक संवाद तथा अन्त में विट और सुनन्दा का वार्तालाप उक्तिप्रत्युक्ति प्रधान होने से **वाक्केली** है।

इस प्रकार धूर्तविटसंवाद मे वीथ्यगों की संख्या अन्य भाणो की अपेक्षा कहीं अधिक है।

प्रहसनांग

विट देविलक तथा श्रेष्ठिपुत्र कृष्णिलक के संवाद मे विट द्वारा पिता के बन्धन को बहुत बुरा समझना, उसे मूर्तिमान रोग मानना, मदिरापान, द्यूतक्रीडा

१. पृ० ७०–७४।
२. पृ० ९३।
३ श्लो० ३८।
४. पृ० १०९।
५. पृ० ८७।
६. पृ० ९३।
७. पृ० ७०–७४।

आदि में उसका बाधक होना आदि लम्बा प्रसग हास्ययुक्त होने से **व्यवहार** प्रहसनाग है ।[1] विश्वलक के काम सबधी प्रश्नोत्तर मे विट देविलक— स्वर्गसुख की निन्दा तथा परस्त्रीगमन, वेश्या प्रसग, मदिरापान, द्यूत क्रीडा आदि सासारिक सुखो की प्रशंसा करता है । असत्य स्तुति होने से यह प्रसंग **अनृत** है ।[2] साथ ही इस संवाद मे अनेकत्र लोकप्रसिद्ध स्वर्गीय वस्तुओ की निन्दा परक उक्ति हास्य का साधन होने से **उपपत्ति** है ।[3] विश्वलक के साथ प्रश्नोत्तर के इस प्रसग मे विट ने स्वर्ग सुखों की निन्दा पूर्वक ससार के कामसुखो की प्रशंसा करते हुए कहा है कि छिपकर कामिनी रति मे जो आनन्द है, प्रणयकुपिता प्रिया के मनाने मे जो सुख है, वेश वधुओ की ईर्ष्या जन्य प्रणय एव रति मे जो तृप्ति है वह स्वर्ग की अप्सराओ मे कहाँ ? मदिरापान, द्यूतक्रीडा का आनन्द वहाँ कहाँ ? इस प्रकार अयोग्य और अनुचित सासारिक विषय सुखो को भी योग्य और उचित बताये जाने के कारण यह प्रसग[4] **प्रलाप** नामक प्रहसनाग भी है ।

इस प्रकार आलोच्य भाण मे प्रहसनागो की सख्या भी वीथ्यगो की ही भाँति पर्याप्त है ।

इस भाण की भाषा और शैली अत्यन्त रोचक है। इसके सवाद जितने सुन्दर एवं हसाने गुलगुलाने वाले है—उतने सभवत अन्य किसी भाण के नही । वेशपथिको एवं पथभ्रष्ट जनो के प्रति जितना गहरा और तीखा व्यंग्य इस भाण मे मिलता है उतना सभवत. अन्यत्र नही । कोई विशेष कथानक न होते हुए भी धूर्तविट सवाद भाण अपने गुणो के कारण पादताडितक की ही भाँति महत्वपूर्ण है ।

श्यामला-भाण[1]

श्यामला भाण कवि चिन्तामणि की कृति है। इसमें कथानक बहुत थोडा है। समाज की विविध प्रकार की बुराइयों का प्रकाशन ही इसका उद्देश्य है। व्यग्य प्रधान वर्ग का यह एक मध्यम आकार का भाण है।

पात्र

स्त्रीपात्र

कन्दर्पकला, कान्तिमती, पीयूषवल्ली — गणिकाये

पुरुषपात्र

मन्दारगुच्छ—नायक
गणेश—दैवज्ञ ब्राह्मण
राजीव—सेठ कुमुद का पुत्र
व्यकट आर्य—एक विद्वाम् ब्राह्मण
दासीमित्र—एक महात्मा

नान्दी

भाण की त्रिपद्यात्मिका नान्दी के प्रथम पद्य मे गणेश, दूसरे मे नृसिह तथा तीसरे मे भगवान् विष्णु की आशीर्वादात्मक स्तुति है। श्लोक पाद को पद मानने के अनुसार यह द्वादशपदा तथा आशीर्वादात्मक होने से शुद्धा नान्दी हैं।

प्रस्तावना

नान्दी के बाद प्रविष्ट होकर सूत्रधार कहता है कि इस कवीरपुर नगर में भगवती महालक्ष्मी के शारद नवरात्र के महोत्सव को देखने आये हुए सामाजिक जनों के मनोविनोदार्थ कवि चिन्तामणि द्वारा निर्मित श्यामला भाण का अभिनय करना है। **प्ररोचना** के द्वारा वह कवि, सभासद तथा अपनी नाटच दक्षता की प्रशसा करते हुए शरद् ऋतु की रमणीयता का वर्णन करता है। इसके बाद सूत्रधार तो चला जाता है, रंगमच पर विट मन्दारगुच्छ का प्रवैश होता है।

कथानक

रंगमंच पर आकर विट मन्दारगुच्छ कवीरपुर की प्रशसा करता हुआ प्रात: का वर्णन करता है। विट घूम ही रहा था कि उसे हाथ में पुस्तक लिए हुए देवालय मे प्रवेश करते हुए, गणेश नामक दैवज्ञ मिल जाता है। विट उसे रोककर कुम्भस्थापन

---

१. इस भाण का आरम्भ का अतिवलेश्वर एवं हनुमान् जी के मंदिर दर्शन तक का प्रसंग तो रायल एशियाटिक सोसायिटी, बबई की पाण्डुलिपि मे प्राप्त होता है। इस प्रति मे यह भाण यही समाप्त हो जाता है। शेष कथानक गायकवाड ओ० इन्स्टी०, बड़ौदा मे प्राप्त पाण्डुलिपि के आधार पर पूरा किया गया है। बड़ौदा में प्राप्त पाण्डुलिपि मे आरम्भ के ४६ पृ० नही हैं।

का मुहूर्त पूछता है। विट मध्याह्न का समय इसके लिये उपयुक्त मुहूर्त बताता है। पाञ्चाङ्ग के विषय मे पूछने पर ब्राह्मण गणेश विट को बताता है कि तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण— ये पाँच ज्योतिष के अग होते है। विट उससे कहता है कि तुम तो केवल ज्योतिष के ही पाँच अंग जानते हो, मै तुम्हे काम शास्त्र के पाँच अंग बताता हूँ। ये पाँच अंग है— कामिनी के अधर, कुचद्वन्द्व, नाभि तथा जघन। इस वार्तालाप के अनन्तर विट अपने मित्र के साथ देवालय दर्शन करने चल देता है। मार्ग मे विट को दत्तात्रेय का पादुकास्थान मिलता है। विट उसे प्रणाम करता है। अब उसे जटाजूटधारी ऋषि समाज मिलता है। कुछ ऋषि योगासन कर रहे हैं, कुछ वृक्ष की शाखाओ मे पैर बाँध कर नीचे लटक कर धूम्रपान कर रहे हैं, कुछ जप तप मे व्यस्त है। अब विट को **अतिबलेश्वर** भगवान के मदिर के दर्शन होते है। यहाँ उत्तर देश के वैरागी रहते है। यही पर विट को हनुमान् जी का मंदिर मिलता है। उसके दर्शन कर वह आगे बढता है।

अब उसे शृंगार करती हुई कन्दर्पकला मिलती है। विट उससे विविध प्रकार का नर्मालाप कर ही रहा था कि इसी बीच उसकी जरती आ जाती है। वह विट को देखते ही गालियाँ देना आरम्भ कर देती है—अरे दरिद्र, कृतघ्न ! प्रतिश्रुत धन विना दिये हुये तुम यहाँ कैसे आये। भाग जाओ यहाँ से। कन्दर्पकला तुम्हारे लिये सुलभ नही—आदि। विट कहता है—अम्मा, तुझ वृद्धा के लिये कन्दर्पकला (दूसरा अर्थ कामलता) भले ही दुर्लभ हो, हम तरुणो के लिये तो वह सुलभ ही है। जरती पुन. सक्रोध विट को फटकारती है। कन्दर्पकला बीच मे पड़कर विवाद शान्त करती है।

कुछ आगे बढने पर विट को पतग उडाती हुई कान्तिमती दीखती है। वह पतग को बहुत ऊंचाई पर उड़ा रही है। विट उसकी प्रशसा करता हुआ आगे बढता है। इसके अनन्तर कान्तिमती विट को पीयूषवल्ली के यहाँ ले जाती है। वहाँ विविध प्रकार के गीत वाद्य को देखकर विट आनन्दित होता है। इसी प्रसग मे विट को सेठ कुमुद का पुत्र राजीव मिल जाता है। इसने पिता की समस्त सम्पत्ति वारविलासिनियों पर गँवा दी है। उसकी यह दशा देखकर विट वेश्याओ के सौन्दर्य की गर्हणा करता हुआ कहता है कि इन दुष्टाओ की छाया का भी स्पर्श करके स्नान कर लेना चाहिये। इस प्रकार वेश्यागमन के दोषों का वर्णन करते हुये विट योगी के दर्शन से अपने को पवित्र बनाने के लिये मठ में प्रवेश करता है। महात्माओं के दर्शन कर उन्हें साष्टाग प्रणाम करता है। उनके छात्रो को देखकर उनके भाग्य की प्रशसा करता हुआ कहता है कि इनमे से कुछ का पतन होगा, कुछ यशस्वी बनेगें।

यहाँ से चलकर विट को व्यंकट आर्य का अन्तेवासी मिलता है। यहीं भीमा नदी के किनारे विट को देवता तुल्य दासीमित्र नामक महात्मा मिलते है। आगे चकर रगभैरव नामक क्षेत्रपाल के दर्शन कर विट उन्हें प्रणाम करता है।

इन दृश्यो को देखकर इन शिष्यो, ब्राह्मणों तथा ऋषियो को कामपरायण मानकर विट उनकी निन्दा करते हुए कहता है—अब समार मे ब्राह्मणत्व नही रहा। कीर्तन के लिये बैठे हुये दासी समाज को देखकर भी उसे आश्चर्य होता है। यह दासी समाज भी ऊपर से हरिकीर्तन कर रहा है। किन्तु मन ही मन कामियो की इच्छा तृप्ति के लिये उत्सुक है। यही बिट शख आदि वाद्य लिये हुये ब्राह्मणों को देखता है। ये सब ऊपर मे तो धार्मिक है। किन्तु अवसर पाकर वारागना गमन से भी नही चूकते।

इस प्रकार समाज के प्रत्येक वर्ग का ऊपरी दिखावा कुछ और है और आन्तरिक स्थिति कुछ और। सभी कामपरायण हैं—राजा हो या प्रजा, धनी हो अथवा निर्धन, क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, कुलवधू हो या वेश्या। समाज के इन दोषो के उद्घाटन के साथ ही भाण समाप्त हो जाता है।

वस्तु

बम्बई और बड़ौदा में प्राप्त भिन्न भिन्न पाण्डुलिपियों के आधार पर इस भाण का कथासूत्र जोडा गया है। इसलिये कथानक विश्रृंखलित अवश्य है, फिर भी वह पूर्ण है। विट मन्दारगुच्छ द्वारा समाज के दोषो एव कुरीतियो का उद्घाटन ही इस भाण की मुख्य कथा है। किन्तु भाण के आरम्भ मे ऐसा न कोई उद्देश्य बताया गया है और न उसके लिये किसी प्रकार के प्रयत्न का आरम्भ ही है। इसी प्रकार अन्त में भी उद्देश्य प्राप्ति का अभाव दृष्टिगोचर होता है। अतः मुख एव निर्वहण दोनो ही सन्धियाँ एव उनके अगो का यहाँ अभाव है।

पात्र

मन्दारगुच्छ ही इस भाण का मुख्य पात्र है, नायक है। आरम्भ मे तो वह धीरललित प्रकृति का दीखता है जबकि वह कन्दर्पकला, पीयूषवल्ली आदि गणिकाओं के पास जाता है। किन्तु भाण के लगभग मध्य मे उसकी यह प्रकृति बदल जाती है और वह एक पक्का समाजसुधारक बन जाता है। समाज मे फैले हुये दोषो तथा बुराइयो की वह खुलकर आलोचना करता है। ब्राह्मणत्व के पतन से उसे दुख होता है। वेश्यावृत्ति के प्रति उसे घृणा होती है। ढकोसलों के प्रति उसके मन में द्वेष है। शेष पुरुष पात्र गणेश, राजीव आदि कथानक के विकास में सहायक मात्र हैं।

प्रस्तुत भाण मे कोई नायिका नही है। कन्दर्पकला, कान्तिमती, पीयूषवल्ली आदि गणिकाओं से विट का क्षणिक सम्बन्ध है। उनमें से कोई नायिका की कोटि में नही आती। कथानक का स्वरूप भी इस प्रकार का है जिसमें नायिका की कोई आवश्यकता नहीं है।

रस

नायक नायिका का प्रसंग न होने से भाण में श्रृंगार रस भी अपुष्ट है। आरम्भ मे मन्दारगुच्छ का दैवज्ञ गणेश से वार्तालाप, कन्दर्पकला, कान्तिमती एवं पीयूषवल्ली आदि गणिकाओं से नर्मालाप के प्रसंग में श्रृगार युक्त वर्णन अवश्य आया

है किन्तु वह आलम्बन मात्र है, पुष्ट शृंगार नही। इस प्रकार शृगार रस तथा उससे सबन्धित कैशिकी वृत्ति का यहाँ प्राय अभाव है।

साथ ही भाण के अन्य अग नाट्यालकार, लास्याग, वीथ्यंग, प्रहसनाग आदि का भी प्रस्तुत भाण मे प्राय अभाव है।

भाण के अनेक अगो का अभाव होते हुये भी श्यामला भाण अन्य भाणो की परम्परा के विरुद्ध एक नया दृष्टिकोण उपस्थित करता है। सामाजिक व्यग्य यों तो अन्य भाणो मे भी दिखाया गया है किन्तु वहाँ वह व्यग्य-मात्र है। इस भाण मे सामाजिक दोषो का खुलकर भण्डाफोड़ किया गया है। यह समाज ऊपर से देखने मे जैसा निष्कलक लगता है वस्तुतः वैसा नही है। न केवल गणिकाजन एवं निम्नवर्ग ही कामलिप्त है अपितु समाज के धर्म धुरन्धर योगी, सन्यासी, ज्योतिषी, पुरोहित, आदि उच्च और पवित्र माने जाने वाले व्यक्ति भी पाप परायण है। साधु समाज एवं पण्डितवर्ग के ढकोसलों, पाखण्डो एव आडम्बरो का यहाँ खुलकर उपहास किया गया है

इस प्रकार समाज के दोषो का ही मुख्य रूप से उद्घाटन करना प्रमुख कथानक होने से यह भाण एक नयी परम्परा स्थापित करता है। इस दृष्टि से यह एक सर्वथा नवीन शैली की रचना है।

इस भाण के साथ ही व्यंग्य प्रधान वर्ग समाप्त होता है।

—:०.—

षष्ठ अध्याय

भाण-समीक्षा

वर्णना प्रधानवर्ग

वर्णना प्रधान वर्ग-परिचय

१. रससदन भाण
२. वसन्ततिलक भाण
३ शृङ्गारभूषण भाण

अधोलिखित समस्त भाण पाण्डुलिपि मे प्राप्त हैं।

४ हरिविलास भाण
५ शृङ्गारस्तवक भाण
६ अनंगविजय भाण
७ अनगजीवन भाण
८. शृङ्गारसर्वस्व भाण
९ शृङ्गारकोष भाण
१० मदनभूषण भाण

सामान्य भाण

११. रसोल्लास भाण
१२ अनगसर्वस्व भाण
१३ कन्दर्पदर्पण भाण
१४ रसिकतिलक भाण
१५ कन्दर्पविजय भाण
१६. मदनमंजरी परिणय भाण
१७. पंचबाणविजय भाण
१८. अनंगविजय भाण
१९ शृंगाररत्नाकर भाण
२० अनंगतिलक भाण
२१. वसन्तभूषण भाण
२२. शृंगारविलास भाण
२३ रंगराजचरित भाण
२४. मदनगोपालविलास भाण
२५. शृङ्गारसंजीवन भाण
२६. चातुरीचन्द्रिका भाण
२७. लीलादर्पण भाण
२८ मदनमहोत्सव भाण
२९ शृंगाररसभृ गार भाण
३०. शृगारमजरी भाण
३१ शृगारदीप भाण
३२ वसन्ताभरण भाण
३३ शृ गारचन्द्रिका भाण
३४. तरुणभूषण भाण
३५ रसरत्नाकर भाण
३६. विटनिद्रा भाण
३७. शृ गारशृ गाटक भाण
३८. मदनसंजीवन भाण
३९. कन्दर्पविजय भाण
४०. पंचबाणसिद्धान्त भाण
४१ भाणत्रयी
४२ वर्तमान भाण
४३ शृंगारद्वैत भाण
४४. सकर्षण भाण
४५. भाण नाटक
४६ पल्लवशेखर
४७. रसिकजनमानसोल्लास
४८ अनगमङ्गल

४६. रंगनाथ
५०. शारदातनय
५१. शृंगारतिलक
५२. शृगारभूषण
५३. मदनसाम्राज्य
५४ रसोदार भाण
५५. वसन्ततिलक
५६. शृगारलीलातिलक
५७. शारदातिलक (शकरकृत)
५८. शारदातिलक (शेषगिरिकृत
५६. शृंगारविलसित भाण
६०. सारस्वतोल्लास भाण
६१. सरसकविकुलानन्द
६२. शृंगार सुधाधर
६३. शृंगार जीवन
६४. शृंगार कोश
६५. अनंग सजीवन
६६. शृंगार संजीवन
६७. शृङ्गारभूषण (अनन्ताचार्यं कृत)
६८. शृंगारभूषण(वेकटार्यकृत)
६६. रगराज भाण
७०. भद्रकाली केलियान्नामह
७१. महिषमंगल भाण
७२. वसन्तोत्सव भाण
७३. विटराजविजय भाण
७४. अनंगब्रह्मविद्याविलास
७५. कुसुमायुध जीवित
७६. चन्द्ररेखाविलास
७७. मदनविलास
७८. मदनाभ्युदय
७९. रसिकजन रसोल्लास
८०. रतिभूषण
८१. वल्लविपल्लवोल्लास
८२. वसन्ततिलक
८३. विलास भूषण
८४. शृङ्गारदीप
८५. शृङ्गारपवन
८६. शृंगारमंजरी (वामनभट्टबाण
८७. शृगारमंजरी(विश्वनाथ)
८८. शृङ्गाररस भाण
८६. शृङ्गार रसोदय
६०. शृङ्गारराजतिलक
६१. शृंगारशेखर
६२. शृगारसर्वस्व (अनन्तनारायणसूरि)
६३. शृङ्गारसर्वस्व (स्वामिशास्त्री)

वर्णनाप्रधान वर्ग

केवल वर्णन प्रधान होने से इस वर्ग का यह नाम पड़ा। इस वर्ग में आने वाले भाणो की एक विशेष परम्परा है, उनका एक व्यक्तिगत ढग है। इनमे घटनाओ का—विशेषकर नायक नायिका से सम्बन्धित घटनाओ का—प्राय: अभाव रहता है। वेशवाट और वेशजीवन का वर्णन ही प्रधान होता है। आरम्भ मेना यक वसन्त या प्रात: का वर्णन करता हुआ किसी प्रेयसी के वियोग में विधुर दिखाया जाता है। अपनी प्रेयसी का स्मरण करता हुआ वह उसके रूप, यौवन एव मिलन सुख का वर्णन करता है। उसी समय उसे नायिका की बड़ी बहिन या मां का निमन्त्रण मिलता है जिसमें प्रथम रंगाधिरोहण आदि उत्सवो के अवसर पर उसे बुलाया जाता है। वहाँ जाने के लिये नायक चल देता है और वेशवाट मे अपनी विविध पूर्व प्रेयसियो से नर्मालाप करता हुआ, अनेक पथभ्रष्ट ब्राह्मण कुमारो एव मित्रों से हासपरिहासपूर्वक व्यंग्य करता हुआ, कभी-कभी उनकी तथा अपनी प्रणय कथा सुनते सुनाते हुये गन्तव्य पर पहुँच जाता है। वहाँ उसका अतिथि की भाँति स्वागत होता है। कभी तो कलत्रपत्रिका प्रदानपूर्वक वह नायिका को प्राप्त कर लेता है और कभी उसकी बडी बहिन या मा को अथवा स्वय नायिका को ही बधाई देता हुआ केवल उत्सव की शोभा बढाता है।

इस प्रसंग मे एक विचित्रता और है। आरम्भ में विट जिस रमणी का स्मरण करता है, जिसके वियोग में पीडित दिखाया जाता है—यह आवश्यक नही कि अन्त मे वह उसे ही प्राप्त करता हो। कभी-कभी तो आरम्भ मे जिससे उसका प्रेम दिखाया जाता है, जिसके वियोग मे वह तडपता हुआ वर्णित किया जाता है—अन्त में उसके विपरीत किसी अन्य नायिका को ही प्राप्त कर लेता है। आरम्भ में स्मरण की गयी प्रिया की भाण के अन्तिम भाग के पूर्व न कोई चर्चा होती है और न कोई वर्णन।

इस प्रकार कथानक मे पूर्वापर घटनाओं में असमानता एवं अव्यवस्था के कारण दूसरे शब्दो मे—घटनाओ, सघर्ष एव कथानक के अभाव मे इन भाणो मे सन्धि निर्माण प्राय: नही हो पाया है। जिन दो चार भाणों में सन्धि एवं उनके अंग मिलते भी हैं वे भी बहुत अल्प तथा क्षीण रूप मे है। पात्रो के चरित्र चित्रण की भी यही स्थिति है। नायिका की तो इन भाणो मे कोई चर्चा ही नही होती है। भाण के अन्तिम भाग में, भरत वाक्य के ठीक पूर्व आये हुये वर्णन के अनुसार वह उसे (नायक को) प्राप्त भर हो जाती है। अत नायिका के चरित्र चित्रण का तो यहाँ प्रश्न ही नही उठता। नायक के चरित्र का भी यहाँ कोई विकास नही दिखाया गया है। इसी से इस वर्ग के अधिकांश भाणो के सन्धि एवं चरित्र चित्रण

का विवेचन नही किया गया है। भाण के शेष अगो मे नाट्यालकार तथा वीथ्यंग तो इन भाणो मे यथावत् मिलते है, लास्याग एव प्रहसनागो की सख्या कम है।

इस वर्ग मे ६४ भाणो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इनमे प्रथम रससदन यद्यपि इस वर्ग के अन्य भाणो की भाँति नही है। उसका कथानक, उसकी घटनाये एव वर्णन कुछ भिन्न प्रकार के है। किन्तु वर्णनाप्रधान होने से उसे इसी वर्ग में रखा गया है। यद्यपि सन्धि एव सन्ध्यगो का इसमे भी प्राय: अभाव है, किन्तु रोचक कथानक एव सुन्दर साहित्यिक वर्णनों के कारण यह इस वर्ग का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण भाण है। इसी से काव्यालोचन सहित इसका संक्षेप मे पूर्ण विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त वसन्ततिलक आदि आरम्भिक ६ भाणो का और यथासम्भव पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इनमे वसन्ततिलक, हरिविलास, शृगारस्तबक, अनगजीवन आदि चार-पाँच भाण अपेक्षाकृत सुन्दर तथा कुछ नवीनता लिये हुये हैं। इन १० के अतिरिक्त सामान्य भाण शीर्षक के अन्तर्गत आने वाले इस वर्ग के ८४ भाण अत्यन्त सामान्य कोटि के है। इनके कथानको, वर्णनो एव घटनाओ मे पिष्टपेषण है। इन ८४ मे भी अन्तिम ५६ भाण वे है जो या तो प्राय· अपूर्ण, अव्यवस्थित, जीर्णशीर्ण तथा त्रुटित है या जिनके कथानक पिष्टपेषित, महत्वहीन एवं अधूरे हैं। अत: प्रबन्ध के कलेवर को अनावश्यक न बढाने की दृष्टि से इन ८४ भाणों का यहाँ उल्लेखपूर्वक परिचय मात्र दिया गया है।

रससदन भाण

रससदन भाण कवि युवराज की रचना है। इसका समय १९वी शताब्दी है। इसमें विट द्वारा मित्र मन्दारक की अनुपस्थिति मे उसकी पत्नी चन्दनमाला को देवी दर्शन के लिए ले जाना मुख्य घटना है। वर्णना प्रधान वर्ग का यह एक मध्यम आकार का भाण है जिसमे २४० पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र

चन्दनमाला —मन्दारक की पत्नी, विट की पूर्व प्रेयसी

मदनमञ्जरी—सुकुमार तथा वैदेशिक ब्राह्मण की प्रेयसी

महापताका —महाकेतु की प्रेयसी

बालचन्द्रिका—सरसकेतु की प्रेयसी

शृंगार लता, विस्मयलता } गणिकाये

पुरुषपात्र

विटपल्लवक—मुख्य पात्र, नायक

मन्दारक —विट का मित्र

सुकुमार —श्रोत्रिय शिवदास शर्मा का पुत्र

मधुराक्ष —सुकुमार का मित्र

महाकेतु, सरसकेतु } वेशपथिक

नान्दी

रससदन भाण में चतुष्पद्यात्मिका नान्दी है।[१] श्लोकपाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह षोडशपदा नान्दी है। प्रथम पद्य में चन्द्र शब्द का उल्लेख होने से यह **नीली** भेद के अन्तर्गत आती हैं। साथ ही दो बार प्रथम पद्य मे तथा दो बार द्वितीय पद्य में पद्म, अम्बुज, तथा कमल शब्दो के प्रयोग से यह उत्तम नान्दी है। प्रथम और तृतीय पद्य आशीर्वादात्मक, द्वितीय तथा चतुर्थ पद्य मंगलवाची होने से यह शुद्धा है। नान्दी का आरम्भ मगण से होने के कारण नायक को 'श्री' प्राप्ति कराने वाला है। अतः नान्दी गणतः परिशुद्धा है। आरम्भिक अक्षर 'ब' यद्यपि नायक के मरण का द्योतक है किन्तु देवतावाची[२] होने के कारण यह मगलप्रद ही है। अतः लिपितः परिशुद्धा भी नान्दी है।

---

१. भाण के आरम्भ के दो श्लोक कवि का आत्म परिचय होने से नान्दी के अन्तर्गत नही माने जायेगे। शेष चार श्लोक नान्दी है।

२. ब्रह्मेन्द्रादि··· ···।

इस नान्दी में उद्घात्यक तथा अवस्यन्दित दोनो वीथ्यगो का एक ही पद्य[1] मे चित्रण बडा सुन्दर और अद्भुत है।

प्रस्तावना

नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार रगमच पर आकर कामदेव की महिमा का वर्णन करते हुए भगवती भद्रकाली की केलि यात्रा के उत्सव को देखने के लिये आये हुए सभासदो की आज्ञानुसार वह युवराज कवि की कृति रससदन भाण को अभिनीत करने को प्रस्तुत हो जाता है। **प्ररोचना** द्वारा सूत्रधार अपनी नाट्यप्रवीणता, सभासदो की नाट्यगुणदोष विवेचन दक्षता की प्रशंसा करता है। नटी को बुलाकर वह हेमन्तकाल के अनुरूप कोई सगीत सुनाने को कहता है। नटी द्वारा प्रस्तुत किये गये हेमन्तवर्णन को सुनकर सब मन्त्रमुग्ध हो जाते है।

नेपथ्य मे पढे हुए श्लोक को सुनकर सूत्रधार श्लोक पढने वाले विट का परिचय देता हुआ चला जाता है तथा रगमच पर विट का प्रवेश होता है। यह प्रवेश **वलित** नामक आमुखभेद के अन्तर्गत आता है।

कथानक

विट पल्लवक रगमंच पर आकर प्रभात का वर्णन कर ही रहा था कि सहसा उसे स्मरण आता है कि मित्र मन्दारक ने कार्यवश देशान्तर जाने के कारण अपनी पत्नी चन्दनमाला को पावती दर्शन कराने एव सायंकाल तक न आने पर उत्सव आदि दिखाने का भार उस पर ही छोड दिया है। मित्र कार्य करने को विट चल देता है। एक सुन्दर दीर्घिका मे स्नान करके, अगलेप आदि से निवृत्त होकर रसिक शिरोमणि बनकर वह आगे बढता है। चन्दनमाला के घर पहुँचकर विट देखता है कि वह बडी आतुरता से उसकी प्रतीक्षा कर रही है। विट के साथ चन्दनमाला चल देती है। देवी मन्दिर के समीप पहुँचकर विट चन्दनमाला को वह मार्ग, वे दिन स्मरण कराता है जब वह षोडशवर्षीया चन्दनमाला से स्वय प्रेम करता था तथा राजा के पास उसे ले जाया करता था। चन्दनमाला सुख के वे दिन स्मरण करके किञ्चित् उन्मनाः हो जाती है।

देवी का मन्दिर पास आ जाता है। जननी की केलि यात्रा के इस उत्सव मे खूब भीड़-भाड़ है। बाहर से आये वैदेशिक देवी की स्वर्णमयी प्रतिमा भेंट कर रहे हैं। ऐसे अवसर पर युवक युवतियो के प्रेम मिलन, पूर्व संकेतित स्थलों पर प्रेमालाप हो रहे है। विट तथा चन्दनमाला देवी का दर्शन करते हैं तथा प्रसाद लेकर देवी दर्शनार्थ आये राजा के दर्शन करते हुए वहाँ से चल देते हैं।

यही इन्हे देवी दर्शनार्थ आयी वेशवनिता मदनमंजरी मिल जाती है। विट चन्दनमाला को बताता है कि श्रोत्रिय शिवदास शर्मा का असवर्णक्षेत्रसंभव पुत्र

---

१. श्लो० ५।

सुकुमार इस मदनमञ्जरी मे अनुरागवान् है और अपनी अभीष्ट पूर्ति के लिये मुझसे सहायता भी मागी है। किन्तु मदनमजरी इस समय किसी वैदेशिक ब्राह्मण का धन चूसने के लिये अहर्निश उसका ही अनुगमन कर रही है। विट कहता है कि किसी प्रकार देवी दर्शन के बहाने मदनमजरी को वैदेशिक के पास से हटाकर सुकुमार का मनोरथ पूरा कराऊँगा। विट मदनमजरी के सौन्दर्य को प्रशसा करता हुआ सायकाल उसके यहाँ आने को कहकर चल देता है।

चन्दनमाला को घर पहुँचाकर विट लौट आता है। इसी समय उसे मदनमजरी की चेटी घबड़ायी हुई जाती दीखती है। पूछने पर पता चलता है कि वैदेशिक ब्राह्मण को किसी ने भर दिया है कि मदनमजरी देवी दर्शन के लिये नही बल्कि अपने प्रेमी से मिलने गयी है। इसीलिये वह आर्या को बुलाने जा रही है। विट इस घटना को कोई विशेष महत्व नही देता। क्योकि वह जानता है कि प्रेमियो का यह प्रणय कलह क्षणस्थायी होता है। इसके अनन्तर विट अपनी प्रिया (कोई प्रेमिका जिसका नाम अज्ञात है) के घर पहुँचकर भोजनादि से निवृत्त हुआ ही था कि सुकुमार का मित्र मधुराक्ष आ जाता है। वह विट को सुकुमार की विरह दशा कहता है और मनोरथ सिद्धि के लिये विट से प्रार्थना करता है। विट उससे दूसरे दिन आने का वादा करके वहाँ से चल देता है।

अब विट वेशवाट मे प्रविष्ट होता है। यहाँ विट को महापताका का घर दीखता है। उसका प्रेमी महाकेतु उसके द्वार पर पड़ा है। जरती उसे अन्दर नहीं घुसने देती। आगे बढने पर विट को शृङ्गारलता, तथा विस्मयलता का स्वागत सत्कार प्राप्त होता है। यही उसे बालचन्द्रिका मिल जाती है। विट उससे वार्तालाप करता है। बालचन्द्रिका उपपति से प्रेम करती है। विट इसे उसके पति के प्रति विश्वासघात बताता है।

भद्रकाली के इस उत्सव के अवसर पर मन्दिर के समीप अनेक प्रकार का गीत, नृत्य और वाद्य शुरू होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के खेल, तमाशे, इन्द्रजाल, माया तथा नटो के विविध प्रकार के प्रदर्शन दिखाये जाते है। कहीं कामिनियाँ अपने नृत्य, गीत एवं रूप सम्पत्ति के द्वारा दर्शकों के चित्त को प्रसन्न कर रही हैं, कही दारिकावध नामक प्रबन्ध का अभिनय किया जा रहा है। विट इन दृश्यों को देखता है।

अब विट पुनः चन्दनमाला के घर पहुँचता है। वहाँ मित्र मन्दारक के आ जाने से उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। दोनो मित्र मिलते है। मन्दारक अपनी पत्नी के प्रति किये गए उसके व्यवहार (देवी दर्शन के लिए ले जाना) के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। दोनो मित्रो मे प्रेम पूर्ण वार्तालाप होता है। विट मन्दारक को रात्रि में उत्सव देखने के लिए चन्दनमाला के साथ आने को कहकर स्वयं विदा होकर चल देता है तथा भरतवाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु]

आलोच्य भाण मे विट द्वारा चन्दनमाला की सुविधा तथा सरक्षण की व्यवस्था ही इसकी मुख्य या आधिकारिक कथा लगती है तथा ब्राह्मण पुत्र सुकुमार एवं मदनमजरी का सयोग कराना प्रासगिक। यद्यपि भाण मे मदनमंजरी का सुकुमार से सयोग कराया तो नही गया है किन्तु विट, सुकुमार तथा उसके मित्र मधुराक्ष को दोनो का संयोग कराने का आश्वासन दे देता है। किन्तु सन्धि निर्माण की दृष्टि से ये दोनो ही कथानक भाण मे कुछ अटपटे से है। उन्हे आधिकारिक और प्रासगिक रूप देना खीचातानी सी लगती है। कथानक मे भद्रकाली के उत्सव का दृश्य उपस्थित करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य लगता है। उसी की पूर्ति हेतु कथानक की कल्पना की गई है। यह तो एक वर्णना प्रधान भाण है। अत. जैसा कि परिभाषा के प्रसङ्ग मे देखा गया है—इस वर्ग के भाणो मे सन्धि निर्माण दुष्कर है। प्रस्तुत भाण में भी इसीलिए मुख और निर्वहण सन्धि नही बनती है और न उनका कोई भेद ही यहाँ मिलता है। केवल अन्त मे प्रशस्ति अवश्य भरत वाक्य के रूप मे मिलती है।

सन्धियो के अतिरिक्त भाण मे पाये जाने वाले वस्तु के शेष अग यहाँ यथावत् मिलते है।

नाट्यालङ्कार

भाण मे नाट्यालङ्कारों की संख्या पर्याप्त है। आरम्भ मे विट पल्लवक द्वारा चन्दनमाला के रूप, गुण एवं यौवन की प्रशंसा[1] **आशंसा** है। तालवृन्त लेकर आयी हुई पद्मगन्धिनी से विदा लेते हुए विट का मित्र कार्य के लिए उद्यत होना **उद्यम** है। चन्दनमाला द्वारा विट से आगे-आगे चलने का आग्रह करने पर विट उसे समझाता है कि पतिव्रता स्त्रियाँ स्वामी के प्रवास में भी जीवित होने पर परपुरुष का अनुगमन नही करती[2]—शास्त्रानुकूल उपदेश होने से यह **नीति** नामक नाट्यालङ्कार है। चन्दनमाला के पूछने पर विट उसे मार्ग का परिचय देते हुए बताता है—सुमुखि, यह वही सरल मार्ग है जो राजद्वार तक गया है। स्मरण करो, इस पर तुम कभी गयी हो या नही। भूतकार्य का कथन होने से यह **उत्कीर्तन है**।[3] इसी प्रकार एक पूर्व घटना का स्मरण कराते हुए विट चन्दनमाला को बताता है कि किस प्रकार एक बार वर्षाकाल मे राजा का अभिसरण करने जब तुम जा रही थी तो बादल की घोर गर्जन और बिजली की चकाचौध से डरकर तुमने मेरा सरभस आलिङ्गन किया था[4]। पूर्ववृत्त कथन से यह प्रसङ्ग **आख्यान** है। विट द्वारा वनिता समूह के

---

१. श्लो० ४३–४७।

२. श्लो० ५०।

३. श्लो० ५६।

४. श्लो० ५९।

सौन्दर्य एवं यौवन की प्रशंसा चन्दनमाला द्वारा सहन न करना **अक्षमा** है।[1] विट द्वारा मदनमंजरी और सुकुमार का सयोग करा देना रूप कार्य ग्रहण **उल्लेख** है। विट पल्लवक द्वारा मदनमजरी और सुकुमार का सयोग करा देने की प्रतिज्ञा करते हुए यह कहना कि यदि जीवित रहा तो कल अवश्य ही अपने मित्र की व्याधि दूर कर दूंगा **अध्यवसाय** है।[2] शृङ्गारलता द्वारा विट का अत्यधिक आदर तथा स्वागत करना, विनीत भाव से उसकी बातो का उत्तर देना **अनुवर्तन** है।[3] इसी प्रसङ्ग मे विट द्वारा शृङ्गारलता के अग प्रत्यंगो की भोगेच्छा पूर्वक कामना करना **स्पृहा** है।[4]

भाण्यंग

प्रस्तुत भाण मे भाण्यगो की सख्या अल्प है। एकान्त निकुज मे छिपे हुए किसी युवक के साथ कृतरतिव्यापारा बालचन्द्रिका से जब विट उसकी अस्तव्यस्तता का कारण पूछता है तो वह सत्य बात छिपाकर बहाना बता देती है। अतः मिथ्याख्यान होने से यह **साध्वस** है[5]। भाण के अन्त मे विट मन्दारक से कहता है कि तुम्हारे द्वारा दिया गया कार्य मैंने पूरा किया। अत. कार्य समापन होने से यह कथन **संहार है।**

शिल्पकांग

विट द्वारा चन्दनमाला के प्रति स्नेहभरी बाते, उसके रूप की महिमा और गति की मधुरिमा[6] **प्रसक्ति** है। समस्त भाण मे मित्र कार्य के प्रति उद्योग ही **प्रयत्न** है। विट द्वारा मधुराक्ष के सामने सुकुमार की कार्यसिद्धि हेतु कृतसकल्प होना **साधन**[7], देवी दर्शन के लिए आये हुए वनिता समाज के प्रति इच्छा **उत्कण्ठा** तथा भाण की समाप्ति पर विट तथा मन्दारक का मिलन दोनो को आनन्दप्रद होने से **प्राप्ति** नामक शिल्पकाग है।

लास्यांग

विट तथा चन्दनमाला का आरम्भिक वार्तालाप प्रसादयुक्त, रसपूर्ण एव हाव हेलान्वित होने से **उत्तमोत्तमक** है। विट द्वारा वनिता समाज के रूप तथा यौवन की प्रशंसा करने पर चन्दनमाला का किंचित् विमनायमाना होकर कोप तथा अधिक्षेपयुक्त शब्द कहकर वहाँ से चल देना, विट का उसे समझाना **उक्तप्रत्युक्त** है।[8]

१. पृ० २२।
२. श्लो० १५०।
३. पृ० ४२।
४. श्लो० १७०–१७२।
५. पृ० ४५।
६. पृ० १२–१४।
७. श्लो० १५०।
८. पृ० २२, २३।

इसी प्रकार विट का महापताका और उसकी माँ से हुआ वार्तालाप, विट का शृगारलता के साथ हुआ सवाद एव बालचन्द्रिका का सोपालम्भ, साधिक्षेप प्रत्युत्तर आदि प्रसग भी **उक्तप्रत्युक्त** लास्याग है ।

पात्र

आलोच्य भाण का मुख्य पात्र विट पल्लवक है । वही नायक है । भाणो की प्रकृति के अनुसार वह धीरललित प्रकृति का होते हुये भी अनेक धीरोदात्त गुणो से उपेत है । अपने मित्र मन्दारक की अनुपस्थिति मे उसकी पत्नी चन्दनमाला को देवी के उत्सव मे ले जाना ही उसका मुख्य उद्देश्य है । इस कार्य को वह बहुत बड़ा गौरव देता है और बडे उत्तरदायित्व के साथ उसे पूरा करता है । अतएव वह दृढसकल्प व्यक्ति है । इसके अतिरिक्त ब्राह्मणपुत्र सुकुमार का मदनमजरी से सयोग कराना दूसरा कार्य है जिसे विट अत्यन्त चातुर्य एव अध्यवसाय से पूरा करता है । समस्त भाण मे पल्लवक एक परोपकारी नायक चित्रित किया गया है । दूसरों का हित करना, बिछुड़े हुये प्रेमी प्रेमिका को मिलाना वह अपना कर्त्तव्य समझता है, उसे इसमे सुख मिलता है । पल्लवक का चन्दनमाला के साथ किसी प्रकार का रत्यात्मक सम्बन्ध नही है । मित्र मन्दारक के नाते वह उसे अपनी सखी समझता है । अन्य गणिकाओ– मदनमजरी, शृगारलता, बालचन्द्रिका आदि के साथ विट का नर्मालाप उसकी धीरललितप्रकृति का द्योतक है । इस प्रकार पल्लवक मे धीरललित एवं धीरोदात्त नायक के गुणो का सम्मिश्रण है । नायक मे औदार्य[१] तथा ललित **सात्विक** गुण[२] है । शेष पुरुष पात्र कथानक के विकास मे सहायक मात्र हैं ।

भाण में नायिका नही है । चन्दनमाला को नायिका नही माना जा सकता है । वह तो मन्दारक की पत्नी है और उसके नाते विट पल्लवक की सखी । उसके साथ विट का न तो कोई शृंगारिक सम्बन्ध है और न विट की वह प्राप्तव्या । यद्यपि चन्दनमाला विट की पूर्व प्रेयसी है । सम्भवतः इसी नाते वह विट पर अपना कुछ अधिकार भी समझती है । विट का वह पति के मित्र होने के नाते ही यहाँ आदर तथा सम्मान करती है । उसे अपने हाथ से पान खिलाती है । किन्तु इन समस्त व्यवहारो मे दोनो मे शृंगारिक भावना नही है । चन्दनमाला मे शोभा[३], हाव[४], औदार्य[५] तथा विहृत[६] नामक योषिदलकार है ।

---

१. श्लो० १५० ।
२. पृ० ३६ तथा ४२ ।
३ श्लो० ४४–४६ ।
४ श्लो० ४७ ।
५. पृ० १३ ।
६. पृ० १४ ।

इसके अतिरिक्त सुकुमार की प्रेमिका मदनमंजरी, महाकेतु की प्रेयसी महापताका, बालचन्द्रिका आदि गणिकाये भाण की शोभा हैं।

रस

प्रस्तुत भाण में रस की स्थिति अस्पष्ट है। नायक नायिका विषयक रति सम्बन्धो का अभाव होने से यहाँ श्रृंगार रस तो माना नही जा सकता। वीर रस की स्थिति भी कुछ स्पष्ट नही है। तथापि भाण मे अनेकत्र श्रृगार परक आलम्बन प्रधान वर्णन होने से श्रृंगार सम्बन्धी कुछ भाव लहरियाँ इस प्रकार है—

चन्दनमाला की मन्दगति एव विभ्रमयुक्त दृष्टि मे **आकर्षण**[1], वनिता समाज के यौवन, उनके रूप एवं सौन्दर्य के वर्णन मे **सौन्दर्यानुभूति** तथा **आकर्षण**[2], श्रृंगारलता के रूप को देखकर विट की प्रसन्नता **आनन्दानुभूति**[3] एव उसका सरक्षण और संभोगेच्छा **ईहा** तथा देवीदर्शन को जाते हुए योषासमूह के साथ चलने मे उनके मुखेन्दु एव कुचकलश की शोभा निरखने मे विट को **सौन्दर्यानुभूति**[4] आदि भाव लहरियाँ भाण मे मिलती हैं।

भारती वृत्ति

वीथ्यंग

प्रस्तुत भाण मे वाक्केली का अत्यधिक प्रयोग मिलता है। आरम्भ मे सामुद्रिक तथा विट का सवाद[5], मदनमजरी और विट का वार्तालाप[6], विट तथा चन्दनमाला का औपचारिक व्यवहार[7], विट का मारीषगन्ध्या से संवाद[8], अपनी प्रिया (नाम अज्ञात) के साथ विट का मधुरालाप[9], महापताका की माँ के साथ विट का प्रश्नोत्तर एव श्रृंगारलता तथा विस्मयलता के साथ हुआ विट का वार्तालाप **वाक्केली** के अन्तर्गत आता है। विट द्वारा व्याकरण के गुण तथा वृद्धि इन पारिभाषिक शब्दो को श्रृगार के रूप, यौवन, एव गुण आदि से सम्बद्ध करके कहना—गूढार्थ पदावली होने से **उद्घात्यक** वीथ्यग है।[10]

---

१. श्लो० ५२।
२. श्लो० ६४, ६६, ६७।
३. श्लो० १६५, १६६।
४. श्लो० १६२।
५. पृ० ८।
६. पृ० ३०।
७. पृ० ३१।
८ पृ० ३३।
९. पृ० ३५–३६।
१०. श्लो० १६६।

प्रहसनांग

प्रस्तुत भाण मे केवल एक प्रहसनाग मिलता है । ब्राह्मणपुत्र सामुद्रिक द्वारा ब्राह्मणोचित आचरण छोड़कर वेश्यागमन करना, वेश्या के लिए पितृसचित समस्त धन नष्ट कर देना और अब धनाभाव मे वेश्या का भृत्य कर्म करना **अवलगित** है ।

काव्यालोचन

भाण का जैसा कि शीर्षक है सचमुच वह रससदन है । यहाँ रस का अभिप्राय शृगारादि रस नही, अपितु रोचक चमत्कारपूर्ण वर्णनो से है । आरम्भ से अन्त तक इस प्रकार के वर्णनो से भाण ओतप्रोत है ।

पीछे वीथ्यगो के प्रसंग मे देखा गया है कि इस भाण मे वाक्केली नामक वीथ्यंग बहुतायत से मिलता है । सवाद तथा उक्तिप्रत्युक्ति प्रधान वाक्केली मे असमस्त गद्य का ही प्रयोग उपयुक्त होता है । इस प्रकार प्राय. समस्त भाण के गद्य भाग मे समास रहित **आविद्ध** शैली का प्रयोग किया गया है । नायक पल्लवक के साथ चन्दनमाला, सामुद्रिक, मदनमजरी, शृगारलता, वालचन्द्रिका आदि सभी के संवाद इतने मधुर, सरस और सरल है, इतने छोटे-छोटे वाक्यो मे रोचक ढग से प्रस्तुत किए गये है कि पाठक पढते पढते उनमे तल्लीन हो जाता है । संवादो की यह रोचकता इस भाण की बहुत बड़ी विशेषता है । समस्त भाण मे केवल एक स्थान पर कुछ पुश्चलियो द्वारा आरम्भ किए गये तौर्यत्रिक के वर्णन प्रसग मे[1] लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग होने से **उत्कलिका** शैली भी प्राप्त होती है । शेष सर्वत्र आविद्ध है ।

युवराज कवि यमक अलकार का बहुत बडा पण्डित है । यमक के प्रयोग मे यह भाण सम्भवत अद्वितीय है ।[2] इसी प्रकार सामान्य छन्दों के अतिरिक्त **संकृति**[3], **धृत्ति**[4] तथा मत्तेभ (अश्वघाटी)[5] जैसे विशिष्ट छन्दो के प्रयोग मे कवि बड़ा कुशल है । छन्दो की इस विविधता एवं नवीनता ने भाण की शोभा में सोने मे सुगन्धि का काम किया है ।

---

१. पृ० ५३ ।

२. नित्यं नश्चित्तपद्मे परिलसतु कपालीकपालीकपाली,
मालाधारी समस्तप्रमदजनकलापः कलापः कलापः ।
भूत्वा निर्भाति यस्याधिकमसुसमरीणामरीणामरीणा,
मुत्पेष्टा यश्च दूरीकृतकमलमहस्तोमहस्तो महस्तः । (श्लो० ४)

तथा

श्लो० ६२, ६४, ६५, २३३ एवं अन्त में 'ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः' के प्रसंग में ।

३. श्लो० १०५, १०६, १६४ ।

४. श्लो० २३३ ।

५. 'ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः' श्लो० ६ ।

इस भाण मे व्याकरण के नियमो का प्रयोग भी बड़े कौशल से किया गया है। क्रियासमभिहार में यङन्त का प्रयोग बडा ही सुन्दर है।[1] व्याकरण की गुण, वृद्धि आदि संज्ञाओ को शृगारलता के रूप, यौवन एव गुण आदि से सम्बद्ध करके कहना एक नया प्रयोग है।[2]

अन्य भाणो की अपेक्षा रस सदन की भाषा, शैली, व्याकरण, साहित्यिक नयी सूझ-बूझ एवं कल्पनाये अधिक उत्कृष्ट तथा आकर्षक है। वर्णनों मे नवीनता और चमत्कार युवराज कवि की व्यक्तिगत विशेषता है।

रसपाक की दृष्टि से आपातमधुर होने से रस सदन मे **मृद्वीका** पाक है।

इस प्रकार विशिष्ट प्रकार के कथानक एवं उत्कृष्ट वर्णन शैली के कारण इस वर्ग का यह एक सर्वश्रेष्ठ भाण है।

———

१. श्लो० १६।

२. अदेङ्संज्ञामिरन्यूनां दृष्ट्वा सर्वाङ्गपोत्तमाम्।
आदैचोराश्रयन्संज्ञां कामः पीडयते भृशम्॥ (श्लो० १६६)

वसन्ततिलक-भाण

वसन्ततिलक भाण के रचयिता कवि वरदाचार्य है। इनका समय १७वी शताब्दी का अन्त तथा १८वी शताब्दी का आरम्भ है। श्रृगारशेखर का वासन्तिका के प्रथम रगाधिरोहणोत्सव मे जाना ही इसका मुख्य कथानक है। वर्णनाप्रधान वर्ग मे आने वाला यह एक मध्यम आकार का भाण है जिसमे १४२ पद्य तथा शेष गद्य है। इस भाण का अपर नाम **अम्माभाण** भी है।

पात्र

स्त्रीपात्र	पुरुषपात्र
वासन्तिका—नायिका	श्रृगारशेखर—विट, नायक
वसन्तसेना—वासन्तिका की बडी बहिन	उपाध्याय —एक शिक्षक
	रंगनाथ—एक प्रेमी गृहस्थ
तारावली, वीणावती, कान्तिमती, मन्दारमालिका, कलभाषिणी, चित्रलेखा } गणिकाये	अनगशेखर, विलासवीर } नायक के मित्र
वसन्ततिलका—ब्राह्मण पुत्र की पत्नी (किन्तु इस नाम से प्रसिद्ध वेश्या)	
तारावली —कुबेर सेठ की कनिष्ठा पत्नी, रंगनाथ की प्रेयसी।	
विलासवती —विलासवीर की प्रेयसी।	
कापालिनी —श्रृंगार शेखर की प्रेयसी की दूती	

नान्दी

भाण की द्विपद्यात्मिका नान्दी के प्रथम पद्य में लक्ष्मी और मुकुन्द की स्तुति तथा दूसरे मे वीर पुरुष एवं 'वीरश्री' के मन्दस्मित का वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह अष्टपदा नान्दी है। आशीः तथा नमस्क्रिया रूप होने से यह शुद्धा है। नान्दी का आरम्भिक अक्षर 'ज' नायक को मित्रलाभ का सूचक है। अत. लिप्तिः शुद्धा है। आरम्भिक गण जगण रुजावह होते हुये भी जगन्माता लक्ष्मी तथा मुकुन्द परक होने से मंगलवाचक ही माना जायेगा। अतः गणतः परिशुद्धा भी नान्दी है।

प्रस्तावना

नान्दी के बाद प्रविष्ट होकर सूत्रधार कांचीपुरी का वर्णन करते हुये भगवान् मकरध्वज की पूजा मे आये हुए सामाजिको की प्रार्थना पर कवि वरदाचार्य की कृति वसन्ततिलक भाण का अभिनय करने की बात कहता है। **प्ररोचना** द्वारा सूत्रधार कवि, उसकी वाणी तथा अपने नाट्याभिनय की प्रशसापूर्वक मधुमास का वर्णन करता है। इसी बीच नेपथ्य मे उसे सुनायी देता है कि आज वसन्त सेना की छोटी बहिन वासन्तिका प्रथमरगाधिरोहण महोत्सव मे नृत्य कर रही है। यह सुनकर सूत्रधार भी शृगारशेखर के साथ महोत्सव देखने जाने को कहता है। उसके इस कथन के साथ ही शृगारशेखर प्रविष्ट होता है। यह प्रवेश 'अमुना शृंगारशेखरेण' इस बाक्य के साथ होने से **प्रयोगातिशय** नामक आमुख भेद माना जायेगा।

कथानक

रंगमंच पर आकर शृंगार शेखर वासन्ती के ताल के अनुबन्ध से युक्त चंचल कुण्डलो वाले तथा धर्मजल से पूर्ण मुखदर्शन की कामना करता हुआ प्रभातवेला का वर्णन करता है। अनन्तर कांचीपुरी, वसन्तवीथी तथा वेशवीथी का वर्णन करते हुये वह उसमे प्रविष्ट होता है। यहाँ उसे जूडा करवाती हुई तारावली दीख जाती है। विट उससे नर्मालाप कर ही रहा था कि तारावली की जरती आ जाती है। उसे देखते ही शृगारशेखर घबड़ा जाता है। बुढिया आते ही शृगारशेखर को प्रतिश्रुत धन न देने के कारण गाली गलौज करती है। उससे किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाकर वह आगे बढता है। अब उसे वीणावती के पास वीणा बजाती हुई एक अन्य सुन्दरी दीखती है। उसके विषय मे पूछने पर विदित होता है कि वसन्तयाजी नामक ब्राह्मण ने अपने पुत्र को सत्यव्रत क्षेत्र मे यज्ञ करने भेजा। किन्तु स्वर्गसुख को वेश्या सुख की अपेक्षा तुच्छ समझने वाले ब्राह्मण पुत्र ने यज्ञ के लिए एकत्रित धन को वेशवाट मे उड़ा दिया। ब्राह्मणपुत्र की पत्नी ने भी पति का अनुसरण करते हुये वेशवाटी में ही शरण ली और वसन्ततिलका नाम से प्रसिद्ध होकर वेश्या बन गई। शृगारशेखर वसन्ततिलका से रमण करना चाहता है किन्तु वीणावती उसे पुनः आने को कहकर टाल देती है। यहाँ से चलकर विट को कन्दुकक्रीड़ा करती हुई हारावती मिलती है। इसी प्रसग मे वह रेवती की चन्द्रशाला पर शिक्षा देते हुये उपाध्याय से मिलकर कामशास्त्र के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करता है।

यहाँ से चलते ही विट को कल-कल सुनाई देता है। पूछने पर विदित होता है कि कुबेर नामक सेठ की कनिष्ठा पत्नी तारावली को रगनाथ ने वश में कर लिया है, उसी निमित्त यह कोलाहल था। मिलने पर रंगनाथ बताता है—एक दिन अंधेरी रात मे मेरे भोजनादि से निवृत होने पर तारावली ने एक पद्य पढा। उसका अभिप्राय समझकर मै उसके पास गया और उससे रति की। इसी प्रसग में शृंगार-शेखर एक आपबीती घटना सुनाते हुये कहता है—एक बार अपने पीठमर्द, विट,

चेटक आदि साथियो के पास मै भगवान् रंगराज को अभिवादन करने के लिये रंगनगरी पहुँचा। वहाँ एक वेशवीथी मे जब हम घूम रहे थे तो सौधशिखर पर एक कामिनी को देखा। उसके अद्भुत रूप को देखकर मैं अपने को भूल गया। जैसे तैसे घर आकर उसके विरह ताप मे पीडित होने लगा। उस प्रेयसी को पाने का कोई उपाय न देखकर दुखी होकर एक दिन सायकाल जीर्ण मातृगृह मे जा बैठा। वहाँ उसी ससय कापालिनी आयी और मेरी विरह दशा का समाचार जानकर उसने मेरी प्रेयसी का एक मौलिरत्न देकर उसकी विरह दशा का वर्णन किया। उससे विदित हुआ कि उस सुन्दरी ने जब से मुझे देखा है तब से विरहाग्नि से पीडित है। विरहताप से जलती हुई उसे जब एक दिन यह कापालिनी मिली तो उसके द्वारा अपना प्रेम सन्देश और विश्वास के लिये यह मौलिरत्न भेजा है। मैने (शृंगारशेखर ने) कापालिनी के कान मे उपाय बताकर उसे भेज दिया। तदनुसार मेरी प्रेयसी ग्रहग्रस्ता हो गयी। अनेक मन्त्रज्ञ और तन्त्रज्ञ भी उसे ठीक न कर सके तो मै मन्त्रज्ञ वनकर वहाँ गया। कापालिनी ने प्रेयसी को पहले से ही सब कुछ समझा रखा था। मैंने कहा कि यदि रात मे देवी के मन्दिर मे यह अकेली बलिपूजा चढावे तो यक्ष दूर हो सकता है। प्रेयसी के घर वालो ने यह स्वीकार कर लिया और मुझे पुरस्कार के रूप मे बहुत सा धन मिला। वहाँ से आकर चुपके से देवी के मन्दिर मे घुस गया। प्रेयसी के वहाँ एकाकिनी आने पर हम दोनो ने मातृगृह में ही आनन्द विहार किया। यहाँ से आगे बढने पर विट को कलभाषिणी, मन्दारमालिका आदि गणिकायें मिलती है। यही उसे विलासवती के साथ सशर्त द्यूत क्रीड़ा करता हुआ मित्र विलासवीर मिलता है।

बिलास मण्डप की रंगभूमि के पास पहुँचकर विट शृङ्गारशेखर को वसन्तसेना का ताम्बूलकरण्डवाहक आकर शृङ्गारशेखर से शीघ्र चलने को कहता है। वह वहाँ पहुँचता है। मण्डप मे बिविध देशों की स्त्रियाँ बैठी है। वरदराज सबका स्वागत कर रहे है। वसन्तसेना शृङ्गारशेखर का स्वागत करती है। परदा उठता है। वासन्तिका का नृत्य आरम्भ होता है। कलत्रपत्रिका द्वारा वासन्तिका शृङ्गारशेखर की सात मास के लिए पत्नी बनती है तथा भरतवाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

विट शृङ्गारशेखर द्वारा वासन्तिका के प्रथमरंगाधिरोहण उत्सव में जाकर कलत्रपत्रिका द्वारा उसे प्राप्त करना भाण की मुख्य कथा है। किन्तु इस भाण में सन्धि निर्माण बहुत कठिन है। यद्यपि यहाँ नायक द्वारा नायिका की प्राप्ति है और आरम्भ में शृङ्गारशेखर वासन्तिका के प्रति अनुरक्त हृदय भी दिखाया गया है तथा उसे प्राप्त करने के लिये वह उसके उत्सव में चल भी देता है। इस कारण बीज और आरम्भ की स्थिति स्पष्ट होने से मुख सन्धि बन सकती है। किन्तु उसके शेष

अंगो का अभाव होने मे उस पर यहाँ विचार नही किया गया है। यही स्थिति लगभग निर्वहण सन्धि की भी है। नायिका को प्राप्त करने के लिये अन्त मे उसे कोई प्रयत्न नही करना पडता। आमन्त्रित अतिथि की भाँति वहाँ उसका स्वागत होता है तथा सात मास के लिये वासन्तिका मिल जाती है। अत कार्य और फलागम होते हुए भी निर्वहण सन्धि का यहाँ कोई अग नही मिलता। केवल अन्त मे भाण की समाप्ति सूचक **आनन्द** और **प्रशस्ति** मिल जाते है।

नाट्यालङ्कार

श्रृङ्गारशेखर द्वारा वार्तालाप के प्रसङ्ग मे चित्रलेखा के साथ किये गये पूर्वरतिप्रसङ्गो का स्मरण करना **आख्यान** है।[1] विट द्वारा तारावली का स्मितयुक्त एवं श्रमजल से परिभ्रष्ट पत्रलेखा वाला मुख बार-बार देखने की इच्छा **स्पृहा**[2] तथा तन्वगी वसन्ततिलका को प्राप्त करने की इच्छा भी **स्पृहा**[3] है। संगीतशेखर द्वारा श्रृङ्गारशेखर को वासन्तिका के साथ नवयौवन का आनन्द लेने का शुभाशंसन **आशी**.[4] तथा श्रृङ्गारशेखर की प्रेयसी द्वारा ग्रहग्रस्ता होकर आडम्बरपूर्वक भूताविष्टा की भाँति आचरण तथा चेष्टाये **कपट**[5] नामक नाट्यालङ्कार हैं।

शिल्पकांग

प्रेयसी के वियोग मे दुखी श्रृङ्गारशेखर का चिन्ताकुल होकर कही धैर्य प्राप्त न करना **उद्वेग**[6] तथा श्रृङ्गारशेखर के वियोग में मदनपीडिता उस तन्वंगी का विरहवेदना में घुलना **ताप** है।[7] उस प्रेयसी की प्राप्ति के लिये विट द्वारा किया गया उद्योग—उसे भूताविष्टा की भाँति आचरण करने की सलाह, स्वयं तान्त्रिक बनकर उसका भूत उतारने जाना, देवी के मन्दिर मे उसे एकाकिनी बलि के लिये बुलाना आदि—**प्रयत्न** शिल्पकाग है।

लास्याङ्ग

तारावली द्वारा विट श्रृङ्गारशेखर की अन्य नायिकासक्ति जानकर उसे उपालम्भ देना **प्रच्छेदक**,[8] वीणावती द्वारा वीणा बजाते हुये सगीत का आरम्भ

---

१. पृ० ९।
२. पृ० ११।
३. पृ० १६।
४. पृ० ४४।
५. पृ० २९, ३०।
६. पृ० २५।
७. पृ० २८।
८. पृ० १०, ११।

गेयपद[1], कापालिनी द्वारा श्रृङ्गारशेखर की प्रेयसी की वियोग दशा का वर्णन **आसीन**[2] तथा विट एव शुकपाठिका का वार्तालाप प्रसादजनित प्रश्नोत्तरात्मक होने से **उक्त-प्रत्युक्त** है।[3] रगाधिरोहण महोत्सव के अवसर पर अनेक प्रकार के वाद्यो–तन्त्री, मर्दल, शंख, वंशी आदि—द्वाराताललयपूर्बक प्रस्तुत किया गया लास्य **पुष्पगंडिका**[4] है तथा भाण के अन्त मे श्रृङ्गारशेखर एव वासन्तिका का प्रसादपूर्ण प्रश्नोत्तरात्मक वार्तालाप **उक्तप्रत्युक्त**[5] लास्याग है।

पात्र

आलोच्य भाण मे विट श्रृङ्गारशेखर धीरललित प्रकृति का शठ नायक है। वासन्तिका के प्रति अनुरागवान् होते हुए भी इसका अन्य अनेक रमणियो से सम्बन्ध है। रंगनगरी मे सौध पर देखी हुई रमणी को एकाकिनी देवी के मन्दिर मे बलि देने के बहाने बुलाकर उससे रमण करता है। तारावली उसे अन्यासक्त होने के कारण उपालम्भ भी देती है। इसके अतिरिक्त श्रृङ्गाशेखर एक साहसी प्रेमी है। साथ ही प्रेयसी को प्राप्त करने के लिये छल छिद्र करने से भी वह नही चूकता। विट के अतिरिक्त अन्य पुरुष पात्र रगनाथ आदि के चरित्र मे कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही है।

भाण की नायिका वासन्तिका है। कथानक के अन्त में वह उसे प्राप्त करता है। किन्तु नायिका को प्राप्त करने के लिये यहाँ नायक को न कोई प्रयत्न करना पड़ता है और न कोई बाधक है। दोनो के प्रणय सम्बन्धो का न तो आरम्भ ही हुआ है और न विकास।

रस तथा वृत्ति

प्रस्तुत भाण मे भी रस की स्थिति अस्पष्ट है। नायक-नायिका का प्रसङ्ग यहाँ है अवश्य किन्तु नायक श्रृङ्गारशेखर द्वारा तो वासन्तिका के रूप आदि का वर्णन भी किया गया है, वासन्तिका की ओर से तो श्रृङ्गारशेखर का नाम भी नही लिया गया है। अत एकांगी होने से इनके प्रेम को श्रृङ्गार नहीं अपितु श्रृङ्गाराभास ही माना जायेगा। इस प्रकार नायक-नायिका के प्रसङ्ग मे यहाँ निश्चित श्रृङ्गार रस पुष्ट नहीं होता। किन्तु रगनाथ और उसकी प्रेयसी तारावली के विट एव उसकी प्रेयसी (सौध शिखर पर देखी गयी रमणी) के प्रणय प्रसङ्गों में तथा अन्य वेशरमणियों के साथ किये गये नर्मालापों मे श्रृङ्गारयुक्त वर्णन होने से एवं आलम्बन उद्दीपन, तथा अनुभाव आदि भावो की प्राप्ति से इन प्रसङ्गो में श्रृङ्गार

१. पृ० १३।
२. पृ० २७।
३. पृ० २५।
४. पृ० ४१।
५. पृ० ४३।

मिलता है। भले ही वह पूर्णतया पुष्ट न हो रहा हो। इसी कारण **कैशिकी वृत्ति** के कुछ अंग तथा कुछ शृङ्गार प्रधान भाव लहरियाँ यहाँ मिलती हैं।

तारावली द्वारा अपने प्रेमी रंगनाथ के प्रति किये गये विविध शृङ्गार विलास **संभोग नर्म**,[१] कापालिनी द्वारा शृङ्गारशेखर की प्रेयसी उस रमणी के पास जाकर शृङ्गारशेखर की कामदशा के प्रति सकेत **नर्मस्फोट**[२] तथा विट द्वारा सखा विलासवीर से उसे अपनी प्रेयसी का रमण सुख प्राप्त करने की बात **सभोग नर्म** नामक कैशिकी वृत्ति के अग हैं।

विट शृङ्गारशेखर द्वारा वासन्तिका के नृत्यकालिक मुख की शोभा का वर्णन **सौन्दर्यानुभूति**,[४] चित्रलेखा की रतिकालिक चेष्टाओ के वर्णन मे **ईहा**[५] तथा वीणावती के रूप यौवन की प्रशंसा **आकर्षण**[६] है। विट द्वारा आन्ध्र, पाण्ड्य, लाट आदि विविध देशों की रमणियो की वेशभूषा एव शृङ्गार चेष्टाओं[७] तथा मन्दारमालिका के कटाक्षों एव सौन्दर्य के वर्णन प्रसङ्ग में[८] भी **आकर्षण** है।

भारतीवृत्ति

वीथ्यंग

ब्राह्मणपुत्र की पत्नी (किन्तु अब वेश्या वसन्ततिलका) द्वारा अपने पति का अनुसरण करते हुए वेश धर्म अपनाने पर शृङ्गारशेखर द्वारा उसे उचित बताना तथा श्रोत्रियो द्वारा किये जाने वाले स्नान उपवास आदि गुणों को भी दोष बताना **मृदव** है।[९] आहितुण्डिक द्वारा सर्पप्रदर्शन में प्रयुक्त भुजंगशब्द का स्त्रियों द्वारा सर्प तथा शृङ्गारशेखर द्वारा रसिक या विट अर्थ ग्रहण करना **अवस्यन्दित** अथवा **उद्घात्यक** वीथ्यंग हैं।[१०] विट द्वारा रंगनाथ के साथ वार्तालाप में कुलस्त्री के लिये गुरुजनों को निगड बताना, श्वश्रू, याता तथा ननान्दा के बन्धनों के कारण पतिगृह को कारागार बताना आदि गुणो को भी दोष के रूप में वर्णन किये जाने के कारण **मृदव** है।[११]

---

१. पृ० २४।
२. पृ० २८।
३. पृ० ३७।
४. पृ० ४।
५. पृ० ८।
६. पृ० १५।
७. पृ० ३८, ३९।
८. पृ० ३४।
९. पृ० १४।
१०. पृ० १७।
११. पृ० २३।

तारावली द्वारा रंगनाथ को लक्ष्य करके पढे हुये पद्य का रंगनाथ द्वारा अन्यार्थ (रत्यर्थप्रार्थना) ग्रहण करना **अवस्यन्दित**[१], इसी प्रकार शुक को पढाती कामिनी द्वारा बहाने से विट को दिया गया उपालम्भ भी **अवस्यन्दित** है। साथ ही शुकपाठिका तथा शृङ्गारशेखर का उक्तिप्रत्युक्ति पूर्ण वार्तालाप **वाक्केली** भी है।

प्रहसनांग

कान्तिमती के साथ बातचीत करता हुआ शृंगारशेखर वसन्तयाजी ब्राह्मण के पुत्र द्वारा यज्ञ का तिरस्कार करके वेश्यालय में अनंगाराधन की बात सुनकर यज्ञ के साधनभूत वषट्कार, शाला, वेदी, यज्ञपात्र आदि को वारसुन्दरी के कटि, स्तन मुख आदि पर घटित करके अनगाराधन को ही यज्ञ बताता है। इस प्रकार लोकप्रसिद्ध यज्ञ के साधनो को वेश्या के अग प्रत्यग पर घटित करना हास्य का हेतु होने से **उपपत्ति**[२] हे। साथ ही वसन्तयाजी ब्राह्मण के पुत्र एवं उसकी पत्नी द्वारा ब्राह्मणोचित आचार छोडकर वैशधर्म मे प्रवृत्त होना **अवलगित** भी है। शृंगारशेखर मित्र रगनाथ को अपने प्रियामिलन के वृत्तान्त को विस्तार पूर्वक सुनाते हुये कहता है कि किस प्रकार लक्षेश्वर की पुत्री के प्रति में अनुरक्त हुआ, मेरे संकेत के अनुसार वह तरुणी भूताविष्टा सी होकर तद्गत अचरण करने लगी। तान्त्रिको द्वारा प्रयत्न करने पर भी ठीक न होने पर मै वहाँ गया और जैसा कि कापालिनी से पहले ही कह रखा था, तदनुसार ज्यो ही मैने झूठे ही कुछ मंत्र पढा- वह बोल पड़ी -- मे यक्ष हूँ, जा रहा हूँ। किन्तु यह बाला शून्य मातृगृह में अकेली बलि चढ़ाने जाये तब ठीक होगी।[१] यह सुनकर सब सन्तुष्ट हुये। तदनुसार उसके एकाकिनी जाने पर मैने उससे मातृगृह मे रमण किया। इस प्रकार कृत्रिम भूत प्रेत के वर्णन द्वारा वचना होने से यह **विप्रलम्भ** नामक प्रहसनाग[३] है

भाण का कथानक अत्यन्त रोचक तथा सरस है। साहित्यिक वर्णनों मे उत्कृष्टता एवं चमत्कार है। शैली मे प्रसाद गुण एव सरलता है। संवाद रोचक तथा सरस है। रस एवं सन्धि की दृष्टि से अपूर्ण होते हुये भी भाण के अन्य अगों की दृष्टि से यह सर्वथा पूर्ण है।

इसप्रकार वर्णना प्रधान वर्ग में आने वाले भाणो मे रससदन के बाद वसन्ततिलक का ही स्थान है।

---

१. पृ० २४ २. पृ० १४।
३. पृ० २५–३०।

शृंगारभूषण भाण

शृंगारभूषण भाण कवि वामनभट्ट बाण की कृति है। इसका समय लगभग १४ वी शता० का अन्त और १५ वी शता० का आरम्भ है। इसमे विट विलासशेखर का कनकमंजरी की पुत्री अनगमंजरी के प्रथमार्तव महोत्सव को देखने जाना ही मुख्य कथा है। वर्णना प्रधान वर्ग मे आने वाला यह एक लघु आकार का भाण है जिसमें ८६ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र

अनंगमजरी—नायिका
कनकमंजरी—अनगमंजरी की माँ
इन्दुमती, रत्नावली, मन्दारिका, विलासवती, चन्द्रवती, वेत्रवती, मंजुभाषिणी — गणिकाये
मलयवती—गंधसार की प्रेयसी
कमलवती—माधवगुप्त की प्रेयसी
कनकलता—कामन्दक की प्रेयसी
वासन्तिका—माकन्द की प्रेयसी
कलकंठी—धनमित्र की प्रेयसी
मालती—माधवसेना तथा चन्द्रसेन की प्रेयसी
बालचन्द्रिका—गणदत्त की नृत्यशिष्या

पुरुषपात्र

विलासशेखर—विट, नायक
गन्धसार, माधवगुप्त, माकन्द, कामन्द, धनमित्र — वेशपथिक
मन्दारक—ब्राह्मणपुत्र
गणदत्त —नृत्य शिक्षक
वसन्तक—विट का मित्र

नान्दी -

भाण की द्विपद्यात्मिका नान्दी के प्रथम पद्य मे चन्द्रमा की तथा दूसरे में रमणियो के वीक्षयित की स्तुति की गयी है। श्लोकपाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह अष्टपदा नान्दी है। दोनो ही पद्यो मे चन्द्रमा का उल्लेख होने से यह नीली है तथा आशीर्वाद परक होने से यह शुद्धा भी है। इसका आरम्भ का गण मगण होने से नायक को 'श्री' प्राप्ति का द्योतक है। किन्तु प्रथम अक्षर 'म' नायक को दुःखदायक होते हुए भी चन्द्रदेव का वर्णन होने से शुभ ही माना जायेगा। अतः यह लिपितः शुद्धा भी नान्दी है।

प्रस्तावना

रंगमंच पर प्रवेश करके सूत्रधार पारिपाश्र्वक से कहता है कि आज भगवान् शिव के चैत्रयात्रा महोत्सव में कामतंत्र के विद्वानों की इस मण्डली को किसी रूपक के अभिनय द्वारा प्रसन्न करके अपने को सफल बनायेंगे। कवि वामनभट्ट बाण का विस्तारपूर्वक परिचय देते हुए **प्ररोचना** द्वारा कवि की प्रसन्न मधुरवाणी, अपनी नाट्यदक्षता, सामाजिकों की विदग्धता, वसन्तकाल की मादकता तथा शृंगार रस की सरसता के वर्णन द्वारा सामाजिकों के मन को आकृष्ट कर देता है। तदनन्तर पारिपाश्र्वक और सूत्रधार प्रस्तुत वसन्त का वर्णन करते हैं। सूत्रधार विलासशेखर का परिचय देकर उसके प्रवेश की सूचना देता हुआ चला जाता है। विलासशेखर का यह प्रवेश **प्रयोगातिशय** नामक आमुख भेद है।

कथानक

रंगमंच पर प्रविष्ट होकर विट विलासशेखर प्रात का वर्णन करते हुए प्रिया के रतिसुख के अनुभव का वर्णन करता है। सहसा उसे स्मरण हो आता है कि आज कनकमंजरी की पुत्री अनंगमंजरी के प्रथमार्तवमहोत्सव को देखने जाना है। अत वेशवाट में विविध गणिकाओं से नर्मालाप करता हुआ वह अनंगमंजरी के यहाँ चल देता है।

वेशवाट मे उसे रति चिह्नों से युक्त मलयवती मिलती है। विदित होता है कि यह मलयवती गन्धसार मे अनुरक्ता है। अनन्तर भवनवेदिका पर बैठी हुई कलावती की पुत्री कमलवती के अंग प्रत्यंगों की शोभा के प्रति अनुराग प्रकट करता है। बातचीत से विदित होता है कि कमलवती की माँ ने उसके पुराने प्रेमी मलय-गुप्त को निकाल दिया है तथा इस समय माधवगुप्त उसका प्रेमी बना हुआ है। इसी प्रसंग में विट को मन्दारक मिल जाता है। इसने पिता माधव द्वारा यज्ञ के निमित्त एकत्रित धन को काम-यज्ञ मे लगा दिया। आगे बढने पर विट को रत्नावती मिलती है। अब विट को कनकलता का प्रेमी कामन्दक मिलता है। माकन्द की प्रेयसी वासन्तिका से नर्मालाप करके आगे बढने पर उसे मेखला मे बाँधकर अपने प्रेमी धनमित्र को मारती हुई कलकंठी दीखती है। पूछने पर विदित होता है कि धनमित्र ने कलकंठी की अप्राप्तयौवना बहिन परभृतिका से प्रणय किया था। यही उसका अपराध था। विट के कहने से कलकंठी धनमित्र को छोड़ देती है।

इसी समय अनेक तरुणियो के साथ नृत्य शिक्षा के लिए जाती हुइ बाल-चन्द्रिका दीखती है। उसका नृत्य शिक्षक गणदत्त विट मे बालचन्द्रिका के नृत्य को देखने की प्रार्थना करता है। किन्तु विट अनंगमंजरी के उत्सव मे जाने के कारण इच्छा होते हुए भी असमर्थता प्रकट करता है। अब उसे वसन्तडोला विहार करती हुई मन्दारिका तथा अक्षक्रीडा मे व्यस्त विलासवती मिलती है। इस समय तक विट को दोपहर हो जाता है। चन्द्रवती के मन्दिरोद्यान मे दुपहरी बिताने के लिए जाने

पर विट को विदित होता है कि उसका मित्र वसन्तक मालती के निमित्त हो रहे माथवसेन तथा चन्द्रसेन के कलह को शान्त करने गया है। विट दुपहरी बिताकर वहाँ से चल देता है।

अब विट को अपगतवित्त धनमित्र को परेशान करती हुई वेत्रवती दीखती है। धनमित्र ने वेत्रवती की पुत्री नवमालिका को कलत्र बनाया था किन्तु अब कलत्र-पत्रिका के अनुसार वह उसे प्रतिश्रुत धन नही देता है। विट इस विवाद को शान्त करके आगे बढता है। अब वह मेपयुद्ध, कुक्कुटयुद्ध तथा मल्लयुद्ध देखता हुआ मालती के यहाँ पहुँचता है। यहाँ माधवसेन तथा चन्द्रसेन मे हुए युद्ध मे चन्द्रसेन ने अपनी तलवार से माधवसेन को मृत्यु के घाट उतार दिया।

सायकाल होने पर विट सखी कनकमजरी के भवन में प्रवेश करता है। प्रथम ऋतुमहोत्सव की सजधज मे व्यस्त कनकमजरी आती हुई दीखती है। विट उसे बधाई देता है। कनकमजरी विट के आगमन के कारण उत्सव की सफलता मानती है। इसी समय चन्द्रोदय होता है। विट विलासशेखर अपने को समस्त सुखो से पूर्ण मानता हुआ भरत वाक्य पढ़ता है और भाण समाप्त होता है।

वस्तु

विट विलासशेखर का सखी कनकमजरी की पुत्री अनगमजरी के महोत्सव मे जाना ही भाण की आधिकारिक कथा है। यहाँ कोई प्रासगिक कथा नहीं है।

विट द्वारा अनंगमजरी के उत्सव मे जाने का निश्चय **'बीज'** अर्थप्रकृति तथा वहाँ जाने के लिए विट का उत्साहित होना, अन्यत्र कही भी अधिक न ठहरकर अनंगमंजरी के यहाँ जाने की त्वरा **आरम्भ** कार्यावस्था है। इस प्रकार इन दोनो के समन्वय से यहाँ मुखसन्धि बनायी जा सकती है। किन्तु यहाँ उसका कोई भी अंग प्राय: नही मिलता। यही स्थिति निर्वहण सन्धि की भी है।

नाट्यालंकार

छोटा होते हुए भी भाण में अनेक नाट्यालंकार मिलते हैं। विट का मलयवती को अपने प्रेमी के साथ प्रेमभाव बढ़ने का आशीर्वाद **आशी:**[१], विट की कमलवती से रतीहा **आशंसा**[२], विट का मन्दारक को अनंगतंत्र मे दीक्षित होकर श्रुति स्मृति विहित कर्म छोड़कर कामतंत्र में विहित कर्म करने की शिक्षा **उपदेशन** है।[३]

कामिनी इन्दुमती द्वारा कर सरोज से सताडित, सहसा अधर बिम्ब के लोभ से ऊपर को आते हुए, इन्दुमती द्वारा अधीर नयनो से देखे गये कन्दुक के सौभाग्य को प्राप्त करने की विट की इच्छा **आशंसा,**[४] विट द्वारा कलकंठी तथा धनमित्र के

---

१. श्लो० २०।
२. श्लो० २३।
३. पृ० ७।
४. श्लो० ४०।

प्रेम को चन्द्र चन्द्रिका की भाँति बढने का आशीर्वाद देना **आशी**[१] तथा विट की बालचन्द्रिका के नृत्य जनित शोभासपन्न मुखकमल का पान करने की इच्छा **आशंसा**[२] नामक नाट्यालकार है ।

लास्यांग

रत्नावती द्वारा नायक विलासशेखर की अन्यासक्ति से ईर्ष्या कषायिता होकर उदासीन भाव से उससे चले जाने को कहना **प्रच्छेदक** है ।[३] बालचन्द्रिका काताललयान्वित नृत्य **पुष्पगण्डिका**,[४] मन्दारिका द्वारा डोलाबिहारोत्सव के अवसर पर गाया हुआ प्राकृत गीत—जिसमे मधुमास, अनग, चन्द्र मलयपवन, अगनाओ के कटि, जघन तथा नयन आदि का वर्णन है—**स्थितपाठ्य**[५] है तथा मजुभाषिणी द्वारा तन्त्री-वादन पूर्वक युवजन मनोहारी गीत गाना **गेयपद है** ।[६]

पात्र

भाण मे यो तो अनेक स्त्री, पुरुष पात्र है किन्तु उनके चरित्र मे कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही है । भाण का नायक विट विलासशेखर धीरललित प्रकृति का है । वह अनगमंजरी के उत्सव मे जाता है । किन्तु यह स्पष्ट नही हो सका है कि वह उसकी नायिका है । आरम्भ मे वह किस प्रिया का स्मरण करता है यह भी स्पष्ट नही किया गया हे । साथ ही अनंगमंजरी से सम्बन्धित भी कोई घटना न होने से उसका चरित्र भी अविकसित ही है ।

भाव लहरियाँ

अन्य भाणो की भाँति इसमे भी नायक नायिका के प्रेम सम्बन्धो के अभाव मे श्रृगार पुष्ट नही होता । वेशवाट के प्रसग मे किया गया विविध प्रकार का श्रृगारिक वर्णन आलम्बन मात्र है, वह रसकोटि पर नही पहुँचता । इस वर्णन प्रसग मे प्राप्त होने वाली कुछ भाव लहरियाँ इस प्रकार हैं—

विलासशेखर द्वारा सुरत परिश्रान्ता मलयवती के वर्णन मे **सुरतानन्द**,[७] कमलवती के रूप वर्णन मे **रतीहा**[८] तथा बालचन्द्रिका की नृत्यकालिक **शोभा** के वर्णन में **आकर्षण** तथा **सौन्दर्यानुमति**[९] है ।

---

१. श्लो० ५० ।
२. श्लो० ५५ ।
३. श्लो० ३१–३३ ।
४. श्लो० ५३ ।
५ श्लो० ५६, ६० ।
६. श्लो० ७६ ।
७. श्लो० १८, १६ ।
८. श्लो० २३ ।
९. श्लो० ५३, ५५ ।

वीथ्यंग तथा प्रहसनांग

भाण मे भारती वृत्ति के ये दो अग भी बहुत कम मिलते है। इन्दुमती की कन्दुकक्रीडा के वर्णन मे कन्दुक को कान्त की भाँति सुख देने वाला कहकर समस्त विशेषणों को तत्परक कहना और कन्दुक को कान्त के अर्थ में घटित करना **अवस्यन्दित**[1] वीथ्यंग है।

ब्राह्मणपुत्र मन्दारक द्वारा यज्ञार्थ सचित पितृधन को कामाराधन रूप यज्ञ मे लगा देना, ब्राह्मणोचित आचरण छोडकर वेश जीवन मे प्रवृत्त हो जाना **अवलगित** प्रहसनाग है।[2]

काव्यालोचन की दृष्टि से उत्कृष्ट न होते हुए भी शृगारभूषण भाण की शैली अत्यत सरल और रोचक है। समस्त भाण के गद्य भाग मे समास रहित आविद्ध शैली का ही प्रयोग हुआ है। सबाद छोटे-छोटे तथा मनोज्ञ है। मुहावरो का पग-पग पर प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार वर्णनाप्रधान वर्ग मे यह एक मध्यम कोटि का भाण है।

---

१. श्लो० ३८।
२. पृ० ७।

हरिविलास भाण

हरिविलास भाण कवि श्रीहरिदास की कृति है। यह मिश्रभाण है जिसमें नायक माधव द्वारा नायिका मदनमजरी की प्राप्ति की कथा के साथ ही साथ भगवद्-भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं सत्सग की महिमा का उपदेश किया गया है। वर्णनाप्रधान वर्ग मे जाने वाला यह एक मध्यम आकार का भाण है जिसमें १०८ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र		पुरुषपात्र	
मदनमजरी—नायिका		माधव—नायक	
मधुकरिका—मदनमजरी की सहचरी		नारद	भक्तजन
कनकलतिका	गणिकाये	प्रह्लाद	भक्तजन
कलावती	गणिकाये	भक्त ब्राह्मण—	भक्तजन
कृशोदरी	गणिकाये	द्रविड ब्राह्मण—	भक्तजन
कमलमुखी	गणिकाये	गुरु एवं शिष्य—	भक्तजन
कर्णाटिकी	गणिकाये	(नाम अज्ञात)	
कनकागी, विशालाक्षी	गणिकाये		
मदनमणिवल्ली	गणिकाये		
पिनाकिनी—भगवती भवानी			

नान्दी

भाण की द्विपद्यात्मिका नान्दी के प्रथम पद्य मे भगवान् मुकुन्द की तथा द्वितीय मे मुरारि एव लक्ष्मी के परस्पर आलिगन की आशीर्वादात्मक स्तुति है। पद्म और शख शब्द आने से यह उत्तम प्रकार की नान्दी मानी जायेगी। श्लोक पाद को पद मानने के आधार पर यह अष्टपदा तथा आशीर्वाद परक होने से शुद्धा है। प्रथम अक्षर 'श्री' तथा प्रथम गण मगण नायक को क्रमशः सुख तथा 'श्री' के देने वाले है। अतः लिपितः तथा गणतः शुद्धा भी नान्दी है।

प्रस्तावना :—

नान्दी के अनन्तर प्रविष्ट होकर सूत्रधार कहता है कि लोकनियन्ता भगवान् लक्ष्मीनारायण के वसन्तोत्सव में आये हुए रसिको ने मुझे आज्ञा दी कि मै हरिदास कवि द्वारा निर्मित हरिविलास भाण का अभिनय करूँ। इसके अनन्तर कवि का परिचय देता हुआ सूत्रधार वसन्त की शोभा का वर्णन करता है तथा मदनमंजरी से वियुक्त माधव के आने की सूचना देता हुआ चला जाता है। इस प्रस्तावना में न प्ररोचना है और न आमुख का कोई भेद।

कथानक

मदनमंजरी के वियोग मे माधव रगमच पर प्रविष्ट होता है। वियोग मे विधुर माधव अपनी प्रिया का विविध प्रकार से स्मरण करता है। इसके अनन्तर उदित हुए सूर्य का वर्णन करते हुए वेशरमणियो की शोभा में आसक्ति प्रगट करता है। माधव को यहाँ मधुकरिका तथा कनकलतिका मिलती है। उनसे नर्मालाप करता हुआ वह कन्दुक क्रीडा मे व्यस्त एक तरुणी को देखता है। वहाँ से चलकर वासन्तिका से हास परिहास करता हुआ पूर्व प्रेयसी कृशोदरी को देखकर उससे आँखे बचाकर आगे बढता है। अब उसे कर्णाटकी युवती मिलती है। उससे हास परिहास के बाद आगे चलने पर कनकागी, कलावती, कमलमुखी, विशालाक्षी आदि गणिकाये मिलती है। इमके अनन्तर कथानक मे एक विचित्र प्रकार का मोड़ आता है। माधव को एक स्थान पर नारद और प्रह्लाद वीणावादन द्वारा भगवान् नारायण की स्तुति करते दीखते हैं। माधव[१] उन्हे अपनी भक्ति मे लीन देखकर उनके पास जाता है। वे प्रभु को देखकर उनकी भक्तिभाव पूर्वक स्तुति करते है। माधव उन्हे हृदय से लगाकर उनके हर्षाश्रु पोछता है। उन्हे ज्ञान एव भक्ति का उपदेश देकर आगे बढ़ने पर माधव को अपनी आज्ञाकारिणी माया नटी दीखती है। उसके स्वरूप का वर्णन कर आगे चलने पर माधव को एक ब्राह्मण मिलता है, जिसने पहले अनेक दुष्कर्म (परस्त्रीगमन आदि) किये है किन्तु अब भागवतादि पुराण सुनकर उसे ज्ञान हो गया है और अपने उन पूर्वकृत पापो को स्मरण कर वह दुखी होता है। इस प्रसंग मे प्रह्लाद और नारद सत्संग का प्रभाव बताते हुये भगवती कापालिनी की विशद स्तुति करते है।

इसी बीच दोपहर हो जाता है। भगवान् माधव—देवर्षि तथा प्रह्लाद को को संध्योपासन के लिये भेजकर स्वयं भक्तजनों पर अनुग्रह करने के लिये चल देते हैं।

अब माधव को एक द्रविड़ देशवासी ब्राह्मण मिलता है जो अपनी घर गृहस्थी के जंजाल मे बुरी तरह फँसा हुआ उसी मे सुख का अनुभव कर रहा है। उसने कन्धे पर लडकी, कटि प्रदेश पर लड़का तथा सिर पर दधि भाजन चढा रक्खा है। उसकी ब्राह्मणी पीछे-पीछे आ रही है। सहसा नदी आ जाने पर पत्नी को भी कन्धे पर चढ़ाकर उस पार ले गया। माधव के पूछने पर उसने बताया कि पिछले वर्ष तो अपनी ब्राह्मणी की दो बहिने तथा यह सब परिकर लेकर वह पुण्योत्सव देखने गया था। माधव उसकी इस ससारासक्ति एव दुर्दशा पर चिन्ता व्यक्त करता है। आगे बढने पर माधव को गुरु शिष्यो मे एक रमणी के मुख को लेकर विवाद होता दीखता है। उसे शान्त कर आगे चलने पर माधव को मदनमणिवल्ली मिल जाती है। वह

१—मिश्रभाण होने के कारण प्रस्तुत माण मे माधव विट तथा भगवान् कृष्ण दोनो की भूमिका उपस्थित करता है।

शुक को बोलना सिखा रही है। शुक की वाणी से भी अधिक मधुर माधव का अधर रस होने से मदनमणिवल्ली शुक की चोच का उसमे स्पर्श कराना चाहती है ताकि वह भी उतनी ही मधुर हो जाये। इस प्रकार उससे नर्मालाप करके माधव आगे बढता है।

इसी समय सायकाल हो जाता है। एक ओर सूर्यास्त तथा दूसरी ओर चन्द्रोदय होने लगता है। माधव भगवान् जगन्नाथ तथा भगवती जगन्नाथेश्वरी को प्रणाम कर ही रहा था कि उसे आकाशवाणी सुनाई देती है जिसका आशय है कि शीघ्र ही माधव से मदनमजरी का सयोग हो जायेगा। इसी समय माधव का दक्षिण भुजस्पन्दन होता है। मदनमजरी की सहचरी मधुकरिका के द्वारा विदित होता है कि मदनमजरी वसन्तोत्सव देखने के बहाने माधव से ही मिलने आयी है। माधव उसके प्रेमातिशय की प्रशंसा करता है। अपने ऊपर वह भगवती की कृपा समझकर जन्म सफल समझता है। मधुकरिका के सकेत से विट को मदनमजरी की प्राप्ति होती है। विट प्रसन्न होता है तथा भरतवाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।[1]

वस्तु

प्रस्तुत भाण मे माधव मदनमजरी की प्राप्ति की कथा मुख्य है। किन्तु एक विशिष्ट प्रकार का मिश्रभाण होने से नारद तथा प्रह्लाद के साथ माधव का सवाद, भागवतश्रवण से ज्ञान सम्पन्न हुये ब्राह्मण द्वारा भक्ति, ज्ञान एव सत्सग का प्रतिपादन, द्रविड ब्राह्मण की ससारासक्ति आदि वर्णन भी मुख्य कथानक के अन्तर्गत आते है।

भाण मे सन्धि विभाजन नही हो सका है। नायिका को प्राप्त करने के लिये न तो नायक कोई प्रयत्न ही करता है तथा न कोई बाधा ही उपस्थित होती है। नायक माधव भाण के आरम्भ मे अपनी प्रिया मदनमजरी का स्मरण कर लेता है और अन्त मे वह उसे अनायास ही प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार आरम्भ में **उपक्षेप** और अन्त मे **आनन्द** एवं **प्रशस्ति** ये तीन संध्यग प्राप्त होते है।

भाण मे नाट्यालंकार एव लास्यांगों की सख्या भी अत्यल्प है। अपने पूर्वकृत पापों, वेश्याचरण आदि कुकृत्यों से दुखी ब्राह्मण द्वारा माधव के समक्ष अपने इन पूर्व कुकृत्यो का कथन **आख्यान**,[2] माधव द्वारा विलासिनी के अधरपान की इच्छा **स्पृहा**[3] तथा अन्त मे मदनमजरी की प्राप्ति से माधव का प्रसन्न होना **प्रहर्ष** नामक नाट्यालंकार है।

विट तथा कृशोदरी का प्रश्नोत्तरात्मक हास परिहास, एवं व्यंग्य पूर्ण नर्मालाप उक्तप्रत्युक्त लास्यांग है।

१—पाण्डुलिपि मे पृष्ठ ८२ के बाद पूरे वाक्य एवं पद्यो की पंक्तियाँ टूटी हुई होने से कथा एवं अर्थ की सगति मे यत्र तत्र विशृंखलता आ गई है।

२—पृ० ५१–५२।

३—पृ० ६४–६५।

भाव—लहरियाँ

नायक नायिका का प्रेम अविकसित होने के कारण भाण मे श्रृंगार अपुष्ट है। आरम्भ का कुछ श्रृंगारिक वर्णन आलम्बन मात्र है। अत यहाँ श्रृंगार अंगीरस नही है। कुछ भावलहरियाँ इस प्रकार है —

माधव द्वारा कामिनियो की रतिश्रान्तता, उनकी श्रृंगारचेष्टाओ एव सौन्दर्य के वर्णन मे **सुरतानन्द**,[1] वासन्तिका के साथ विट का नर्मालाप, उसके अगो की शोभा का **आकर्षण**[2] तथा कनकागी के कठ मे हार पहनाने के प्रसग मे विट की श्रृंगार-चेष्टाये तथा सरसालाप **रतीहा एव सुरतानन्द**[3] है। कमलमुखी तथा विशालाक्षी के मिलने पर माधव द्वारा उनके यौवन के वर्णन मे **आकर्षण** है।

भारतीवृत्ति

वीथ्यंग

कामिनी द्वारा प्रयुक्त 'गुरुमनुरुध्य जानीहि' इस वाक्य के गुरुशब्द का माधव द्वारा —'समस्त पर्वतो मे कनकगिरि गुरु है और उससे भी गुरु तुम्हारा पयोधर' यह अर्थग्रहण करना गूढार्थ होने से **उद्घात्यक**[4] है। विट तथा कनकलतिका का उत्तर प्रत्युत्तरपूर्ण वार्तालाप **वाक्केली**[5] तथा नायक द्वारा कामिनी की आँख बन्द करके कामिनी द्वारा वताये गये अनेक नामो का विट द्वारा अन्यार्थ ग्रहण करना **अवस्यन्दित** है।[6] विट तथा कृशोदरी का उक्ति-प्रत्युक्ति, हास-परिहासपूर्ण नर्मालाप एव विट तथा विलासिनी का नर्मालाप भी **वाक्केली**[7] है। मदनमणिवल्ली के साथ माधव का हास-परिहास एवं शुक की मौनता तथा वाणी की मधुरता के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की असद्भूत कल्पनाये **प्रपंच**[8] नामक वीथ्यंग है।

भाण मे प्रहसनागो की सख्या बहुत कम है। सुन्दरी (नाम अज्ञात) को देखकर विट द्वारा उसके मुख को इन्दु, नेत्रो को कमल तथा पयोधरो को चक्रवाक समझ बैठना **विभ्रान्ति** है। इसी प्रकार किसी रमणी के मुख को पद्म समझकर गुरु शिष्यों का विवाद भी विभ्रान्ति है।[9]

१—पृ० ६।

२—पृ० १६।

३—पृ० २६।

४—पृ० ११, १२।

५—पृ० १२।

६—किं वदसि, लक्ष्म्यावास. इति (सपरिहासम्) किमब्जम्? किं वदसि—भुजगमदहर इति कि पतत्रीश्वरोऽहम्।
कि वदसि चक्रीति, कि चक्रवाकी? कि वदसि विधुरिति अमृतकरः किम्? (पृष्ठ १८)

७—पृ० १७—२२ तथा ६४–६५।

८—पृ० ६७।

९—पृ० ११ तथा ६३–६४।

विशेष

इस वर्ग के समस्त भाणों में हरिविलास एक विशिष्ट प्रकार का भाण है। यह एक मिश्रभाण है। नायक माधव न केवल यहाँ विट है अपितु अनेक स्थलों पर उसे **दधिपयश्चौर्यधुर्य, नन्दकिशोर, कृष्ण, गोविन्द, गोवर्धन, धराधर, राधारमण** आदि अनेक नामो से अभिहित किया गया है[1]। अतः सामान्य कथानक के साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण परक अर्थ भी द्योतित होने से यह मिश्रभाण की कोटि मे आता है। भाण के मध्य मे माधव साक्षात् भगवान् विष्णु होकर नारद और प्रह्लाद को भक्ति का उपदेश देता है। यही नही, और आगे माधव को अपनी माया नटी मिलती है, अपने दुष्कर्मों से दुखी एक भक्त ब्राह्मण मिलता है जो अपने पूर्व दुष्कर्मों की निन्दा के साथ ही परस्त्रीगमन की निन्दा करता है, भगवद् भक्ति एव सत्सग की महिमा विस्तार-पूर्वक कहता है। इसके आगे दक्षिणदेशवासी ब्राह्मण की ससारासक्ति का वर्णन आदि प्रसग इस भाण को अन्य भाणो से पृथक् करते है। मिश्रभाणो मे भी यह एक विशिष्ट प्रकार का भाण है जिसमे भक्ति, ज्ञान, सत्संग, आदि का विस्तार पूर्वक उपदेश दिया गया है।

काव्यालोचन की दृष्टि से इस भाण का विशेष महत्व नही है। किन्तु इस भाण के सवाद अन्य भाणो की अपेक्षा रोचक तथा प्राणवान् है। प्रत्येक सवाद में एक नयी सूझ, नयी कल्पना है। पयोधर, पान, घट, रस आदि शब्दो के शृगार परक अर्थ, विट के रमणियो से नर्मालाप तथा विविध शृगार चेष्टाये आदि इस भाण की व्यक्तिगत विशेषतायें है।

इस प्रकार मिश्रभाण की परंपरा मे एक विशेष प्रकार की रचना होने से हरिविलास इस वर्ग का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाण है।

---

१. पृ० १४, १५, २० २७, २६ तथा ३६।

श्रृङ्गारस्तवक भाण

श्रृंगारस्तवक भाण के कर्ता कवि श्रीनृसिंह हैं। इस भाण में विट श्रृंगार-चूडामणि द्वारा प्रथम पुष्पोत्सव के अवसर पर कुरुविन्दलेखा को कलत्र के रूप में ग्रहण करने की कथा है। वर्णनाप्रधान वर्ग में आने वाला यह एक मध्यम आकार का भाण है जिसमें १८० पद्य तथा शेष गद्य हैं।

पात्र

स्त्रीपात्र

कुरुविन्दलेखा—नायिका
कर्पूरकलिका—कुरुविन्दलेखा की बडी बहिन
कल्पलता—कर्पूरलेखा की सखी
मधुकरिका—वकुलावली की सखी
परिमललेखा—वसन्त क्षत्रिय की पुत्री
कुन्दकलिका, मदलेखा, मधुमति, रत्नपाचालिका, मौक्तिकमाला, काममजरी, कलावती, वकुलावली, पद्मावती, नवमालिका, आदि — गणिकायें
तरलिका, सारगी — परिचारिकायें

पुरुषपात्र

श्रृंगारचूडामणि—नायक
विद्याधर—अनुनायक
चण्डनाद—मधुमति का प्रेमी
वित्तपति—रत्नपांचालिका का प्रेमी
कलहंस—पद्मावती का प्रेमी
गोवर्धन—कलहस का प्रतिद्वन्द्वी
रत्नचूड, मणिचूड — मेष लडाने वाले क्षत्रिय पुत्र
योगीन्द्र—एक सिद्ध महात्मा
कलकठ, चचरीक, राजहंस, कामशेखर — विद्याधर के साथी
वसन्तक—राजपरिवार से सम्बन्धित एक क्षत्रिय

नान्दी

एक पद्य की इस नान्दी में भगवान् विष्णु की आशीर्वादात्मक स्तुति है। श्लोकपाद के आधार पर पद गणना के अनुसार यह चतुष्पदा है। नान्दी का प्रथम गण जगण नायक को रुज् तथा प्रथम अक्षर 'म' क्लेश देने वाले होते हुए भी 'भद्र' शब्द से आरम्भ होने के कारण मङ्गलावह ही हैं और इस प्रकार लिपि तथा गण दोनों ही दृष्टि से शुद्धा नान्दी है। आशीर्वादात्मक होने से यह शुद्धा भेद के अन्तर्गत आती है।

प्रस्तावना

नान्दी के बाद रंगमंच पर आकर सूत्रधार कहता है कि भगवान् रामभद्र के

ग्रीष्मयात्रामहोत्सव के दर्शनार्थ आये हुए सामाजिको ने आज्ञा दी है कि मै किसी शृंगारी कथावस्तु वाले नवीन रूपक का अभिनय करूँ। कवि नृसिह तथा उनके शृगारस्तवक भाण का स्मरण करते हुए सूत्रधार प्ररोचना द्वारा कवि की सुधामयी वाणी, रसिक सामाजिक मण्डली तथा अपनी नाट्यदक्षता की प्रशंसा करता है। इसी बीच अपने मित्र रघुपुगब के शृगारचूडामणि की भूमिका मे आने की सूचना देता हुआ सूत्रधार चला जाता है। यहाँ पात्र-प्रवेश के प्रसग मे आमुख का कोई स्वरूप-विशेष नही है।

कथानक

रंगमच पर प्रविष्ट होकर विट शृंगारचूडामणि अपने भाग्य की सराहना करता हुआ कहता है कि आज से चौथे दिन कुरुविन्दलेखा के प्रथम पुष्प से लेकर २४ पुष्पोद्गम पर्यन्त अर्थात् २४ मास तक उसे कलत्र के रूप मे रखूँगा। इसी समय उसे कर्पूरकलिका की सखी कल्पलता मिल जाती है। वह बताती है कि कर्पूरकलिका ने विट शृगारचूडामणि के लिये एक पत्र दिया है जिसमे आज से चौथे दिन कुरुविन्द-लेखा के प्रथमपुष्पमहोत्सव को देखने के लिए आमन्त्रित किया हे। विट वहाँ जाने को उद्यत होता है।

शृगारचूडामणि चल देता है। वेशवाट मे पहुँच कर उसे कुन्दकलिका, मद्-लेखा तथा मधुमती मिलती है। मधुमती की चेटी विट को बताती है कि चण्डनाद नामक किसी राजभट ने स्वामिनी को एक वर्ष के लिए कलत्र बनाया था। आज वर्ष का अन्तिम दिन होने से वह आया और किसी झगडे के बहाने अपने आभूषण लिए जा रहा है। विट उसे सहायता का आश्वासन देकर आगे बढता है। आगे बढने पर विट को मौक्तिक-माला, रत्नपाचालिका, काममंजरी, वकुलावली, पद्मावती आदि वारागनाये मिलती है। पद्मावती के द्वार पर कलहस नामक ग्रामाध्यक्ष झगड़ता मिलता है। पूछने पर विदित होता है कि उसकी कलत्रभूता पद्मावती ने कलपत्रिका के विरुद्ध आचरण किया है। आगे विट को नवमालिका के प्रेमी दो युवक चतुरगकेलि मे व्यस्त दीखते है। अब उसे रत्नचूड, मणिचूड नामक क्षत्रिय कुमार मेष लड़ाते हुए दीखते है। इसी बीच दुपहरी हो जाती है और रागमजरी के कुक्कुटवन मे विश्राम करके सायकाल वहाँ से चलता है।

अब विट को उसका मित्र विद्याधर मिलता है। कुशलमगल पूछने पर वह बताता है—उस दिन रात को तुमसे अलग होकर घर जाते हुए मै चौराहे पर पहुँचा तो मालूम हुआ कि दो चोर भागकर वसतक के घर घुस गये है। मैने उनका पीछा किया। एक प्रहर रात रहे वे वहाँ से निकले और नगर के पास की वाटिका मे घुस गये। मै भी एक पेड से छिपकर उनका वार्तालाप सुनने लगा। उनके वार्तालाप के अनुसार मै काली के मन्दिर मे जाकर मूर्ति के पीछे छिप गया। वे चोर वहाँ वसन्तक की पुत्री परिमललेखा का अपहरण करके लाये। वह बेचारी जब जगी तो भय से काँपने लगी। चोरों को मारकर मैंने उसकी रक्षा की तथा मूर्ति के पीछे छिपकर मैने

कहा—बेटी, मै तुम्हे तुम्हारी माता से जल्दी मिला दूंगी। और भी यदि तुम्हारा कोई मनोरथ हो तो कहो। वह बोली—मेरी एक युवक के प्रति आसक्ति है। उससे मेरा सयोग हो जाये। मूर्ति के पीछे से मैंने कहा कि मेरे पास आ जाओ। मैं वहाँ मूर्च्छित सा लेट गया। मुझे देखकर वह दग रह गई क्योंकि मैं ही उसका अभीष्ट था। मैं बहाना करके उठा तो उससे परिचय पूछा। यह जानकर कि वह मुझमें अनुरक्त है मैंने उसके साथ विहार किया। बाद को चोरो का पीछा करते हुए उसके घरवाले आये तो मैं छिप गया। वह उनके साथ चली गयी।

यह सुनकर विट विद्याधर के साहस और बुद्धि की प्रशंसा करता है। विद्याधर पुनः कहता है कि उस प्रेयसी के वियोग में विह्वल होकर मै पुनः चोर बनकर उसके घर पहुँचा। छिपकर मैने वहाँ देखा कि प्रेयसी मेरे वियोग मे तड़प रही है। उसकी सखी समझाते हुए कह रही है कि देवी की कृपा मे ही वह युवा तुम्हें तब प्राप्त हुआ था और आज भी देवी तुम्हारी सहायता करेगी। इसके अनन्तर सबके सो जाने पर मैने देवी के रूप मे छिपकर कहा—भद्रे मै प्रसन्न हूँ। तुम अपने प्रिय को बहुत शीघ्र पा लोगी। लो यह अजन लगा लो। उसे एक अजन देकर मैं प्रगट हो गया। देवी की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ देखकर उसने गाढालिगन किया। कुछ दिन वहाँ रहकर आज रामभद्र यात्रोत्सव देखने के लिए इधर चला आया हूँ।

यह सुनकर विट बड़ा प्रसन्न होता है। विद्याधर विट के प्रणय संबधी समाचार पूछता है तो वह (विट) कुरुविन्दलेखा से सबधित अपनी प्रणय कहानी सुनाकर चल देता है। अब उसे भगवान् राम की सवारी आती हुई मिलती है। उसके दर्शन कर कुरुविन्दलेखा के भवन पहुँचता है। वहाँ उत्सव हो रहा है। सभी मित्र उपस्थित हैं। विट एक रत्नपीठ पर बैठता है। दूसरे रत्नपीठ पर शृगारचूडामणि की आकृति का ही दूसरा व्यक्ति बैठा हुआ है। उसे ही सबने शृगारचूडामणि मान लिया है। वास्तविक शृगारचूडामणि के पहुँचने पर सब लोग चक्कर मे पड़ जाते हैं। वास्तविकता जानने के लिए एक योगीन्द्र को बुलाया जाता है। वह उस नकली शृंगारचूड़ामणि की पोल-पट्टी खोलता है। विदित होता है कि यह नकली शृगारचूडामणि केरल देशवासी है। भगवती की कृपा से यह कामरूपधारी हो गया है। इस नगरी मे कुरुविन्दलेखा के रूप पर मुग्ध होकर उसने ऐसा किया है। शृंगारचूडामणि को उचित स्थान मिलता है। उत्सव आरम्भ होता है। योगीन्द्र कुरुविन्दलेखा का हाथ शृंगारचूडामणि के हाथ मे पकड़ाता है। भरतवाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

इस भाण में शृगारचूडामणि द्वारा कुरुविन्दलेखा प्राप्ति का कथानक आधिकारिक है तथा विद्याधर द्वारा चोरों से परिमलरेखा की रक्षा, चालाकी एवं धूर्तता से उसके साथ समागम आदि पताका है।

सन्धि तथा सन्ध्यंग

प्रस्तुत भाण मे सन्धि निर्माण संभव है। विट द्वारा प्रथम पुष्पोद्गम महोत्सव के अवसर पर कलत्र के रूप में मिलने वाली कुरुविन्दलेखा के प्रति आसक्ति का भाव **बीज** तथा वहाँ जाने का उपक्रम **आरम्भ** है। इन दोनो के सयोग से बनी **मुखसन्धि** के कुछ अग इस प्रकार है—

नायक शृगारचूडामणि द्वारा अपनी भावी कलत्र कुरुविन्दलेखा के सौन्दर्य का वर्णन, उसका स्मरण **उपक्षेप**[1] इस अवसर पर दैव की अनुकूलता से कर्पूरकलिका की कृपा, चौबीस पुष्प पर्यन्त कुरुविन्दलेखा की कलत्र के रूप मे प्राप्ति आदि समाचार का नायक द्वारा वर्णन—उस उपक्षेप का बाहुल्य होने से **परिकर**[2], काममजरी द्वारा करुविन्दलेखा के प्रथम पुष्पोद्गम महोत्सव के उपलक्ष्य में विट को बधाई देना बीज का स्मरण होने से **समाधान** नामक मुख सन्ध्यंग है।[3]

कुरुवि दलेखा की प्राप्ति रूप कार्य एव कलत्र पत्रिका के निश्चयानुसार उसे ग्रहण करना रूप **फलागम** के सयोग से बनी निर्वहण सन्धि के कुछ अग इस प्रकार है। विद्याधर द्वारा पूछने पर विट शृगारचूडामणि द्वारा कुरुविन्दलेखा के होने वाले पुष्पोद्गम महोत्सव मे सम्मिलित होकर उसे कलत्र के रूप मे ग्रहण करने की चर्चा बीज का पुन स्मरण होने से **सन्धि** है।[4] कुरुविन्दलेखा की प्राप्ति से शृंगारचूडामणि का प्रसन्न होकर अपने को गौरवान्वित समझना **भाषण** तथा अन्त मे भरतवाक्य के रूप में मंगलाशंसा **प्रशस्ति** निर्वहण सन्ध्यंग है।

नाट्यलंकार

विट द्वारा वसन्तवल्ली के साथ की गयी सुरतक्रीडाओं के दिनो का, तत्तत् स्थानो और अवसरो का कथन **उत्कीर्तन**,[5] विट का काममंजरी के साथ अत्यन्त औपचारिक व्यवहार, उसके सौकुमार्य के कारण अभ्युत्थान देने का निषेध आदि **अनुवर्तन**[6] तथा इसी प्रकार नाट्याचार्य एव विट का परस्पर आदर देते हुये विनय पूर्ण व्यवहार भी **अनुवर्तन** है।[7]

लास्यांग

काममञ्जरी द्वारा विट की अन्य नायिकासक्ति के प्रति व्यग्योक्ति एवं उपालम्भ **प्रच्छेदक**[8], सगीतशाला मे नाट्याचार्य के निर्देशन पर हो रहा संगीत एव

१. पाण्डुलिपि पृ० ६।
२ पाण्डुलिपि पृ० १०–११।
३ पाण्डुलिपि पृ० ३७।
४. पाण्डुलिपि पृ० ११३।
५. पाण्डुलिपि पृ० २०।
६. पाण्डुलिपि पृ० ३३।
७. पाण्डुलिपि पृ० ५४।
८. पाण्डुलिपि पृ० ३४, ३५।

नृत्य **पुष्पगंडिका**[1] तथा विद्याधर के वियोग में चिन्ता एवं दुःख से पीड़िता परिमललेखा की दशा **आसीन**[2] लास्यांग है।

पात्र

प्रस्तुत भाण मे विट श्रृंगारचूडामणि नायक है जो धीरललित प्रकृति का है। गणिका कुरुविन्दलेखा को दो वर्ष तक कलत्र के रूप मे ग्रहण करने का उसे निमन्त्रण मिलता है उसे वह सौभाग्य समझता है। इस कथानक में नायक के चरित्र का विकास नही हो पाया है।

नायक का घनिष्ट मित्र विद्याधर अनुनायक है। क्योकि कुरुविन्दलेखा के यहाँ उत्सव मे सम्मिलित होकर वह नायक का सहायक तो बनता ही है, परिमललेखा की प्राप्ति से उसके स्वार्थ की भी सिद्धि होती है। विद्याधर बडा साहसी तथा प्रत्युत्पन्नमति है। प्राणो को भी खतरे मे डालकर वह परिमललेखा की रक्षा करता है और अवसर पाकर उसे अपनी प्रणयिनी बनाता है। प्रिया प्राप्ति के लिये वह बड़े से बड़ा साहस कर सकता है। शेष पुरुष पात्र कथानक के विकास मे सहायक मात्र है।

कुरुविन्दलेखा भाण की नायिका है, किन्तु उसका चरित्र अविकसित ही है। उसके व्यवहारों से ऐसा लगता है कि वह अत्यन्त भोली-भाली भावुक प्रकृति की नायिका है।

भाव लहरियाँ

श्रृंगारचूडामणि द्वारा काममञ्जरी के रूप यौवन का वर्णन **सौन्दर्यानुभूति**[3] काममंजरी के सौन्दर्य के प्रति विट का रुझान तथा उसको प्राप्त करने की इच्छा **आकर्षण** तथा विद्याधर द्वारा देवी के मन्दिर में परिमललेखा के साथ की गई रतिक्रीडाओ के वर्णन मे **सुरतानंद** की अनुभूति का भाव है।

प्रहसनांग

प्रस्तुत भाण में भारती वृत्ति के वीथ्यंग तो प्रायः नहीं के बराबर हैं, प्रहसनांग भी बहुत कम है। वकुलावली ने भीगे हुये कचभार को पीठ पर खोलकर बिखेर दिया। उसे देखकर विट को मेघ का भ्रम होना **विभ्रान्ति**, इसी प्रकार चोरों द्वारा श्मशान के उल्काओं को दीपक समझकर किसी राजा के आने की भ्रान्ति होना भी **विभ्रान्ति**[5] प्रहसनांग है।

---

१. पाण्डुलिपि पृ० ५३।
२. पाण्डुलिपि पृ० १०७।
३. पाण्डुलिपि पृ० ३३।
४. पाण्डुलिपि पृ० ६७–६६।
५. पाण्डुलिपि पृ० ७६, ८०।

इस प्रकार इस विवेचन से विदित होता है कि वर्णनाप्रधान भाणो मे यह अपेक्षाकृत अधिक रोचक तथा कुछ नवीनता लिये हुये है। कथानक मे आरम्भिक वर्णन पिष्टपेषित होते हुये भी भाण का अन्तिम भाग बड़ा रोचक है। विद्याधर द्वारा चोरो से परिमललेखा की रक्षा करना, उसे अपनी प्रणयिनी बनाना, कुरुविन्दलेखा के उत्सव मे नकली शृगारचूडामणि की पोलपट्टी खुलना आदि घटनाये बडी रोचक है। भाण मे पचचामर[1] तथा अश्वघाटी[2] छन्दों का प्रयोग इसकी शोभा तथा चमत्कार को और भी बढ़ा देता है। सम्पूर्ण रूप से देखने पर यह एक पूर्ण कथानक वाला सामान्य की अपेक्षा अधिक सुन्दर भाण है।

---

१. पाण्डुलिपि पृ० ६७, ९७।
२. पाण्डुलिपि पृ० १०८।

अनंगविजय-भाण

कवि जगन्नाथ कृत अनगविजय भाण मे विट रतिशेखर द्वारा वेंकटनायक के उत्सव के अवसर पर वसन्तसेना को कलत्र के रूप मे ग्रहण करने की कथा मुख्य है। वर्णनाप्रधान वर्ग का यह एक मध्यम आकार का भाण है जिसमे १४३ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र	पुरुषपात्र
वसन्तसेना—नायिका	रतिशेखर—नायक
विभ्रमसेना—अनंगशेखर की प्रेयसी	मकरन्दकन्द } रतिशेखर के मित्र
चन्द्रसेना—वसन्तसेना की माँ	अनगशेखर }
कामकल्पलता—देवराज भट्ट की कनिष्ठा भार्या	जनवल्लभ—एक ब्राह्मण कुमार
शशिप्रभा—रतिशेखर की पूर्व प्रेयसी	
प्रज्ञावती—शशिप्रभा की सखी	
श्रृंगारलतिका, कमलमौक्तिका, प्रभावती, पद्मावती, चन्द्रावली, अनंगचन्द्रिका, अमरावती, बालचन्द्रिका, चित्रलेखा, लीलावती } वारवनितायें	
लवंगिका—वसन्तसेना की करण्डवाहिनी	
चतुरिका—चन्द्रावली की परिचारिका	

नान्दी

भाण की द्विपद्यात्मिका नान्दी में भगवान् श्रीराम की आशीर्वादात्मक स्तुति है। श्लोकपाद के आधार पर पदगणना के अनुसार यह अष्टपदा है। आशीर्वादपरक होने से शुद्धा नान्दी है। आरम्भिक गण-मगण तथा अक्षर 'स' क्रमशः 'श्री' और सौख्यप्रद होने से नान्दी गण एवं लिपि दोनों ही दृष्टि से शुद्धा है।

प्रस्तावना

रंगमंच पर आकर सूत्रधार पारिपार्श्वक से बातचीत करते हुए कहता है कि

इस तंजा नगरी में भगवान् वेंकटनायक के वसन्त महोत्सव को देखने आये हुए सामाजिकों ने मुझे कवि जगन्नाथ प्रणीत अनंगविजय भाण का अभिनय करने को कहा है। प्ररोचना द्वारा वह कवि, काल आदि की प्रशंसा करते हुए वसन्त की शोभा का वर्णन करता है। नेपथ्य मे पढे हुए पद्य को सुनकर यह कहता हुआ चला जाता है कि मेरा भाजा कलकठ आज रतिशेखर की भूमिका ग्रहण कर वसन्तसेना के वियोग मे त्रिधुर अवस्था मे इधर ही आ रहा है। इसके अनन्तर रतिशेखर का प्रवेश होता है। यह प्रवेश **वलित** नामक आमुख भेद के अन्तर्गत आता है।

कथानक

रंगमंच पर आकर विट रतिशेखर वसन्तसेना के रूप का वर्णन करते हुए प्रभात एव वसन्त की शोभा का वर्णन करता है। वेशवाट मे प्रवेश करते ही उसे वसन्तसेना की करडवाहिनी लवगिका मिल जाती है। वह विट को अपनी स्वामिनी का निमन्त्रण देती है कि आज वेकट नायक के वसन्तोत्सव मे वसन्तसेना का वसन्त नाट्य होगा आप अवश्य पधारे। विट लवगिका को अवश्य आने का आश्वासन देकर वेश मे प्रविष्ट होता है। यहाँ वह शृगारलतिका तथा कमलमौक्तिका से मिलता है। कमलमौक्तिका ने वृद्ध वित्तपाल को धन के लोभ से स्वामी बनाया है। अब उसे बलिभद्र और वीरभद्र के कुक्कुटो का युद्ध होते दीखता है। आगे आती हुई प्रबोधावती से विदित होता है कि ब्राह्मणकुमार जनवल्लभ ने समस्त पुराण, वेद, शास्त्र आदि का अध्ययन करने के बाद भी कामसुख को सर्वातिशय समझते हुए धनकुबेर की कन्या सुन्दरी प्रभावती को पुराणपठन की व्यर्थता बताकर, फुसलाकर उसे अपनी प्रणयिनी बनाया तथा अब उसे कलत्र बना लिया है। विट यह सुनकर दोनो प्रेमियों की प्रशंसा करता है। प्रभावती के पास जाकर वह उससे प्रेमालाप करता है। आगे बढने पर वह चन्द्रावली के द्वार पर हो रहे ऐन्द्रजालिक के खेल को देखता है। इसी समय दोपहर हो जाता है। भगवान् वेकट के मध्याह्न दर्शन करके वह अमरावती के भवन पर पहुँचता है जहाँ मित्र अनगशेखर से भेंट होने का वादा है। वहाँ पहुँचकर विट को अनगशेखर मिल जाता है और दोनों मित्र पुन्नाग वृक्ष की छाँया में बैठकर रहस्यालाप करते है। अनगशेखर अपनी प्रणय कथा सुनाते हुए कहता है—

पचाग से जीविका चलाने वाले देवराज भट्ट नामक बुड्ढे ब्राह्मण की कनिष्ठा भार्या कामकल्पलता से मेरा प्रेम हो गया। हम दोनो विरह मे पीडित होने लगे। एक दिन गौरीपूजन के लिए उसके आने पर पूर्व सकेतानुसार हम दोनों कुज मे मिले और यथेच्छ विहार किया। यह सुनकर अनगशेखर के साहस की प्रशंसा करता हुआ विट आप बीती सुनाता है—

एक बार भगवान् वरदराज के गरुडमहोत्सव को देखने मैं कांचीपुरी गया। वहाँ कुछ मित्रो के साथ नदीप्रान्त पर सद्यःस्नाता किसी युवती को देखकर मै उसमें आसक्त हो गया। उसके कटाक्ष बाणो से आहत होकर मे उसकी विरहाग्नि में जलने लगा। वह रमणी दुबारा वहाँ नही आयी। मेरे मित्र मकरन्द ने इस सम्बन्ध में

बड़ी सहायता की। योगी का वेश बनाकर प्रत्येक घर को देखता हुआ वह मेरी प्रिया शशिप्रभा के घर पहुँचा। विरह पीडिता शशिप्रभा रोगिणी होने का बहाना किए हुए पड़ी थी। उसका पिता चिन्तित था। मेरे मित्र रूपयोगी को देखकर शशिप्रभा के पिता ने अपनी बेटी ठीक करने को उससे कहा। योगी ने ध्यान करके कहा कि इसे गन्धर्वबाधा है और पन्द्रह दिन तक अकेली उस मन्दारवृक्ष पर स्थित गन्धर्व की पूजा करे तो ठीक हो जायेगी। उसके पिता ने विश्वास कर लिया और कपटयोगी के चले जाने पर पूजा का प्रबन्ध किया गया और इस प्रकार उसे एकान्त मे पाकर मैने अपना मनोरथ पूरा किया।

दुपहरी समाप्त हो जाती है। दोनो मित्र वहाँ से निकल पड़ते हैं और चण्डमल्ल तथा उद्दण्डमल्ल का मल्लयुद्ध देखते हुए आगे बढते है। अब उन्हे चन्द्रावली को लेकर झगडते हुए रगराज और वरदराज मिलते है। रगराज द्वारा कलत्रीकृता चन्द्रावली से वरदराज ने प्रेम किया है, यही झगडे का कारण है। दोनो इस विवाद को शान्त करते है। आगे चलने पर उन्हे शतरज खेलते हुए इन्द्रदत्त तथा वसुदत्त मिलते हैं। इसी बीच सायकाल हो जाता है। अब विट को वसन्तसेना की बेटी प्रज्ञावती प्रत्ययपत्रिका देती है। तदनुसार 'विट रगमडप में जाता है और वहाँ चन्द्रसेना के सकेत करने पर वसन्तसेना को कलत्रपत्रिका देकर कलत्र बनाता है।

वस्तु

भाण मे विट रतिशेखर द्वारा वसन्तसेना की प्राप्ति मुख्य कथा है। अनगशेखर की कामकल्पलता सम्बन्धी एवं विट रतिशेखर की शशिप्रभा सम्बन्धी प्रणय कथा गौण है।

प्रस्तुत भाण में सन्धि निर्माण नहीं हो सका है। आरम्भ मे उपक्षेप तथा अन्त में आनन्द और प्रशस्ति प्रायः ये तीन ही सन्ध्यंग प्राप्त होते हैं।

नाट्यालंकार तथा लास्यांग

श्रृंगारलतिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर नायक रतिशेखर को उसे प्राप्त करने की आकाक्षा **स्पृहा**[1], रतिशेखर द्वारा श्रृगारलतिका को उसके पूर्व रतिप्रसंगों का स्मरण दिलाना **उत्कीर्तन**[2], विट के साथ पद्मावती तथा प्रभावती का औपचारिक व्यवहार[3] तथा विट एवं चन्द्रावली का आरम्भिक शिष्टाचार पूर्ण व्यवहार[4] **अनुवर्तन** है। विट द्वारा शशिप्रभा के साथ की गई श्रृगार चेष्टाओं का स्मरण एवं कथन **उत्कीर्तन**[5] तथा विद्याधर उपाध्याय द्वारा अनगशेखर और रतिशेखर को अनगविद्या में पारंगत होने का आशीर्वाद **आशी**.[6] नाट्यालकार है।

---

१. पाण्डलिपि पृ० २८।
२. पाण्डुलिपि पृ० ३०।
३. पाण्डुलिपि पृ० ४८, ४९,।
४. पाण्डुलिपि पृ० ५६।
५. पाण्डुलिपि पृ० ८३।
६. पाण्डुलिपि पृ० ११२।

भाण मे लास्यांग बहुत कम है। बालचन्द्रिका के प्रति रतिशेखर का अनुराग जानकर शृंगारलता द्वारा व्यंग्यपूर्वक उपालम्भ देना **प्रच्छेदक**[1] तथा भाण के अन्त में नाट्यमण्डप में प्रस्तुत हो रहे विविध प्रकार के गान, सगीत, ताल, लय, आदि के साथ नाट्य प्रदर्शन **पुष्पगण्डिका** है।

पात्र

भाण का नायक रतिशेखर धीरललित प्रकृति का है। सघर्ष के अभाव मे उसका चरित्र अविकसित ही है।

नायक रतिशेखर का मित्र मकरन्द उसका नर्म सचिव है। शशिप्रभा की रतिशेखर से भेट कराने मे वह कपटयोगी बनकर जाता है और शशिप्रभा के पिता को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कर दोनो प्रेमियो की भेट करा देता है। इस प्रकार मकरन्द सच्चा तथा प्राणपन से सहायता करने वाला मित्र है। अनगशेखर भी नायक का मित्र है। देवराज ब्राह्मण की कनिष्ठा भार्या को प्राप्त करने की कथा वह नायक को सुनाता है जिससे उसके साहस का पता चलता है। भाण मे जनवल्लभ नामक पौराणिक की धूर्तता का वर्णन बड़ा रोचक है। वह पुराण सुनाने के बहाने युवतियों को बहकाकर कामसुख प्राप्त करता है।

वसन्तसेना नायिका है किन्तु उसके चरित्र का विकास नही दिखाया गया है। शेष स्त्री पात्रो के सम्बन्ध मे कोई उल्लेखनीय बात नही है।

भाव लहरियाँ

विट द्वारा शृंगारलता के रूप, यौवन एव रति चेष्टाओ के वर्णन मे **सौन्दर्यानुभूति** है।[2] कपटयोगी मकरन्दकन्द की सहायता से विट द्वारा शशिप्रभा के साथ की गयी समागम क्रीडाओ का वर्णन **सुरतानन्द**[3] तथा नाट्यमण्डप मे वसन्तसेना के रूप को देखकर नायक रतिशेखर का आनन्दित होना उसके प्रति **आकर्षण**[4] की अभिव्यक्ति है।

वीथ्यंग तथा प्रहसनांग

रतिशेखर तथा वृद्ध वैश्य वित्तपाल के संघर्ष में दोनों का एक दूसरे को फटकारना तथा गाली, गलौज **अधिबल**,[5] विट एव प्रबोधावती तथा विट एवं पद्मावती का उत्तर—प्रत्युत्तरपूर्ण वार्तालाप **वाक्केली**[6] है। प्रभावती द्वारा विट के यज्ञोपवीत के प्रति व्यंग्य करने पर वह उसे उत्तरीय से छिपा कर यज्ञोपवीत नही मल्लिका माला है—ऐसा कहकर प्रभावती को धोखे मे डाल देता है। अतः असद्भूत एवं

---

१. पाण्डुलिपि पृ० २९।
२. " पृ० २७, २८।
३. " पृ० ८२।
४. " पृ० १३१–३२।
५. " पृ० ३७–३८।
६. " पृ० ४४, ४६ तथा ४८, ५०।

हास्यकृत होने से यह प्रसंग प्रपंच[1] है। विट तथा चतुरिका का उक्तिप्रत्युक्तिपूर्ण वार्तालाप, विट तथा चन्द्रावली का सवाद एव विट तथा लीलावती का सवाद **वाक्केली** है[2]। द्यूत की प्रशंसा मे विट रतिशेखर का यह कथन कि द्यूतरस का पान कर लेने पर न प्यास लगती है न भूख—द्यूत के दोष को गुण रूप मे बताने के कारण **मृदव** है।[3] कौवे को समाज मे प्राय अशुचि एवं अशुभ पक्षी माना गया है। उसके अनेक अवगुणो को भी अनगशेखर द्वारा गुणो के रूप में वर्णन करने से यहाँ भी **मृदव**[4] है।

प्रस्तुत भाण मे प्रहसनाग प्राय नही है। केवल शशिप्रभा के प्रसग मे जब वह गन्धर्वपीडिता हो जाती है और कपटयोगी उसे शान्त करने का उपाय बताता है—उस अवसर पर **विभ्रान्ति** मिलता है।

काव्यालोचन की दृष्टि से भाण सरस और प्रवाहपूर्ण है। गद्य मे सर्वत्र आविद्ध शैली का ही प्रयोग मिलता है। प्रकृति वर्णन के प्रसंग में प्राय अनुप्रास अलकार तथा शानच् प्रत्ययान्त शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया गया है। गद्य खण्डो मे यह प्रवृत्ति और भी अधिक है। उदाहरणार्थ—अरण्यायमान, पिण्डायमान, विजृम्भमाण, संतप्यमान, चटचटायमान, मज्जमान, शोभमान, अनुतप्यमान, अनुदृश्यमान, अनुवर्धमान आदि शब्द इसी प्रकार के है।

इस प्रकार इस वर्ग का यह एक मध्यम कोटि का भाण है।

---

१. पाण्डुलिपि पृ० ५०, ५१।
२. ” पृ० ५५, ५७, १०४।
३. तस्मिन् द्यूते रसे प्राप्ते न तृष्णा नापि च क्षुधा······पृ० १०८।
४. पाण्डुलिपि पृ० ११५, ११६।

अनंगजीवन—भाण

अनगजीवन भाण कवि श्रीवरद की कृति है। इसमे विट वसन्त-शेखर का पल्लवोत्सव के अवसर पर वासन्तिका के वसन्तनाट्य को देखने जाना तथा उसकी प्राप्ति की कथा मुख्य है। यह वर्णनाप्रधान वर्ग का मध्यम आकार का भाण है।

: पात्र :

स्त्री पात्र	पुरुष पात्र
वासन्तिका—नायिका	वसन्तशेखर—नायक, विट
चित्रलेखा—कनकांगद की प्रेयसी	कनकांगद—क्षत्रियकुमार
सौदामिनी—जीमूत ” ”	जीमूत } वेश पथिक
माधविका—कदर्पकेतु ” ”	कदर्पकेतु— } वेश पथिक
कुन्दकलिका—कर्णाटकी वेश्या	हारीतक } —ब्राह्मण
	मदनक } —ब्राह्मण
इन्दुमती } अन्य गणिकाये	मकरन्द—वसन्तशेखर का मित्र
चन्द्रवती } अन्य गणिकाये	
कनकलेखा } अन्य गणिकाये	
कर्पूरमंजरी } अन्य गणिकाये	
कस्तूरिका—वासन्तिका की परिचारिका	

नान्दी

प्रस्तुत भाण की द्विपद्यात्मिका नान्दी के प्रथम पद्य मे श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के चीरहरण का तथा दूसरे मे राधा और कृष्ण की केलि का आशीर्वादपरक वर्णन है। श्लोकपाद के आधार पर पदगणना के अनुसार यह **अष्टपदा** तथा आशीर्वादपरक होने से शुद्धा नान्दी है। प्रथम पद्य मे भानु शब्द आने से यह **नीली** है। प्रथम गण मगण नायक को 'श्री' देनेवाला तथा प्रथम अक्षर 'क' लक्ष्मी देनेवाला होने से यह गण एवं लिपि दोनो ही दृष्टि से शुद्धा नान्दी है।

प्रस्तावना—

नान्दी के बाद रगमंच पर प्रविष्ट होकर सूत्रधार कहता है कि कांची नगरी के भगवान् देवराज के बसन्तयात्रोत्सव में आये हुये पारिषदो ने मुझे आशीर्वाद दिया है कि मैं श्रुति एव जिह्वा के लिये रसायनभूत कोई रूपक अभिनीत करूँ। सूत्रधार वरद कविकृत अनगजीवन भाण का अभिनय करने की सोचता है। प्ररोचना के द्वारा वह कवि, उनकी कृति, अपनी दक्षता आदि की प्रशसा करते हुये उपस्थित मधुमास का वर्णन करता है। कालवर्णन के आश्रय से यहाँ नायक वसन्तशेखर का प्रवेश होने से यह **प्रवृत्तक** नामक आमुख का भेद है।

कथानक

रंगमच पर प्रविष्ट होकर बिट वसन्तशेखर वासन्तिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ उसके साथ किये गये रति व्यापारो की स्मृति मे व्याकुल होता है।

इसी समय रात बीतती है तथा प्रातः हो जाता है। प्रात. काल का वर्णन करता हुआ वह वेशवाटी मे प्रविष्ट होता है। यहाँ उसे वासन्तिका की करकवाहिनी कस्तूरिका मिलती है। वह पल्लवोत्सव के अवसर पर होने वाले वासन्तिका के वसन्तनाट्य को देखने के लिये विट को वासन्तिका का निमत्रण देती है। विट आगे बढता है। वहाँ वह क्षत्रियकुमार कनकागद की कलत्रीकृत चित्रलेखा से वार्तालाप करता है। वह बताती है कि उस दुष्ट क्षत्रियकुमार के पार्श्वचर आसपास ही घूम रहे है। अतः फिर किसी दिन मिलना। आगे विट को जीमूत की प्रेयसी सौदामिनी दीखती है। वह बताती है कि जीमूत कई दिन से पाटलिपुत्र गया हुआ है। उसके साथ किये गये पूर्व सयोग की बात करके विट आगे बढता है। यहाँ उसे ब्राह्मण पुत्र कन्दर्पकेतु एक रमणी के साथ प्रणयक्रीडा मे व्यस्त दिखाई देता है। कन्दर्पकेतु विट को अपने तथा इस ब्राह्मणी (माधविका) के प्रेम होने की पूर्व कथा सुनाता है। उनके सुख की आकांक्षा करता हुआ विट आगे बढता है और उसे कर्णाटी वेश्या कुन्दकलिका मिलती है। वह उसकी शृंगार चेष्टाओं की प्रशंसा करता है।

अब विट को चन्द्रशाला पर कन्दुकक्रीडा करती हुई चन्द्रवती मिलती है। कुक्कवाक युद्ध देखता हुआ वह द्वार पर खड़ी कनकलेखा से वार्तालाप करता है। इसी समय दोपहर हो जाता है और कर्पूरमंजरी उसे बुला लेती है। उसके साथ दोला विहार कर वह हारीतक तथा मदनक नामक पंडितो से मिलता है। उनके विवाद को शान्त करता है। आगे उसे वीणावती तथा लीलावती मिलती हैं। लीलावती स्वयं को संकट में पड़ी हुई बताती है। उसकी छोटी बहिन कालिन्दी के पति मन्दारक के बाहर चले जाने पर उसके अनुचर ने मन्दारक वेश मे आकर उससे प्रणय किया और आभूषण लेकर भाग गया। आगे विट को विलासीजनों मे अपना मित्र मकरन्द मिलता है। मकरन्द बताता है कि किस प्रकार सेतुबन्ध दर्शन के लिये पिता से धन लेकर मणलूरपुर, मधुरा, रगनगरी आदि शहरो मे घूमते हुये वेश्याओ के साथ विलास क्रीडाये की।

उसके बाद बसन्तशेखर अपनी बात बताता हुआ कहता है किस प्रकार एक दिन मैं मित्रावसु नामक राजसचिव की पुत्री को देखकर उस पर मुग्ध हो गया और उसके बाद एक केतकी के दल पर अपनी विरह दशा लिखकर मालिनी के द्वारा भेजी। इसके उत्तर मे उसने भी कर्पूरकरण्डयुगल में रखकर एक पत्र भेज दिया जिसका आशय था कि किसी स्त्री का वेश बनाकर मै उसके पास जाऊँ। तदनुसार मै एक दैवज्ञा स्त्री का वेश बनाकर उसके पास गया और बहाने से अन्य स्त्रियो को दूर हटाकर अपना मनोरथ सिद्ध किया।

मकरन्द से बिदा होकर विट आगे बढता है। अब उसे झगड़ते हुये दो ब्राह्मण युवक वानीरक तथा नीवारक मिलते है। उनके स्त्री विषयक विवाद को-- "यस्मै स्पृहयते तस्य भार्येति मनुरब्रबीत" कहकर वह शान्त कर देता है।

इसी समय सूर्यास्त हो जाता है और बसन्तशेखर पल्लवोत्सव की रंगस्थली पहुँचकर उसकी शोभा देखता है। रगमच पर भगवान् राधाकृष्ण के सयोग और वियोग की लीला का प्रदर्शन होता है। उत्सव के पश्चात् बसन्तशेखर वासन्तिका की बडी बहिन नवमालिका से मिलता है। उसकी सहायता से वासन्तिका को ग्रहण कर आनन्दित होता है और भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

: वस्तु :

भाण मे बसन्तशेखर द्वारा वासन्तिका प्राप्ति की कथा मुख्य है तथा मित्रावसु नामक राज सचिव की पुत्री के साथ किये गये प्रणय व्यापार का कथानक गौण है।

नाट्यालंकार

बसन्तशेखर द्वारा प्रिया की श्रृगारचेष्टाओं और भगिमाओ का कथन—**उत्कीर्तन**[1] और विट द्वारा ब्राह्मण पुत्र कन्दर्पकेतु को कोमलांगी माधविका के साथ की जाने वाली रति क्रीडाओ की शिक्षा—**उपदेशन**[2] है। विट तथा कर्नाटकी कुन्दमालिका के वार्तालाप में कुन्दमालिका द्वारा अपनी विद्या का श्रेय विट को देना, अपनी सफलता में उसकी कृपा मानना आदि व्यवहार **अनुवर्तन**[3] तथा बसन्तशेखर द्वारा नीवारक तथा वानीरक के विवाद मे मनुस्मृति के आधार पर निर्णय देना **नीति**[4] है।

लास्यांग

बसन्तशेखर द्वारा दैवज्ञ स्त्री का वेश बनाकर मित्रावस्तु की कन्या के पास जाना और सब की आँखो मे धूल झोककर हस्तरेखा दिखाने के बहाने आयी हुई उससे एकान्त मे विहार करना **त्रिगूढक**[5] तथा भगवान् देवराज के वसन्तयात्रोत्सव के अवसर पर रंगोत्सव मे होने वाला वीणावादन, तालानुरूप नाट्य **पुष्पगण्डिका**[6] है। रमण के विरह मे राधा का स्वप्नोपभोगोत्सव का वर्णन **भाविक**[7] लास्यांग है।

---

१. पांडुलिपि पृ० ९, १०।
२. पांडुलिपि पृ० २३।
३. पांडुलिपि पृ० २७।
४. पांडुलिपि पृ० ७४।
५. पांडुलिपि पृ० ५५, ५६।
६. पाण्डुलिपि पृ० ८५।
७. पाण्डुलिपि पृ० ८७। भाविक लास्यांग भा. प्र. के अनुसार माना गया है। सम्भवतः यह प्रथम भाण है जिसमें यह प्राप्त हुआ है।

मानिनी राधा तथा भगवान् मदनगोपाल का प्रश्नोत्तरात्मक वार्तालाप **उत्तप्रयुक्त**[१] तथा इसी प्रसग मे श्रीकृष्ण के सभोग चिह्नो को देखकर राधा का दुखी होना **प्रच्छेदक**[२] लास्याग है।

भाव लहरियाँ

प्रस्तुत भाण मे भाव लहरियो की सख्या सम्भवतः सबसे अधिक है। विट बसन्त शेखर द्वारा वेशवाट मे चित्रलेखा के रूप को अदृष्टचर एवं अश्रुतचर मानते हुये उसका वर्णन करना **रूपासक्ति**[३] है। विट द्वारा कन्दर्पकेतु को माधविका के साथ दाम्पत्यभाव की शिक्षा के बहाने स्वय कल्पित **सुरतानन्द**[४] तथा बसन्तशेखर द्वारा पूछने पर उसके मित्र मकरन्द द्वारा सेतुबन्धु, मधुरा, रगनगरी आदि नगरो में प्राप्त हुई माधविका, रगमजरी आदि रमणियो के रूप, उनकी शृगार चेष्टाओ का वर्णन **सौन्दर्यानुभूति**[५] है। बसन्तशेखर द्वारा कनकलेखा के तरुण्य एव शृंगार के वर्णन में **आकर्षण**[६] मित्रावसु राजसचिव की कन्या के कटाक्षों से वसन्तशेखर का आविद्ध हो जाना, उसकी दयनीय स्थिति, इन्दु, चन्दन और मलयमारुत के गुणो के विपरीत अनुभूति **मदनपीडा**[७] भाव है। बसन्तशेखर द्वारा पारिजात के रूप वर्णन प्रसग में उसके हाथ का ककण, वक्षस्थल का हार तथा जघन का कांची बनने की इच्छा— **स्वानुराग निवेदन**[८] तथा वासन्तिका के स्पर्शसुख को प्राप्त कर बसन्तशेखर का आनन्दित होना **सौन्दर्यानुभूति** है।[९]

वीथ्यंग :

प्रस्तुत भाण मे भाव लहरियो की भाँति ही वीथ्यगो की सख्या भी पर्याप्त है। कर्णाटी कुन्दकलिका के कुन्तलों की कुटिलता, पयोधरो की कठिनता तथा नेत्रों की श्रुतिलंघिता आदि दोष वर्णन गुण परक होने से **मृदव** है।[१०] इन्दुमती की जरती तथा ब्राह्मणपुत्र सोमक का संरम्भ, अपवाद एवं आक्षेपयुक्त विवाद **गण्ड** है।[११] विट का कन्दुकक्रीडा करती हुई चन्द्रवती से वार्तालाप—जिसमे पयोधरो की शोभा चुराने के कारण कन्दुकताडन करने वाली चन्द्रवती से विट कहता है कि अपराधियों को

१. पाण्डुलिपि पृ० ९२, ९३।
२. ,, पृ० ९३।
३. ,, पृ० १७, १८।
४. ,, पृ० २३।
५. ,, पृ० ४४।
६. ,, पृ० ३३, ३४।
७. ,, पृ० ५०, ५२।
८. ,, पृ० ७०।
९. ,, पृ० १०५।
१०. ,, पृ० २७।
११. ,, पृ० २९।

दण्डित करना ठीक ही है—अन्यार्थ ध्वनित होने के कारण **अवस्वन्दित**[1] है। वसन्त-शेखर द्वारा मित्रावसु की कन्या के पास मालिनी की सहायता से पुष्पमाला में छिपाकर भेजे गये पद्य मे प्रत्येक पद का क्रमश. प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि वर्ण ग्रहण करने से वसन्तशेखर यह नाम निकलना गूढार्थ होने से **उद्घात्यक**[2] वीथ्यंग है।

विशेष :

अनंगजीवन मे भी मुकुन्दानंद की भाँति मिश्रभाण जैसा कथानक है। यहाँ भाण के अन्त मे रंगोत्सव के अवसर पर विरहिणी राधा का दृश्य दिखाया गया है। उसकी सखी गोपाल को खोजती फिरती है। राधा वियोग तथा ईर्ष्या मे अत्यन्त कृश हो गई है। वह कोप किये हुये बैठी है कि मदन गोपाल एक कुँज से निकलकर उन्हे मनाते है। यह प्रसंग यद्यपि मुकुन्दानद तथा अन्य मिश्रभाणों की भाँति नायक नायिक परक नही है। उत्सव के अवसर पर भगवान् देवराज की लीला का यह स्वतन्त्र दृश्य है। किन्तु मिश्रभाण से बहुत मिलता-जुलता है।

अनंगजीवन भाण का कथानक रोचक है। इसके संवाद भी अपेक्षाकृत सरस तथा सरल है। गद्य भाग मे सर्वत्र आविद्ध शैली है। मिश्रभाण होने के कारण इसकी शोभा और भी बढ गयी है। इस प्रकार अनंगजीवन इस वर्ग का एक महत्व-पूर्ण भाण है।

---

१. पाण्डुलिपि पृ० ३० ।
२. पाण्डुलिपि पृ० ५३–५४ ।

श्रृङ्गारसर्वस्व-भाण

श्रृंगारसर्वस्व भाण के रचयिता कवि बेदान्तदेशिक हैं। इसमें नायक रसिक शिखामणि द्वारा नायिका चन्दनलता की प्राप्ति का कथानक है। वर्णनाप्रधान भाण में आने वाला यह एक मध्यम आकार का भाण है जिसमे १५१ पद्य तथा शेष गद्य है।

: पात्र :

स्त्रीपात्र

चन्दनलता—-नायिका
कुन्दमालिका—चन्दनलता की बड़ी बहिन
अनंगलेखा—चित्रसेन की प्रेयसी
तारावली—चन्द्रसेन की प्रेयसी
चित्रागदा—रुक्मागद की प्रेयसी
कर्पूरकलिका—कोपसिंह तथा चापसिंह की प्रेयसी
कनकमजरी—पानीयशाला पर पानी पिलाने वाली
हरिनीलकेशी—चैत्रशेखर की प्रेयसी
इन्दुलेखा—विजयभूषण की पत्नी
मन्दारिका, मदयन्ती —अन्य गणिकायें
तरलिका—चन्दनलता की परिचारिका

पुरुषपात्र

रसिकशिखामणि-विट, नायक
मित्रसार, चैत्रशेखर — विट के मित्र
रूपचन्द्र, भूपचन्द्र — मेष लड़ाने वाले
कोपसिंह, चापसिंह — प्रतिद्वन्द्वी प्रेमीयुवक
चित्रसेन, चन्द्रसेन, रुक्मांगद — वेशपथिक

नान्दी

भाण की त्रिपद्यात्मिका नान्दी के प्रथम पद्य में भगवान् यतिशेखर की, द्वितीय में कामी के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण की तथा तृतीय में वनिता के रूप में परब्रह्म की स्तुति है। श्लोकपाद को पद मानने के अनुसार यह द्वादशपदा तथा नमस्कारात्मक एवं आशीर्वादात्मक होने से शुद्धा है। प्रथम अक्षर 'श्री' नायक को सुखप्रद होने से यह लिपितः शुद्धा है। आरम्भिक गण तगण धनापहरण का द्योतक होते हुए भी मंगल-वाची 'श्री' से आरम्भ होने से दोष नहीं माना जायेगा। अत. गणतः शुद्धा भी नान्दी है।

प्रस्तावना

नान्दी के बाद अपने साथी पारिपार्श्वक से बातचीत करता हुआ सूत्रधार बताता है कि भगवान् श्रीनिवास के वसन्तोत्सव को संभावित करने के लिए आये हुए सामाजिकों की यह सभा किसी नवीन सरस एवं सरल रूपक का अभिनय करने की आज्ञा दे रही है। मारिष के पूछने पर सूत्रधार कवि वेदान्त देशिक तथा उनकी

कृति शृंगारसर्वस्व भाण का परिचय देता है। **प्ररोचना** द्वारा सबकी प्रशंसा करता है। इसी बीच नेपथ्य मे सुनायी देता है कि आज कुन्दमाला की बहिन चन्दनलता अपनी गान विद्या से भगवान् श्रीनिवास की आराधना के रूप मे प्रथम रंगाधिरोहण-उत्सव मना रही है। यह सुनकर सूत्रधार रसिक शिखामणि के साथ वहाँ जाने को उद्यत होता हुआ रगमच पर उसके प्रवेश की सूचना देता है।

कथानक

विट रसिकशिखामणि रंगमंच पर आकर प्रात. के वर्णन के साथ ही अभिसारिकाओ का चित्र उपस्थित करता है। पतियो को धोखा देकर उपपतियो से प्रणय करने वाली एव बहाना बना कर पतियों को धोखा देने वाली रमणियो पर व्यग्य करता है। इसके बाद वह वेशवाट मे प्रविष्ट होता है। यहाँ उसे शुक को पढाती हुई चित्रसेन की प्रेयसी अनगलेखा, चन्द्रसेन के साथ अक्षविहार करती हुई तारावली, कन्दुकविहार करती हुई मन्दारिका मिलती है। माधविका के चबूतरे पर कुक्कुट—युद्ध देखता हुआ रुक्मागद के साथ चतुरग विहार करती हुई चित्रागदा से मिलता है। इसके अनन्तर दुपहरी बिताकर विट आगे चलता है कि उसे पानीयशालिका मिलती है जिस पर कलकठ की पुत्री, कनकमजरी बैठकर पथिको का मन मोहित करती हुई पानी पिलाती है। पथिकगण विरलागुलि अजलि बाधकर उसके सौन्दर्य को निरखते हैं।

अब विट को उसका मित्र चैत्रशेखर मिलता है। वह विट को अपनी प्रेयसी हरिन्नीलकेशी के साथ हुए प्रणय व्यापार को विस्तारपूर्वक सुनाता हुआ कहता है—मैं बहुत दिनो तक अपनी प्रेयसी हरिन्नीलकेशी के वियोग मे तडपता रहा। उसके कुल, शील, नाम आदि न जानने से उसे ढूढ भी न सका। इसी दुख मे दुखी था कि एक दिन एक वृद्धा मिल गयी। उसने कहा कि मेरे स्वामी धनपति की पत्नी किसी युवक को देखकर मदनायत हो गयी है। मुझ वृद्धा को उसने अपने प्रिय को खोजने भेजा है। स्वामिनी रोगिणी का बहाना किए पड़ी है। चैत्रशेखर कहता है कि मै वृद्धा के साथ चिकित्सिका के रूप मे गया। प्रिया को देखकर उसका रोग बताकर, घर के सब लोगो को दवा लाने के बहाने अलग कर दिया। अनन्तर एकान्त पाकर मैने उसके साथ विहार किया तथा उसे अपने साथ अपहृत कर लाया हूँ। विट चैत्रशेखर के साहस की प्रशसा करता है।

इसी प्रसग मे विट को डोलाविहार करती हुई विनयभूषण की कलत्र इन्दुलेखा मिलती है। वह विट को डोला विहार के लिए आमन्त्रित करती है। इसके अनन्तर राज प्रागण मे होते हुए मल्लयुद्ध को देखकर विट जब आगे बढता है तो उसे कर्पूरकलिका के पीछे लड़ते हुए कोपसिंह तथा चापसिंह मिलते है। दोनो में कृपाणें तन गयी हैं। पूछने पर विदित होता है कि कोपसिंह की कलत्रीकृता कर्पूर-कलिका के पास चापसिंह रात में गया था। यही झगडे का कारण है। विट विवाद शान्त कर दोनों में मित्रता स्थापित करता है।

विट आगे बढा ही था कि उसे चन्दनवल्ली की ताम्बूलकरंकवाहिनी तरलिका मिलती है। वह बताती है कि उसकी स्वामिनी ने उसे रसिकशिखामणि को बुलाने भेजा है। विट तरलिका से बात करता हुआ चन्दनलता के रंगमंच तथा आस्थान-मंडप की बहुत प्रशंसा करता है। रंगमच के समीप पहुँचने पर तरलिका उसे आंध्र, गुर्जर, पाण्ड्य, कर्नाटक, आदि देशो की स्त्रियो की वेशभूषा आदि का परिचय कराती है। विट चन्दनमाला को इस सुन्दर आयोजन के लिए बधाई देता है। वह उसका स्वागत करती है और भरतवाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु

प्रस्तुत भाण मे नायक विट रसिक शिखामणि द्वारा नायिका चन्दनलता की प्राप्ति की कथा आधिकारिक है तथा चैत्रशेखर की प्रणय कहानी प्रासगिक। किन्तु मुख्य कथानक से कोई सम्बन्ध न होने से इसे न पताका माना जा सकता है न प्रकरी। अत: यह समानान्तर प्रासगिक वृत्त है। पूर्व भाण की ही भाँति यहाँ सन्धि निर्माण नही होता। आरम्भ मे केवल उपक्षेप तथा अन्त मे आनन्द और प्रशस्ति ये सन्ध्यंग अवश्य मिलते है।

नाट्यालंकार

विट द्वारा अनंगलेखा को सदा यौवन सम्पन्ना रहने का आशीर्वाद **आशी**[१] चैत्रशेखर द्वारा प्रतिकूल आचरण करने पर उसके पिता का उसे डाटना, फटकारना, स्वय आश्रमान्तर मे चले जाने का भय दिखाना आदि **क्षोभ**[२], चैत्रशेखर द्वारा प्रिया हरिनीलकेशी के प्राप्ति हेतु चिकित्सिका स्त्री का रूप बनाकर उसके घरवालो को धोखे मे डाल देना **कपट**[३] तथा चन्दनलता के साथ शारीरिक सम्बन्ध प्राप्त करने की विट की इच्छा **आशंसा**[४] नामक नाट्यालकार है।

लास्यांग तथा शिल्पकांग

भाण में लास्याग बहुत थोड़े है। अनगलेखा तथा विट का उपालम्भ एवं व्यग्य युक्त प्रश्नोत्तरात्मक वार्तालाप **उक्तप्रत्युक्त**[५] लास्याग है।

विट द्वारा मदयन्ती के प्रगाढ आलिगन, अधरपान आदि की इच्छा **आशंसा**[६] चैत्रशेखर द्वारा हरिनीलकेशी के रूप का वर्णन, उसे प्राप्त करने की इच्छा भी **आशंसा**[७] है। चैत्रशेखर का प्रिया के वियोग मे दु खी, पीड़ित एवं सतप्त होना तथा प्रिया हरिनीलकेशी की वियोगदशा का वर्णन **ताप**[८] है।

भाव लहरियाँ

मदयन्ती का प्रगाढ आलिंगन, अमृतरूप अधरपान की इच्छा **रतीहा**[९] भाव है।

---

१. पाण्डुलिपि पृ० २३।
२. पाण्डुलिपि पृ० ६५।
३. पाण्डुलिपि पृ० ८३–८६।
४. पाण्डुलिपि पृ० १२७।
५. पाण्डुलिपि पृ० २३, २४।
६ पाण्डुलिपि पृ० ४५।
७. " " ७३, ७४।
८. " " ७६–७८ तथा ८२–८३
९. " " ४५।

चैत्रशेखर द्वारा हरिनीलकेशी के सौन्दर्य का वर्णन, उसके प्रति उसकी आसक्ति **आकर्षण**[1] तथा विट द्वारा प्रिया चन्दनलता के अंगप्रत्यंग के साथ शारीरिक सम्बन्ध की इच्छा **रतीहा**[2] भाव है।

वीथ्यंग तथा प्रहसनांग

भाण मे भारती वृत्ति के अंग बहुत कम है। आरम्भ मे विट तथा मन्दारिका का उक्तिप्रत्युक्तिपूर्ण वार्तालाप तथा अन्त मे तरलिका एवं विट का प्रश्नोत्तरात्मक सवाद **वाक्केली**[3] है।

रसिक शिखामणि को हर्म्यतल पर देखकर मेरु का तथा वहाँ बैठी हुई तारावली एवं उसकी सखियों को देखकर विद्युत् का भ्रम होना विभ्रान्ति **प्रहसनांग**[4] है।

काव्यालोचन की दृष्टि से इस भाण मे कोई विशेषता नही है। सामान्यतया आविद्ध शैली का प्रयोग हुआ है। चैत्रशेखर द्वारा स्त्री चिकित्सिका का रूप बनाकर हरिनीलकेशी को प्राप्त करने की घटना तो रोचक है किन्तु शेष समस्त वर्णन अत्यन्त साधारण है।

इस प्रकार श्रृंगारसर्वस्व एक चमत्कारहीन साधारण कोटि का भाण है।

---

१. पाण्डुलिपि पृ० ७१; ७२।
२. पाण्डुलिपि पृ० १२७।
३. पाण्डुलिपि पृ० ३० तथा ११५, ११६।
४. पाण्डुलिपि पृ० २५।

श्रृङ्गारकोष-भाण

श्रृंगारकोष भाण के रचनाकार कवि अभिनव कालिदास है। इसमें विट श्रृंगारशेखर द्वारा उत्पलमाला के दर्पणपरिणयोत्सव मे जाकर उसे बधाई देना, उसका अभिनन्दन करना मुख्य कथा है। वर्णना प्रधान वर्ग में आने वाला यह एक लघु आकार का भाण है जिसमे ८० पद्य तथा शेष गद्य हैं।

: पात्र :

स्त्रीपात्र	पुरुषपात्र	
उत्पलमाला—नायिका	श्रृंगारशेखर—विट, नायक	
अनंगलेखा—उत्पलमाला की माँ	पुष्पसेन—उत्पलमाला का पति	
कुन्दलता—इन्द्रसेन की प्रेयसी	इन्द्रसेन—	श्रृंगारशेखर के सखा तथा वेशपथिक
अलकलता—कुन्दलता की छोटी बहिन	चण्डसेन—	
मलयवती—चण्डसेन की प्रेयसी	वसन्तसेन	
मरकतनायिका—मन्दारक की प्रेयसी	माधव	
चन्द्रिका—माधव की प्रेयसी	चन्द्रचूड	
लक्ष्मी—चन्द्रकेतु की प्रेयसी	कलकठ	
काममंजरी—कलकंठ की प्रेयसी	चन्द्रकेतु	
मन्दारलता—श्रृंगारशेखर की बालसखी	मन्दारक	
कान्तिमती, सुलोचना—अन्य गणिकायें		
कालिन्दी—काममंजरी की माँ		
सुन्दरी—सुलोचना की बेटी		

नान्दी

आलोच्य भाण की **द्विपद्यात्मिका नान्दी** के प्रथम पद्य में हरमुकुटवासी बालेन्दु तथा दूसरे मे रतिकालीन विविध भावों से उपेत मुग्धाक्षी के मुख की आशीर्वादात्मक स्तुति है। श्लोकपाद को पद मानने के अनुसार यह अष्टपदा तथा आशीर्वादपरक होने से शुद्धा है। प्रथम अक्षर 'य' लक्ष्मी देने वाला तथा प्रथम गण वृद्धि का द्योतक होने से लिपि तथा गण दोनों ही दृष्टि से यह शुद्धा नान्दी है।

रंगमंच पर आकर सूत्रधार कहता है कि आज हमारा सौभाग्य है जो कम्पा तट निवासी भगवान् मलयांक के वसन्तयात्रा महोत्सव को देखने के लिये कामतन्त्र मे निष्णात पण्डितों का यह समाज उपस्थित हुआ है। इसके मनोविनोदार्थ अभिनव कालिदासकृत श्रृंगारकोष भाण का अभिनय प्रस्तुत करना है। प्ररोचना द्वारा वह कवि तथा काल आदि की प्रशंसा करता हुआ नेपथ्य में पढ़े हुए श्लोक को सुनकर सूचना देता है कि यह मेरा साथी मन्दारक श्रृंगारशेखर की भूमिका ग्रहण कर आ

रहा है। ऐसा कहते हुये सूत्रधार चला जाता है। यहाँ 'एष:' के प्रयोग से पात्र का प्रवेश होने से **प्रयोगातिशय** नामक आमुख भेद है।

कथानक

रंगमंच पर आकर विट शृंगारशेखर प्रातः का वर्णन कर ही रहा था कि उसे स्मरण आता है कि मुझे उत्पलमाला के दर्पणपरिणयोत्सव में अनंगलेखा ने आमन्त्रित किया है। विट वहाँ के लिये चलते हुए प्रिया (सम्भवत कोई अन्य प्रेयसी) के साथ की गयी रति का वर्णन करता है। आगे बढने पर विट को उत्पलमाला से विवाह करने के लिये जाता हुआ पुष्पसेन दीखता है। यह अपनी शीलवती सती पत्नी को छोडकर वेश्या उत्पलमाला से प्रेम करता है। उससे बात करके विट आगे बढता है। अब उसे अपना बालबन्धु इन्द्रसेन तथा उसकी प्रेयसी कुन्दलता मिलते है। कुन्दलता मान किये हुये है। पूछने पर विदित होता है कि इन्द्रसेन ने उसकी छोटी बहिन अलकलता से प्रणय किया था। इसी से यह ईर्ष्याकषायिता हो गयी है। यहाँ से चलने पर विट को कन्दुक क्रीडा करती हुई कान्तिमती तथा चण्डसेन की प्रेयसी मलयवती मिलती है। अब विट को सौध पर वसन्तसेन और पद्मावती मे अक्षक्रीडा होती दीखती है। उन्हे सम्भावित करता हुआ वह आगे बढता है। इसी समय दोपहर हो जाता है। दुपहरी बिताने के लिये विट चन्द्रिका के घर जाता है। चन्द्रिका का ताम्बूल सत्कार स्वीकार करके आगे बढता है।

अब विट को मलयवती के लिये झगड़ते हुये सुन्दरक तथा चण्डसेन दीखते है। चण्डसेन सुन्दरक को मार देता है और आगे कलत्रपत्रिका को लेकर द्विजकुमार कलकण्ठ तथा कालमंजरी की माँ कालिन्दी में झगड़ा होता दीखता है। कलकण्ठ ने कलत्रपत्रिका मे उल्लिखित शर्तें पूरी नही की है। इस झगड़े को शान्त कर विट आगे बढता है। यहाँ उसका बालमित्र चन्द्रकेतु मिल जाता है। वह अपना वैदेशिक वृत्तान्त सुनाते हुये कहता है कि किस प्रकार चन्द्रवती के भय से काचीपुरी से भाग कर भोग तथा मोक्ष की एकमात्र भूमि उज्जयिनी मे पहुँचा। वहाँ वरवर्णिनी को देखकर उस पर मुग्ध हो गया। वहाँ उसकी सखी के घर रहकर कई दिन तक उससे विहार किया। एक दिन उसके पिता ने इस कृत्य पर उसे भर्त्सना दी तो वह अपने पति के पास से समस्त वस्त्राभूषण लेकर भाग आयी। मै भी छिपकर उसे यहाँ ले आया हूँ। विट उस सुन्दरी को देखकर चन्द्रकेतु के भाग्य की प्रशंसा करता है। यहीं विट को उसकी बालसखी मन्दारलता दीख जाती है तथा अन्य सुन्दरियाँ मधुकरिका मृगांकवती आदि भी मिलती है। अनंगलेखा के घर पहुँचकर विट उसे बधाई देता है। विट उत्पलमाला के रूप की प्रशंसा करता है। वह कुछ शरमाती है। विट उसके सौभाग्य का वर्णन करते हुये आशीर्वाद देता है और भाण समाप्त होता है।[1]

---

१. प्रस्तुत भाण का यह कथानक सरस्वतीमहल पुस्तकालय, तंजौर से प्राप्त पाण्डुलिपि के आधार पर है। त्रिवेन्द्रम् में प्राप्त हुई पाण्डुलिपि अपूर्ण है। मद्रास में प्राप्त हुई पाण्डुलिपि के अनुसार शृंगारशेखर उत्पलमाला का पाणि-ग्रहण कर उसे कलत्र बनाता है।

वस्तु

भाण में नायक श्रृंगारशेखर का नायिका उत्पलमाला के उत्सव मे सम्मिलित होना ही आधिकारिक कथानक है। चन्द्रकेतु का कथानक यहाँ गौण है। भाण मे सन्धि निर्माण नही होता।

नाट्यालंकार तथा लास्यांग

विट श्रृंगारशेखर द्वारा अपनी प्रिया (उत्पलमाला के अतिरिक्त) को अखडित यौवना बने रहने का आशीर्वाद **आशीः**[१], विट द्वारा कान्तिमती के मुख मधु का पान करने की इच्छा **स्पृहा**[२], विट द्वारा मलयवती के पूर्वकालिक रति प्रसगो का कथन **आख्यान**[३] तथा इसी प्रकार सुलोचना की चेटी सुन्दरी के साथ की गयी सुरतक्रीडाओं का विट द्वारा कथन भी **आख्यान** है।[४]

इन्द्रसेन के अलकलता में अनुरक्त हो जाने पर उसकी प्रेयसी कुन्दलता द्वारा इन्द्रसेन को डांटना—उसे दण्डित करना **प्रच्छेदक**[५], कादम्बरी द्वारा वीणावादनपूर्वक गायन **गेयपद**[६] तथा युवति समूह द्वारा प्रस्तुत सामूहिक काली नृत्य **पुष्पगण्डिका**[७] है।

भाव

कन्दुक क्रीडा करती हुई कान्तिमती के साथ विट के वार्तालाप तथा उसकी शारीरिक शोभा के वर्णन मे **सौन्दर्यानुभूति**[८], अभ्यंगविधि के कारण शोभासंपन्ना-चन्द्रिका के रूप वर्णन मे **आकर्षण**[९] तथा उत्सव के अवसर पर आये हुये युवति समूह की भिन्न-भिन्न चेष्टाओ एव अंग लावण्य के वर्णन में **आकर्षण** तथा **आनन्दानुभूति** है।[१०]

वीथ्यंग

प्रस्तुत भाण में भारती वृत्ति के अंग बहुत कम हैं। वीथ्यंग तो एक दो मिल भी जाते हैं किन्तु प्रहसनांगों का सर्वथा अभाव है। सुन्दरक और चण्डसेन की लड़ाई में दोनों का एक दूसरे के प्रति उत्तरोत्तर अमर्षपूर्ण उत्तर प्रत्युत्तर **अधिबल**[११] तथा विट का काममंजरी की माँ कालिन्दी के साथ हुआ संवाद **वाक्केली**[१२] वीथ्यंग है।

प्रस्तुत भाण की यह एक व्यक्तिगत विचित्रता है कि यहाँ अन्य भाणों की भाँति नायक उत्पलमाला को कलत्ररूप में प्राप्त नही करता और न किसी प्रकार का प्रेमप्रदर्शन ही होता है। उत्पलमाला के साथ पुष्पसेन के विवाह का सकेत भाण के आरम्भ तथा अन्त में मिलता है।[१३]

काव्य की दृष्टि से इस भाण में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है। इस प्रकार यह एक सामान्य कोटि का भाण है।

१. पाण्डुलिपि पृ० १०। २. पाण्डुलिपि पृ० १६।
३. ,, ,, १७। ४. ,, ,, ३१, ३२।
५. ,, ,, ११–१३। ६. ,, ,, ४६।
७. ,, ,, ४६। ८. ,, ,, १५, १६।
९. ,, ,, २८, २९। १०. ,, ,, ४९, ५० तथा ५३–५५
११. ,, ,, ३३, ३४। १२. ,, ,, ३५–३७।
१३. ,, ,, ८ तथा ५७।

मदनभूषण-भाण

मदनभूषण भाण कवि अप्पा यज्वा की कृति है। इसमे नायक मदनभूषण द्वारा नायिका वकुलमंजरी के प्रथम रंगाधिरोहण महोत्सव मे जाकर उसे प्राप्त करने की कथा मुख्य है। वर्णनाप्रधान वर्ग के अन्तर्गत आने वाला यह एक मध्यम आकार का भाण है। इसमें १३३ पद्य तथा शेष गद्य है।

पात्र

स्त्रीपात्र	पुरुषपात्र
वकुलमंजरी—नायिका	मदनभूषण—नायक
मदनमजरी—वकुलमजरी की माँ	विश्वनाथ भट्ट } नायक के मित्र
मालती—विट की पूर्व प्रेयसी	मदनपाल } नायक के मित्र
वसन्तमालिका—ब्राह्मण विश्वनाथ भट्ट की प्रेयसी	वासन्तिक } नायक के मित्र
	शिखामणि } नायक के मित्र

चम्पक माला
कनकवल्ली
चन्द्रिका
चन्द्रलेखा
पद्मिनी
मजीरणी
} अन्य वारवनितायें

नान्दी

भाण की चतुष्पद्यात्मिका नान्दी में कामिनियों के मुख, नेत्र आदि अगों एवं कामदेव की स्तुति की गयी हे। श्लेष द्वारा यहाँ रामाग अर्थात् राम के अग (रामांग = राम + अंग तथा रामा + अग) की भी स्तुति की गयी है। पद्म एव इन्दु के उल्लेख से यह उतम प्रकार की नान्दी मानी जायेगी। श्लोक पाद को पद मानने के अनुसार यह पोडशपदा एवं आशीर्वादपरक होने से शुद्धा है। आरम्भिक अक्षर 'भ' नायक को क्लेशदायक तथा आरम्भिक गण जगण यद्यपि रुजावह है किन्तु भगवान् राम की स्तुति से सम्बन्धित होने से यह विपरीत फलदायक लिपि और गण भी मगलावह ही माने जायेगे।

प्रस्तावना

रगमच पर प्रविष्ट होकर सूत्रधार भगवान् गौरीमायूरनाथ के वसन्तोत्सव का वर्णन करते हुये इस अवसर पर उपस्थित रसिकों की आज्ञा से मदनभूषण भाण का अभिनय करना चाहता है। पारिपार्श्वक को कवि अप्पायज्वा का परिचय देते हुये प्ररोचना द्वारा कविसमाज आदि की प्रशंसा करता है। इसी समय सूत्रधार का साला

रगनाथ मदनभूषण की भूमिका मे आता है। सूत्रधार उसका वर्णन करते हुये चला जाता है और विट मदनभूषण का प्रवेश होता है।

कथानक

रंगमंच पर आकर विट मदनभूषण प्रभात वेला का सविस्तर वर्णन करते हुए मदनमजरी की पुत्री वकुलमंजरी के प्रथम रगाधिरोहण महोत्सव मे सम्मिलित होने चल देता है। मार्ग मे उसे चम्पकमाला तथा मालती मिलती है। उनसे प्रेमालाप करके आगे बढ़ने पर विट को वृद्ध ब्राह्मण विश्वनाथ भट्ट वेश्या वसन्तमालिका के घर से चुपचाप निकलते दीखता है। वैश्या ने उसे धन के लोभ मे फसा रखा है। यहाँ से चलने पर विट को कन्दुकक्रीडा मे व्यस्त चन्द्रिका मिलती है। अब उसे यज्ञ करते हुये ब्राह्मणो का समाज मिलता है। ब्राह्मणगण शास्त्रार्थ मे व्यस्त है। आगे चलकर विट को रत्नमालिका की माँ जरती मिल जाती है। विट उसकी भयानकता तथा दुष्ट व्यवहार की निन्दा करता है। यही विट को मदिरापान किये हुये मदान्ध युवक समाज दीखता है। उनमे से कोई ज्योतिषी बन जाता है, कोई वैद्य, तो कोई वैष्णव। इस प्रकार ये धोखाधड़ी से लोगो का धन हरते है।

अब विट को मित्र वासन्तिक मिलता है। उसे दुखी चित्त देखकर पूछने पर मालूम होता है कि अपनी प्रेयसी के घर मे घुसकर उसने प्रेमालाप आरम्भ ही किया था कि उसका पति जग गया। विट उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करता हुआ आगे बढ़ता है। इसी समय दोपहर हो जाता है। मदनभूषण काबेरी के तट पर दुपहरी बिताता है। यहाँ से चलने पर विट को योग वशिष्ठ, भागवत, अध्यात्म रामायण आदि की कथा कहते हुए कुछ पौराणिक मिलते है। दूसरी ओर वेदान्त प्रवीण धर्मशास्त्रज्ञ मिलते हैं, अन्यत्र रामानुजीय वैष्णव साधु मिलते है। यही उसका मित्र शिखामणि ब्राह्मण मिलता है। वह बताता है कि नदी तट पर एक युवती को देखकर वह आसक्त हो गया। उसके साथ घर आकर भी कई दिन साथ रहा। युवती ने मुझे अपना मामा बता दिया जिससे बान्धवो को अन्यथा सन्देह न हो। इसके अनन्तर मदनपाल की गृहिणी मिलती है। वह बताती है कि प्रसूति के कारण उसके गलितयौवना हो जाने से उसका पति अन्यासक्त हो गया है। इसी समय विट गौरीमायूरनाथ के मन्दिर में पहुँचता है जहाँ उसे चन्द्रकान्त की पत्नी दीख पडती है। एक बार इसके कटाक्षों से मोहित होकर विट इसके घर गया था। वहाँ यह एक दूसरे प्रेमी से बात कर रही थी। उस प्रेमी को एक कोठरी मे बन्द करके मेरे पास आ गयी। इसी समय उसका पति आ गया तो मुझे भी उसी कोठरी में बन्द करके अपने पति के पास चली गयी। मैने किवाड़ तोड़कर चोर बनकर, इसके कान्त को रस्सी से बांधकर इससे प्रणय किया।

अब विट को वकुलमजरी का भवन दीखता है। उसे देखकर विट उसके सौन्दर्य की प्रशसा करता हुआ अपने को भाग्यशाली समझता है। भरत वाक्य के साथ भाण समाप्त होता है।

वस्तु—

आलोच्य भाण मे विट मदनभूषण की वकुलमंजरी के घर तक पहुँचने की कथा मुख्य है तथा मित्र शिखामणि ब्राह्मण की प्रेम कहानी एव मदन भूषण की चन्द्रकान्त की पत्नी के साथ प्रणय की कहानी गौण है। भाण मे सन्धि तथा सन्ध्यगो का प्राय अभाव है। नाट्यालंकार, लास्याग तथा शिल्पकाग बहुत कम मिलते है। विट द्वारा चम्पकमाला को सदा यौवनवती रहने का आशीर्वाद **आशीः**[1] **विट** तथा मालती द्वारा अपने बचपन के स्नेह सम्बन्धो के प्रसंग मे तत्तद् भावों का स्मरण पूर्वक कथन **आख्यान** तथा विट द्वारा चम्पकमाला, मालती, चन्द्रिका आदि के रूपवर्णन प्रसंग मे उन्हे प्राप्त करने की इच्छा **स्पृहा**[2] नामक नाट्यालंकार है।

नाट्यशाला में विविध प्रकार का वीणावादन, नृत्य, सगीत, आदि का दृश्य **पुष्पगण्डिका**,[3] अप्रसाधितगात्री, वियोगपीडिता मंजीरणी की दशा का **वर्णन आसीन**[4] तथा पत्नी के गलितयौवना हो जाने के कारण मदनपाल के अन्यासक्त होने पर उसकी पत्नी द्वारा शिशु को उपालम्भ देने के बहाने अपनी मनोवेदना कहना, पति को सव्यग्य उपालम्भ देना **प्रच्छेदक**[5] नामक लास्याग है।

विट का चम्पकमाला के प्रति आसक्ति का भाव **आशसा**,,[6] मंजीरणी के प्रति उसकी चाटुकारिता **प्रसक्ति**[7] तथा वकुलमंजरी की प्राप्ति से विट का अत्यधिक प्रसन्न होना **प्रहर्ष**[8] नामक शिल्पकांग है।

भाव

विट द्वारा मालती के सौन्दर्य की प्रशसा, अपने को उसका मधुप बताना, बचपन की मैत्री बताकर उससे अपनी आत्मीयता दिखाना **सौन्दर्यानुभूति**,[9] कन्दुक विहार करती हुई चन्द्रिका की विविध भाव भगियो के वर्णन मे **आकर्षण**[10] तथा वकुलमजरी के असामान्य रूप को देखकर मदनभूषण का उस पर मुग्ध हो जाना **रूपासक्ति**[11] है।

वीथ्यंग तथा लास्यांगः—

विट द्वारा ब्राह्मणों के सुन्दर वैदिक आचार की निन्दा, **संक्रान्ति**, पर्वकाल तथा स्त्रीगमन का निषेध आदि गुणो को दोष मानना, तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए कामशास्त्र, स्त्री संपर्क, शृगार एव सुरतानन्द का प्रतिपादन आदि दोषों को भी गुण

---

१. पाण्डुलिपि पृ० ३५।
२. पाण्डुलिपि पृ० ३२, ३६, ४३;
३. पाण्डुलिपि पृ० ६४, ६५;
४. पाण्डुलिपि पृ० ७४—७६;
५. पाण्डुलिपि पृ० ६१, ६२;
६. पाण्डुलिपि पृ० ३२;
७. पाण्डुलिपि पृ० ७७।
८. पाण्डुलिपि पृ० १०३।
९. पाण्डुलिपि पृ० ३७, ३८।
१०. ४३, ४४।
११. पाण्डुलिपि पृ० १०२।

बताना **मृदव**[1] वीथ्यग है। वियोगिनी मंजरणी तथा विट का वार्तालाप प्रश्नोत्तरात्मक होने से **वाक्केली** तथा विट द्वारा शास्त्र, अध्यात्म, ज्ञान, पौराणिक कथाओ का श्रवण आदि गुणो को भी दोप रूप मे वर्णन करना, इनमे निहित उपदेशो और सिद्धान्तों की खिल्ली उडाना **मृदव** वीथ्यंग है।[2]

रत्नमाला की जरती को देखकर विट को पिशाचिक का भ्रम हो जाना **विभ्रान्ति**[3] तथा शिखमणि ब्राह्मण द्वारा अपना ब्रह्मणोचित आचार छोड़कर पर स्त्रीगमन करना **अवलगित** प्रहसानाग है।[4]

भाण में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही है। काव्यालोचन एवं कथानक दोनो ही दृष्टि से अत्यन्त सामान्य कोटि का भाण है।

---

१. एते छान्दसस्वभावा· स्वाधीनेष्वपि दारेषु अधुना संक्रान्तिः, इदानीं पर्वकालः, अद्य दिवाप्यनृतुरय कालः—इत्यादि दोषोद्घाटन पुरस्सरमेव वृथैव नयन्ति पुरुषायुषम्

तदेतदेव पौरुषं जातस्य अध्येतव्यमेव कामशास्त्रम्, अंगीकर्तव्य एव परोपकार-शीलो युवतिजन·, आस्वादनीय एव रसः श्रृंगारः, अनुभोक्तव्यमेव सुरतसुखम्। (पाण्डु-लिपि पृ० २८, २९)

२. पाण्डुलिपि पृ० ८०-८५।

३. पाण्डुलिपि पृ० ४९। ४. पाण्डुलिपि पृ० ८८-८९।

सामान्य भाण

इस शीर्षक के अन्तर्गत आने वाले आरम्भिक २८ भाणों के कथानको, वर्णनों एवं घटनाओं मे पिष्टपेषण है। शेष ५६ भाण प्रायः अधूरे, अपूर्ण, जीर्ण-शीर्ण तथा त्रुटित है। कुछ ऐसे भी है जो केवल प्राचीन मलयालम या नन्दिनागरी लिपियो में है। इनका लिप्यन्तरण सम्भव न होने से तत्तत् प्राच्य विद्या संस्थानो मे उन लिपियो के विशेषज्ञ पडितो की सहायता से लेखक ने उन्हे समझने का प्रयत्न किया। किन्तु इनमे प्रायः कोई भी ऐसा भाण नही मिला जिसमे कोई उल्लेखनीय विशेषता हो। इनमे बहुतों मे तो केवल कुछ शृगारिक वर्णन मात्र है, कथानक है ही नही। जहाँ कथानक है भी वहाँ या तो अपूर्ण और अव्यवस्थित है या फिर एक दूसरे से इतना मिलता-जुलता है कि स्थान एवं व्यक्तियो के नाम मे थोड़ा अन्तर कर देने पर लगभग एक-सा ही लगता है। इसी से इन भाणों का यहाँ विशेष परिचय न देकर उनके आकार प्रकार तथा विशेषता का उल्लेखमात्र कर देना पर्याप्त समझा गया। **रसोल्लास भाण** कवि श्रीनिवासाचार्य की कृति है। इसमे नायक कामशेखर तथा नायिका मुक्तावली है। भाण में शिल्पकांग अधिक है। कवि लक्ष्मी नृसिहाचार्य की कृति **अनंगसर्वस्व भाण** मे ब्राह्मणों की आचारभ्रष्टता एवं ढोग पर अच्छा व्यंग्य है। **कन्दर्पदर्पण भाण** कवि श्रीकण्ठ का है तथा इसमे प्रभावहीन छोटी-छोटी घटनाये है। **रसिकतिलक भाण** कवि मद्‌ुराम (अपर नाम कवि राक्षस) की कृति है तथा इसमें वेशजीवन की झाँकी प्रस्तुत करना मुख्य उद्देश्य है। कवि घनगुरु के भाण **कन्दर्प-विजय** मे आरम्भ और अन्त के कथानक मे कोई समन्वय नही है। कवि वैद्यनाथ कृत **मदनमञ्जरीपरिणय** भाण में राजा नल्लतम्बि शक्करै द्वारा कन्दर्पवल्ली के पाणिग्रहण की मुख्य घटना है। **पञ्चबाण विजय** कवि रगार्य द्वारा निर्मित ऐसा भाण है जिसमे ब्राह्मणो द्वारा वेश्याओं पर धन बहाने की घटना मुख्य है। शिवराम कृष्ण द्वारा निर्मित **अनंगविजय** भाण मे प्रेमी प्रेमिकाओ का सम्बन्ध कराने के लिये भगवान् शिव एव पार्वती स्वय आते है। कवि ने इसे 'मिश्रभाण' बनाने का प्रयत्न किया है। **शृंगाररत्नाकर भाण** मे कवि सुन्दरताताचार्य ने नायक रसिकशेखर तथा नायिका चम्पकवल्ली के प्रणय का अव्यवस्थित कथानक है। रंगनाथ कृत **अनंगतिलक भाण** वरदाचार्य कृत **वसन्तभूषण** भाण एव साम्वशिव कृत **शृंगारविलास भाण** अधूरे एवं अव्यवस्थित है। **रगराजचरित** भाण में कवि श्रीनिवास ने प्रणय कथा के साथ भगवान् रगराज की लीला का संकेत देकर उसे 'मिश्रभाण' बनाया है। इसी प्रकार रामकवि का **मदनगोपाल विलास** भी एक 'मिश्रभाण' है जिसमे मदनगोपाल और राधा सामान्य पात्र होते हुए भी भगवान् कृष्ण और भगवती राधा का प्रतिनिधित्व करते हैं। शठजित् कृत **शृंगारसंजीवन**, वेंकटार्य कृत **चातुरीचन्द्रिका**, पद्‌मनाभ कृत **लीलादर्पण**, श्रीकण्ठ कृत **मदनमहोत्सव** अत्यन्त सामान्य कोटि के भाण हैं। **शृंगार-**

रसभृंगार भाण मे कवि इन्द्रगण्ठिकोड ने वेशवाट, मन्दिर, पूजा आदि प्रसंग को बहुत विस्तृत और नीरस कर दिया है। कवि वेकटनारायण कृत **शृंगारमञ्जरी,** वेकटाध्वरिन् कृत **शृगारदीप**, कवि श्रीनिवास कृत **वसन्ताभरण,** जयन्त कृत **रस-रत्नाकर,** श्रीनिवास कृत **शृंगारचन्द्रिका** एव शथकोप कृत **तरुणभूषण** भाण अत्यन्त सामान्य, अपूर्ण, अव्यवस्थित कृतियाँ है। कवि त्रिविक्रम की कृति **विटनिद्राभाण** मे वेशजीवन का दृश्य उपस्थित करना ही उद्देश्य है तथा यह भाण अपने शीर्षक के अनुरूप नही है। कवि रगार्य की कृति **शृंगारशृंगाटक** के आरम्भ मे केवल पद्य और अन्त मे केवल गद्य भाग है। **मदनसजीवन** भाण के रचयिता कवि घनश्याम हैं। इसमे कथानक प्राय. नही है।

कन्दर्प विजय भाण उद्दण्ड कवि की कृति है। नन्दि- नागरी लिपि में प्राप्त यह एक अधूरा भाण है जिसमे केवल ७ पत्र हैं। **पंचबाण-सिद्धान्त भाण** के रचनाकार श्रीनिवास कवीन्द्र उपनाम बालकवि हैं। ग्रन्थ लिपि मे प्राप्त यह भी एक अधूरा भाण है जिसके मध्य के अनेक पत्र अप्राप्त हैं। **भाणत्रयी** तथा **वर्तमान भाण** के कवि अज्ञात हैं। मलयालम मे प्राप्त ये दोनो ही भाण अधूरे है। **शृंगाराद्वैत भाण** अभिनव कालिदास की कृति है। मलयालम मे प्राप्त २४ पत्रो का यह भाण है तो पूर्ण किन्तु कथानक की दृष्टि से अत्यन्त सामान्य कोटि का है। नन्दिनागरी मे **संकर्षण भाण** अधूरा है। **भाणनाटक** के कवि का नाम भी अज्ञात है। यह प्राचीन मलयालम लिपि मे प्राप्त हुआ है। इसके नाम मे आये नाटक पद से ऐसा लगता है कि यह नाटक की शैली मे लिखा गया हो किन्तु ऐसा नही है। इसकी शैली एव कथानक भाण जैसा ही है। कवि अनन्ताचार्य की कृति **पल्लवशेखर** एक निम्नस्तर की रचना है। **रसिकजनमानसोल्लास, अनंगमगल, रंगनाथ** तथा **शारदानन्द** ये चारो भाण कवि श्रीनिवास की कृतियाँ है। सबके कथानक तथा वर्णन लगभग एक से हैं। **शृंगारतिलक** (राघवाचार्य कृत) तथा **शृगारभूषण** (भट्ट नारायण पडा कृत) सामान्य स्तर के भाण है। भुजग कवि कृत **मदनसाम्राज्य** २३ पत्रों का अधूरा भाण है। अण्णयार्य कृत **रसोदार भाण** मे १९ पत्र तथा तेलगू लिपि है। भास्कर कवि का **वसन्ततिलक** नन्दिनागरी में १८ पत्रों का भाण है। इनका **शृंगारलीलातिलक** नामक एक दूसरा भाण भी है। तेलगू लिपि में प्राप्त **शारदा-तिलक भाण** कवि शंकर की कृति है। शेषगिरि के भाण का नाम भी **शारदातिलक भाण** है। इन दोनों के आकार प्रकार और कथानक भिन्न-भिन्न है। नारायण कवि का **शृंगारविलसित** तथा वेकटरामकवि का **सारस्वतोल्लास भाण** क्रमशः ५६ तथा ८० पत्रों के है। ये कन्नड लिपि मे प्राप्त है। रामचन्द्र कवि के **सरसकविकुलानन्द** तथा **शृंगारसुधाकर** दोनो तेलगू लिपि मे है। यह शृगारसुधाकर अश्वतितिरुनालराम-वर्मा के शृगारसुधाकर से भिन्न है। **शृंगारजीवन** (अवधानसरस्वतीकृत) तथा **शृगारकोश** (गीर्वाणेन्द्र दीक्षित कृत) क्रमश. तेलगू तथा ग्रन्थ लिपियों में हैं। इन दोनों कृतियो के वर्णन एवं कथानक अपेक्षाकृत व्यवस्थित हैं। **अनंगसंजीवन** तथा **शृंगारसजीवन** दोनो ही ग्रन्थ लिपि मे प्राप्त क्रमशः २० तथा २६ पत्रों के कवि वरद

के भाण है। अनन्ताचार्यकृत **शृंगारभूषण** तथा वेंकटाचार्य कृत **शृंगारभूषण** भिन्न-भिन्न भाण है। प्रथम में ३२ तथा द्वितीय मे १५ पात्र है। गोपालराय का **रंगराज भाण** अधूरा है। कविकोटिलिगयुवराज कृत **भद्रकालीकेलियात्रामह भाण**—जैसा कि इसका नाम है भगवती काली की यात्रा के महोत्सव का शृगारप्रधान वर्णन है। यह युवराज तथा रससदन के कर्ता युवराज संभवत एक ही व्यक्ति है। **महिषमंगल भाण** महिषमगलनपूतिरि की कृति है।[1] महिषमगल नामक ग्राम की एक घटना से सम्बन्धित कथानक होने से ही इसका यह नाम पड़ा। **वसन्तोत्सव भाण** (वसन्तराज कृत) तथा **विटराजविजय भाण** (कोचुन्नि भूपालक कृत) मलयालम मे प्राप्त महत्वहीन रचनाये है। **अनंगब्रह्मविद्याविलास** के रचयिता वरदाचार्य है। **कुसुमायुधजीवित** (श्रीरगार्य कृत) तथा **चन्द्ररेखाविलास** (शंकर कृत) मे शृंगारपरक वर्णन ही प्रधान है, कथानक का प्राय अभाव है। नगनाथ का **मदनविलास** तथा कृष्णमूर्तिशास्त्री का **मदनाभ्युदय** दोनो ही नामानुकूल केवल शृगारपरक वर्णनो के सग्रहमात्र है। कवि वेकट का **रसिकजनरसोल्लास भाण** भी लगभग इसी कोटि का है। **रतिभूषण** तथा **वल्लविपल्लबोल्लास** भाणों के कवि अज्ञात हैं। इन भाणो के आरम्भ तथा मध्य के कुछ पत्र भी अप्राप्त है। नृसिह सूरि का **वसन्ततिलक** वरदाचार्य के वसन्ततिलक से भिन्न है। तिरुमल्लाचार्य का **विलासभूषण** तथा विजुमूरि राघवाचार्य का **शृंगारदीप** क्रमशः तेलगू तथा ग्रन्थ लिपि मे प्राप्त शृंगारपरक वर्णन मात्र है। **शृंगारपवन** (वैद्यनाथकृत) तथा **शृंगारमञ्जरी** (वामन भट्ट बाण कृत) मे कथानक कुछ व्यवस्थित है। कवि विश्वनाथ के भाण का भी नाम **शृंगारमञ्जरी** है। **शृंगाररस भाण** का कर्ता अज्ञात है। देवनागरी लिपि मे प्राप्त यह भाण कुछ असगत वर्णनों का सग्रह-मात्र है। रामकवि का **शृंगाररसोदय** तथा अविनाशीश्वर का **शृंगारराजतिलक** महत्वहीन, पिष्टपेषित वर्णनो से युक्त है। रामानुज कवि के **शृगारशेखर** भाण में शृंगार के साथ ही कुछ दार्शनिक पद्यों का भी पुट है। अनन्तनारायण सूरि का **शृंगारसर्वस्व** तथा स्वामिशास्त्री का **शृंगारसर्वस्व** नल्ला कवि के शृंगारसर्वस्व से भिन्न है। किन्तु इनके वर्णन नल्ला कवि के वर्णनों की अपेक्षा अत्यन्त निम्न कोटि के है। कवि रंगनाथ महादेशिक का **संपत्कुमारविलास भाण** भी एक अत्यन्त सामान्य रचना है।

---

१. किन्तु 'बिबिलियोग्राफी आफ् संस्कृत ड्रामा' के अनुसार इस भाण के कवि का नाम शंकरलाल है।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार-भूमिका

१. भाणों में नाट्यतत्व

२. काव्यालोचन

३. सामाजिक स्थिति

४. मनोरंजन के साधन

५. भाण रचना का लक्ष्य तथा निष्कर्ष

उपसंहार

पूर्व अध्यायो के अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि भाण साहित्य की ये कृतियाँ विभिन्न युग एव विभिन्न कलाकारो की निर्मितियाँ है । इनमे दृष्टिगोचर होने वाली पृथक्-पृथक् प्रवृत्तियाँ ही प्रस्तुत लेखक द्वारा आस्थापित भाणो के वर्गीकरण की आधार शिला है । लगभग २५०० वर्षो की महती कालसीमा मे लिखे गये भाणो के अतिरिक्त अनेक भाणो का उल्लेख लक्षणकारो, प्रसिद्ध टीकाकारो एव इतिहास-कारो द्वारा किया गया है ।[1] खेद है कि लेखक के दुर्भाग्यवश इन विद्वानो द्वारा उल्लिखित लक्ष्य ग्रन्थो की उपलब्धि न होने के कारण आचार्यों द्वारा कृत लक्षणो का तदुल्लिखित लक्ष्यो मे समन्वय का यथावत् निगमन करने के लिए अपेक्षित सामग्री से वचित ही रहना पड़ा है । ऐसी स्थिति मे लेखक के लिए उपलब्ध लक्ष्यो का विश्ले-षण कर उनमे प्रतिबिम्बित कवि प्रवृत्तियों का मापतोल कर लक्ष्य एव लक्षणो के बीच पूर्णरूपेण समन्वय करने का प्रयास कठिन है । तथापि भाण साहित्य के इस विशाल क्षेत्र मे मिली हुई विपुल सामग्री को अब निष्कर्ष के रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

लक्ष्य लक्षण समन्वय–एक परीक्षण

लक्षणकारों द्वारा प्रस्तुत भाण का लक्षण लक्ष्य भाणों मे समग्ररूप से घटित न होने से साहित्य जगत् मे एक बड़ी विचित्र असामजस्य की स्थिति उत्पन्न हो गई है । लक्षणकारों के अनुसार भाण मे अपने समस्त अगो के सहित मुख तथा निर्वहण सन्धियाँ, दशों लास्याग, वीर और शृगार रस तथा भारती वृत्ति का बहुतायत से प्रयोग होना चाहिए किन्तु जैसा कि आगे नाट्य तत्व, रस आदि के विवेचन मे देखा जायेगा लक्ष्य मे-विशेषकर व्यग्य एव वर्णनाप्रधान वर्ग के भाणों मे-ये लक्षण घटित नही होते ।

प्रश्न यह है कि भरत से लेकर विश्वनाथ पर्यन्त सभी नाट्य शास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत की गई भाण की प्रायः एकसी परिभाषा के साथ ईसापूर्व ५ वी शती से लेकर २० वी शती तक के लगभग पच्चीस सौ वर्षों के इस दीर्घ आयाम मे लिखे गये सैकड़ों

---

१. र० सु० : **शृंगारमंजरी**

ना० ल० र० को० : **पत्रलेखा,ललितानागर**

सा० द० : **लीलामधुकर**

भा० प्र० : **वीणावती** (भाणी), **नन्दिमाली** (उपरूपक भाण)

(**कामदत्ता** भाणिका)

भाणों का समन्वय क्यों नही होता ? क्या परिभाषा मे कोई त्रुटि थी ? पर इस पर विश्वास नही होता । क्योकि एक दो नही, लगभग दशो आचार्यों द्वारा भिन्न-भिन्न कालमे एक सी ही परिभाषा दी गई है । तो क्या कवियों ने जानबूझकर आचार्यों की उपेक्षा की ? यह भी सभव नही । क्योकि उपलब्ध सभी भाणों का उनके वर्गों के अनुसार गठन एक-सा ही है । तो फिर इस वैषम्य का कारण क्या हो सकता है?

ऐसा प्रतीत होता है कि लक्षणकारों द्वारा वस्तु योजना एवं रस के सम्बन्ध मे लक्षण इगित मात्र हैं। कवियो ने अपने ढग से उसमे परिवर्धन और परिवर्तन स्वीकार किया है । अत समस्त उपलब्ध भाण साहित्य के विवेचन से लक्षणकारो द्वारा प्रस्तुत लक्षणों को ग्रहण करके कतिपय वास्तविक लक्षण प्रस्तुत करना परमावश्यक है ।

भाणों में नाट्यतत्व[1]

(क) नान्दी

भाणों में नान्दीपाठ के सबन्ध मे आचार्यों ने कोई व्यवस्था नही दी है। किन्तु प्रत्येक भाण में नान्दी की योजना है। कवियों ने सुविधानुसार चतुष्पदा, अष्टपदा, द्वादशपदा तथा षोडशपदा नान्दी का भी प्रयोग किया है। सभी भाणों मे लिपि एवं गण की दृष्टि से शुद्धा, नमस्कारात्मक तथा आशीर्वादात्मक नान्दी का अधिक प्रयोग हुआ है। भाणों मे प्राय. शुद्धा नान्दी ही अधिक मिलती है। केवल धूर्तविटसवाद तथा उभयामिसारिका में अभिधा द्वारा वस्तुनिर्देशात्मक नान्दी है। वस्तु निर्देशात्मक नान्दी वैसे परंपरा में श्रव्य काव्यो में अधिक मिलती है। दृश्यकाव्यों मे श्लेष या समासोक्ति के रूप मे ही मिलती है और उसे पत्रावली कहा जाता है जैसे अभिज्ञान शाकन्तलम् आदि मे। किन्तु यह परंपरा है, ऐसा कोई नियम नही है। न तो अभिधा द्वारा श्रव्य-काव्यों मे वस्तुनिर्देशात्मक नान्दी का विधान है और न दृश्य काव्यों मे उसका निषेध। अत धूर्तविटसवाद तथा उभयामिसारिका की यह विशेषता अपवादरूप है।

इस प्रसग में एक बात और उल्लेखनीय है। चतुर्भाणी के चारों भाणो के आरभ मे 'नान्द्यन्ते तत. प्रविशति सूत्रधार.' यह वाक्य आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन भाणों में रंगमच पर नान्दी नही होती। किन्तु ऐसा है नही। इस वाक्य के बाद प्रवेश करके सूत्रधार मंगल पाठ करता है जो नान्दी ही होता है। तो फिर 'नान्द्यन्ते तत. प्रविशतिसूत्रधारः' मे नान्द्यन्ते का क्या अर्थ हुआ ? क्या एक बार नेपथ्य में नान्दी करने के बाद पुनः रगमंच पर सूत्रधार द्वारा भी नान्दी पाठ कराया जाता है ? किन्तु परंपरा के अनुसार दो बार नान्दी कही होती नही है। अत· प्रतीत होता है कि 'नान्द्यन्ते तत.' इस वाक्य मे नान्दी का अर्थ मंगलाचरण नहीं अपितु ढक्का या घण्टानाद है[2] जिस प्रकार नाटक, सिनेमा आदि के पूर्व आजकल भी उनके आरंभ होने की सूचना घंटी बजाकर दी जाती है वैसे ही इन भाणो के समय मे भी इस प्रकार घंटा (ढक्का) बजाकर रूपक आरंभ करने की प्रथा रही होगी[3]। तभी तो भास के रूपकों मे 'नान्द्यन्ते तत प्रविशति सूत्रधारः' इस वाक्य के बाद आकर सूत्रधार मंगलाचरण के रूप मे नान्दी पाठ करता है।

---

१. उपसंहार के इस प्रसग में विवेचन का क्रम वही रक्खा गया है जो अध्याय ३—६ तक प्रत्येक भाण के अध्ययन मे है। अर्थात् नान्दी, प्रस्तावना, वस्तु योजना-नाट्यतत्व, चरित्र तथा रस का प्राय. क्रमश. विवेचन किया गया है।

२. दुन्दुभिस्त्वानको भेरी झम्भा नासूश्च नान्द्यपि (वैजयन्ती कोष)

३. भास के नाटकों मे भी नान्दी के बाद ही सूत्रधार का प्रवेश होता है। अतः वहाँ भी 'नान्द्यन्ते तत. प्रविशति सूत्रधारः' में नान्दी का अर्थ घण्टा या ढक्का ही लेना चाहिये।

संस्कृत जगत् में नान्दी के संबन्ध में अब तक दो प्रकार की परंपरायें प्रचलित है। एक तो यह कि रूपक के आरंभ मै सर्वप्रथम नान्दी के पद्य होते है । अनन्तर 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' इस वाक्य के बाद सूत्रधार आकर रूपक का परिचय देता है-जैसा कि अभिज्ञान शाकुन्तल, मुद्राराक्षस, उत्तररामचरित आदि प्रसिद्ध नाटकों मे है । दूसरा यह है कि रंगमंच पर नान्दी होती ही नही । रूपक का आरंभ ही 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार.' इस वाक्य से होता है-जैसा कि चतुर्भाणी के चारो भाणो और भास के कतिपय रूपको मे मिलता है। पर भाणों में नान्दी का एक तीसरा नया प्रकार भी मिलता है और वह यह कि आरम्भ मे नान्दी के पद्य तो होते ही है, 'नान्द्यन्ते सूत्रधार.' के बाद सूत्रधार भी आकर एक दो आशीर्वादात्मक पद्य पढ़ता है। यह परम्परा भाणो में अत्यधिक प्राप्त होती हैं।[1]

भाणो की नान्दी में अवसरानुकूल ही कही शिवपार्वती, रामसीता, विष्णु-लक्ष्मी की प्रथम समागम सम्बन्धी चेष्टाओ, कही कन्दर्प की विविध क्रीडाओं एवं कही मानिनी के प्रणयकोप भरे व्यग्यों का अभिवादन होने से उनका महत्व और भी बढ गया है। कुछ भाणों की नान्दी तो बहुत ही हृदयावर्जक, चमत्कारपूर्ण एवं आह्लादक है।[2]

(ख) प्रस्तावना

भाणो की प्रस्तावना में सूत्रधार अन्य रूपकों की ही भाँति नटी या पारि-पार्श्वक से वार्तालाप करता हुआ भाण तथा उसके कवि का परिचय देता है। प्ररोचना के रूप मे कवि की सुकोमल वाणी, सामाजिकों की सहृदयता, वसन्त, शरद् आदि की सुरम्यता एव अपनी नाट्यदक्षता के वर्णन द्वारा वह दर्शको तथा पाठकों को उन्मुख करता है और अत मे आमुख के कथोद्घात, प्रवृत्तक तथा प्रयोगातिशय भेदों मे किसी एक का आश्रय लेकर मुख्यपात्र (प्रायः नायक) के रगमच पर आने की सूचना देता हुआ स्वय चला जाता है।

अन्य भाणों की अपेक्षा चतुर्भाणी की प्रस्तावना कुछ भिन्न प्रकार की है। इन भाणो में प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' शब्द मिलता है जो सभवतः इनकी प्राचीनता का सूचक है। साथ ही यह स्थापना अत्यन्त छोटी है। इसमे न किसी प्रकार की प्ररोचना है और न भाण एवं कवि का कोई परिचय।[3] सूत्रधार वसत या वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुये पात्र प्रवेश की सूचना दे देता है।

भाणों की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा पात्र प्रवेश की सूचना कथोद्घात आदि आमुख के तीन[4] भेदो के अतिरिक्त कुछ नये ढंग से भी दी गई है। अधिकाश

---

१. कं० वि०, पं० बा० वि०, अ० जीवन, शृं० स० आदि।

२. र० स०, शृ० ति०, पं० बा० वि०, अ० जी०।

३. केवल पा० ता० में सूत्रधार आर्य श्यामिलक की चर्चा भर करता है।

४. आचार्य विश्वनाथ के अनुसार उद्घात्यक तथा अवलगित को लेकर पाँच भेद माने गये हैं (सा० द० ६/३३)

भाणों में[1] सूत्रधार द्वारा भाण एवं उनके कवि का परिचय दे देने के बाद नेपथ्य में भाण का प्रायः कथानायक आप बीती घटना (प्रायः प्रिया वियोग से संबधित) से सम्बन्धित पद्य का वाचन करता है। इस पद्य को केवल सूत्रधार सुनता है तथा दर्शकों को वह परिचय देता है कि यह मेरा सम्बन्धी (मातृश्वसेय, पैतृश्वसेय, श्यालक आदि) अमुक प्रेयसी से वियुक्त, अमुक व्यक्ति की भूमिका ग्रहण कर आ रहा है। ऐसा कहते हुये सूत्रधार चला जाता है और वह कथानायक रगमच पर प्रवेश करके नेपथ्य में पढे हुये उसी पद्य को अथवा गद्य मे कहे हुये उस वाक्य को दुहराता हुआ कथानक का आरम्भ करता है।

इस प्रकार प्रस्तावना मे पात्र प्रवेश की सूचना का यह एक नया प्रकार है जो नाट्य ग्रथो में नही मिलता है। इसे 'चूलिका द्वारा किया हुआ कथोद्घात' कह सकते है। अथवा काव्येन्दुप्रकाश के अनुसार इसे **वलित** नामक आमुख का भेद माना जा सकता है।[2]

मूलरूप मे ग्रन्थलिपि मे लिखे गये प्राय सभी भाणो मे[3] प्रस्तावना अनावश्यक ऋतु वर्णनो तथा उबा देने वाले संवादो से भरी हुई अत्यधिक लम्बी है।

(ग) वस्तु-ग्रथन

कथानक

भाणों की कथावस्तु के सबन्ध में आचार्यों ने केवल इतना कहा है कि वह कल्पित होनी चाहिए। किन्तु वास्तविकता यह है कि कल्पित कह देने मात्र से भाणो के कथानक के स्वरूप का बोध नही होता। जिस प्रकारम हाकाव्य की परिभाषा में आचार्यों ने ऐतिहासिक कथावस्तु के निर्देश के साथ ही यह भी कहा है कि उसमें सन्ध्या, सूर्य, रजनी, इन्दु, प्रदोप, ध्वान्त, वासर, प्रात, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर आदि का विस्तार पूर्वक यथास्थान वर्णन हो[4] उसी प्रकार भाण के कथानक के सम्बन्ध मे भी कुछ विशेष निर्देशों की आवश्यकता थी। प्रायः समस्त भाणों के कथानक मे कुछ ऐसी विशिष्ट घटनाओ एव परिस्थितियो की योजना—वैशिकवृत्त, कलत्रपत्रिका, कन्दुकक्रीडा, मेष, कुक्कुट आदि के युद्ध, प्रकृतिवर्णन आदि—की गई है और वह प्रत्येक भाण मे इतनी अधिक व्यापक है कि उसके सबन्ध मे आचार्यों का मौन खटकता है।

---

१. शृं० ति० पृ० ४–५, मुकुन्दा० पृ० ५, र० स० पृ० ५, शृं० स० पृ० ४, अ० वि० पृ० ११–१३, कं० द० पृ० ७–८, शृ० को० पृ० ५–६, शृ० र० पृ० ५–६, कं० वि० पृ० ६–७।

२. लाज ऐण्ड प्रेक्टिस आफ संस्कृत ड्रामा : एस० एन० शास्त्री, पृ० ६०।

३. अ० विजय, कं० वि०, पं० बा० वि०, शृं० र० आदि।

४. सा० द० ६/३२२

केवल एक अंक और दो सन्धियों का विधान होने से भाणों का कथानक छोटा होता है। अतएव अधिकांश भाणों मे प्रायः आधिकारिक वृत्त ही होता है, प्रासंगिक कम। वर्णनाप्रधान वर्ग मे केवल तीन चार भाणो में प्रासगिक वृत्त है। व्यंग्य प्रधान वर्ग में किसी भाण में भी प्रासंगिक वृत्त नहीं है। भाव तथा संघर्ष प्रधान वर्ग के अधिकांश भाणों मे पताका या प्रकरी अथवा दोनो ही मिलते है। वर्णना प्रधान वर्ग के अनेक भाणों में कुछ छुटपुट प्रणय प्रसग भी वर्णित है जिनका आधिकारिक वृत्त से कोई सीधा सबन्ध नही है। अत उन्हे पताका या प्रकरी न मानकर गौण कथानक कहना अधिक उपयुक्त होगा।

सन्धि तथा सन्ध्यंग

लक्षण के अनुसार भाणो मे मुख तथा निर्वहण सन्धियाँ अपने समस्त अंगों के साथ होनी चाहिए।[1] परन्तु लक्ष्य मे स्थिति कुछ विपरीत है। सघर्ष, भाव तथा व्यग्य प्रधान वर्ग के तो अधिकाश भाणों मे दोनों सन्धियाँ बनती है तथा यथावसर उनके अंग भी मिलते हैं। मुख सन्ध्यंगों मे उपक्षेप, परिकर तथा परिन्यास ही अधिक मिलते है, विलोभन बहुत कम प्राप्त हुआ है। शेष आठ अंग प्रायः नही मिलते। निर्वहण सन्धि के अधिकांश अंग प्राप्त होते है। केवल कृति, उपगूहन तथा पूर्वभाव प्राय नही मिलते। दशरूपक के प्रथम प्रकाश मे धनिक ने अपनी टीका मे प्रत्येक सन्धि के अगों की सांगोपाग सोदाहरण व्याख्या के अन्त में कुछ अत्यन्त आवश्यक अगों की परिगणना की है। तदनुसार संघर्ष, भाव तथा व्यग्य प्रधान भाणों मे भी आवश्यक अंग ही मिलते है। लक्षण के 'मुखनिर्वहणे सागे' मे 'सागे' पद के अर्थ मे भी समस्त अग न लेकर काव्यगत न्याय निर्णय (पोइटिक जस्टिस्) की दृष्टि से यथापेक्षित अगो का समावेश ही अपेक्षित है।

किन्तु वर्णना प्रधान वर्ग के भाणो मे यह परम्परा सर्वथा टूटी हुई मिलती है। इन भाणों का गठन ही कुछ इस प्रकार का होता है कि अधिकाश भाणो में न तो कोई सन्धि बनती है और न कोई सन्ध्यग। नायक प्रायः निमन्त्रित होकर नायिका के प्रथमरगाधिरोहण महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चल देता है और मार्ग मे वेशवाटी मे अनेक गणिकाओ, पूर्वप्रेयसियो से प्रणयालाप करता हुआ गन्तव्य पर पहुँच जाता है तथा नायिका को कलत्रपत्रिका-प्रदान पूर्वक अथवा बिना कलत्र-पत्रिका के भी ग्रहण करता है। इन भाणो के अध्ययन से ऐसा लगता है जैसे उन्मुक्त प्रणय व्यापार तथा गणिकाजीवन का विशद वर्णन ही इनका मुख्य उद्देश्य हो, नायक का उत्सव में जाना तथा नायिका को प्राप्त करना गौण। इस प्रकार भाण की परिभाषा में अगों सहित मुख तथा निर्वहण सन्धि का विधान होते हुए भी वर्णना प्रधान भाणों में उनका प्रायः अभाव है। हाँ, प्रत्येक भाण की समाप्ति पर 'उपसहार' तथा 'भरत वाक्य' के रूप में 'प्रशस्ति' ये दो निर्वहण सन्ध्यंग अवश्य परम्परागत रूप

---

१. 'मुख निर्वहणे सागे

में मिलते हैं। संभवतः रचना की समाप्ति सूचक होने से ही कवियो ने इन्हें ग्रहण किया हो, सन्ध्यग के रूप में नही।

सन्ध्यन्तर

२१ सन्ध्यन्तरों में भाणो में प्रत्युत्पन्नमतित्व, साहस, तथा ह्री का प्रयोग अधिक मिलता है।

नाट्यालंकार शिल्पकांग तथा भाण्यंग

आचार्यों द्वारा भाण की परिभाषा में नाट्यालकारों की स्थिति का स्पष्टतः अभिधान न होने पर भी नाट्यमात्र में उनका विधान होने से भाणो मे भी वे पाये जाते है। सभी वर्गों के भाणो में नाट्यालकारों की पर्याप्त सख्या मिलती है। तैंतीस नाट्यालकारो मे भाणों मे जिनका अधिक प्रयोग हुआ है वे हैं—आशी, उत्प्रासन, स्पृहा, पश्चात्ताप, आशंसा, अध्यवसाय, साहाय्य, उत्कीर्तन, आख्यान, प्रहर्ष तथा उपदेशन। इनमें भी आशीः स्पृहा, आशसा, उत्कीर्तन तथा आख्यान का प्राय प्रत्येक भाण मे बहुतायत से प्रयोग हुआ है। जो भाण कथानक की दृष्टि से जितना ही अधिक पूर्ण है उसमें उतने ही अधिक नाट्यालकार मिलते हैं। इसीसे संघर्ष, भाव तथा व्यग्यप्रधान वगो के भाणों मे अधिक नाट्यालंकार मिलते है और वर्णनाप्रधान वर्ग के भाणो में कम।

शिल्पक उपरूपक है। इसमें चारों वृत्तियों का विधान है। अतः भारतीवृत्ति मे रहने वाले शिल्पकांग शिल्पक की ही भाँति भाण में भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त २७ शिल्पकागो में अधिकांश ऐसे हैं जो न केवल शिल्पक मे अपितु सभी रूपकों मे पाये जाते हैं। माणों मे सामान्यतया आशंसा, ताप, प्रसक्ति, विलाप, वाष्प, प्रहर्ष तथा प्राप्ति शिल्पाकांग अधिक मिलते हैं।

भाणी या भाणिका उपरूपक के उपन्यास आदि सात अंग होते हैं। भाणों में इन भाण्यंगों का प्राप्त होना स्वाभाविक है। किन्तु विन्यासा समर्पण तथा सहार के अतिरिक्त शेष अंग भाणों मे प्रायः नहीं मिलते।

लास्यांग

लक्षणकारों ने भाणों में दशों लास्यागों का होना आवश्यक बताया है।[1] किन्तु पर्यालोचन से स्पष्ट है कि किसी भी भाण मे सभी लास्याग प्राप्त नही होते। मुकुन्दानन्द तथा पद्मप्राभृतक जैसे संघर्षप्रधान भाणो मे भी—जहाँ कथानक के सुसगठित, विकसित तथा संघर्षमय होने के कारण लास्यागों की संभावना अधिक है–पाँच या छः से अधिक लास्यांग नहीं मिलते। यह बात दूसरी है कि एक ही लास्याग की अनेक बार आवृत्ति हुई हो। भाव तथा व्यंग्य प्रधान वर्ग के भाणों की भी यही स्थिति है। वर्णनाप्रधान वर्ग मे रससदन, वसन्ततिलक, अंनगजीवन तथा श्रृंगारभूषण भाणों में अपेक्षाकृत अधिक लास्यांग मिलते हैं। किन्तु इस वर्ग के शेष भाणो मे कुछ में तो दो दो तीन तीन मिलते हैं और कुछ में उनका भी अभाव है। भाव प्रधान वर्ग में

एक, व्यंग्यप्रधान वर्ग में भी एक तथा वर्णनाप्रधान वर्ग मे अधिकाश ऐसे भाण हैं जिनमे लास्याग नहीं है।

इस प्रकार आचार्यों द्वारा प्रस्तुत भाण की परिभाषा में दी गई दशों लास्यागों की स्थिति लक्ष्यों मे पूर्ण रूप से प्राप्त नही होती। लक्षण और लक्ष्य में इतना वैषम्य चिन्त्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि परिभाषा के 'लास्यागानि दशपि च' इस वाक्य के 'अपि' का अर्थ अवधारण न होकर समुच्चय है।[1] अर्थात् लास्यांग दश भी हो सकते है। तदनुसार दशो लास्यागो का प्रत्येक भाण मे प्राप्त होना अभिप्रेत नही है।[2]

भाणो में जो लास्याग बहुतायत से मिलते है वे है गेयपद, स्थितपाठ्य, आसीन, पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक तथा उक्तप्रत्युक्त। इनमे भी प्रच्छेदक तथा उक्तप्रत्युक्त का प्रयोग तो प्रत्येक भाण में अनेक बार हुआ है। त्रिमूढक, सैन्धव तथा द्विगूढक का प्रयोग अत्यन्त कम हुआ है। उत्तमोत्तमक प्राय. प्रश्नोत्तरात्मक होकर उक्तप्रत्युक्त में अन्तर्भूत हो जाता है।

आचार्य शारदातनय द्वारा स्थापित ग्यारहवाँ लास्याग 'भाविक' भाणो में प्रायः नही है। कवि वरद के अनग जीवन भाण मे केवल एक स्थान पर इसका निदर्शन मिलता है।

(घ) पात्र

परिभाषा के अनुसार तो भाण मे निपुण विट द्वारा स्व या पर–अनुभूत धूर्तचरित्र का वर्णन किया जाना विहित है। अतएव नियमानुसार विट या नायक ही प्रधान पात्र होता है। भाणों मे बिना किसी अपवाद के विट अथवा नायक को धीरललित प्रकृति का चित्रित किया गया है। यह प्रायः अत्यन्त मृदु, प्रेमप्रवण तथा रसिक होता है।

जैसा कि इस प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे निर्दिष्ट किया गया है। भाणों में अनुनायक भी मिलता है। पताका नायक को जब नायक की हित सिद्धि के साथ ही स्वकीय फलान्तर की भी प्राप्ति हो जाती है तो वह अनुनायक कहलाता है। मुकुन्दानन्द मे मयूरक तथा कलहंसक, शृगार तिलक मे मन्दारक, कर्पूरचरित मे चन्दनक, शृगार सर्वस्व मे कामन्तक, रससदन मे ब्राह्मण पुत्र सुकुमार तथा शृगारस्तवक मे विधाधर अनुनायक है।

पताकानायक तथा अनुनायक के अतिरिक्त पितृधन को कामयज्ञ मे स्वाहा कर देने वाले वेशवाट के पथिक कुछ ब्राह्मणपुत्र, वणिक्पुत्र तथा अन्य रसिक जन भी कथानक के विकास में सहायक होते हैं।

१. गर्हासमुच्चयप्रश्नशकासंभावनास्वपि" (अ० को० पृ० ३४६ श्लोक २५८)

२. खेद है 'दशापि' में 'अपि' का अर्थ धनिक आदि टीकाकारों ने भी केवल अवधारण किया है।

भाणों मे नायिका प्रायः वेश्या हीहोती है–विशेषकर भाव, व्यंग्य तथा वर्णना प्रधान वर्ग मे। वर्णनाप्रधान वर्ग के भाणों मे प्रथमरंगाधिरोहण आदि उत्सवों पर किसी प्रसिद्ध वारागना की छोटी बहिन या पुत्री नायक को नायिका के रूप मे प्राप्त होती है। भावप्रधान भाणों में नायक के एक दो प्रतिद्वन्द्वी भी दिखाये जाते है किन्तु नायिका का अनन्य अनुराग नायक के प्रति ही होता है। वारागना होते हुए भी इन नायिकाओ का किसी अन्य व्यक्ति से शारीरिक सम्बन्ध नही दिखाया गया है । एक निश्चित अवधि तक विवाहिता जैसा ही उनका आचरण होता है। नायिका के अतिरिक्त शेष वारांगनाओ का शरीरिक सम्बन्ध अन्य व्यक्तियो से भी दिखाया गया है।

संघर्ष प्रधान भाणो में वारवनिताओं के अतिरिक्त परोढा कुलबधुये भी नायिका है। मुकुन्दानन्द मे मजरी, पंचायुधप्रपंच में कलहंसलीला तथा शृगारतिलक में हेमांगी परोढाये हैं

इसके अतिरिक्त स्त्री पात्रों में वेश में रहने वाली अनेकों वेश्यायें, परिचारिकायें, दूतियाँ, सन्यासिनियाँ तथा तपस्विनियाँ भी कथानक के उन्नयन तथा विकास में सहायक होती हैं

(ङ) रस

प्रायः सभी आचार्यों के अनुसार भाण में वीर और शृंगार रस होना चाहिए। किन्तु लगभग शताधिक भाणो के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भाणो मे वीर रस का अंगी रस के रूप में अभाव है। केवल धूर्तविटसंवाद में वीर मिलता है किन्तु वह भी उसके प्रसिद्ध चारों भेदों में से कोई नही है । कामतन्त्र के सिद्धान्तों का उपदेश, उनकी व्याख्या होने से उसे 'पाण्डित्य वीर' के अन्तर्गत माना गया है। शेष किसी भाण मे वीर रस नही है। इस प्रकार आचार्यो द्वारा प्रतिपादित होने पर भी लक्ष्य मे वीर रस अप्राप्त है । सभवतः लक्षणकारों के समय वीर रस प्रधान भाण रहे होंगे जो इस समय उपलब्ध नही हैं। परन्तु भाणकारो की प्रवृत्ति को देखते हुए वीररस प्रधान भाणों की उपलब्धि की बात केवल आशंसा मात्र है।

शृंगार रस की समस्या और भी जटिल है। केवल संघर्ष तथा भाव प्रधान वर्ग के भाणों मे ही आलबन, उद्दीपन, अनुभाव तथा संचारीभाव आदि सभी अंगो से पुष्ट शृंगार रस मिलता है, उसकी पूण अभिव्यक्ति होती है । किन्तु व्यग्य तथा वर्णना प्रधान वर्गों के भाणो मे—जिनकी संख्या बहुत अधिक है—परिपुष्ट शृंगार रस की अभिव्यक्ति नहीं होती। क्योकि वहाँ रस परिपोष की सामग्री अपर्याप्त है। इन भाणो (व्यंग्य एवं वर्णनाप्रधान) का कथानक स्वल्प होता है । नायक किसी प्रथमरंगाविरोहण आदि उत्सव में सम्मिलित होने को चलता है। वेशवाट मे उसकी भेंट अनेक वारवनिताओं, रसिक कुलवधुओं तथा अपनी पूर्व प्रेयसियो से होती है। किसी से नर्मालाप करते हुए, किसी को अपने पुराने संबन्धों का स्मरण कराते हुए तथा किसी के गुप्त रति सबन्धों का रहस्य खोलते हुए वह उस उत्सव में पहुँच जाता है। वहाँ नायक या तो स्वयं कलत्रपत्रिका देकर प्रथमरंगाधिरूढा उस तरुणी

को कुछ समय के लिए कलत्ररूप में ग्रहण कर लेता है अथवा एक गण्यमान्य अतिथि के रूप में उत्सव की शोभा बढाता है । वस्तुत उसका उत्सव में जाना तो एक निमित्तमात्र होता है । भाण का प्राण तो नायक (प्राय विट) द्वारा सामाजिक गुप्त रति रहस्यो का उद्घाटन तथा रमणियों के साथ उसके नर्मालाप के प्रसग है। व्यग्य एवं वर्णनाप्रधान भाणो मे १८ वी तथा १९ वी शती मे लिखे गये ऐसे लगभग सौ भाण है जिनमे इसी प्रकार का कथानक है। इतने अधिक कवियो का भाण की इस प्रकार की विधा के प्रति प्रवृत्त होना इस बात का द्योतक है कि साहित्य मे अवश्य कोई ऐसी परम्परा रही होगी जिसमे रस निष्पति के बिना भी फुटकर छोटे छोटे दृश्यो में कुछ विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति तथा समाज की थोथी मान्यताओं एव ढकोसलों का चित्र उपस्थित करना ही जिनका उद्देश्य रहा होगा ।

प्रश्न यह है कि इन (व्यग्य तथा वर्णनाप्रधान) भाणो मे–जहाँ उपयुक्त सामग्री के अभाव मे विभाव, अनुभाव और सचारी के सकलित रूप से शृगार रस की निष्पत्ति नही होती–क्या माना जाये ? काव्य होने के लिए रसात्मकता एव चमत्कार का होना आवश्यक है । तो क्या भाणो का यह इतना विपुल साहित्य काव्य कोटि मे नही आता ? क्या इसमे कोई चमत्कार, कोई भाव नही है ? नि सन्देह हमारे आचार्य मनोविज्ञान के अच्छे वेत्ता थे । उन्होंने अधिकाश मनोभावों एवं मानसिक स्थितियो पर विचार किया है । तेंतीस प्रकार के संचारी भाव इसी प्रकार के मनोभावों के निदर्शन हैं । परन्तु क्या इन भावों के अतिरिक्त अन्य भाव नहीं है ? आचार्यों ने किसी भाव को रस पदवी तक पहुँचाने के लिए अनेक नियमो तथा व्यवस्थाओ का विधान किया है । उदाहरणार्थ शृगार की निष्पत्ति के लिए उभयावलंबिनी रति का होना आवश्यक है । फिर उसके लिए उद्दीपन भी होना चाहिए अन्यथा वह रतिभाव उभरेगा कैसे ? उस भाव की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के लिए अनुभाव और संचारियो का होना भी आवश्यक है । इतना होने पर वह रतिभाव शृंगार रस के रूप मे परिणत हो पाता है । इस व्यवस्था मे कोई भी कमी, किसी प्रकार का भी अभाव होने से वह शृगार अपुष्ट हो जायेगा । पर क्या आलबन को देखने से लेकर रसनिष्पत्ति पर्यन्त मध्य की कोई अवस्था नही होती ? आलबन को देखने से उसके प्रति जो एक सहज आकर्षण होता है, जो एक सौन्दर्यानुभूति होती है, उसे प्राप्त करने का जो मन मे अभिलाष होता है–उसका स्वतन्त्र रूप से साहित्य मे कोई स्थान नही ? पूर्वकाल में किसी रमणी के साथ प्रणय-प्रसग मे की गई शृगारचेष्टाओ एवं रतिक्रीडाओं का स्मरण, चिन्तन आदि भावों[1] का काव्य मे कोई स्थान नही ?

साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है । समाज में व्यावहारिक जीवन में घटित होने वाली घटना का चमत्कारपूर्ण ढंग से वर्णन किया जाना ही साहित्य

१. यहाँ केवल उन भावो से अभिप्राय है जो तैंतीस संचारियों के अन्तर्गत नहीं आते

है। आदर्श की अपेक्षा साहित्य मे यथार्थ जीवन का चित्रण अधिक अच्छा माना गया है। इसी से आज के एकाकी नाटक, लघुकथाये, प्रयोगवादी तथा प्रगतिवादी काव्य का समाज मे अधिक आदर है। इस साहित्य मे दैनिक जीवन की समस्याओ, मानव की सहजमनोवृत्तियो एव छोटी-छोटी अस्थायी भावलहरियो का वर्णन होता है। आचार्यो की उन पुरानी मान्यताओ के अनुसार रस का अभाव होते हुए भी उच्च कोटि के साहित्य मे इसकी गणना है।

प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन मे देखा जाता है कि मेला, बाजार, रेल, बस आदि की यात्रा, विवाहोत्सव आदि अवसरों पर कोई युवक किसी युवती को देखकर आकृष्ट हो जाता है। किसी न किसी बहाने से वह उसके सामने, आगे पीछे बना रहता है, उससे बात करने की चेष्टा करता है और यहाँ तक कि अवसर मिलने पर वह उस युवती के समक्ष अपना प्रणय अभिव्यक्त कर देता है। उस युवती का कोई आकर्षण युवक के प्रति प्रगट नही होता। इसके बाद पृथक् हो जाते हैं, और सभवत. कभी नही मिलते। यदि इस इतनी ही घटना का रमणीय पदावली मे किसी कवि द्वारा कान्त वर्णन प्रस्तुत किया जाये तो ऐसी घटना का साहित्यिक विवेचन के आधार पर स्थान निर्धारण करना आवश्यक है। सुन्दर रूप को देखकर उसे प्राप्त करने की इच्छा के बिना भी कुछ भावलहरियों का उन्मेष व्यक्ति में होता है। इन भावलहरियो का भी साहित्य मे स्थान होना चाहिए। जीवन मे अधिकाश स्थितियाँ ऐसी ही होती है जहाँ इन भावलहरियों का ही अधिक महत्व होता है।[1]

इस प्रकार व्यग्य एव वर्णनाप्रधान भाणो मे तथा अन्यत्र साहित्य मे भी[2] वर्णित, रस कोटि तक न पहुँचने वाली इन भाव लहरियों के ही चामत्कारिक वर्णन का साहित्य मे क्या स्थान होगा यह एक प्रश्न चिह्न है। आचार्यों की पुरानी मान्यताओ के अन्तर्गत न आने वाले इस प्रकार के साहित्य की कोई नयी विधा बनानी होगी, उसे समुचित स्थान देना होगा। इन भावलहरियो को किसी अन्य

१. वस्तुत: यह केवल शृगार तक ही सीमित नही है वरन् व्यावहारिक जीवन मे रौद्र, वीर, करुण आदि मुख्य रसों की अवान्तर ऊर्मियाँ भी वर्णन का विषय होती है। सड़क पर चलते हुए दो व्यक्तियो की साइकिल टकरा जाती है। दोनो में वाक्युद्ध—यहाँ तक कि कभी-कभी हाथापाई तक की स्थिति आ जाती है। किसी दूर के सम्बन्धी पर आये हुए सकट का समाचार सुनकर व्यक्ति थोड़ी देर के लिए दु खी हो जाता है। क्रोध और शोक के ये भाव क्षणभर के लिए आकर समाप्त हो जाते है। भय और वीभत्स में तो सदा क्षणभर को ही भावोर्मियाँ उठती हैं। इन भावलहिरियो का वर्णन भी आह् लादक होता है।

२. पंडिता क्षमा राव : कथापंचक, कथामुक्तावली
हरिदास सिद्धान्त वागीश : वियोग वैभवम्

उपयुक्त नाम के अभाव में आकर्षण, सौन्दर्यानुभूति, रिरसा, अभिलाष आदि नाम दे सकते है। सर्वाङ्गीण शृगार रस के अभाव मे केवल इन भावोर्मियो का वर्णन भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।[1]

यों तो समस्त भाण साहित्य में किन्तु विशेषकर व्यग्य एव वर्णनाप्रधान भाणो मे इन भावलहरियो का वर्णन विपुल मात्रा मे मिलता है।

(च) वृत्ति

कैशिकी

कैशिकी, सात्वती, आरभटी तथा भारती इन चार प्रकार की वृत्तियो मे शृंगारप्रधान कैशिकी वृत्ति को भरत आदि कुछ आचार्य भाणो मे नही मानते। किन्तु जैसा कि इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय मे विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है—जहाँ विभावादि के द्वारा शृंगारपुष्ट हो रहा होगा, वहाँ तो कैशिकी अपने अगो सहित मिल सकती है, अन्यथा नही। इस दृष्टि से संघर्ष तथा भावप्रधान भाणो के अध्ययन से विदित होता है कि उनमें प्रायः पुष्ट शृगार की अभिव्यक्ति होती है। साथ ही शृंगारप्रधान कैशिकी वृत्ति के आवश्यक अग भी मिलते है। इन भाणो में कैशिकी के नर्म नामक अग तथा उसके भेदों[2] में प्रमुख भेद **शृंगार** के सभी रूप—आत्मोपक्षेप, संभोग तथा मान बहुतायत से मिलते है। न केवल सघर्ष एव भाव प्रधान भाणो मे अपितु व्यंग्य एवं वर्णना प्रधान भाणों मे भी—जहाँ पूर्णशृंगार के अभाव मे कैशिकी नही होनी चाहिए—आत्मोपक्षेप, संभोग तथा मान—नर्म शृगार के ये तीनों ही भेद स्थान-स्थान पर मिलते है। भाणो के वर्ण्य विषय के सर्वथा अनुरूप होने के कारण इन भेदों का मिलना सर्वथा स्वाभाविक है। कैशिकी के अन्य भेदो मे नर्मस्फोट तो प्रायः मिल जाता है। नर्मस्फिञ्ज और नर्मगर्भ नही मिलते।

सात्वती

भाणो में वीररस का अभाव होने के कारण सात्वती वृत्ति तथा उसके सलाप आदि भेद नही मिलते।

आरभटी वृत्ति का अवपात नामक अंग

भाणों में रौद्र एवं वीभत्स रस का प्रसंग न होने से आरभटी वृत्ति का भी यद्यपि अभाव होता है किन्तु इसका **अवपात** नामक अग भाव एवं व्यंग्य प्रधान भाणों

---

१. आचार्यों ने जिन तेतीस सचारी भावों को गिनाया है वे भी क्षणिक भाव लहरियाँ ही है। इन सचारियों में भाणों तथा अन्यत्र मिलने वाली इन भाव लहरियों का समावेश नहीं किया जा सकता।

२. नर्म के तीन भेद—हास्य, शृगार तथा भय।
शृंगार के पुनः तीन भेद—आत्मोपक्षेप, संभोग तथा मान।

के अतिरिक्त शेष प्राय सभी प्रकार के भाणो मे प्रयुक्त हुआ है। जैसा कि नाटक, प्रकरण आदि रूपको में भी होता है—बहुत देर से चलते हुए किसी दृश्य को बदलने या कि उसमे एक नया मोड़ देने के लिए अवपात का सहारा लिया जाता है। तदनुसार भाणों में कथानक के लगभग मध्य मे कभी गजशाला से छूटे हुए गन्धगज द्वारा, कभी वाजिशाला से छूटे हुए अश्व द्वारा, तो कभी उत्पात मचाते हुए बन्दर, ऋक्ष आदि के वर्णन द्वारा ऐसा उपद्रव, भगदड़ तथा भय का दृश्य उपस्थित किया जाता है कि चलते हुए कथा-प्रसग का सिलसिला टूट जाता है। धीरे-धीरे यह उपद्रव भी शान्त हो लेता है और फिर नया वातावरण, नया दृश्य उपस्थित होता है। अवपात का यह प्रसग देना इतना परम्परागत हो गया कि आवश्यकता न होने पर भी कवियो ने उसका समावेश अवश्य किया है। अत. इस प्रकार का दृश्य भाणो के कथानक का अविभाज्य अंग बन गया। किन्तु भाण के लक्षण मे किसी भी आचार्य ने इसका उल्लेख नही किया है। लगता है प्राचीन आचार्यों द्वारा कुछ लक्ष्यो के आधार पर किये गये लक्षणो का अर्वाचीन आचार्यों ने अनुसरण मात्र किया है। भाणो की शैली में बाद मे कुछ परिवर्तन आ गया।

भारती

भाण की परिभाषा मे आचार्यो ने भारतीवृत्ति को प्रमुख स्थान दिया है। भारतीवृत्ति के चार भेद माने गये है—आमुख, प्ररोचना, वीथी तथा प्रहसन। **आमुख** के सम्बन्ध मे प्रस्तावना के प्रसंग मे विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। चतुर्भाणी को छोड़कर प्राय· सभी भाणो मे **प्ररोचना** का वही पिष्टपेपित रूप (कवि, दर्शकगण, नाट्यदक्षता, काल आदि की प्रशसा) मिलता है।[१] इस प्रकार प्ररोचना तथा आमुख तो भाण के आरम्भ होने के पूर्व ही प्रयुक्त होते हैं तथा वैधानिक रूप से उनका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है।

वीथी भारतीवृत्ति का वह भेद है जो भाणो में व्यापक रूप से सर्वाधिक प्राप्त होता है। **वीथी** के १३ भेदो में उद्घात्यक, प्रपंच, वाक्केली, गण्ड, त्रिगत, अवस्यन्दित, असत्प्रलाप, मृदव, व्यवहार तथा छल का प्रयोग प्राय. हुआ है। इनमे भी उद्घात्यक, अवस्यन्दित, प्रपंच, वाक्केली तथा मृदव तो प्राय. प्रत्येक भाण में मिल जाते हैं। अवलगित, अधिवल तथा नालिका इन वीथ्यंगो का भाणो मे प्राय: प्रयोग नही मिलता है। इनमे भी नालिका तो किसी भी भाण में नही मिलती। भावप्रधान वर्ग में—उभयाभिसारिका, शृंगारसर्वस्व, व्यम्यप्रधानवर्ग में—पादताडितक, धूर्तविटसंवाद; संघर्षप्रधान वर्ग में—पंचायुध प्रपंच, पद्मप्राभृतक, मुकुन्दानंद तथा वर्णनाप्रधान वर्ग में—वसन्ततिलक भाण—में वीथ्यंग अपेक्षाकृत अधिक सख्या मे, प्रभावशाली तथा चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रयुक्त हुए मिलते हैं। वर्णनाप्रधान वर्ग के

---

१. चतुर्भाणी के चारों भाणों मे प्ररोचना का अभाव है।

अधिकांश भाणों में वीथ्यंग बहुत थोडे मिलते है तथा उनमें वैसा चमत्कार और प्रभाव नही है जैसा कि अन्य वर्ग के भाणो मे।

प्रहसनांग—भारती वृत्ति का अंग होने के कारण भाणों मे प्रहसनागो का मिलना अत्यन्त स्वाभाविक है। किन्तु इस दृष्टि से अध्ययन करने पर विदित हुआ कि वीथ्यगो की अपेक्षा प्रहसनांगो का प्रयोग भाणों मे कम हुआ है। वस्तुत हास्यप्रधान प्रहसन रूपक मे ही वे अधिक उपयुक्त लगते है। शृंगारप्रधान भाणों मे तो वे यत्र तत्र ही मिलते है। प्रहसन के दश अंगों में भाणो मे अवलगित, व्यवहार, विप्रलम्भ, उपपत्ति, अमृत तथा प्रलाप प्राय. मिलते है। इनमे भी अवलगित तथा व्यवहार तो अत्यधिक प्रयुक्त हुये है। यहाँ तक कि ये एक-एक भाण मे अनेक बार विविध रूपो मे मिलते है। विप्रलम्भ का प्रयोग यद्यपि कम हुआ है पर जहाँ भी हुआ है—बड़े रोचक ढग से हुआ है। सघर्ष, भाव तथा व्यग्य प्रधान वर्ग के सभी प्रमुख भाणो मे प्रहसनाग मिलते है। किन्तु वर्णनाप्रधान वर्ग के भाणो मे वसन्ततिलक के अतिरिक्त शेष अधिकाश भाणो में इनका प्राय. अभाव है। भाणों मे अवस्कन्द तथा गद्गदवाक् नामक प्रहसनाँगों का प्रयोग कम हुआ है।

(छ) प्रवृत्ति

रूपक में देशकाल के अनुरूप पात्र की भाषा, व्यवहार, वेश आदि का वर्णन ही प्रवृत्ति कहलाता है।[1] भाणों के इस अध्ययन प्रसंग मे यहाँ तद्गत नाम, सम्बोधन, भाषा, आहार्य आदि की प्रवृत्तियों पर अत्यन्त संक्षेप मे विचार किया जायेगा।

नाम

नियमानुसार भाण का नाम नायक या नायिका के नाम अथवा उनके कार्यों के अनुरूप होना चाहिए।[2] साथ ही नाटकादि अन्य रूपको की भाँति कथावस्तु की मुख्य घटना के प्रति सकेत करने वाला नाम भी हो सकता है। भाणों के नाम इन नियमों के सर्वथा अनुरूप है। मुकुन्दानन्द, कर्पूरचरित, गोपाललीलार्णव, वसन्ततिलक, धूर्तविटसवाद, मदनमजरीपरिणय, मदनगोपालविलास आदि भाणों के नाम नायक या नायिका के नाम से सम्बन्धित है। नायक नायिका के कार्यों के अनुरूप नाम वाले भाण है—उभयाभिसारिका, हरिविलास आदि। कुछ भाणों के नाम उनमे वर्णित किसी घटना के प्रति संकेत भी है। यथा—पद्मप्राभृतक तथा पादताडितक। किन्तु अधिकाश भाणों के नाम उनमे वर्णित वर्ण्य विषय के आधार पर हैं। भाणों मे कामकला का ही मुख्य रूप से आद्योपान्त वर्णन होने से काम या शृंगारपरक नाम अधिक रखे गये हैं—पचायुध प्रपच, शृंगारतिलक, कामकलाविलास, अनगजीवन, शृंगारसुधाकर, शृगारमंजरी, रससदन, अनंगविजय, कन्दर्पविजय, मदनसजीवन आदि।

---

१. द० रू० २/६३। २. नाँ० ल० र० को० पंक्ति ३८७।

रूपक के नायक नायिका एवं अन्य पात्रो के नामों के सम्बन्ध में नाट्य-शास्त्रियों ने व्यवस्था दी है। मुख्यपात्रों का नाम विषय वस्तु या मुख्य रस के अनुकूल होना चाहिये तथा नायक के नाम के अन्त मे भूषण, शेखर अथवा उत्तस शब्द का प्रयोग अधिक सुन्दर माना गया है। भाणो की यह एक व्यक्तिगत विशेषता है कि उनमे आये पात्रो के नाम वर्ण्य विषय एव रस के सर्वथा अनुरूप होते है। काचन-माला, काचनलता, कल्पलता, कल्पवल्ली, मदनमजरी, शृंगारमजरी, अनगमजरी, शृगारशेखर, वसतशेखर, अनगशेखर, भुजगशेखर, शृगारभूषण, मदनभूषण आदि एक से एक सुन्दर शृगार परक नाम समस्त भाण साहित्य मे बिना किसी अपवाद के मिलते है।

वेश्याओ के नाम के आगे दत्ता, मित्रा तथा सेना शब्द सयोजित कर देने का विधान है।[1] इसी प्रकार, प्रेष्या–परिचारिका आदि का नाम किसी पुष्प से सम्बन्धित होना चाहिये।[2] चर्तुभाणी के भाणो मे 'सेना' तथा 'दत्ता' शब्दान्त वेश्याओ के नाम हैं। इसके बाद कर्पूरचरित मे भी यह परम्परा रही। किन्तु बाद मे भाणो में यह परम्परा कुछ कम होती गई। १६वी तथा २०वी शती के मध्य लिखे गये भाणों मे वती, मती, मजरी तथा लेखा शब्दान्त वेश्याओ के नाम अधिक रक्खे जाने लगे। 'मित्रा' शब्दान्त नाम भाणो मे प्राय नही है।[3] प्रेष्याओं के नाम भी सहकारमंजरी, मन्दारलतिका, लवगिका आदि पुष्पों से सम्बन्धित मिलते है।

शेष ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यो के नाम भी भाणो मे नियमानुरूप ही मिलते है। ज्योतिषी वीतिहोत्र, कवि सारस्वतभद्र, वैयाकरण दत्तकलशि, पौराणिक नारायण भट्ट, पाखंडी ब्राह्मण विष्णुनाग, वीरपुरुष कोपसिंह, चापसिंह तथा धनिक वैश्य नागदत्त, समुद्रदत्त, उपगुप्त, माधवगुप्त, धनमित्र आदि नाम तत्तत् व्यक्तियों के वर्ण एवं कर्मानुरूप ही हैं।

इस प्रकार भाणो एव उनके पात्रो के नाम न केवल शास्त्रानुकूल अपितु विषयवस्तु के भी सर्वथा अनुरूप है।

सम्बोधन

नाम की ही भॉति सम्बोधन के लिये भी विशेष व्यवस्था है। कौन पात्र किस पात्र से किस प्रकार का सम्बोधन करे इसके लिये नाट्यशास्त्र मे विस्तारपूर्वक नियम बताये गये हैं। देवता, महात्मा, महर्षि एवं सन्यासी को 'भगवान्' तथा उनकी स्त्रियों एवं तपस्विनी सन्यासिनी आदि को 'भगवती' कहकर सम्बोधन करना चाहिये।[4]

---

१. दत्ता मित्रा च सेनेति वेश्यानामानि कारयेत्। (ना० शा० १७/६४)

२. नानाकुसुमनामान. प्रेष्या. कार्यास्तु नाटके (वही १७/६५)

३. भाणों में प्रयुक्त नामो की विशेष जानकारी के लिये देखिये—प्रत्येक वर्ग के भाण के विवेचन के आरम्भ में दी हुई पात्र सूची।

४. ना०शा० १७/६५, ८३।

ब्राह्मण को आर्य तथा आचार्य को उपाध्याय शब्द पूर्वक अभिहित किया जाना चाहिये । अपने से बडे को 'भाव' छोटे को 'मारिष' तथा समवयस्क को 'वयस्य' कहकर पुकारना चाहिये ।[१] सूत्रधार नटी को 'आर्या' तथा नटी सूत्रधार को 'आर्य' कहकर सम्बोधित करे । शृगार की स्थिति मे पत्नी को 'प्रिया' कहने का नियम है। राजा, परिजन, सूत, मंत्री, दास, दासी, महारानी, पुरोहित आदि एक-दूसरे को किस प्रकार सम्बोधन करें—इस पर विस्तारपूर्वक विवेचन नाट्यशास्त्र में किया गया है।

भाणों से सीमित तथा विशिष्ट प्रकार के कथानक मे सम्बोधन की सीमा भी सीमित हो जाती है । परन्तु जो भी सम्बोधन मिलते है शास्त्र एव विषयवस्तु के सर्वथा अनुरूप है । प्रस्तावना मे सूत्रधार पारिवार्श्वक से सदा 'मारिष' तथा पारिपार्श्वक सूत्रधार से 'भाव' कहकर सम्बोधन करते है। सूत्रधार एवं नटी भी एक-दूसरे को आर्या एवं आर्य कहते हैं। प्रस्तावना के बाद भाण के मुख्य भाग मे प्राय: विट ही मुख्य पात्र होता है। अन्यो की बात को वह आत्मस्थ करके कहता है। अतः विट या प्रधानपात्र द्वारा तो अपनी पूर्वप्रेयसियों, गणिकाओ तथा मित्रों को सम्बोधन करने का अवसर रहता है। किन्तु अन्य पात्रो द्वारा सम्बोधन के लिये भाण में अपेक्षाकृत कम अवकाश है। विट गणिकाओं तथा प्रणयिनियो को या तो प्रिये, भद्रे, प्रेयसि, मुग्धे, सखि आदि अथवा उनके शारीरिक सौन्दर्य से सम्बन्धित—सुन्दरि, कमलाक्षि, पयोजाक्षि, अरविन्दमुखि आदि सम्बोधनो से अभिहित करता है। गणिकायें विट को प्राय: आर्य तथा कभी ईर्ष्याकिषायिता होकर कितव धूर्त्त आदि शब्दो से भी सम्बोधित करती है। विट या नायक एवं उसके मित्र एक-दूसरे को वयस्य, सखे, मित्र आदि सम्बोधनो से अभिहित करते है।

तपस्विनी, सन्यासिनी, योगिनी आदि उच्चकोटि की महिलाओ को—भले ही वे तपस्या और धर्म कर्म छोड़कर प्रेमी प्रेमिकाओं का सयोग कराने में प्रवृत्त हो गई हो—भगवती कहा गया है। पंचायुधप्रपच मे भगवती भद्रजटा तथा मुकुन्दानन्द मे भगवती जटावती ऐसी ही महिलाये है। इसी प्रकार अन्य सम्बोधन भी भाणो में प्राय नियमानुकूल मिलते है।

भाषा

रूपकों मे भाषा की व्यवस्था पर भी नाट्यशास्त्र में विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। कौन संस्कृत बोले, कौन प्राकृत तथा प्राकृत के भी अनेक भेदो मे कौन से पात्र कौनसी प्राकृत बोलें—आदि की सविस्तर व्यवस्था है।

भाणों में प्रायः विट ही नायक या प्रधान पुरुष पात्र होता है। वह संस्कृत ही बोलता है। यद्यपि अन्य पात्र यहाँ प्रत्यक्ष नही बोलते हैं, विट उनकी बात को आत्मस्थ करके उनकी भाषा को ही उद्धृत करता है। किन्तु यह उद्धरण भी प्रायः संस्कृत में ही होता है। यद्यपि नाट्यशास्त्र के अनुसार वेश्या द्वारा प्राकृत तथा विशेष

---

१. वही, १७/७२।

परिस्थिति मे संस्कृत पठन का विधान है किन्तु क्रीडा तथा लीला (सम्भवतः काम-शृंगार के प्रसंगो मे) के प्रसंगो मे उनसे सस्कृत ही बुलवानी चाहिये ।[1] सम्भवतः इसी को आधार मानकर समस्त भाण साहित्य मे वेश्याये संस्कृत ही बोलती हैं।

यह एक अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि भाणों में—जहाँ सामान्य कोटि के ही पात्र अधिक है, जहाँ प्रत्येक भाण में गणिकाओं का बाहुल्य है—प्राकृत का अत्यल्प प्रयोग हुआ है । पादताडितक, मुकुन्दानन्द तथा कर्पूरचरित मे तो यत्र-तत्र प्राकृत का प्रयोग हुआ है किन्तु शेष भाणो मे विशेषकर वर्णनाप्रधान भाणो में प्राकृत का प्राय अभाव है । यदि किसी भाण मे प्राकृत प्रयुक्त हुई भी है तो एक श्लोक या एक दो वाक्यो तक ही सीमित रह गई है । इस प्रकार सामान्य रूप से समस्त भाण साहित्य मे तथा विशेप रूप से १६वी शती के बाद लिखे गये भाणो में प्राकृत के अत्यल्प प्रयोग या अप्रयोग का क्या कारण है—नही कहा जा सकता ।

आहार्य (वेशभूषा)

चतुर्भाणी के अतिरिक्त शेष अधिकांश भाणो के प्राय अन्त मे कोई न कोई ऐसा अवसर अवश्य आता है जिसमे विविध देशो—आन्ध्र, गुर्जर, कर्णाटक, पाण्ड्य, नेपाल आदि से आई हुई युवतियो के रूप, यौवन, वेशभूषा एव प्रसाधनों का वर्णन है ।[2] इसके अतिरिक्त भी विविध वर्णनों द्वारा तत्कालीन समाज की वेशभूषा पर प्रकाश पड़ता है । पादताडितक[3] के अनुसार स्त्रियाँ शरीर के ऊर्ध्व भाग में 'कूर्पासक' पहनती थी । यह 'कूर्पासक' चोली या अगिया के रूप मे होता था जिसे 'स्तनप्रावरण'[4] भी कहते थे । रस सदन भाण के समय इसे 'कंकटक' कहते थे ।[5] साड़ी या अधोवस्त्र के नीचे पेटीकोट के रूप मे एक वस्त्र पहना जाता था जिसे 'अर्धोरुक' कहते थे। अर्धोरुक प्रायः स्त्रियाँ ही पहनती थी ।[6] स्त्रियाँ सामान्यत महीन तथा सुवासित वस्त्र पहनती थीं । प्रकोष्ठ पर स्थित एक अन्य वस्त्र (सम्भवत. दुपट्टा) से वक्षोज ढके जाने की परम्परा थी । 'चण्डातक'[7] सरकस करने वाली युवतियो का अधोभाग में पहनने का परिधान था ।

पुरुषो के सामान्यत. पहनने के दो वस्त्र होते थे—पैरों तक लटकता हुआ अधोवस्त्र एवं उत्तरीय । यह उत्तरीय पर्याप्त बड़ा होता था और ओढ़ा भी जा सकता था । कन्धो पर चौकोर, चित्रविचित्र झालर वाला, कुंकुम से सुवासित वस्त्र (अंगोछा)

---

१. क्रीडालीलार्थक चैव पाठ्यं वेश्यासु संस्कृतम् । (वही, १७/४१)

२. शृं० स्तवक पृ० १२०, अ० वि० पृ० १२६, शृं० सर्वस्व पृ० १२३–१२५, अ० विजय पृ० १००–१०२, व० ति० पृ० ३८–३९ ।

३. श्लो० ११३ । ४. धू० वि० सं० पृ० ७८ ।

५ श्लो० २१३ । ६. शृं० भू० श्लो० ५१ ।

७. र० स० श्लो० २१३ ।

धारण किया जाता था।[1] कुश्ती लडते समय मल्ल लाल रंग का लंगोट पहनते थे।[2] पुरुष कुर्ता भी पहनते थे किन्तु उसमे जेब नही होती थी। सिर पर उष्णीष बाँधा जाता था। रसिक और शौकीन पुरुष-विशेषकर विट अपने साथ तालवृन्त (ताडपत्र का व्यजन) भी रखते थे, जिस पर सोना, चाँदी आदि का पानी चढा होता था तथा उसकी मूठ सोने से मढी होती थी। यह व्यजन चमकदार एवं सुन्दर होता था। यह हाथ की शोभा तो बढाता ही था, धूलि एव धूप से भी बचाता था।[3]

प्रसाधनो मे अगराग का प्रयोग बहुत अधिक होता था। इसका लगाना आचार और सभ्यता के अन्तर्गत था। न चाहने पर भी स्त्री पुरुषो को सभ्यता के नाते लगाना पड़ता था। अगराग के अनुलेप मे कस्तूरी, चन्दन तथा अन्य सुवासित द्रव्य डाले जाते थे। स्त्रियाँ मलयजरस का अगराग लगाती थी—विशेषकर स्तनो पर। यह स्त्री पुरुष दोनो का प्रसाधन था। स्त्रियाँ लाक्षारस (महावर) भी लगती थी। गले मे मोतियों की माला, कानो मे कर्णपूर या कुण्डल, नाक में भूषण (नथ) तथा हाथो मे स्वर्णकंकण या वलय पहनती थी एव माथे पर सिन्दूर भी लगाती थीं। रसिक जन माथे पर कस्तूरी का तिलक तथा हाथ में अगूठी पहनते थे।[4] गुप्तयुग मे बुड्ढे लोग, विशेषकर विट-अपने को युवक तथा सुन्दर जताने के लिये बालों में खिजाब लगाया करते थे। इसे नीलीलेप या नीलीकर्म कहा जाता था।[5]

(ज) मिश्रभाण

भाणो मे नाटकीय-तत्व-विवेचन के इस प्रसंग में मिश्रभाण की चर्चा कुछ अप्रासगिक सी अवश्य लगती है किन्तु इसके तुरन्त बाद दी जाने वाली भाण की व्यापक परिभाषा की पूर्णता के लिए तथा भाणो के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए मिश्रभाण सम्बन्धी विवेचन यहाँ अत्यन्त आवश्यक है।

मिश्रभाणो मे जैसा कि उनका नाम है कथानक मिश्रित होता है। नायक नायिका का सामान्य प्रणय कथानक प्रायः राधाकृष्ण या लक्ष्मीनारायण परक होता है। इन नायक नायिका के मुख्य नामो के अतिरिक्त इनके विशेषण—नन्दकिशोर, कृष्ण, गोविन्द, गोवर्धन, धराधर, गोपाल, राधारमण, देव आदि तथा कुछ द्वयर्थक शब्द ऐसे होते है जिनसे राधाकृष्ण का प्रणय एवं मानलीला परक दूसरा अर्थ भी घटित होता है।

मिश्रित कथानक वाले भाणो मे मुकुन्दानन्द, हरिविलास, अनंगजीवन, मदनगोपालविलास, रगराजचरित तथा लीलादर्पण प्रसिद्ध भाण है। मुकुन्दानन्द मे जैसा कि इसके नाम से भी सूचित होता है—नायक भुजगशेखर भगवान् श्रीकृष्ण का प्रतीक है। इसीलिये यत्र तत्र उसे भगवान्, मुकुन्द, मुरलीवल्लभ, कृष्ण आदि नामों

---

१. र० स० श्लो० ३५। २. कं० वि० पृ० ६७।

३. र० सं० पृ० १०, ११।

४. र० स० श्लो० ३६।

५. धू० वि० सं० श्लो० २ तथा प० प्रा० पृ० २६।

से अभिहित किया गया है । इसी प्रकार मदनमंजरी को राधा का प्रतीक मानकर दोनो की प्राप्ति कराई गई है । हरिविलास भाण में तो दूसरी कथा मुख्य कथा की ही भाँति स्पष्ट रूप से वर्णित की गई है । भाण के मध्य मे विट माधव साक्षात् भगवान् नारायण होकर अपने भक्त नारद और प्रह्लाद को भक्ति का उपदेश देता है ।[1]

हरिविलास भाण लगभग आधा तो भाण है जैसा कि इसका नाम है तथा आधे मे भगवच्चरित, उपदेश, सत्संगमहिमा, माया नटी आदि कथाप्रसंग हैं । भाण के आरम्भिक भाग मे वेश्याजीवन में आपातमधुर भोगों का वर्णन करने के बाद अन्त मे सिद्धान्त पक्ष के रूप मे उनकी निन्दा तथा भक्ति, ज्ञान और कर्म का प्रतिपादन किया गया है । इस प्रकार मिश्रभाणो में यह एक विशिष्ट प्रकार का भाण है जिसमे श्रृंगार रस के प्रतिपादन के साथ ही भक्ति, ज्ञान सत्संग आदि का विस्तारपूर्वक उपदेश दिया गया है । शेष अनगजीवन आदि भाणों मे राधाकृष्ण की कथा के प्रति संकेत भर हैं, हरिविलास की भाँति विस्तार नहीं ।

इस प्रकार इन निदर्शनों से स्पष्ट है कि भाण साहित्य के इस सुदीर्घकाल में एक परम्परा अवश्य ऐसी रही होगी जिसके अन्तर्गत मिश्रभाण लिखे गये होगे । मिश्र-भाणों का निर्माण और उनका अभिनय अन्य साधारण भाणों की अपेक्षा कुछ कठिन तथा श्रमसाध्य माना जाता था । मिश्रभाण यह शब्द तथा इस प्रकार की परम्परा के प्रति थोडा संकेत मुकुन्दानन्द भाण की प्रस्तावना मे मिलता है । सभासद्गण सूत्रधार से कहते है—भरताचार्यपुत्र, हम लोग भी बहुत दिनो से किसी सरस कवि के सूक्ति मुक्तामणिग्रथित अभिनव मिश्रभाण को देखना चाहते हैं । अतः इस समय ऐसे ही किसी (मिश्रभाण) भाण का अभिनय करो ।[2] इस प्रकार सूत्रधार कहता है—'मैं अनुगृहीत हुआ । किन्तु इस समय मिश्रभाण का प्रचार अत्यन्त विरल है । अब ऐसी रचना करने वाले कवि भी विरल हो गये हैं ।[3] इस प्रसंग से विदित होता है कि अवश्य ही मिश्रभाण लिखने की परम्परा रही होगी जो मुकुन्दानन्द के समय तक या उसके कुछ और आगे चलकर कम हो गई होगी । यही कारण है कि पाँच छ. से अधिक मिश्रभाण नही मिलते ।

इन मिश्रभाणों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के भाणों के माध्यम से बाद के कवियो ने श्रृंगार मे भक्ति का पुट लगाने का सत्प्रयास किया और इस प्रकार उनके सामान्यरूप को उत्कृष्ट बनाने का उद्योग किया ।

---

१. भक्तिज्ञानान्यतमानुसरणमपहाय मनुजा निजं जन्म विफलयन्ति
(ह० वि० पृ० ४८)

२. साधु भरताचार्यपुत्र ! साधु, वयमपि चिरात् कस्यापि सरसकवे. सूक्ति-मुक्तामणिग्रथितमभिनवं मिश्रभाणमवलोकयितुमुत्कण्ठिताः । तदधुना तादृशमेव कमपि भाणमभिनीय दर्शयतु भवान् इति । (मुकुन्दा० पृ० २) ।

३. ···अधुना विरलः खलु मिश्रभाणप्रचार. ।
विरलाश्च तथाविधाः कवयः । (वही पृ० २)

यह आश्चर्य की बात है कि मिश्रभाण लिखने की एक स्वस्थ परम्परा होते हुये भी लक्षणकारों ने भाण की परिभाषा में इसका कोई संकेत नही दिया है[१] जब कि प्राप्त निदर्शनो के आधार पर भाणो के शुद्ध तथा मिश्र ये दो भेद किये जाने नितान्त आवश्यक हैं।

लक्ष्यों के आधार पर भाण का व्यापक लक्षण

इस प्रकार उपलब्ध भाणों के अध्ययन के परिणाम स्वरूप उनमें प्राप्त इन नाटकीय तत्त्वों के आधार पर भाण का एक व्यापक लक्षण इस प्रकार किया जा सकता है—

भाण उसे कहते हैं जिसके आरम्भ मे मंगलाचरण के रूप मे नान्दीपाठ हो। अनन्तर भारती वृत्ति के अंग प्रस्तावना द्वारा सूत्रधार एवं नटी या पारिपार्श्वक के वार्तालाप के प्रसंग मे प्ररोचना के रूप में भाण तथा उसके रचयिताक वि का विस्तार-पूर्वक परिचय दिया जाये। तदनन्तर आरम्भ हुये भाण के कथानक का विट आकाश भाषित के द्वारा उत्तर प्रत्युत्तर के रूप मे वर्णन करे। भाणका कथानक आधिकारिक के साथ ही प्रासंगिक भी हो सकता है। रचनाक्रम एवं विषयवस्तु की दृष्टि से भाण का सघर्ष, भाव, व्यंग्य एवं वर्णनाप्रधान वर्गों मे किसी एक में आना आवश्यक है। भाण में एक अंक एवं कल्पित कथानक होता है। कथानक मे वेशजीवन, कलत्र-पत्रिका, कन्दुकक्रीडा एवं मेष-कुक्कुट आदि के युद्ध का वर्णन आवश्यक है। संघर्ष तथा भाव प्रधान वर्ग मे आने वाले भाणों में मुख तथा निर्वहण सन्धियाँ अपने प्रमुख अंगों के साथ होनी चाहिये, किन्तु उनके सभो अगो का होना आवश्यक नही है। व्यंग्य एवं वर्णनाप्रधान वर्गों के भाणों मे सन्धियों का होना नितान्त आवश्यक नही है। प्रमुख नाटचालकार, शिल्पकांग, भाण्यग एवं सन्ध्यन्तर होने से भाण मे चमत्कार आ जाता है। प्रमुख लास्याग भाण मे अवश्य होने चाहिये। किन्तु दशो लास्यागो का प्रत्येक भाण मे होना अनिवार्य नहीं।

भाण मे नायक नायिका के अतिरिक्त अनुनायक तथा पताकानायक भी हो सकते है।

भाण मे केवल शृंगार रस होता है, वह भी सघर्ष तथा भावप्रधान वर्ग में। व्यंग्य तथा वर्णना प्रधान वर्ग मे तो पुष्ट शृगार की कुछ भाव लहरियों का वर्णन आवश्यक है। सघर्ष तथा भाव प्रधान वर्ग में जहाँ शृगार पुष्ट हो रहा हो कैशिकी-वृत्ति का नर्म नामक अंग अपने समस्त भेदो के साथ होना चाहिये। प्रत्येक भाण के लगभग मध्य में स्थितिपरिवर्तन के लिये आरभटी वृत्ति का अवपात नामक अंग

---

१. शारदातनय ने जो शुद्ध, संकीर्ण और चित्र तीन भेद माने हैं वे भाण उपरूपक के हैं, भाण के नही। विस्तृत विवेचन के लिये देखिये—इस प्रबन्ध का प्रथम अध्याय,

नितान्त आवश्यक है। भारती वृत्ति के समस्त अंगों का भाण में होना अत्यन्त अनिवार्य है। इनमें प्रस्तावना तथा प्ररोचना तो भाण आरम्भ होने के पूर्व ही हो जाने चाहिये तथा वीथी एव प्रहसन अपने मुख्य अंगों के साथ समस्त भाण में व्याप्त रहते हैं।

देश तथा काल के अनुरूप पात्र की प्रवृत्ति— आचार, व्यवहार, भाषा, वेश-भूषा आदि का होना भी आवश्यक है।

कथानक के शुद्ध एवं मिश्रित होने के आधार पर भाण के शुद्ध तथा मिश्र ये दो भेद किये जा सकते हैं।

काव्यालोचन

भाणो के शास्त्रीय अध्ययन पर दृष्टि अधिक केन्द्रित होने के कारण उनका काव्य सम्बन्धी अध्ययन यहाँ अत्यन्त संक्षेप में किया गया है।

शैली

सामान्यतया भाणो की शैली में वैदर्भी रीति का प्रयोग मिलता है। केवल आरभटी वृत्ति के अवपात नामक अंग के रूप में भागते हुये वानर एव तोड़फोड़ करते हुये मदान्ध गज के वर्णन में तथा कुक्कुट, लावक, मेष आदि के युद्धो, एव दो वीरों के मल्लयुद्ध के वर्णन मे गोडी रीति अपनायी गई है। ऐसे प्रसंग निश्चित ही प्राय भाणों मे आवश्यक रूप से मिलते हैं। गद्यभाग के संवादो तथा भाव प्रधान प्रसंगों मे प्रायः समासरहित आविद्ध शैली का ही प्रयोग मिलता है। किन्तु कहीं कही—वेशवीथी, नगर, पर्वत आदि के वर्णन में, सूर्य तथा चन्द्र के उदय अस्त का दृश्य उपस्थित करने में, अल्पसमासप्रधान चूर्णक तथा दीर्घसमास प्रधान उत्कलिका का भी आश्रय लिया गया है।[१] इस दृष्टि से रससदन,[२] पादताडितक,[३] मुकुन्दानन्द,[४] वसन्ततिलक,[५] शृंगारसुधाकर[६] तथा कन्दर्पविजय[७] भाण विशेश उल्लेखनीय है।

अलंकार

संस्कृत के अन्य रूपकों के पद्यों मे अलंकार प्रायः उसी प्रकार पाये जाते हैं जिस प्रकार अन्य काव्य ग्रन्थो मे। किन्तु भाणों के पद्यों में अलंकारो का प्रयोग या तो बिल्कुल हुआ ही नहीं है अथवा यदि यत्र-तत्र हुआ भी है तो उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि प्रसिद्ध अलंकारों का चमत्कारहीन, अत्यन्तसामान्य ढंग से। यह एक

---

१. सा० द० (६/३३०–३३२)
२. पृ० ५३ (वारविलासिनी वर्णन)
३. पृ–१७१–१७६ (वारमुख्याओं के भवनों का वर्णन)
४. पृ० ५३ (कान्ता वर्णन)
५. पृ० ४५ (सूर्यास्त वर्णन)
६. पृ– २६–२७ (रत्नमालिका के निकेत का वर्णन)
७. प्रस्तावना (श्रीरंगनाथ का वर्णन)

अत्यन्त आश्चर्यजनक तथ्य है कि भाणों के इस इतने विपुल साहित्य मे कवियों की प्रवृत्ति अलकारो की ओर से हटी हुई प्रतीत होती है। यह भी नही कहा जा सकता है कि भाणों में आलकारिक वर्णनों के लिये उपयुक्त अवसर नही है। अपितु सच तो यह है कि वेशवाटी की शोभा, नायक नायिकाओं के प्रसंग, वारवनिताओ के विलास आदि वर्णन प्रसंगों मे अलकार योजना के लिये बहुत उपयुक्त अवसर है। किन्तु व्यवहार मे देखा गया है कि यदि किसी भाण मे सौ पद्य है तो कठिनाई से दो चार मे चमत्कारहीन, उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलंकार मिले है। शेष पद्य अनलकृत ही है। रससदन,[1] मुकुन्दानंद, वसन्ततिलक आदि दो चार भाणों मे तो कुछ अलकार मिल भी जाते है, शेष में उनका भी अभाव है।

भाणों का गद्य सामान्यतया सरल तथा अनलंकृत है। किन्तु जब किसी नगर, राजा, उत्सव, कामिनी समूह आदि का चित्र उपस्थित करना होता है या जब ऐसा ही कोई लम्बा वर्णन प्रसग आता है तो कवि बाण के अनुकरण पर उसी शैली में श्लिष्टोपमा तथा विरोधाभास अलकार मिलते है। पहले श्लिष्टोपमा होता है तत्पश्चात् विरोधाभास। कहीं कही विरोधाभास के बाद परिसंख्या भी मिला है, परन्तु बहुत कम।[2] मदनमंजरी परिणय भाण में बाण के उज्जयिनी वर्णन की ही भाँति 'सुधा' नाम की नगरी का भी वर्णन 'अस्ति' पद से आरम्भ होकर बहुत लम्बे वर्णन के अन्त मे–'सुधा नाम नगरी' इस पद से समाप्त होता है।[3] इस भाण में राजा नल्लतम्बिशक्करै का वर्णन श्लिष्टोपमा अलंकार द्वारा शुकनास वर्णन के अनुकरण पर किया गया है।[4] ऐसे सभी भाण १८ वी तथा १९ वी सदी के है।[5]

१. र० स० श्लो० ४ मे यमक का बहुत सुन्दर प्रयोग है।

२. शृंगारस्तवक–श्लिष्टोपमा तथा विरोधाभास पृ० १४।
अनगविजय–विरोधाभास पृ० १२७, श्लिष्टोपमा पृ० १३६।
मदनभूषण–श्लिष्टोपमा, विरोधाभास, परिसख्या पृ० १६–१९।
रसोल्लास–श्लिष्टोपमा, पृ० १३।
हरिविलास– " पृ० ३८, ३९।
कुवलयानन्द– " पृ० २५–२८।
अनगतिलक– " पृ० २६।
मदनमंजरी परिणय–" पृ० ८, १२।
गोपाल लीलार्णव–" पृ० २५।
रसिक तिलक–" पृ० ४४।

३. पृ० ८, १२।

४. चन्द्रमा इव कलाधारः, समुद्र इव आहिनीवल्लभ, दशरथ इव सुमित्रोपेतः, रामभद्र इव सुग्रीवांगदोपेतः, लक्ष्मण इव रामानन्दकरः, भरत इवाग्रजभक्तियुक्तः, शत्रुघ्न इव सुमित्रानन्दकरः। (पृ० १८, १९)

५. साथ ही बाण के पूर्व लिखे गये चतुर्भाणी के भाणों के गद्य में ऐसी प्रवृत्ति नहीं है।

इस प्रकार भाणों में पद्य भाग की अपेक्षा गद्य भाग के अलंकार संख्या में कम होते हुये भी अधिक चमत्कारयुक्त तथा रोचक हैं।

प्रकृति वर्णन

भाणों मे प्रकृतिवर्णन कुछ परम्परागत सा लगता है। कथानक का आरम्भ प्राय: प्रात काल के वर्णन से होता है। प्रिया से वियुक्त कथानायक वसन्त या शरद् के प्रात. का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है। इसके अनन्तर वह वेशवाट में निकल पडता है। इधर उधर घूमते हुये उसे यही दोपहर हो जाता है और वह मध्याह्न के सूर्य की प्रचण्डता, उसके कारण समस्त प्रकृति की आकुलता का वर्णन करता है। धूप ढलते ही वह पुन चल देता है। दो एक मित्रों और पूर्व प्रेयसियो से बातचीत करते-करते ही सायंकाल हो जाता है। सूर्य का अस्तंगमन, ध्वान्त की क्रमिक प्रगाढता तथा चन्द्रोदय के साथ ही वेश की शोभा का वर्णन करता है।

इस प्रकार भाणों मे यद्यपि प्रातः, मध्याह्न और साय का वर्णन ही प्रायः मिलता है तथापि अनेक भाणों में प्रकृति का कुछ स्वतन्त्र वर्णन भी हुआ है।[१]

छन्दोयोजना—

रसानुभूति में छन्दों का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुकूल छन्दः होने से रसोद्-भूति में न केवल सुगमता रहती है अपितु चमत्कार आ जाता है। इसी प्रकार रस के प्रतिकूल छन्दः होने से वह खीर में कंकड़ी की भांति खटकता है। भाणो में सर्वत्र ही प्राय. रसानुकूल प्रसिद्ध एवं प्रचलित छन्दों का प्रयोग हुआ है।

किन्तु एकरूपता को दूर करने के लिये एवं प्रतिभा प्रदर्शन हेतु कुछ भाणों में असामान्य तथा सामान्यतया अप्रचलित छन्दों का भी प्रयोग हुआ है जिससे उन भाणों में अधिक चमत्कार तथा रोचकता आ गई है। इस दृष्टि से पंचचामर, हरि-णीप्लुत, पृथ्वी तथा मत्तेभ (अश्वधाटी) छन्दः विशेष उल्लेखनीय हैं। पन्द्रह अक्षरों वाले चामर तथा सोलह अक्षरों वाले पंचचामर छन्दः का श्रृंगार स्तवक,[२] पंच-बाणविजय[३], श्रृंगारदीप[४], श्रृंगाररत्नाकर[५] तथा कन्दर्पविजय[६] भाण में बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है। हरिणीप्लुत का अनंगविजय भाण[७] मे तथा पृथ्वी का पंचबाणविजय[८] में सुन्दर प्रयोग हुआ है।

भाणों में जिन अत्यन्त महत्वपूर्ण छन्दों का प्रयोग हुआ है वे हैं—मत्तेभ (अश्व-धाटी) तथा दण्डक। मत्तेभ में २२ अक्षर होते हैं तथा पदों की चामत्कारिक ढंग से

---

१. धू० बि० सं० पृ० ६४–६६, अ० विजय पृ० १०–१४ तथा ११५–११८, अ० वि० पृ० ११७–११८, अ० सं० पृ० ४३–४५, ली० द० पृ० ११।

२. पृ० ६७–६७,।
३. पृ० ७–२५।
४. पृ० २३।
५. पृ० ३६।
६. पृ० १०।
७. पृ० ६६।
८. पृ० ६।

सुन्दर आवृत्ति होती है। अन्य रूपकों में सामान्यतया इसका प्रयोग कम ही हुआ है किन्तु भाणो में कवियो ने इस छन्द को बहुत आदर दिया है। इस दृष्टि से रससदन[१] कन्दर्पविजय[२], पंचबाण विजय[३], श्रृंगारस्तबक[४], लीलादर्पण[५] तथा श्रृंगारसजीवन[६] विशेष उल्लेखनीय है। दण्डक छन्द का प्रयोग कम ही हुआ है। इसमे पहले दो नगण तथा बाद मे यथेच्छ रगण हो सकते है। पद्मप्राभृतक[७] तथा पादताडितक[८] भाणो मे इसका प्रयोग मिला है।

इस प्रकार भाणो मे न केवल प्रसिद्ध और प्रचलित छन्दो का ही प्रयोग हुआ है, वरन् कही-कही वृतरत्नाकर आदि मे भी अप्राप्त अश्वधाटी जैसे छन्द भी मिल जाते हैं।

मुहावरे, लोकोक्तियाँ तथा सूक्तियाँ

सस्कृत के गद्यपद्यमय इतर साहित्य की भाषा की अपेक्षा भाणो की भाषा मे एक बहुत बडी विशेषता है और वह है—इसकी सरलता एव मुहावरो, लोकोक्तिय तथा सूक्तियों से पूर्ण होना। बाण, सुबुन्धु तथा दण्डी जैसे गद्यकारो की भाषा में कठिनता एव कृत्रिमता है। वह काव्य गुणों के बोझ से बोझिल है जबकि इसके विपरीत अपने वर्ण्य विषय की ही भाँति भाणो की भाषा बोलचाल की, सहजप्रवाहयुक्त तथा मुहावरों और लोकोक्तियो से ओतप्रोत है। इस दृष्टि से सघर्षप्रधान वर्ग सर्वाधिक सम्पन्न है। इसमे मुकुन्दानन्द, पद्मप्राभृतक तथा पंचायुधप्रपंच वे भाण है जिनमें पगपग पर मुहावरो तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है।[९]

: ३ :

सामाजिक स्थिति

भाणों की कालसीमा बहुत व्यापक है। ईसापूर्व से लेकर २०वीं शती के आरम्भ तक के इस दीर्घ काल मे देश के सामाजिक जीवन ने अनेक मोड़ लिये होगे। किन्तु यह एक आश्चर्यजनक सत्य हैं कि भाणो मे विचित्र सामाजिक जीवन थोड़े बहुत अन्तर से लगभग एक-सा है। कलत्रपत्रिका, धार्मिक स्थिति आदि दो एक बातो को छोड़कर देशजीवन, अन्धविश्वास, ब्राह्मण, पुरोहित, ज्योतिषी तथा पौरणिको की स्थिति, प्रच्छन्न प्रेम आदि का जो स्वरूप ईसापूर्व तथा उसके बाद लिखे गये चतुर्भाणी के भाणों में मिलता है, लगभग वही १८वी और १९वी शती में लिखे गये श्रृगारतिलक, बसन्ततिलक, रससदन आदि भाणों मे भी मिलता है। इतने विपुल साहित्य के आधार पर किया गया सामाजिक अध्ययन यद्यपि एक स्वतन्त्र

१. भाण के अन्त में ग्रन्थकर्तुः प्रशस्ति. का ९वा श्लोक।
२. पृ० ४८–४९।
३. पृ० २४।
४. पृ० १०८।
५. पृ० ५०।
६. पृ० १३।
७. श्लोक ६।
८. श्लोक ३६–३९।
९. दे० परिशिष्ट

प्रबन्ध की अपेक्षा रखता है। तथापि यहाँ अत्यन्त संक्षेप में भाणों में वर्णित सामाजिक जीवन की एक झांकी देने का प्रयास किया गया है।

वेशजीवन—

वेश शब्द के अनेक अर्थों में 'वेश्या का निवासस्थान' भी एक अर्थ है।[1] इसीलिये वेश मे रहने वाली वेश्या या वेशागना होती है। भारतीय जीवन मे वेश्याओं का प्राचीनकाल से ही एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कामुको की वासनापूर्ति तो उनका गौणभूत कार्य था। जिस कारण उन्हे समाज में आदर मिला वह था उनके द्वारा सगीत, नृत्य तथा अन्य कलाओं को सरक्षण मिलना। समाज के मनोरंजन के साथ ही इस वर्ग ने इन कलाओ को चिरकाल तक समुन्नत रक्खा।

भाणों मे प्रयुक्त वेश, वेशवाट, वेशवाटी, वेशवीथी, वेशवीथिका आदि शब्दों से तथा प्राय: प्रत्येक भाण मे उनके विस्तार पूर्वक वर्णन से पता चलता है कि प्रत्येक बड़े नगर मे वेश्याओ के रहने के लिये कोई स्थान, मुहल्ला नियत रहता था जिसे वेश, वेशवीथी आदि नामों से अभिहित किया जाता था। भाणो मे विविध वेशवीथियो के विस्तारपूर्वक वर्णन से गणिकाओं के समृद्ध जीवन की एक झाँकी मिलती है। वप्र, साल, हर्म्यशिखर, कपोलपाली, सिंहकर्ण, गोपानसी, वलभीपुट आदि से पूर्ण उच्चप्रासादों की शोभा राजप्रासादों को भी तिरस्कृत करने वाली थी, वारवनिताओ का इठलाता हुआ यौवन यहाँ किलकारियाँ मारता था। शृंगार की इस हाट मे सगीत, नृत्य, साजसज्जा, यौवन तथा रतिविभ्रमों का सौदा हुआ करता था। पुष्पोपहार, सुगन्धितद्रव्य तथा मद्य के चषको की शोभा अवर्णनीय थी। हथिनी तथा पालकी की सवारी थी। नृत्य, गीत और वाद्य की ध्वनियाँ बरबस इन्द्रियों को वशीभूत कर लेती थी।[2] इन प्रासादो में नवयुवती तरुणियों को कहीं कामविद्या, नृत्य तथा सगीत की शिक्षा दी जाती थी[3] तथा कही उनका प्रदर्शन होता था। कभी कभी चैत्रयात्रा महोत्सव, भद्रकाली महोत्सव आदि अवसरो पर अथवा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर पर प्रतियोगिता के रूप में भी इन कलाओं का प्रदर्शन होता था। उसमे निर्णायक पक्ष विपक्ष मे अपना मत देते थे। वेश्याध्यक्ष प्रतीहार द्रौणिलक के घर मयूरसेना के लास्य में तलवर हरिशूद्र ने पक्ष लेकर उसकी जीत कराई।[4] प्रथमरंगाधिरोहण, प्रथमातर्व आदि महोत्सवों के अवसर पर भी सगीत और नृत्य

१. विश् अधिकारणे, घञ् प्रत्यय। विशन्ति कामुका यत्रेति वेश्यागृहम्।
(हला० को० पृ० ६३८)

२. विस्तृत वर्णन के लिये देखिये—पा० ता० पृ० १७१-१७६, २३२-२३४, धू० वि० सं० पृ० ७३-७८, अ० वि० पृ० २४-२६ शृं० सं० पृ० २१, म० भू० ११-१२।

३. उपाध्याय गणिकाओं को—जातिभेद, विन्दु, विन्दुमाल, अर्धचन्द्र, उत्तानकरण, अष्टविध औपरिष्टक आदि विविध प्रकार की कामविद्या का उपदेश करते थे (व० ति० पृ० २२)।

४. पा० ता० पृ० २२५-२२७।

का उच्चस्तर पर आयोजन होता था। नगर के प्रतिष्ठित रसिक, विट तथा अन्य प्रेमी युवक इन प्रदर्शनो को देखा करते थे। रंगमच पर होने वाले अभिनयों मे गणिकायें भी भाग लेती थीं। पद्मप्राभृतक में आयी कथा के अनुसार देवसेना के पास नाटकाचार्य गन्धर्वदत्त का शिष्य दर्दुरक उसे कुमुद्वती की भूमिका के लिये तैयार करने आता है, किन्तु वह सविनय अस्वीकार कर देती है।[1]

गीत, नृत्य, वाद्य और कामकला की अभिज्ञा इन उच्चकोटि की वारवनिताओ का कामुकजनो से शारीरिक सम्बन्ध रहता था किन्तु एक विशेष नियन्त्रित व्यवस्था के साथ। धन के लोभ मे ये किसी धनी व्यक्ति से प्रेम करती थी और जब वह नि स्व हो जाता था तो उसे छोडकर अन्य व्यक्ति को पकड़ लेती थीं। धनी प्रेमी के साथ गणिकाओ का यह शारीरिक सम्बन्ध कुछ निश्चित शर्तों के अनुसार हुआ करता था। कलत्रपत्रिका के रूप मे लिखित इन शर्तों का बड़ा महत्व था। इगका उल्लंघन करने पर न केवल एक दूसरे का सम्बन्ध विच्छन्न हो जाता था वरन् अन्य दण्ड का भी विधान था।[2]

इसके विपरीत कुछ निम्न स्तर की भी गणिकायें होती थी जो कामुकजनों की वासनापूर्ति की एकमात्र साधन थी। उनके यहाँ कोई नियम नही था, कोई नियन्त्रण नही था। कामुकजन इनके पास नि सकोच जाया करते थे और धन के लोभ में ये वेश्याये अपना शरीर बेच देती थी। इनके पास जाने वाले भी अत्यन्त निम्न स्तर के व्यक्ति होते थे। इस प्रकार की वेश्याओ को 'पताका वेश्या' कहा जाता था और ये सम्भवतः नगर के बाहर अपनी झोपड़ी आदि डालकर रहा करती थीं। इनका जीवन अत्यन्त दीन हीन तथा दुर्दशाग्रस्त होता था। मद्यपान से मस्त कामीजनों को ये 'काकिणी' (दो पैसा) मात्र पर अपना शरीर बेच देती थी।[3]

वेशावाट में रहते वाली उच्चस्तर की गणिकाओ के यहाँ एक वृद्धा स्त्री हुआ करनी थी जो प्राय. गणिकामाता, जरती, जननीपिशाचिका आदि कई नामों से अभिहित की गई है। यह जरती गणिकाओ की माता भी होती थी और किन्ही के यहाँ वेतन पर रहनेवाली वृद्धा नौकरानी के रूप मे भी रहा करती थी। दूसरे शब्दों मे इसे खाला कहा जा सकता है। गणिकामाता या खाला की आज्ञा से ही कोई प्रेमी गणिका के पास जा सकता था। प्रेमियों से धन प्राय यह जरती ही वसूल करती थी। यदि कोई युवक जरती की आज्ञा के बिना ही गणिका से मिल लेता था, या कि कलत्रपत्रिका के अनुसार निश्चित धनराशि उसे न देकर टालमटोल

---

१. प० प्रा० पृ० ५०।

२. दे० परिशिष्ट (कलत्र पत्रिका प्रकरण)

३. पा० ता० पृ० २२१, २२२ (सम्भव है पताका वेश्यायें केवल उज्जयिनी में ही हो, दक्षिण के अन्य नगरों में न हों क्योंकि यह नाम केवल इसी भाण में आता है)

करता था तो वह वृद्धा उसे न केवल बुरी तरह फटकारती हुई उसका अपमान करती थी वरन् कभी कभी भद्दी गालियाँ देती हुई जीर्णशूप, मार्जनी आदि से मारती भी थी। कभी कभी तो उसका यह व्यवहार गणिका को भी अखर जाता था, विशेषकर तब जब कि उसका किसी तरुण विशेष पर वास्तविक प्रेम हो और वह जरती द्वारा अपमानित हो रहा हो। जरती का यह व्यवहार इतना कटु होता था कि कभी कभी तो इस पर झगड़े तक हो जाया करते थे। प्राय: प्रत्येक भाण मे[1] जरती के प्रसग का विस्तार पूर्वक बर्णन तथा उसके विकट रूप और स्वभाव का चित्र उपस्थित किया गया है।[2]

वेश में केवल परम्परागत वेश्याये ही नही होती थी अपितु कभी कभी मुक्त कामसुख प्राप्त करने के लिए पथभ्रष्ट कुलागनाये भी वेश्याधर्म ग्रहण कर वेश मे रहने लगती थी। वसन्ततिलक भाण मे आयी कथा के अनुसार वसन्तयाजी नामक ब्राह्मण का पुत्र पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर पिता द्वारा अर्जित समस्त धन लेकर वेशवाट मे चला आया। बाद में उसकी पत्नी भी पति का अनुसरण करती हुई वसन्तकलिका नाम रखकर वेश्या वीणावती के पास रहती हुई वेश्या धर्म में प्रवृत्त ही गई।[3] कभी कभी स्त्रियाँ पिता द्वारा यज्ञार्थ रक्खे गये भूमि मे गढे धन को चुपके से खोदकर अथवा सास ससुर के अन्धे होने पर सास के वस्त्राभूषण चुराकर कामाराधन करती थी[4]।

वेश जीवन के इस वातावरण मे विट का अत्तन्त महत्वपूर्ण स्थान है। परिभाषा के अनुसार तो विट को चतुर, विद्वान् कहा गया है।[5] किन्तु भाणों मे आये वर्णनो के अनुसार उसे कामकला मे परम प्रवीण, वारवनिताओ के सौन्दर्य पर सर्वस्व न्योछावर कर देते वाला, खुले आम वेश्या एवं परस्त्रीगमन की दुहाई देने वाला माना गया है। विट को समस्त वेश्यावर्ग का प्रेम और आदर प्राप्त था। वह निर्द्वन्द्व होकर वेशवीथी मे घूमता हुआ विविध प्रेयसियो से हास परिहास एवं नर्मालाप के साथ ही व्यग्योक्तियाँ तथा फबतियाँ कसता है। कभी अपने प्रेमियों के पास

---

१. चतुर्भाणी, कर्पूर चरित तथा मुकुन्दानन्द में जरती की कोई चर्चा नही है जबकि बाद में प्राय. सभी भाणों में है। इससे ऐसा लगता है कि इस चरित्र (जरती) का विकास १६ वी शती के बाद हुआ होगा।

२. शृं० ति० श्लो० ५८, १०३। पचा० प्र० श्लो० ४३।
शृं० सु० श्लो० २१। पं० बा० वि० पृ० २७।
शृं० भू० श्लो० २४, २५। शृं० र० पृ० ४४।
अ० जी० पृ० २८, २९। म० भू० पृ० ४८–५१।

३. पृ० १३–१५।

४. प० वा० वि० पृ १६–१८।

५. निपुणः पण्डितो विट.।

से आती हुई ३.स्तव्यस्त अलकों वाली, सुरतचिह्नोपेत वारांगनाओं का, कभी सौध शिखर पर बैठकर धूप सेकती हुई रमणी का, कभी जरती के दुर्व्यवहार से अपमानित प्रेमी का चिन्तन करती हुई प्रेमिका का, तो कभी अपने प्रेमी द्वारा कलत्रपत्रिका की शर्तों के प्रतिकूल कनीयसी (भगिनी) का उपभोग किये जाने से ईर्ष्याकषायिता खण्डिता का वर्णन करता है। वह किसी के द्वारा दी गई वीटिका को स्वीकार करते हुऐ, किसी को पुन. आने का आश्वासन देते हुए, किसी के यहाँ दोपहरी बिताते हुए, तो किसी मानिनी का मान तोडते हुए वेश मे भ्रमण करता है। सक्षेप मे यह एक ऐसे विचित्र व्यक्तित्व का सम्मिश्रण है जिसकी एक दो वाक्यो मे परिभाषा नहीं दी जा सकती, अपितु भाणो के व्यापक परिवेष मे ही समग्र रूप से समझा जा सकता है।

इस प्रकार वेशजीवन भाणों मे वर्णित सामाजिक स्थिति का एक प्रमुख अग है।

कलत्रपत्रिका

समस्त संस्कृत काव्य साहित्य में सम्भवत· भाण ही एकमात्र ऐसा साहित्य है जिसमे कलत्रपत्रिका की चर्चा है। इनमें भी उद्‌गम और विकास काल मे जितने भाण लिखे गये (प्रायः चतुर्भाणी) उनमें कलत्रपत्रिका का कोई प्रसंग नहीं आया है। १२ वी शती के अन्त में लिखे गये वत्सराज के कर्पूरचरित में भी कलत्रपत्रिका की कोई चर्चा नहीं है। यह प्रसग १४वी शताब्दी के अन्त मे हुये कवि वामन भट्ट बाण के शृगार भूषण भाण मे सर्व प्रथम आया है तथा १८वी और १९वी शती के प्रायः सभी भाणों मे उसकी चर्चा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाणों के पुनरुत्थान काल के आधुनिक युग मे वेश जीवन को परिष्कृत कर सामाजिक बन्धन के स्वरूप में परिणत करने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप कलत्रपत्रिका की परम्परा का विकास हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमी जनो द्वारा वारवनिताओं को धोखा देने के कारण इस युग मे कुछ पंचायती सामाजिक व्यवस्था बन गई थी। तदनुसार जब कोई प्रेमी किसी वारवनिता को कलत्ररूप मे स्वीकार करता था तो उसे एक कलत्रपत्रिका लिखनी होती थी, जिसके अनुसार वह प्रेमी अपनी प्रेयसी को किसी निश्चित अवधि तक ही कलत्र के रूप मे रख सकता था। ऐसे अवसरो पर प्राय· एक छोटा सा समारोह होता था। कलत्रपत्रिका यो तो कोई भी लिख सकता था, परन्तु कुछ इसके विशेषज्ञ भी हुआ करते थे जो निश्चित पारिभाषिक शब्दावली मे उसे लिख देते थे। लिखने वाले के नाम का उसमे उल्लेख होता था। कुछ साक्षी प्रेमी की ओर से तथा कुछ प्रेमिका की ओर से भी होते थे। साक्षियों के हस्ताक्षरों का तो कोई उल्लेख नही मिलता, हाँ, वे अनुमोदन अवश्य करते थे। कलत्रपत्रिका के आरम्भ में स्वस्तिवाचनपूर्वक प्रायः पत्रिका देने की तिथि, स्थान एवं अवसर का उल्लेख होता था। जिन लोगों के सामने पत्रिका दी जाती थी, उनका नाम लिखा जाता था। पत्रिका में उन शर्तों का उल्लेख होता था जो दोनों व्यक्तियों को मान्य होती थी—

अमुक व्यक्ति, अमुक वारांगना को अमुक समय तक अपनी कलत्र के रूप में रखेगा। इस बीच वह उसे प्रतिमास, इतने वस्त्र, इतना धन, प्रसाधन सामग्री, पुष्पमाला, पान आदि देता रहेगा। यदि प्रेमिका इस बीच किसी अन्य व्यक्ति से सम्बन्ध कर लेती है तो या तो शर्तें टूट जायेगी या प्रेमिका को वह सब सामान लौटाना पड़ेगा। यदि प्रेमी इस बीच किसी अन्य नायिका मे आसक्त हो जाता है तो न केवल प्रेमिका की ओर से निश्चित समय का बन्धन टूट जाता था, अपितु कभी-कभी तो प्रेमी को इस अपराध के कारण द्विगुणित सामान दण्डरूप मे देने का उल्लेख उसमे होता था। पत्रिका लिखे जाने के बाद अन्त मे कोई उसका अनुमोदन करता था तथा कोई समर्थन। इस प्रकार उभयेच्छा से तैयार की हुई पत्रिका की एक प्रति दोनो के पास रहती थी। ऐसे भी निदर्शन है जहाँ कलत्रपत्रिका केवल प्रेमिका के पास रहती थी। दोनों में से किसी के द्वारा, निर्धारित व्यवस्था भग करने पर वेश पुरोहित या विट अथवा किसी अन्य गण्यमान्य व्यक्ति के पास अभियोग ले जाया जाता था और उसमे उल्लिखित शर्तों के अनुसार अपराधी व्यक्ति दण्डित होता था।[1]

कलत्रपत्रिका की यह व्यवस्था तथा शर्तें पुनरुत्थान काल के प्राय प्रत्येक भाण में थोड़े बहुत अन्तर से समान रूप मे मिलती है।[2] कोई ऐसा भाण नही है, जिसमे एक या दो स्थलो पर कलत्रपत्रिका की चर्चा न आई हो। ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमानो मे निकाह के समय जो 'महर' लिखी जाती है—भाणों की कलत्र-पत्रिका उसी का रूपान्तर है। १६वी शती के बाद के भाणो मे इसका प्रचुरता से प्रयोग 'महर' की परम्परा के प्रभाव का सूचक है। एक ही देश मे स्थित अनेक संस्कृतियो का एक दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। कलत्रपत्रिका की इस व्यवस्था से दो लाभ थे। एक तो यह कि किसी भी वारागना के पास प्रत्येक व्यक्ति का जाना रुक गया, जिससे अत्यधिक अनैतिक व्यापार पर रोक लग गई। दूसरे एक ही सुन्दरी को लेकर अनेक प्रेमियो का परस्पर सघर्ष कम हो गया। कलत्रपत्रिका एक प्रकार से वैशिक समाज की विवाह परम्परा ही थी। अन्तर केवल इतना ही है कि इस व्यवस्था में दम्पति का आजीवन साथ न होकर कुछ निर्धारित समय तक ही

---

१. कलत्रपत्रिका के कुछ निदर्शनों के लिये देखिये परिशिष्ट।

२. विशेष विवरण के लिये देखिये—

व० ति० पृ० ४३–४४। शृं० ति० पृ० ३४–३५।
अ० विजय पृ० ११३। प० बा० वि० पृ० ३६।
अ० वि० पृ० १३३–१३५। रसो पृ० २८–२६।
रसो० पृ० ८७–८८। शृ० वि० पृ० ४१–४२।
र० ति० पृ० ६०।

होता था और इस अवधि के मध्य प्रेमी को कलत्रभूता प्रेमिका का निश्चित शर्तों के अनुसार भरणपोषण करना होता था।[1]

इस प्रकार कलत्रपत्रिका वणिक जीवन का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग मानी जाती थी।

अन्धविश्वास

भाण साहित्य में जिस समाज का प्रतिबिम्ब मिलता है उसमे अन्ध विश्वासों का प्रचलन अत्यधिक मात्रा मे था। ईसा पूर्व से लेकर २०वी शती तक के भाणों मे अन्धविश्वासों की यह परम्परा लगभग एक सी मिलती है।

शुभ और अशुभ सूचक शकुन तथा अपशकुन पर विचार किया जाता था। भवन के ऊपर मुडगेरी या वलभी पर बैठा हुआ कौआ यदि बोलकर उड़ जाता था तो प्रिय के आगमन का सकेत माना जाता था। पद्मप्राभृतक भाण में आयी कथा के अनुसार मौर्य कुमार चन्द्रोदय के विरह मे व्रतोपवास करती हुई, उसकी प्रेयसी कुमुद्वती वलभी की गोख पर बैठे हुये कौए से पूछती है कि मेरा प्रिय आयेगा कि नही। यदि आवे तब तो तू दूसरे तोरण पर जा बैठ, मै प्रिय के मिलने पर तुझे दही भात खिलाऊँगी।[2] छींक को अपशकुन माना जाता था। आवश्यक से आवश्यक कार्य भी छींक हो जाने पर स्थगित कर दिया जाता था।[3] यात्रा के समय स्त्री दर्शन शुभ शकुन माना जाता था।[4] दक्षिण भुजस्पन्दन को वरस्त्रीलाभसूचक मानने की परम्परा थी। कौवे का बायें से दायें निकल जाना शुभ माना जाता था।[5]

१. इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि वेश्यायें रूपाजीवा, वारवनिता और गणिका के रूप में विभक्त हुई और अनियन्त्रित शरीर सम्बन्ध का व्यवसाय करने वाली रूपाजीवाओं से पृथक् एक व्यक्ति से सम्बन्धित, एक भोग्या स्त्री के रूप मे रहने वाली वारवनिता का स्वरूप विकसित हुआ। धार्मिक स्वरूप लिये हुये स्मृतिकारो के अष्टविध वैवाहिक पद्धति से अपेक्षाकृत न्यून कोटि का लौकिक दाम्पत्य सूत्र बन्धन भी समाज में स्वीकार कर लिया था जो प्रायः गणिकाओं एव उनके प्रेमियों के बीच होता था। यह दाम्पत्य सूत्र सस्कार के स्थान पर पाश्चात्य परम्परा की भाँति अनुबन्ध (कान्ट्रेक्ट) जैसा हुआ और इस अनुबन्ध का प्रमाणक लिखित पत्र ही कलत्रपत्रिका थी जिसके आधार पर वैमनस्य होने पर उल्लिखित अभिसन्धियों के परिपालन के लिये उभय पक्ष को बाध्य किया जाता था। इसका मूल आधार मिताक्षरा धर्मग्रन्थ है जहाँ अवरुद्ध स्त्री को 'प्रमीत' पुरुष के रिक्थ मे पुत्रों के साथ भाग का अधिकार था और है। कलत्रपत्रिका की इस प्रथा की तुलना इस्लामिक संस्कृति में 'मूता' विवाह प्रथा से की जा सकती है।

२. प० प्रा० श्लो० २६।   ३. शृं० ति० पृ० ६१।

४. र० स० पृ० २१, ५६।   ५. अ० वि० पृ० ११५।

दण्डपाणि (हाथ मे लाठी लिये हुये) व्यक्ति यदि यात्रा के समय सामने आ जाता था तो वह अपशकुन माना जाता था।[1] निशावसान के समय देखे गये स्वप्न सत्य माने जाते थे किन्तु स्वप्न देखने के बाद यदि वह व्यक्ति सो जाता था तो स्वप्न झूठा भी हो जाता था।[2] देवी देवताओं की अन्ध मान्यता थी। काली देवी साक्षात् बोलकर आशीर्वाद देती हैं—इस बात पर विश्वास किया जाता था। शृगार स्तबक भाण मे आयी कथा के अनुसार विट शृगार चूडामणि का मित्र अपनी प्रेम कहानी सुनाते हुये कहता है कि किस प्रकार देवी के मन्दिर मे मूर्ति के पीछे छिपकर वह स्वयं ऐसे बोलने लगा जैसे देवी स्वय बोल रही हो। इसी प्रकार पचायुधप्रपंच[3] मे भगवती भद्रजटा ने देवी बनकर कलहसलता के पिता को तीन महीने तक समस्त बन्धु बान्धवो सहित घर छोड़कर मन्दिर मे रहने की बात कही और वह ऐसा करने को तैयार हो गया। उधर घर खाली हो जाने पर कलहसलता का कन्दर्प-विलास से संयोग करा दिया। देवी देवताओं की कृपा से कामरूप धारण कर, स्त्रियों को चकमा देकर लोग उनसे विवाह तक कर लेते थे। शृगारस्तबक भाण[4] में केरल देशवासी एक व्यक्ति देवी की कृपा से कामरूपधारी होने का वरदान प्राप्त कर, कुरुविन्दलेखा के रूप पर मुग्ध होकर, शृंगारचूडामणि का रूप बनाकर, विवाहोत्सव में रत्नपीठ पर बैठकर उसे ग्रहण करने ही वाला था कि इतने मे वास्तविक शृगारचूडामणि के आ जाने पर उसका रहस्य खुल जाता है।

भूत, प्रेत तथा ग्रहो के प्रति भी अन्ध मान्यता थी। भूत-प्रेत को मन्त्र-तन्त्र द्वारा दूर किये जाने पर विश्वास था। वसन्ततिलक भाण[5] मे लक्षाधीश श्रेष्ठी की कन्या शृंगारशेखर के विरह मे पीडित है। किन्तु पिता उसे ग्रहग्रस्ता मानकर उपचार करता है। कुलागनायें प्रेमियो से मिलने के लिये ससुराल में कभी-कभी भूताविष्टा होकर बहाने से अपने अनुकूल वातावरण बना लेती थीं। पचायुधप्रपच[6] में कामांगमञ्जरी मणिभद्र नामक यक्ष से आविष्टा होकर पूर्व जन्म की कथा कहकर अपने प्रेमी मन्दारशेखर से मिलती है।

तत्कालीन मान्यताओ के अनुसार गन्धर्व भी मानवी स्त्रियों को चाहते थे[7] तथा इच्छा पूर्ति न होने पर वे उन्हे बाधा भी पहुँचाते थे। योगी, सन्यासी या मन्त्रतन्त्रज्ञ इनका उपचार करते थे। अनंगविजय[8] मे शशिप्रभा को गन्धर्वपीडिता

---

१. र० स० पृ० ५६।

२. निशावसानः स्वप्नेषु नेतव्यो निद्रया विना।
तथा हि सति नेदीय. फलमेषा स मृच्छति॥ (र० ति० पृ० ९)

३. पृ० ३४–४०। ४. पृ० १३८–१४२।

५. पृ० २९। ६ पृ० ५–६।

७. 'स्त्रीकामा· वै गन्धर्वा·'। (आ० वि० पृ० ८)

८. पृ० ८१।

कहकर कपटयोगी मकरन्द उसका उपचार करके विट से संयोग कराता है। इसी प्रकार यक्षो के प्रति भी अन्ध विश्वास था कि वे स्त्रियो का अपहरण करते है, पुरुषों को मार डालते है, आदि।[१]

ब्राह्मण

भाणों मे ब्राह्मणों की चरित्र भ्रष्टता को बहुत ही बढ़ा-चढा कर दिखाया गया है। इस विपुल साहित्य में सम्भवत. इस वर्ग की जितनी चारित्रिक कमजोरियो, ढकोसलो तथा आडम्बरों पर छीटाकशी की गई है उतनी समाज के किसी अन्य वर्ग पर नही। भाणो मे ब्राह्मणो को श्रोत्रिय, पुरोहित, ज्योतिषी, पौराणिक, कथावाचक आदि अनेक रूपो मे चित्रित किया है। श्रौत्रिय ब्राह्मणों के पुत्र पिता द्वारा यज्ञार्थ सुरक्षित धन को गणिका के सुरत रूप यज्ञ मे आहुत कर देते थे।[२] विद्वान् ब्राह्मण भी वेदशास्त्र एव पुराणों का अध्ययन व्यर्थ समझकर मोक्षसुख को काल्पनिक मानकर, कन्याओ को फुसलाकर उन्हे कलत्र के रूप मे रखते थे।[३] सोमयाजी ब्राह्मण भी वेशवाट मे जाते थे तथा प्रतिश्रुत धन न देने पर जरती द्वारा अपमानित भी होते थे।[४] इतना ही नहीं, कभी-कभी निर्धनता की स्थिति में ब्राह्मण पुत्र अपने पिता का धन चुराकर कामाराधन करते थे।[५] कभी उपहारादि देकर गणिकाओं को प्रसन्न कर कामसुख प्राप्त करते थे तथा उनके सो जाने पर वस्त्राभूषण एवं धन लेकर चम्पत भी हो जाया करते थे।[६] आचार भ्रष्टता की इस स्थिति मे ब्राह्मणो की पत्नियाँ उनसे पीछे नही थीं। ब्राह्मण पुरोहित तो घूमकर पुरोहिताई में धनार्जन करते थे, उनकी पत्नियाँ वह धन तरुणो को देकर स्वैराचार करती थी।[७] पुरोहितों का आचरण और भी उन्मुक्त था। पुरोहित लोग पौरोहित्य कर्म मे कमाये धन को वेश्याओं पर बहा देते थे तथा प्रतिश्रुत धन न देने पर खाला द्वारा झाड़ू से पीटे जाते थे।[८] वेश पुरोहित ऊपर से देखने में तो बड़ा पवित्र लगता था किन्तु वास्तव मे उसका आचरण अत्यन्त गर्हित होता था।

पौराणिक कथावाचकों का आचरण भी लगभग ऐसा ही था। ये लोग कथा बाँचते समय, कामिनियो तथा श्रद्धालु विधवाओं के प्रति शृंगार चेष्टायें कर उन्हे अपने प्रति अनुरक्त करते थे। मुकुन्दानन्द मे मरालिका भुजंगशेखर से पौराणिक

---

१. शृ० र० पृ० २७–२६।
२. अ० ति०, र० स०, पंचा० प्र०।
३. अ० वि० पृ० ४४–४७।
४. पं० बा० वि० पृ० २५, २६।
५. रसो० पृ० ५०, ५१।
६. अ० स० पृ० २६–२८, ६२ तथा क० वि० पृ० ५८।
७. अ० विजय पृ० ४६, व० ति० पृ० १८।
८. शृं० सु० पृ० ७, ८।

मुद्गलभट्ट का चरित्र वर्णन करती हुई कहती है कि यह पुराणो को इस प्रकार पढ़ता है तथा इस प्रकार की चेष्टाये करता है जिससे बालविधवाये उसमें अनुरक्त हो जाये ।[1] श्रृंगारतिलक भाण मे भी पौराणिक को इसी प्रकार का चित्रित किया गया है ।[2]

ज्योतिषियो का भी आचरण लगभग इसी प्रकार का था । ये लोग अत्यन्त निम्न स्तर पर उतरकर अनैतिक आचरण मे सहायक होते थे । मुकुन्दानन्द भाण मे ज्योतिषी वीतिहोत्र भुजगशेखर की प्रेयसी मजरी की विदा में विघ्न डलवा देता है । वीतिहोत्र का चरित्र अत्यन्त निकृष्ट था । कलकण्ठ कहता है कि यह वीतिहोत्र चेटी मे अनुरक्त है । दक्षिणा के रूप मे जो धन इसे मिलता है वह चेटी की आराधना मे लगा देता है ।[3]

ब्राह्मणो के चारित्रिक पतन के इस प्रसंग में भाणो मे वर्णित गुरु एव शिष्यो तथा वैयाकरणों एवं वैष्णवों के आचरण की चर्चा कर देना अप्रासगिक न होगा । भाणो मे शिष्यो का और उससे भी बढ़कर गुरुओ का चरित्र अत्यन्त भ्रष्ट चित्रित किया गया है । श्रृगारतिलक मे गणदत्त उपाध्याय तथा उनके शिष्य देवरात ऐसे ही व्यक्ति है[4] । वैयाकरण और वैष्णव भी वेश्याओं से प्रच्छन्न प्रेम किया करते थे । पद्मप्राभृतक मे पाणिनि व्याकरण का विद्वान् दत्तकलशि रशनावतिका से तथा वैष्णव पुत्र पवित्रक मतकाशिनी की पुत्री वारुणिका से प्रेम करता है ।

इस प्रकार ब्राह्मणों के लगभग प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति को भाणों मे भ्रष्ट चरित्र ही प्रायः चित्रित किया गया है । सम्भवतः वास्तविकता के अभाव मे भी—ब्राह्मणो, ज्योतिषियो, आचार्यों आदि को कामासक्त दिखाने मे भाणकारों का तात्पर्य ढोग की हँसी उड़ाना है । साहित्य में अन्यत्र भी ये लोग हास्य के आलम्बन बनाये गये हैं । यह सम्भवत. पूर्वपक्ष के रूप मे है ।

धर्म

भाणो के इस इतने लम्बे रचनाकाल में देश की धार्मिक स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए । किन्तु भाणो के अध्ययन से उस पर कोई विशेष प्रकाश नही पड़ता

---

१. तह तह पढइ पुराणं तह तह वक्खाइं अत्थेवि ।
तह तह पेक्खइ किदवो जह जह रज्जन्दि बालविहवाओ ।
(मुकुन्दा० श्लो० ७३)

२. ताम्बूलकुसुमस्रजो मृगमदो मिश्रं च गन्धद्रवम् ।
भक्त्यास्यै ददते…………(श्रृं० ति० श्लो० ३६)

३. कथं पूजार्हः सः । शान्तिहोमवलिकर्मकेषु यद्दक्षिणेति द्रविणं गृह्यते तत्पणीकृत्य मल्लकेन यश्चेटिकाना चरणानि वन्दते ।
(मुकुन्दा० पृ० १७)

४. पृ० १६, १७ तथा ५१ ।

है । क्योकि वैशिक जीवन के इस वातावरण में बहुत कम ऐसे अवसर आते है जहाँ धार्मिक स्थिति पर प्रकाश पड़ सके । तथापि प्रस्तावना तथा अन्यत्र भी धार्मिक स्थिति के सम्बन्ध में जो कुछ भी प्राप्त हुआ है उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

चतुर्भाणी के अतिरिक्त शेष प्राय सभी भाणो के आरम्भ मे उस भाण को किसी विशेष अवसर पर अभिनीत किये जाने की बात प्रस्तावना मे कही गई है। ये अवसर थे—कामाक्षी महोत्सव, भद्रकाली यात्रोत्सव, भगवान् शिव का यात्रोत्सव, वेंकटेश नायक का वसन्तमहोत्सव, वरदराज का गरुड़ महोत्सव, मीनाक्षी यात्रोत्सव, भगवान् विष्णु का यात्रोत्सव, आदिकेशव का उपवन यात्रोत्सव, श्रीएकाग्रनाथ का यात्रोत्सव, श्री रंगराज महोत्सव आदि । ये उत्सव दक्षिणी भारत मे बड़ी धूमधाम से मनाये जाते थे । इन्हे देखने के लिए दूर-दूर से भक्त एवं विद्वद्गण आते थे । यात्रोत्सव के प्रसग मे जिन देवताओ के नाम आये है उनसे विदित होता है कि दक्षिण भारत मे भगवान् शिव, पार्वती तथा विष्णु की अत्यधिक यान्यता थी । शरद् एवं वसन्त ऋतुओ मे इन देवताओ का यात्रोत्सव होता था ।

इसके साथ रगमंच पर कृष्णचरित एवं रामायण की कथा का अभिनय किया जाता था ।[1] मदनगोपाल विलास के अनुसार विट नटों को सीतापहरण का प्रसंग अभिनीत करते हुए देखता है । भाणो में प्रायः सर्वत्र ही पौराणिक वातावरण मिलता है । वैष्णवगण नदी के तट पर गीता, रामायण एवं भागवत की कथा कहकर कुछ धन इकट्ठा कर लेते थे ।[2] काली की पूजा के अवसर पर बलि भी दी जाती थी ।[3] धार्मिक उत्सवों पर धनी लोग देवी की स्वर्णमयी प्रतिभा भी भेंट चढाते थे ।[4]

ऊपर जिस धार्मिक वातावरण की चर्चा की गई है वह प्रायः दक्षिण भारत का है तथा दक्षिण के ही भाणों मे मिलता है । उत्तर भारत में लिखे गये चतुर्भाणी के चारों भाणों में धार्मिक स्थिति का चित्र भिन्न है ।[5] इस समय बौद्ध धर्म ह्रासोन्मुख था । बौद्ध भिक्षुणियो में अनाचार फैल गया था । वे दूती कर्म द्वारा कामीजनों की सहायता करती हुई उनकी वासना पूर्ति का साधन भी हो गयी थी । पद्मप्राभृतक के अनुसार शैषिलक के पास एक शाक्य भिक्षुणी दूती बनकर जाती है और शैषिलक उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है ।[6] बौद्ध भिक्षु भी वेश्याओ मे अनुरक्त होते थे ।

१. अ० वि० पृ० ८६, म० गो० वि० पृ० ३१ ।
२. म० मू० पृ० ७६—८० ।
३. व० ति० पृ० ३०, मुकुन्दा, पृ० ५७ ।
४. र० स० श्लो० ७६, ७७ ।
५. ये भाण उत्तर भारत के हैं तथा ई० पू० से लेकर गुप्तकाल के अन्त तक इनका समय है । अतः दक्षिण भारत के आधुनिक युग मे लिखे गये भाणों की अपेक्षा इनमे धार्मिक विभिन्नता होना स्वाभाविक है ।
६. पं० प्र० पृ० २९—३० ।

इसी प्रसंग में संघिलक नामक बौद्ध भिक्षु को वेश्या के घर से निकलते हुए शश ने देख लिया और उसका रहस्य खोल दिया।[1] पादताडितक[2] में भिक्षु भागवत निरपेक्ष की आचरण भ्रष्टता का स्फुट चित्र खींचा गया है।

समस्त भाणो में परम धार्मिक समझी जाने वाली परिव्राजिकायें, कापालिनियाँ तथा बौद्ध भिक्षुणियाँ अपना धार्मिक आचार छोड़कर वियोग तप्त युवक युवतियों का संयोग कराने मे मध्यस्थता करने लगीं थी। इतना ही नही, ये परिव्राजिकाये भी ऊपर से शास्त्र चिन्तन का ढोग रचती हुई चौर्य रति करती थीं। उभयाभिसारिका[3] मे वैशेषिक दर्शन की अभिज्ञा परिव्राजिका विलासकौण्डिनी के चरित्र का विट ने पूरा खाका खीचा है।

शासन

भाणो के आरम्भिक रचना काल से लेकर २०वी शती तक अनेक राजनैतिक उथल-पुथल हुईं, अनेक शासन व्यवस्थाये बदली। किन्तु भाणों में इनकी न कोई चर्चा है और न इसके लिए वहाँ कोई ऐसा वातावरण ही। यहाँ भाणो के आधार पर भारत की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का विवेचन करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नही। यहाँ तो भाणो मे प्राप्त शासन सम्बन्धी कुछ विवरणों का सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ मे विवेचन करना अभीष्ट है।

भाणों मे राजा या राजपरिवारो की चर्चा बहुत कम है। केवल रस सदन तथा अनग जीवन भाण मे राजा का प्रसंग आया है। रस सदन मे राजा देवी दर्शन के लिए आता है। राजा के आने पर पटह बजाया जाता था। चलते समय उसके अगल-बगल लाल साफा बाँधे, सूत की फतुही पहने अग रक्षक चलते थे। आगे-आगे अस्त्र उठाये, मार्ग पर से लोगो को हटाते हुए भृत्य चलते थे तथा पीछे केवल सेवक वर्ग। राजा पालकी पर चलता था। अनंगजीवन भाण (कोचिन्नमूपालक कृत) मे राजा भद्रसेन को वेश्या आनन्दवल्ली के प्रेमी नायक के रूप मे चित्रित किया गया है।[4] शेष किसी भाण मे राजा की प्रायः कोई चर्चा नही है।

भाणो मे प्रायः सर्वत्र ही सामाजिक शासन के लिए पंचायत व्यवस्था का स्वरूप मिलता है। पादताडितक[5] मे विटो की सभा पंचायत व्यवस्था का सुन्दर निदर्शन है। यहाँ प्रत्येक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास होता था। एक के भी विरोध करने पर उस प्रस्ताव को 'प्रतिहत' या 'निषिद्ध' मान लिया जाता था। पंचायत सभा में सच्ची बात कहने के लिए शपथ ली जाती थी। पंचायत मे वादी प्रतिवादी

---

१. वही पृ० ३२–३५। २. पृ० १८६–१९९।

३. पृ० १२९–१३३।

४. इन दो भाणो में वर्णित ये राजा सम्भवतः अंग्रेजों द्वारा दी हुई 'राजा' उपाधि धारी कोई बड़े जमींदार होने चाहिए।

५. पृ० २४७–२५८।

बड़ी कुशलता से अपना अभियोग रखते थे। साक्षी ऐसा उत्तर देते थे जो सदिग्ध या उभयपक्षपरक हो। अनगजीवन भाण (वरद कवि) मे आयी घटना के अनुसार वानीरक तथा नीवारक के झगड़े मे विट के सामने जरती की गवाही इसी प्रकार की है।[1] ऐसे अवसरों पर शास्त्र की आज्ञा प्रमाण मानी जाती थी। प्रस्तुत प्रसंग मे मनुस्मृति का उद्धरण देकर निर्णय किया गया है।[2]

इस प्रकार भाणो के अनुसार समाज मे न केवल छोटे अपितु विवादग्रस्त भारी अभियोग भी पंचायत द्वारा निर्णीत होते थे।

पादताडितक भाण में तत्कालीन न्याय व्यवस्था के प्रति भी कुछ संकेत है। ऐसा लगता है कि उस समय न्यायालय का कार्य सन्यासी और बौद्ध भिक्षु भी किया करते थे। प्रस्तुत भाण में चौक्ष विष्णुदास को न्यायालय मे वड़ा आलसी, बैल की तरह ऊँघता हुआ बताया गया है।[3]

किसी भी उचित और न्याय संगत कार्य करने के लिए भी उत्कोच (रिश्वत) लिया जाता था। यह प्रथा गुप्त युग मे अधिक प्रचलित थी। धूर्तविटसंवाद मे विट लिपिकार (क्लर्क) को छिद्रप्रहारी अर्थात् थोडी सी कमी पर कागज को खत्ते मे डाल देने वाला तथा रिश्वतखोर बताता है।[4] इस कार्य मे कायस्थ और भी चतुर होते थे। वे पैसा लेकर भी कार्य नही करते थे। पादताडितक में उपगुप्त कहता है कि कायस्थ और गणिका दोनों मे गणिका को पैसा देना चाहिए क्योकि उससे रतिसुख तो भी प्राप्त होता है।[5] न्यायालयो में न्यायाधीशो की आँख बचाकर उनके भाई अपराधियों को डरपाकर उनसे पैसा ऐठते थे। वहाँ के लेखक, पुस्तपाल, कायस्थ तथा काष्ठक महत्तर (चपरासी) भी रिश्वत लेते थे।[6] रिश्वत की यह परम्परा कार्यालयों तक ही सीमित नही थी। गणिकाओ की जरती भी रिश्वत लेती थीं।

---

१. वानीरको वा नीवारको वेति वर्णव्युत्क्रमात् परिचितमप्यपरिचितमिव मे चेत इति। (अ० जी० पृ० ७३)

२. अन्यपूर्वा भदेन्नाता वन्ध्या पुत्रान्विताऽपि वा
यस्तां स्पृह्यते तस्य भार्येति मनुरब्रवीत्। (वही पृ० ७४)

३. श्लो० २५।

४. भो., देशा लिपिकारश्च छिद्रप्रहारित्वात् तुल्यमुभयम्।
तत्र लिपिकारोऽप्यास्ते हस्तगतकल्पं कृत्वा मुहूर्तमवस्थान प्रापयति।
(धू० वि० सं० पृ० ६६)

५. गणिकायाः कायस्थान् कायस्थेभ्यश्च विमृशतो गणिका.।
गणिकायै दातव्य रतिरपि तावद् भवत्यस्याम्॥
(पा० ता० श्लो० ८१)

६. पा० ता० श्लो० ७६, ८०।

अनंगविजय[1] (शिवरामकृष्ण कृत) के अनुसार जरती ने पुरोहित से २०० दीनार क्रय, किये थे किन्तु बाद मे वह ५०० माँगने लगी।

इस प्रकार न केवल आधुनिक युग में अपितु रिश्वतखोरी की यह परम्परा गुप्त युग में भी थी।

आचार-विचार

भाणो मे—जैसा कि उनका वर्ण्य विपय है—सामाजिक आचार-विचार में काम तथा शृगार भावना ही प्रधान है। यद्यपि यह शृंगारपरायणता प्रायः व्यंग्य एव पूर्वपक्ष के रूप मे ही अधिक मिलती है। धूर्तविटसवाद मे व्यभिचारी पुत्रों की दशा एवं उनके कुविचारो पर बड़ा गहरा व्यग्य है। ये पुत्र पिताओ को अपने खुले सुरत व्यापार मे बाधक मानकर परशुराम द्वारा क्षत्रियो की भाँति मार डालना चाहते है।[2] वेश्यागमन के सुख के आगे कुलवधू से विवाह करना वे संकीर्णता मानते है। कुलवधू की अपेक्षा वेश्यारति को अधिक उत्तम माना गया है। वेश्यारूपी रथ पर चढकर कौन मूर्ख कुलवधू रूपी बैलगाड़ी पर चढ़ेगा।[3] इस भाण में स्वर्ग प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील परमार्थियो पर बड़ा गहरा व्यग्य किया गया है। स्वर्गसुख को तुच्छ बताते हुए वेश्यासुख की श्रेष्ठता स्थापित की गई है।[4] अनगजीवन (वरद-कृत) मे वेदपाठी, श्रोत्रिय ब्राह्मणो पर व्यग्य करते हुए कहा गया है कि ये लोग शास्त्रो के चक्कर में पडकर हाथ मे आयी हुई कामिनियो को भी—यह संक्रान्ति काल है, यह सन्ध्याकाल है, यह ऋतु ठीक नही है—आदि कहते हुए छोड़ देते हैं और इस प्रकार अपना ही अहित करते है।[5] समाज मे विट तथा अन्य धूर्त दैवज्ञ—वैद्य अथवा मन्त्र तन्त्रज्ञ बनकर गृहस्थो तथा लक्षाधिपति सेठो के यहाँ जाकर उनकी वियोगतप्ता स्त्रियों एवं कन्याओ को देखते थे तथा बहाने से घरवालों को दूर हटाकर या देवी की पूजा के बहाने उस युवती को एकान्त मन्दिर मे लेजाकर उससे रति किया करते थे।[6] कामुक तथा असाध्वी स्त्रियाँ बन्धु बान्धवों को धोखा देकर अपने प्रेमियो को दूर का सम्बन्धी बताकर रमण किया करती थी।

ब्राह्मण धर्म,, शास्त्र एव आचार को बहुत ही सकुचित दायरे मे देखते थे। पादताडितक मे समदना वेश्या मदनसेना द्वारा पादताडित होकर विष्णुनाग अपने को भ्रष्ट मानकर इस पाप से मुक्त होने के लिए प्रायश्चित की व्यवस्था चाहता है। ब्राह्मणों द्वारा इस महापातक का कोई प्रायश्चित न बताने पर वह अपने को शूद्र समझता हुआ अत्यन्त दुःखी होकर चिल्लाने लगता है और अन्त मे विट महत्तर

१. पृ० ५८, ५६।
२. धू० वि० सं० पृ० ७१–७४।
३. वही पृ० ११०।
४. वही पृ० ११५–११८।
५. अ० जी० पृ० २७–२८।
६. अ० जी० पृ० ५५–५६।

भट्टिजीमूत द्वारा बताये गये प्रायश्चित से प्रसन्न होता है। इस प्रकार पूरा भाण ब्राह्मण विष्णुनाग के सकीर्ण, आडम्बरपूर्ण एव उपहासास्पद आचार का निदर्शन है।

पादनाडितक में कवियों की चरित्रहीनता के प्रति भी बड़ा गहरा व्यंग्य है। शिवि देश का रहने वाला कवि आर्यरक्षित एक चषक मद्य के लिए कविता बेच देता है। यही स्थिति काशी, कोसल, भर्ग तथा निषाद नगरों में भी थी।[1]

इसके विपरीत आधुनिक काल के भाणों में कुछ ऐसे भी प्रसंग आये है जहाँ साध्वी पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पतियो के साथ सती होते हुए वर्णित की गयी हैं। मदनभूषण भाण[2] में विट कहता है कि ऐसा भी क्या पतिव्रत धम जिसके करने से रोगी तथा रूक्ष पति के मरने पर भी स्त्रियाँ उसके साथ जल जाती है। साध्वी स्त्रियाँ उत्सवों या किन्ही अन्य विशेष आयोजनों को देखने अकेले नही बल्कि पति या पतिकल्प किसी व्यक्ति के साथ ही जाती थी।

ब्रह्मचारी बटुओ को शासन मे रखा जाता था। यहाँ तक कि मल मूत्र त्याग की क्रिया में भी वे स्वतन्त्र नही थे। एक दूसरे को ताम्बूल देकर मित्रता हो जाती थी। मुकन्दानन्द के अनुसार समाज में चिलम या हुक्का पीने की भी परम्परा थी। कमलिनी का देवर धूमवर्ति (चिलम या हुक्का) भरने के लिए ही आग लेने को आता है। प्रसन्नता का भाव अभिव्यक्त करते समय हाथ मिलाने के साथ ही एक दूसरे के हाथ में हाथ पकड़ लिया जाता था। प्रतिज्ञा पूरी न होने पर लोग एक ओर की-श्मश्रु तक मुड़वाने का निश्चय कर लेते थे।[3]

वेश्याकुल में उत्पन्न किन्तु वेश्या का आचरण न करने वाली स्त्रियाँ विवाहिता होती थीं। ये स्त्रियाँ विश्वासघात करने पर अपने पतियो द्वारा छोड़ भी दी जाती थीं।[4] समाज मे प्रतिलोम विवाह भी प्रचलित थे।[5] एक व्यक्ति एकाधिक पत्नियाँ भी रखता था। कामकलाविलास मे कामपाल की दो पत्नियाँ थी।

रहन सहन

प्रेमिकायें जब प्रेमियों को पत्र लिखती थीं तो प्रायः केतकी या कदली के दल पर ही लिखती थी।[6] भाणों में निष्कुट वनों का बहुत वर्णन है। सम्पन्न गणिकाओं तथा धनिकों के भवनो से सटे हुए उपवन या उद्यान होते थे। इन्हे निष्कुट वन भी

---

१. विक्रीणन्ति हि कवयो, यथैवं काव्य मद्यचषकेण।
 काशिषु च कौसलेषु च, भर्गेषु च निषादनगरेषु॥
 (पा० ता० श्लो० १३४)

२. पृ० २३, २४।

३. 'न चेन्मम दक्षिणश्मश्रुवपनं कारयिष्यामि।' (अ० ति०)

४. र० स० पृ० १४, १५, ४७।

५. पंचा० प्र० श्लो० ७८।

६. मुकुन्दा, श्लो० २००, अ० जी० पृ० ५३।

कहते थे। ये निष्कुट वन कामिनियों के भ्रमण, भोग-विलास, क्रीड़ा एवं संकेत के स्थल हुआ करते थे। घरों में अलिन्द अवश्य होता था। स्त्रियाँ यहाँ बैठकर धूप सेंकती थी। आगंन की फर्श प्रायः कच्ची होती थी जो गोबर से लीपी जाती थी।[१] ग्रीष्म ऋतु में भवनो में सभवतः खस-खस का प्रयोग होता था जिस पर बर्फ का ठंडा पानी छिड़का जाता था।[२] पुरद्वार, पूर्द्वार या वहिर्द्वार सभवतः भवन का बाहर का द्वार होता था जो सड़क या मुख्य मार्ग पर खुलता था। इसी को प्रतौली भी कहा जाता था।[३] हाट बाजारो के नाम वहाँ वस्तु विशेष के बिकने के कारण पड़ जाते थे। जैसे पुष्पविपणि, श्रृगार विपणि, आलेपन विपणि आदि।[४]

लोगो की आय के साधनों पर भाणों मे बहुत कम प्रकाश पड़ता है। चतुर्भाणी के अतिरिक्त मध्ययुगीन भाणो मे 'दीनार' तथा आधुनिक भाणो में 'रूप्यक' शब्द का प्रयोग मिलता है।[५] मांगलिक अवसरो एव उत्सवों पर नट खेल कूद दिखाकर पैंसे मागते थे। बन्दर, ऋक्ष आदि के नाच तमाशे दिखाकर भी कुछ लोग पैसे मांगते थे।[६] पतियो के रोगी, निर्धन या बिकलाग हो जाने पर उनकी स्त्रियाँ पानीयशाला आदि रखकर कुछ पैसा कमाकर गृहस्थी चलाती थी।

भाणो में विविध प्रकार के मनोरंजन, खेलकूद-द्यूतक्रीड़ा, कन्दुक क्रीड़ा तथा मेष, कुक्कुट, लावक आदि के युद्धों का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। चतुर्भाणी के चारो भाणो, कर्पूरचरित एवं मुकुन्दानन्द को छोड़कर शेष प्रायः सभी भाणों मे—विशेषकर प्रधान भाणो मे—इन खेल कूदो एव युद्धो का वर्णन है। यह एक ऐसी परम्परा चल पड़ी जिसका आधुनिक युग के प्रायः प्रत्येक कवि ने आवश्यकता न होने पर भी अनुकरण किया है। गुप्तयुग तक चतुर्भाणी तथा उसके बाद लिखे गये कर्पूरचरित और मुकुन्दानन्द मे इन खेल कूदो एवं कुक्कुटादि के युद्धों का वर्णन न होने से लगता है इस समय तक सभवतः इस परम्परा का विकास न हुआ हो। शेष आधुनिक भाणो मे यह परम्परा इतनी अधिक विकसित हो गयी कि भाण में ये वर्णन अपरिहार्य हो गये।

भाणों में मनोरञ्जन के साधन

भाणों में द्यूत, कन्दुक आदि क्रीड़ाओ तथा कुक्कुटादि के युद्धो का वर्णन संस्कृत साहित्य के लिए सर्वथा नयी वस्तु नही है। कामशास्त्र में चौंसठ कलाओं में द्यूत क्रीड़ा एवं कुक्कुट, मेष आदि के युद्ध—ये दो कलायें भी सम्मिलित है। द्यूतक्रीड़ा का वर्णन तो प्रायः ही काव्य एवं रूपकों मे मिलता है। कुक्कुटादि युद्धों का

१. र० स० पृ० ७, ३८।
२. वही श्लो० १४०।
३. वही पृ० ११, ३८, ३९।
४. श्रृं० र० मृ० ५९।
५. र० स० श्लो० ७४।
६. वही पृ० २८, २९।

भी प्राचीन साहित्य में वर्णन है। डॉ० मोतीचन्द[1] ने वसुदेवहिण्डी में आये दो उल्लेखों की चर्चा की है। प्रथम के अनुसार वीणादत्त और गंगरक्षित की उपस्थिति मे रंग-पताका तथा रतिसेना नामक वेश्याओं के कुक्कुटो मे युद्ध हुआ जिसमे पहले एक लाख तथा दुबारा दश लाख तक का दाँव लगाया गया। दूसरे उल्लेख के अनुसार वेश्या सुषेणा के कुक्कुट तथा रानी मनोहारी के वज्रतुण्ड नामक कुक्कुट में युद्ध हुआ है। दशकुमार चरित मे न केवल कुक्कुट युद्ध का वर्णन है बल्कि कुक्कुटो की जातियों की भी चर्चा है। तदनुसार पूर्व दिशा के नारिकेल जाति के कुक्कुट पश्चिम के वलाका जाति के कुक्कुटो की अपेक्षा कमजोर होते थे। तथापि विजय नारिकेल जाति के कुक्कुटों की ही होती है।[2]

इस प्रकार शृंगार प्रधान भाणो में द्यूत, कन्दुक आदि क्रीडाओं एवं कुक्कुटादि युद्धो का वर्णन प्राचीन शास्त्र एवं साहित्य परम्परा की एक कडी ही है, कोई नई अथवा अजनबी वस्तु नही। इतना अवश्य है कि यह परम्परा आरम्भिक भाणो मे प्राप्त न होकर आधुनिक भाणों मे ही मिलती है। अन्य रूपको की अपेक्षा भाण रूपक में इस प्रकार के वर्णन का क्षेत्र अधिक व्यापक है। नाटक, प्रकरण आदि के कथानक नियमो तथा परम्पराओं से अधिक जकड़े होने से वहाँ कथानक की गति अवरुद्ध कर देने वाले इन खेलो एव युद्धों का वर्णन संभव नहीं। भाणो में यद्यपि ये वर्णन थोडे बहुत अन्तर से लगभग एक से होने के कारण पाठक को उबा देने वाले होते हैं। तथापि इनसे तत्कालीन समाज के विविध पहलुओं पर प्रकाश पडता है।

मनोरंजन के इन साधनों से पता चलता है कि तत्कालीन समाज—विशेषकर सामान्य समाज—सुखी और सम्पन्न था। भाणो में यद्यपि पारदारिक प्रकरण एवं वैशिक जीवन का ही वर्णन होने से तत्कालीन आर्थिक स्थिति पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता तथापि इतना निश्चित है कि लोग दु:खी और दरिद्र नहीं थे। द्यूतक्रीड़ा में तथा मेष, लावक आदि के युद्धों की प्रतियोगिताओं मे एक लाख तक का दाँव केवल धनी गणिकाएँ ही नहीं अन्य शौकीन लोग भी लगा देते थे। भाणों मे वर्णित कुक्कुटादि के युद्धों की परम्परा आज भी गाँवो में—विशेषकर उत्तर प्रदेश मे—देखने को मिलती है। ग्रामों के अनेक वार्षिक उत्सवों (विजयदशहरा आदि) तथा मेलो के अवसर पर लोग आजकल भी अपने पालतू तीतर (लावक) तथा मुर्गों (कुक्कुट) को हार जीत की भारी शर्तों पर लड़ाते हैं। कभी कभी हार जीत के निर्णय में अन्याय होने पर झगडे तक हो जाते है। वर्तमान काल मे नगरो मे तो मनोरजन के अन्य विविध साधन होने से इनका (मेषादि के युद्ध का) अभाव हो गया है किन्तु भाणों के समय ये युद्ध बड़े-बड़े नगरो मे भी होते थे। ये मनोरंजन तथा युद्धप्रतियोगितायें दिन में ही आयोजित होती थीं और घंटो मे हार-जीत का निर्णय हो पाता था। इससे लगता है कि सामान्य जनो के पास भी पर्याप्त समय रहता था।

१. शृं० हा०, भूमिका पृ० ४०।
२. द० कु० च० (उ० पी० पृ० ३६४—३६६)

मनोरंजन के साधनों का विभाजक—चक्र (चार्ट)

नाम अन्तरद्वार क्रीडायें (इन्डोर गेम्स्)	संख्या	भाण	पृ०	भाण	पृ०
		वे भाण जहाँ उनका वर्णन है			
१. कन्दुक क्रीडा	१७	प० प्रा	४१–४४	क० वि०	३५—३६
		पा० ता०	२१०	पं० बा०वि०	३६
		अ० स०	४६	शृं० र०	३३
		शृं० को०	१४–१५	शृं० स०	१९
		कं० द०	४१	शृं० सर्वस्व	३२
		मुकुन्दा	४१	अ० वि०	६३
		व० ति०	१८	रसो०	१८–२०
		अ० जी०	२९–३०	कुबलय०	५०
		म० भू०	४३		
२. द्यूतं	८	अ० स०	४७–४९	शृं० भू०	१४
		शृं० को०	२०–२१	शृं० सर्वस्व	२७
		शृं० ति०	२७	अ० वि०	१०८–१०९
		शृं० स०	२१	कं० वि०	४०
३. डोला विहार	५	शृं० को०	२४	शृं० सर्वस्व	९८
		शृं० स०	२३	अ० जी०	३८
				शृं० भू०	१३
५. चतुरंग विहार	५	कं० वि०	७८	शृं० स०	२८
		अ० वि	१०९–११०	शृं० स्तबक	४६
				अ० सर्वस्व	३८
५. चक्षुरपिधान					
६. चकडोर	१	शृं० स०	१६	—	
७ मणिगुप्तकविहार	१	प० प्रा०	९	—	
८. अम्बरकरण्डक-विहार	१	शृं० स०	१४	—	
	१	शृं० स०	१७		
९. युग्मायुग्मदर्शन विहार	१	शृं स०	२४		
१०. गजपतिकुसुम कन्दुक विहार	१	शृं० स०	२६		
११. कृतकपुत्रक दुहितृका	१	पा० ता०	२१०		
बहिर्द्वारक्रीड़ायें (आउट डोरगेम्स्)					
१२. कुक्कुट युद्ध	१६	अ० स०	५६–५८	शृं० स०	३३
		शृं० को०	२३	कुबलय०	७६

नाम	संख्या	भाण	पृ०	भाण	पृ०
		क० द०	३९	शृं० भू०	१६, १९
		शृं० ति०	४३	अ० वि०	३९–४१
		अ० जी०	३१	व० ति०	१२
		अ० विजय	३६–३७	म० भू०	६८
		क० वि०	३४–६५	र० रा०	३१
		पं० वा० वि०	३७	शृं० सर्वस्व०	३५–३७
१३. मल्लयुद्ध	१२	अ० स०	५९–६०	शृं० सर्वस्व	१००—१०३
		क० द०	३७–३८	म० भू०	६७–६८
		शृं० भू०	१६	पं० बा० वि०	३९
		कुबलय	८०–८२	शृं० स०	३३
		शृ० ति०	४४	अ० वि०	९१–९३
		कं० वि०	६७	रं० रा० च०	३१
१४. मेषयुद्ध	११	शृं० को०	२४	व० ति०	३३
		शृं० ति	४४	शृं० स्तबक	५६–५८
		अ० वि०	६६–६७	कुबलय०	७७
		पं० बा० वि०	३७	म० भू०	६७
		शृं० भू०	१६	र० रा० च०	३१
		अ० वि०	१०१		
१५. सर्पदर्शन या सांपों का खेल	८	शृं० ति०	४५	अ० वि	८४–८६
		क० वि०	१६	कं० द०	४३
		म० भू०	५६	व० ति०	१६–१७
		पं० बा० वि०	२७–२८	शृं० स्तबक	५८–६०
१६. इन्द्रजाल	३	र० स०	५१	अ० वि०	५३–५८
		म० भू०	६१—६२		
१७. गजयुद्ध	२	पं० बा० वि०	३९	अ० जीवन	१७–१८
१८. आंगिक कौशल (सरकस)	२	र० स०	५०	शृं० स०	३२–३३
१९. खड्गोत्क्षेपण	१	र० स०	५१		
२०. ऊँचीकूद (हाईजप)	१	र० स०	५२		
२१. हस्तलाघव (बाजीगरी)	१	र० स०	५२		

भाणों में मनोरंजन के साधन

अन्तर्द्वार क्रीडायें
(इन्डोर गेम्स)

कन्दुक क्रीडा

कन्दुक का यह खेल जन समूह में खेले जाने वाला होते हुए भी भाणों मे गणिकाओं तक ही सीमित रखा गया है। व्यायाम एवं मनोरंजन की दृष्टि से गणिकाये अपने भवन के प्रांगण मे ही इसे खेला करती थी। भाणों मे वर्णित कन्दुक क्रीडा का कोई विशेष विधान नही मिलता। अधिकांश भाणो मे गेद को उछालती, गुपकती तथा उसे पकड़ने के लिए भागती हुई गणिका का वर्णन मिलता है। इस परिश्रम से वह श्रान्त हो जाती है, श्वसनोद्दगम से उसके वक्षोज आकम्पित होने लगते है, मणिमयी मेखला जघनस्थल से खिसकने लगती है, आकुलित वेणी से पुष्प गिरने लगते हैं तथा माथे पर स्वेदबिन्दु झलक आते हैं। इस अवस्था में उसकी द्विगुणित शोभा से विट या नायक प्रसन्न होते हैं और उसके रूप तथा यौवन का विविध प्रकार से वर्णन करते है।

पद्मप्राभृतक भाण में वर्णित कन्दुक क्रीडा इतर भाणों से कुछ विशिष्ट है। इसमे पण लगाकर खेल आरम्भ किया गया है। परिचारिकायें गेंद का उछलना गिनती है। यहाँ कूदने, भागने, उछलने आदि के लिए आवर्तन, उत्पतन, अपसर्पण, प्रधावन, परिवर्तन, निवर्तन, उद्वर्तन आदि अनेक पारिभाषिक जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्रतीत होता है इन दिनो कन्दुक का खेल बड़े व्यवस्थित ढग से होता था। १०० गोल पर संभवत. खेल समाप्त हो जाता था और हार जीत घोषित हो जाती थी।[1]

अनेक भाणों में कन्दुक को अपराधी नायक मानकर उसका वर्णन किया गया है। अपराधी नायक की ही भाँति कन्दुक भी गणिका रूपी नायिका के कर एवं चरण का ताडन प्राप्त करके भी, पुन पुनः अपमानित होकर भी उसकी अनुनय विनय करता हुआ उसके अधर पान की चेष्टा करता है। इस प्रकार के वर्णनो मे कन्दुक क्रीडा करती हुई गणिका एवं विट के संवाद बड़े ही रोचक तथा व्यग्यपूर्ण हैं।[2]

द्यूत

भाणो मे द्यूतक्रीडा को मृच्छकटिक आदि की भाँति सामूहिक खेल के रूप में

---

१. 'एषा पूर्णशतमिति व्यवस्थिता'। (प० प्रा० पृ० ४४)

२. मुकुन्दा० पृ० ४१। शृ० को० पृ ०.१५।
शृं० स० पृ० १६। व० ति० पृ०.१८।
म० भू० पृ० ४६-४४।

नही लिया गया है । यहाँ तो नायक नयिका अथवा गणिका और उसके प्रेमी के साथ अक्षक्रीडा का वर्णन मिलता है । कभी-कभी केवल स्त्रियो मे भी द्यूत क्रीडा होती थी । भाणों में आये द्यूत वर्णन में कहीं भी धन का पणबन्ध नही दिखाया गया है । यह द्यूत तो केवल मनोरंजन तथा प्रेमियों के अधिक समय तक साहचर्य के लिये होता था । पणबन्ध के रूप में यहाँ प्रायः बड़ी सुकुमार, मृदुल शर्ते हुआ करती थीं । प्रेमी के जीतने पर प्रेमिका पणानुसार अवधि तक प्रेमी की कलत्र के रूप मे रहा करती थी तथा प्रेमिका के जीतने पर प्रेमी उसका निश्चित अवधि तक भरण पोषण करता था । कुछ अन्य पणबन्धों में जीतने वाले को हराने वाले का गाढालिगन, चुम्बन आदि प्राप्त होता था ।[1] इस प्रकार जय पराजय दोनो में समान लाभ था । भाणों मे प्रेमियो के बीच होने वाली द्यूतक्रीडा मे इस प्रकार के पणबन्धों का ही अधिक वर्णन है, द्यूत के प्रकार या स्वरूप का नही ।

डोलाविहार

डोलाविहार की परंपरा समस्त देश में ही थोड़े बहुत रूप मे है । उत्तर भारत मे श्रावण मास मे लड़कियाँ वृक्षों की डाल में रस्सी लटकाकर, उसके दोनो भागों में एक डंडा बाँधकर, उसे झूला बनाकर गीत गाती हुई झूलती है । गुजरात में तो प्रायः प्रत्येक परिवार में भवन के बाहरी भाग (बरामदा) में एक सुन्दर स्थायी डोला की व्यवस्था होती है जिस पर दो-तीन व्यक्ति बैठकर आनन्द ले सकते हैं । भाणो मे डोलाविहार का वर्णन संभवतः गुजराती परम्परा का अनुकरण हो । भाणों में वर्णित डोला का फलक मणियो का होता था । रत्नडोला का अभिप्राय सभवतः रत्नों से जड़ित डोला से था ।[2] डोला में प्रायः गणिकायें अकेली, सखियों के साथ और कभी-कभी प्रिय के साथ भी बैठकर आनन्द लेती थी ।

चतुरंग विहार

भाणों मे आये वर्णनों के अनुसार जैसा कि इसका नाम है इस खेल मे राजा, मन्त्री, घोड़े तथा हाथी ये चार अंग होते थे । प्रायः दो व्यक्ति इसे खेलते थे । ये दो व्यक्ति प्रायः प्रेमी-प्रेमिका होते थे तथा पणबन्ध के साथ खेल आरम्भ होता था ।[3] यह खेल शतरज से बहुत कुछ मिलता-जुलता है । उ० प्र० तथा म० प्र० में प्रचलित चौसर या चौपड़ खेल इससे सर्वथा भिन्न है ।

चक्षुरपिधान (आँख मिचौनी)

अनेक सखियाँ मिलकर इस खेल को खेलती थी । किसी एक सखी की आँख बन्द करके अन्य सखियाँ छिप जाती थी । बन्द आँख वाली सखी आँखे खोलकर

१. द्यूते यदीयं विजिता मया स्यादस्याः पिबामि स्वयमाननाब्जम् ।
अह जितश्चेदधरं मदीयं गृह्णातु पातु पुरतः सपत्न्याः ॥
(शृं० ति० श्लो० ८८)

२. शृं० को० पृ० २४ ।

३. शृं सर्वस्व पृ० ३८–३९ ।
अ० वि० पृ० ११०–१११ ।

सबको ढूँढती थी। जिसे वह पकड़ लेती थी उसे दाँव देना पड़ता था तथा फिर उसकी आँखे बन्द की जाती थी।

चक्रपीडक क्रीडा

केवल पद्मप्राभृतक भाण मे इसके प्रति सकेत है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने अनुवाद मे इसे चकडोर या चकभौंरी का खेल कहा है। इस खेल का कोई विशेष परिचय उन्होने भी नही दिया है।

मणिगुप्तक विहार

बालू के गोल-मटोल पक्तिबद्ध ढेरो मे से किसी एक मे मणि रख दी जाती थी। उसके बाद कोई दूसरा व्यक्ति–स्त्री या पुरुष–आँख मूदकर उन ढेरो मे मणि ढूढता था। यदि वह मणि प्रथम प्रयास मे ही मिल जाती थी तो खोजने वाले की जीत, अन्यथा हार मानी जाती थी। हार-जीत मे सुविधानुसार शर्तें रहती थी। सामान्यतः पुरुष हारने पर स्त्री को कुछ धन देकर या कुछ समय तक उसकी सेवा करके मुक्त हो जाता था। स्त्री हारने पर किसी निश्चित अवधि पर्यन्त उस पुरुष की कलत्र बनकर रहती थी।[१]

अम्बरकरण्डक विहार[२]

लाख के बने हुए पाँचे (कास्केट) को करण्डक कहते थे। यह पाँचा चौकोर आकार का ठोस होता था। मध्य युग मे इस पर सुन्दरता लाने के लिये मणियाँ भी लगा दी जाती थी। अम्बरकरण्डक विहार मे इस करण्डक (पाँचा) को आकाश में उछाल कर हाथो पर गुपक लिया जाता था। उसके भूमि पर गिर जाने से असफलता मानी जाती थी। इसे अनेक प्रकार से खेला जाता था। अनेक पाँचो को भूमि पर डालकर एक को ऊपर उछाला जाता था। जब तक वह ऊपर से आए और उसे पकड़ा जाये, इसी बीच भूमि पर पड़े सब पाँचे हाथो मे उठा लिये जाने चाहिए। भूमि पर पड़े पाँचों को न पकड़ पाना हार मानी जाती थी। कभी-कभी केवल दो पाँचो से भी खेला जाता था। एक हाथ से एक पाँचे को ऊपर उछाल कर दूसरे हाथ से उसे गुपक लिया जाता था। इसी प्रकार दूसरे हाथ से दूसरे पाँचे को फेंककर तदितर हाथ से उसे पकड़ लिया जाता था। इस प्रकार दोनों हाथो का सुन्दर व्यायाम हो जाता था।[३]

---

१. शृ० स० पृ० १४।

२. वही पृ० १७।

३. इस खेल का एक विकृत रूप इस समय पश्चिमी उ० प्र० मे मिलता है जिसमें छोटी लड़कियों द्वारा मिट्टी का घड़ा या हाडी के फूट जाने पर उनके टुकड़ो (गुट्टी) को एक हाथ मे लेकर एक-एक करके आकाश मे उछाला तथा उसी हाथ मे गुपका जाता है। आकाश में अधिक ऊँचाई तक उछालना तथा भूमि पर उसे न गिरने देना इस खेल की सफलता है। यह अनेक प्रकार से खेला जाता है। इस खेल को पश्चिमी उ० प्र० मे **गटका** तथा म० प्र० में **पाँचे का खेल** कहते हैं।

युग्मायुग्मदर्शन विहार

मोतियों से भरी मुट्ठी प्रतिद्वन्द्वी को दिखाकर उससे पूछा जाता था कि इसमें मोती युग्म है या अयुग्म । यदि प्रतिद्वन्द्वी के बताये अनुसार युग्म अथवा अयुग्म निकल आता था तो उसकी (प्रतिद्वन्द्वी की) जीत अन्यथा हार मानी जाती थी ।

गजपतिकुसुमकन्दुक विहार

युवक-युवतियों के समाज के दो वर्गों (पार्टी) मे एक वर्ग की ओर से फैंकी गई गेद जब दूसरे वर्ग के किसी व्यक्ति के हाथ में लग जाती थी तो वह वर्ग पराजित मान लिया जाता था और विजयी वर्ग के लोग पराजित वर्ग के लोगो पर घोड़े की भाँति सवारी करते थे ।[1]

कृतकपुत्रकदुहितृका (गुड्डे गुडिया)

पादताडितक भाण[2] मे वेश कन्याओं के क्रीडनकों में इस खेल की भी चर्चा है किन्तु इसका किसी प्रकार का वर्णन नही है । अतः इस खेल के स्वरूप के सम्बन्ध मे भाणों के आधार पर कुछ नही कहा जा सकता ।

बहिर्द्वार क्रीडायें

(आउट डोर गेम्स)

कुक्कुट युद्ध

भाणों में कुक्कुट को चरणायुध, पादायुध, ताम्रचूड, कृकवाकु आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है । किन्ही दो व्यक्तियों के पालतू कुक्कुटों में पणबन्ध के साथ युद्ध होता था । क्रोधाविष्ट होकर दोनों ही कुक्कुट एकदूसरे पर अपनी तुण्ड एवं पंजों का प्रहार करते थे । दोनों की देह खून से लथपथ हो जाती थी । ये प्रहार इतने सधे हुए, दांव पेंच से युक्त होते थे कि घंटों युद्ध होने पर भी जय पराजय का निर्णय नही हो पाता था । ये युद्ध किसी खुले हुए सार्वजनिक स्थान पर होते थे जहाँ सहस्रो की सख्या में दर्शक उपस्थित होते थे । इनके जय पराजय का समाचार तत्काल समस्त नगर में फैल जाता था ।

मेषयुद्ध

कुक्कुट युद्ध की ही भाँति मेषयुद्ध भी समाज में मनोविनोद का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता था । किन्तु कुक्कुट युद्ध जैसे न तो पणबन्ध इसमें होते थे और न उतनी भीड़ ही इकट्ठी होती थी । मेष अपने तीक्ष्ण विषाण एवं खुरों से युद्ध करते थे । क्रोध से उनकी लाल लाल आँखे एवं भयानक चेहरे बड़े डरावने हो जाते थे । उनकी प्रचण्ड हुँकार तथा खुरों की चट-चट ध्वनि से सभी लोग भयभीत हो जाते थे ।

---

१. यद्यपि नाम के अनुसार इस खेल में गज की सवारी होनी चाहिये किन्तु शृंगार सर्वस्व पृ० २६ मे (जहाँ इस खेल का वर्णन है) घोड़े की भाँति सवारी की ही चर्चा है—

"त्रिचतुरानश्वानिवाधिरुह्य प्रतिवसन्तीति मर्यादा" ।

२. पृ० २१० ।

मल्लयुद्ध

भाणो मे कुक्कुट युद्ध, मेषयुद्ध एवं मल्लयुद्ध इन तीनों का प्राय. एक साथ वर्णन मिलता है। मल्लयुद्ध की परम्परा तो प्रायः समस्त देश मे अब और भी अधिक विकसित रूप से मिलती है। यह आयोजन बड़ी सजधज तथा धूमधाम के साथ होता था। वीर मल्ल अखाड़े की मिट्टी से हाथ मलकर, अपने लगोटों को अत्यधिक कसा हुआ बाँधकर, पर्वत की शिला की भाँति निष्ठुर मुष्टिपातों से एक दूसरे पर प्रहार करते थे।[1] पहलवान इतने दाँव पेच जानते थे कि भूमि पर गिरकर भी पुनः पुनः उठकर लड़ते थे। अनंगविजय (जगन्नाथ कृत) मे चण्डमल्ल तथा उद्दण्डमल्ल के मल्लयुद्ध का बहुत विस्तार से वर्णन है। शृंगारसर्वस्व भाण (वेदान्तदेशिक कृत) मे दो मल्लो के युद्ध का अत्यन्त स्वाभाविक तथा रोचक वर्णन है।

सर्पदर्शन

सर्पदर्शन का खेल आज भी गाँवों में लगभग उसी रूप मे मिलता है जिस रूप मे वह भाणों मे वर्णित है। शृंगारतिलक के अनुसार आहितुण्डिक के बाल बड़े-बड़े होते थे जिन्हे वह पार्श्व मे लटकाये रहता था। मुँह पर भस्म तथा कानों में बन्धुजीव का पुष्प लटकाते हुए, तमाल की भाँति काला, भयानक आकृति वाला होता था। वह पिटारी मे से साप निकाल-निकालकर उनकी जाति तथा गुण बताता हुआ एकत्रित जनों का मनोविनोद करता था। अनंगविजय के अनुसार आहितुण्डिक एक पैर में रणरणन करने वाला पादकटक, गले में हड्डियों की माला तथा प्रकोष्ठ मे सर्प लपेटे रहता था। उनके भुजसन्धि में वराटिकाओं की माला तथा माथे पर मयूर एवं काक के पिच्छों का अवतंस रहता था। जांगलिक के पास बन्दर अवश्य होता था।

इन्द्रजाल प्रदर्शन

ऐन्द्रजालिक के स्वरूप एव उसके चमत्कारयुक्त प्रदर्शनों का वर्णन भाणो मे भी लगभग वैसा ही है जैसा अन्य रूपकों में मिलता है। ऐन्द्रजालिक डुगडुगी बजाते हुए, पिंच्छागुच्छ को हिलाते हुए, परिजनों को आँखों के इशारे से अपने काम मे प्रवृत्त करते हुए, कुछ भस्म विकीर्ण करके आत्मख्यापूर्वक अपना कौतुक आरम्भ करता है। वह कभी जल में अग्नि लगा देता है, जहाँ प्रचण्ड ज्वाला होती है वहाँ कलकल निनादिनी नदी वहा देता है। उसके जादू मे वह शक्ति होती है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता आकाश मे साक्षात् दीखने लगते है। इतना ही नही वह हाथ में मिट्टी लेकर उसमें बीज बोकर अकुर जमा देता है। भस्म की चुटकी लेकर मन्त्र पढ़ते हुए सोना बना देना है तथा आकाश से बिना बादलों के भी पानी की वर्षा करा देता है।

गजयुद्ध

अनगजीवन (कोचुन्निभूपालक कृत) तथा पंचवाणविजय मे गजयुद्ध का वर्णन

१. शृ० भू०, श्लो० ७२।

२. र० स० पृ० ५१, अ० वि० पृ० ५३–५८।

मिलता है। अनगजीवन मे नीलगिरि तथा वज्रदन्त एव पंचवाणविजय में रामबाण तथा रणवीरभद्र नामक हाथियों का युद्ध होता है। दोनो ही स्थानो पर पालतू हाथी लगते है। गजयुद्ध पूर्व आयोजित नहीं होता था। कभी-कभी सहसा मिल जाने पर क्रुद्ध होकर दोनो हाथी लड़ने लगते थे। इनकी लड़ाई बड़ी भयंकर होती थी। एक दूसरे के प्रहार से इनके मस्तकों से खून की धार छूट पड़ती थी। दो काले पर्वतों की भाँति भयानक ये गज जब चिंघाड़ते थे तो अभ्रंकष सौध शिखरो पर बैठी हुई कामिनियाँ भी भयभीत हो जाती थी। युद्ध विरत न होने पर इन गजों को सिंह-पट (कोई बड़ा कपड़ा जिस पर सिंह चित्रित होता था) दिखा दिया जाता था। उसे देखकर दोनो भयभीत होकर भाग खड़े होते थे।

उपर्युक्त मनोरंजनों एवं पशुयुद्धों के अतिरिक्त विशेष अवसरो पर नट अपने कुछ करतब दिखाकर लोगो का मनोरजन किया करते थे। नटों के ये करतब आज-कल के सरकस से सर्वथा मिलते-जुलते है। रससदन भाण मे भगवती भद्रकाली की केलियात्रामहोत्सव के अवसर पर नटो के ये खेल विस्तारपूर्वक वर्णित है।[1] इनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

आंगिक कौशल प्रदर्शन (सरकस)

दो बासों के दोनों छोरो पर बंधी हुई रस्सी पर चढ़कर, खड़ाऊँ पहनकर नृत्य किया जाता था एव रस्सी के मध्य भाग मे लकड़ी की कोई पात्री (पटली—पटला आदि) रखकर, खड़ाऊँ पहनकर उस पात्री के ऊपर चढकर, उसे हिला-हिला कर नृत्य कला तथा शरीर लाघव का प्रदर्शन किया जाता था।[2]

किसी पुरुष के उदर पर नागवल्ली के कुछ नये पत्ते रखकर तीक्ष्ण धार वाली तलवार से कुछ ऐसे ढंग से काटा जाता था कि उदर पर थोड़ी भी चोट न आये।[3]

खड्गोत्क्षेपण

हाथ में तलवार लेकर एक पंक्ति में खड़े होकर नाचते हुए युवक तलवार उछालते और पकड़ते थे। कोई खिलाडी खड्ग को आकाश में उछालकर दोनों हाथों से बारी-बारी पकड़कर पुनः उछाल देता था। कभी-कभी तीन तलवारें आकाश में उछालकर दोनों हाथो से उन्हें बारी-बारी से लेने पर बिजली सी कौंध जाती थी।

ऊँचीकूद (हाई जम्प)

ऊँचे स्थान पर लोगों द्वारा बेंतों या लाठियों के दोनों किनारे पकड़कर उनका घेरा सा बना दिया जाता था। खिलाड़ी व्यक्ति बन्दर की भाँति छलांग मारकर उस घेरे के भीतर से होते हुए कूद जाते थे और उन्हें चोट नहीं लगती थी।

एक लम्बा बाँस भूमि में गाढ़कर कोई स्त्री उस पर बंदरिया की भाँति अनायास ही चढ़कर उसके अग्रभाग पर खड़े होकर विविध प्रकार के चक्राकार भ्रमण आदि करतब दिखाती थी।[4]

---

१. र० स० पृ० ५०–५३। २. वही श्लो० २०१, २०२।
३. वही श्लो० २१०। ४. वही श्लो० २१२।

इन खेलों को खेलने वाली स्त्रियो का वेश इस प्रकार होता था कि उनके मनोहर ऊरूयुगल आधे दीखते थे। वक्ष स्थल को इस प्रकार ढँकती थी कि स्तन भाग कुछ दीखता रहे। गले में केवल मगलतन्तु होता था। केशो की वेणी बना लेती थी। इस प्रकार प्राय. सभी अग खुले रहते थे।

इन अवसरों पर किसी प्रबन्ध (कथा विशेष) को भी दो चार व्यक्ति मिलकर खेला करते थे। रससदन भाण मे 'दारिका वध' नामक किसी प्रबन्ध का अभिनय किया गया है।[१] मदनगोपालविलास भाण मे विट रामायण का अभिनय करते हुए नटों को देखता है जिसमे सीता-हरण का प्रसग अभिनीत किया जा रहा था।[२]

इस प्रकार भाणों मे आज की ही भाँति अन्तर्द्वार तथा बहिर्द्वार दोनों ही प्रकार की कीडाओं का विस्तारपूर्वक विपुल वर्णन मिलता है।

---

१. श्लो० २२०, २२१। २. पृ० ३०, ३१।

भाण रचना का लक्ष्य तथा निष्कर्ष

निस्सन्देह भाण साहित्य भोग एवं वासना परक है। वेश्या, वेशजीवन, शृंगार, कामसुख, परस्त्रीगमन आदि का जितना विशद और व्यापक वर्णन यहां है उतना सम्भवतः भारत के किसी अन्य साहित्य मे नही है। इस साहित्य का उद्देश्य जैसा कि प्रथम अध्याय मे देखा गया है—जन साधारण की सहज कामवृत्ति का यथातथ्य वर्णन एव मनोरजन है।

किन्तु इस इतने विपुल साहित्य का इतना ही उद्देश्य नहीं हो सकता। मनोरजन तो सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर प्रत्येक साहित्य का उद्देश्य होता है। किन्तु उसके मूल में साहित्यकार का एक विशिष्ट अभिप्राय भी रहता है। यह अभिप्राय शब्दो द्वारा उतना नहीं जितना घटनाओ के परिणाम द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। भाणों की अनेक आवृत्तियों के अनन्तर लेखक इस परिणाम पर पहुँचा है कि वास्तव मे भाण दुर्बलताओं से पीड़ित समाज का चित्रण करता है। मानव की सहज वृत्तियों का यथातथ्य वर्णन, गणिकाजीवन का उद्दामवासनात्मक चित्रण, पुरोहित, पौराणिक एव ज्योतिषियों के आडम्बर एव आचारभ्रष्टता के निदर्शन आदि यहाँ पूर्वपक्ष के रूप में है। इन दोषों का उद्घाटन करके, तद्गत बुराइयो तथा हानियों के प्रकाशन से समाज को उस ओर प्रवृत्त न होने की शिक्षा, वेश्याओं की धन लोलुपता, उनके अस्थायी तथा कपटयुक्त प्रेम के वर्णन द्वारा जन साधारण को उससे बचने का उपदेश ही सिद्धान्तपक्ष है। भाणों की शैली यथार्थवादी व्यग्य प्रधान होती है। इसलिये मनोरजन और शिक्षा दोनों ही इनमे रहते हैं। तथाकथित शिष्ट समाज का प्रच्छन्न जीवन उजागर करने की विशेषता जितनी भाणों में है उतनी अन्य साहित्य विधाओं में नही मिलेगी।

इस पक्ष के समर्थन के दो आधार है। एक तो मिश्रभाण का होना और दूसरे प्रायः समस्त भाण साहित्य में यत्र तत्र वेश्याओं की धन लोलुपता, उनके कृत्रिम प्रेम की निन्दा का वर्णन। मिश्रभाणों के कथानक दो प्रकार के हैं। एक तो नायक नायिका के सामान्य प्रेम की भगवान् कृष्ण और राधा के प्रेम में परिणति तथा तत्परक वर्णन और संकेत। मुकुन्दानन्द इस प्रकार के भाणों का प्रतिनिधि भाण है। दूसरे प्रकार के मिश्रभाणों में वेश्या और वेशजीवन के वर्णन के साथ ही ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सत्संग आदि की महिमा तथा उपदेश का भी प्रत्यक्ष वर्णन है। दूसरे शब्दो में प्रथम प्रकार के जीवन की कृत्रिमता और अस्थिरता के साथ ही दूसरे प्रकार के जीवन की वास्तविकता और चिरस्थायिता का भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। हरिविलास इस प्रकार के कथानक का प्रतिनिधि भाण है। इन दोनों ही प्रकार के कथानकों में सिद्धान्त पक्ष स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

सिद्धान्त पक्ष के समर्थन का दूसरा आधार है भाणों में यत्र तत्र विषयाभिलाष, परस्त्रीगमन, वेश्या एवं उनके कृत्रिम व्यवहार की निन्दा।[1] इस प्रकार का वर्णन प्रायः प्रत्येक भाण में किसी न किसी रूप में अवश्य मिल जाता है। व्यंग्य प्रधान वर्ग के श्यामला भाण का तो समस्त कथानक ही इस प्रकार का है जिसमें स्पष्ट ही समाज के दोषों का वर्णन करते हुए इनसे बचने का उपदेश दिया गया है।

अत कहा जा सकता है कि भाणों में सामाजिक दोषों एवं बुराइयों का पूर्वपक्ष के रूप में यथातथ्य वर्णन करके सिद्धान्त पक्ष के रूप में कभी-कभी एक दो वाक्यों में उनकी निन्दा एवं उनमें प्रवृत्त न होने का संकेत कान्तासम्मित उपदेश का उत्तम प्रकार है।

---

१. (क) क्व पणावधिकं प्रेमनटनं पण्ययोषिताम्।
पल्लवेषु परस्त्रीणां क्व च नैसर्गिकी रसः॥ (मुकुन्दा० श्लो० १३९)

(ख) शीलं नाद्रियते कुलं न मनुते नैवानुरुन्धे गुरू—
न्नारीणां कुलदेवता किल पतिस्तं चाप्यहो मुंचति।
किं ब्रूमः पण्ययोषितः पुनरसावन्योऽनुरागक्रम,
स्वप्राणानपि जातुचिन्न गणयत्येषा विटार्थे यतः॥
(मुकुन्दा० श्लो० १४०)

(ग) इष्टार्थसिद्धये पूर्वं कुर्वन्ति शपथान् बहून्।
सिद्धे पुनर्विचेष्टन्ते विपरीतं हि योषितः॥ (र० स० श्लो० १३५)

(घ) तृप्तिः क्व भद्रे विषयानुभूतौ पुनः पुनर्वर्धत एव कांक्षा।
देदीयमानेन घृतेन वह्निः प्रवर्धते जातु न शान्तिमेति॥
(र० स० श्लो० १०९)

(ङ) एकं भ्रुवोर्विलसितैरितरं कटाक्षै—
राभाषणैरपरमन्यमपि स्मितेन।
आवर्जयन्ति हि तथा गणिका यथा ते
स्वस्वैकदत्तहृदया इति विश्वसन्ति॥ (शृं० वि० श्लो० ५७)

(च) तदेतासु कदाचिदपि न विश्वसनीयं पुरुषेण। (र० स० पृ० ४७)

(छ) अहो अविश्वसनीयानि खलु गणिकाजनस्य हृदयानि।
(उभयाभि० पृ० १३५)

तथा

(ज) र० स० श्लो० ४०, १६१, १८८। अ० जी० पृ० २०।
व० ति० पृ० १०। अ० वि० पृ० ३४।
उभयाभि० श्लो० १५, १९, २०, २१, २५। हृ० वि० पृ० ५१।
पा० ता० पृ० १५४ तथा श्लो० ३५, ४०। शृं० को० पृ० ७, ८।
शृं० सु० श्लो० २२।
कं० वि० पृ० ४१।

इस प्रकार प्रायः समस्त उपलब्ध भाण साहित्य का पर्यालोचन करने के बाद निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि शृंगारपरक होने से कोमलमति, अल्पवयस्क अध्येताओं के लिये अधिक उपयोगी न होते हुये भी प्रौढ सहृदयों का अत्यधिक मनोरजन करने वाला यह एक शिक्षाप्रद सरस, रोचक साहित्य है। अल्प श्रम, द्रव्य एवं समय साध्य होने से अभिनेयता की दृष्टि से भी भाण अत्यन्त उपयोगी है। इनके वर्णनों में सरलता, सरसता तथा रोचकता इतनी अधिक है कि एक बार आरम्भ करके पाठक बिना समाप्त किये छोड़ नहीं सकता। यह साहित्य इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि ईसापूर्व से २०वी शती के आरम्भ तक के सुदीर्घ काल तक इसकी धारा अक्षुण्ण बनी रही। किन्तु वर्तमान काल मे इस इतने जन-प्रिय साहित्य की रचना क्यो मन्द पड़ गई—नही कहा जा सकता। सम्भवतः मनोरंजन के अन्य साधनो—सिनेमा, रेडियो आदि के विकास के फलस्वरूप भाण साहित्य का स्रजन समाप्त हो गया हो। निःसन्देह संस्कृत भाषा और साहित्य का यह एक अपने मे पूर्ण, सुसगठित, सुसमृद्ध तथा अद्‌भुत अंश है जो अब तक प्रायः उपेक्षित ही रहा है।

कुछ विशिष्ट लोकोक्तियाँ

(अ)

	भाण	पृ०
अनागतसुखाशया प्रत्युपस्थितसुखत्यागो न पुरुषार्थ	प० प्रा०	३०
अपि शक्नोषि कालभुजगमान्मणिमादातुम्	श्रृं० ति०	८
अरण्यचन्द्रिकां मा कुरु करभोरु, सुकुमारतरं शरीरम्	श्रृं० स०	१०
अयं खलु भवान् नद्या तीर्णायां नाविकमवमति	श्रृं० भू०	१७
अविचिन्त्य फल वल्ल्यास्त्वया पुष्पवध. कृत.	पा० ता०	१८४
अविश्वसनीयानि खलु गणिकाजनस्य हृदयानि	उभयाभि०	१३५
अहो, साधुतरे संग्रामे चापस्य ज्याभगः	श्रृ० भू०	११
असस्थित एव कर्णं दष्टवानसि	अ० जी०	४३
आपणमापणमध्यास्ते लोक.	श्रृ० स०	१७
आम्रान् पृष्ट. कोविदारान् आचष्टे	पचा० प्र०	२१
आ , कथमिव नवनीतोत्पादनसमये दधिस्थालीभंगः	म० भू०	५८
आलयघण्टामणिनाशेऽपि अर्चकस्य का हानि.	श्रृ० स०	१७

(इ)

इदं खलु वर्षर्तु ज्योत्स्नादर्शनम्	प० प्रा०	४७
इद खलु भवता समुद्राभ्युक्षण क्रियते यद्वागीश्वरंवाग्भिरर्चय	पा० प्रा०	११
इह खलु कृतघ्नता सर्वपापीयसी	धू० वि० सं०	१०६
इक्षुक्षामवति ग्रामे मधूक शर्करायते	अ० वि०	११४

(उ)

उपवीणित एष गर्दभ.	पा० ता०	२४६

(ए)

एकाक्षपातमात्रेण धनदस्यापि विभवहरणसमर्थेन द्यूतेन क्षपितो भवाना	उभयाभि०	१३८
एति जीवन्तमानन्दो नर वर्षशतैरपि	पा० ता०	१५३

(क)

कथं वराहमारुह्य पुरीषं निषेद्धव्यम्	मुकुन्दा०	४२
कथयति कनक सौरभ जातम्	श्रृं० भू०	१२
करिस्कन्धाधिरूढस्य कियद्दूरे हि चूलिका	पंचा० प्र०	१०
कष्टं भोः, कोकिला खलु कौशिकमनुवर्तते	पा० ता०	१५४
कस्य वा गच्छतः स्खलनं न भवति	श्रृं० भू०	११
काकोऽपि रटतु घटीयन्त्र च प्रवर्तताम्	श्रृं० भू०	१०

	भाण	पृ०
कितवेष्वपि नाम कैतवमारभ्यते	पा० प्रा०	२३
किं जलताडनेन जलं भिद्यते	शृं० वि०	७३
किं वसन्तमासो न पुष्पोपहारमर्हति	प० प्रा०	११
किं वा भवेदतिचिरं चिरबन्धपेटीसंरोधवत्यपि विमुक्तविषा भुजंगी	शृं० स्तम्बक	४३
किमिति त्वया दिवा दीपप्रज्वालनं क्रियते	प० प्रा०	८
किमिदं गोपलगृहे तक्रविक्रयः क्रियते	प० प्रा०	२२
किमिदमाकाशरोमन्थनं क्रियते	प० प्रा०	१०
कुतः करकंकणनिरीक्षणे दर्पणापेक्षा	पंचा० प०	१७
कुतो मन्दाकिनी हंसः कुल्याया रन्तुमीहते	अ० जी०	६३
कुंजरमारुह्य किमिति कुटिलद्वारपथेन गन्तव्यम्	मुकुन्दा०	४२
कुमुदाननवबोधयन् दिवाचन्द्रलीलयातिक्रामसि	प० प्रा०	१२
कुम्भदासीकृतकरुदितं दुश्चिकित्सितम्	धू० वि० सं०	६७
कुलत्थयूषार्थिनस्तव कुतो मन्दुरातुरगाधिकारः	मुकुन्दा०	४२
कुलांगना इत्येव न विश्वसनीया स्त्रीजातिः	शृं० वि०	१७
कृतं मूले तरौ हन्त फलोदयमपेक्षते	पंचा० प्र०	३३
(ख)		
खदिरमूले कपित्थलाभ इव चिरादन्विष्यमाणो भवान् दिष्ट्या लब्धः	व० ति०	६८
(ग)		
गणिकाजनो नाम कामुकजनस्य निष्प्रतीकारा ईतयः	उभयाभि०	१३५
गुणवान् खलु गुणवता सन्निकर्षः	पा० ता०	२१६
गुरवः खलु निगड कुलस्त्रीणाम्	व० ति०	२३
(च)		
चिरकालतस्करः कदाचिल्लभ्यत एव	अ० स०	२६
(द)		
दाक्षिण्यं विरूपामपि स्त्रियं भूषयति, सुरूपामप्यदाक्षिण्यं दूषयति	धू० वि० स०	१०५
(ध)		
धूर्तानामधिकशताः पणा भवन्तु	पा० ता०	२५८
(न)		
न दीपेनाग्निमार्गणं क्रियते	प० प्रा०	३०
न सूर्यो दीपेनान्धकारं प्रविशति	प० प्रा०	२३
न वायसोच्छिष्टं तीर्थजलमुपहतं भवति	प० पा०	३२
न वानरो वेष्टनमर्हति गर्दभो वा प्रवहणं वोढुम्	पा० ता०	१५५
न प्राप्नुवन्ति यतयो रुदितेन मोक्षम्	पा० ता०	१५१

	भाण	पृ०
नवनीतोच्चारणवेलायां भाण्डस्य भंगः	शृं० वि०	१३७
ननु अयमेव गण्डस्योपरि पुलकोद्भेद.	शृं० मं०	
ननु इदमेव स्खलितस्योपरि स्खलितम्	शृं म०	
ननु अयमेव नवीनव्रणानामुपरि लवणरसनिष्यन्दः	शृं० म०	
नहि खलु मृगमदोपलब्धिः दीपालोकमपेक्षते	पंचा० प्र०	२०
नियतिलब्धान्यपि निक्षेपधनानि लोष्टवदवभासन्ते दुर्भगाणाम्	पंचा० प्र०	१६
(प)		
पिता नाम खलु सयौवनस्य पुरुषस्य मूर्तिमान् शिरोरोगः	धू० वि० सं०	७१
पुण्यैरेव समुन्मिषन्ति न पुन. यत्नेन संपत्तयः	पंचा० प्र०	२४
पुराणपादप एव सारसर्वस्वम्	अ० वि०	६३
(भ)		
भो वेश्या लिपिकारश्च छिद्रप्रहारित्वात् तुल्यमुभयम्	धू० वि० सं०	६६
(म)		
मदनीयं खलु पुराणमधु	प० प्रा०	२७
महान्तः खलु महतामारम्भाः	पा० ता०	२४१
मार्गे गच्छतो मन्दिरनिर्माणं सुकरम्	शृं स०	२६
मृगतृष्णिकाभिया वनाद् व्रजतो दावानलपरिवेशः	शृं मं०	
मृतमपि पुरुषं सजीवयेद् वेश्यामुखरसः	ध० वि० सं०	७३
(र)		
रमणीयवस्तुकैभक्रानि न मृष्यते पद्मयोनिः	अ० वि०	३८
रागो हि रंजयति कितवत्तां न शक्तिः	पा० ता०	१६१
(व)		
वल्लकीमुल्मुकेन मा वादीः	पा० ता०	१५५
वामशीला हि नार्यः	धू० वि० सं०	६८
वायस इव ग्रामोपान्त न मुंचति	धू० वि० स०	८७
विनय खलु भूषणं विद्याया.	व० ति०	४३
विद्यया ख्यापिता ख्याति	धू० वि० सं०	६३
विभ्रतः खलु भारः	शृं० सं०	२६
वृश्चिकभिया विद्रवतो लेलिहानीमुखे विनिपातः	शृं० मं०	—
(श)		
शिरोवेदना नाम गणिकाजनस्य लक्षव्याधियौतकम्	पा० ता०	१८०
शिष्यप्रसिद्धि र्यशसे गुरूणाम्	शृं० वि०	६३

	भाण	पृ०
(स)		
सज्जनाराधनं धनम्	धू० वि० सं०	६३
समधु सर्पिष्कं हि परमन्नं सोपदंशमास्वाद्यतरं हि भवति	प० प्रा०	५
समुपश्लोकित एष वानर.	पा० ता०	२४६
सर्वमचिरादत्यायतं छिद्यते	प० पा०	१५
सर्वोऽपि विविक्तकाम. कामी भवति	प० प्रा०	५२
सुमनसो मुसलेन मा क्षौत्सीः	पा० ता०	१५५
स्थाने खलु गर्दभस्य कुसुमराशिमनाहृत्य अवकरकूटभस्मन्युपावर्तनम्	पंचा० प्र०	१६
स्वर्गायति न परिहासकथा रुणद्धि	पा० ता०	१५१
(ह)		
हन्त हन्त, को वा प्रादुर्भावसमय एव नवनीतस्य भग्नवान् दधिस्थालीम्	शृं० ति०	६

कलत्रपत्रिका के कुछ निदर्शन

रतिशेखर द्वारा वसन्तसेना को दी गई कलत्रपत्रिका

स्वस्तिश्रीमदयत्ननिर्जितनिखिलप्रपंचे पद्माक्षपद्मभवभवाधांगवदनोरःस्थलीप्रतिष्ठित-निजजयध्वजे पंचबाणसार्वभौमे सार्वभौमपदमनुभवति सति प्रसन्नवेंकटेशवसन्तोत्स-वरगमण्डपे वसन्तमासे पौर्णिमायां नानादेशागतनटविटविदूषकप्रमुखसामाजिकसन्निधौ तंजापुरवास्तव्यरतिशेखरेण वसन्तसेनायै दत्ता कलत्रपत्रिका—

एषा वत्सरमस्तु मे प्रणयिनी दास्ये पणानामहम्
साहस्रं प्रतिमासमंशुकयुगं वीटीशतं प्रत्यहम्
माल्यं चंदनमन्यदप्यथ यथाकामं प्रदास्येददा—
त्वेषानंगविलाससंभवममन्दानन्दमभ्याहृतम् ।

इत्थमंगोकृतमनंगशेखरेण, एवमुरारीकृतं वरदराजेन इदमुपश्लाघितं रंगराजेन, इत्थमवधारितं शृंगाराचार्येण उभयाभिलाषपूर्वं लिखितमिदमभिरक्ष्यतां सकेतपत्र-मिदम् (अ० वि० पृ० १३३—१३५)

भुजंगशेखर द्वारा कांचनलता को दी गई कलत्रपत्रिका

स्वस्ति श्रीमति मन्मथे सति विभौ तन्नाम्नि संवत्सरे
मासे तत्सचिवे तदीयसुहृदा पूर्णेन भोज्ये तिथौ
वेश्यायै वितरामि कांचनलतानाम्न्यै कलत्रीक्रिया-
चेटीमेष भुजंगशेखरविटो हालास्यपुर्यां वसन्
इयमस्तु कांचनलता वत्सरमेकं कलत्रं मे
प्रदिशामि परिपणार्थे प्रतिदिनमस्याः शतं तु दीनारान्

किंच

दद्यामस्यै मृगमदकुंकुमकर्पूरगन्धमाल्यानि
ताम्बूलान्यपि नित्यं प्रतिमासं क्षौमयुगलं च
इयमन्यमपेक्षेत मध्ये यदि सुमध्यमा
यावज्जीवं कलत्रं मे भवेत् परिपणं विना
एवं वेत्ति वसन्तक इत्थं जानाति कलहंसः
विदितमिदं मालत्या विज्ञातमिदं च वृद्धकमलिन्या
इत्थं भुजंगशेखरकांचनलतयोरनुज्ञया लिखितम्
मणलूरुपुराश्रयिणा माधवपुत्रेण चित्रलेखेन ।

(शृं० ति० पृ० ३४—३५)

पुस्तक–सूची

भाण-सूची

संकेत

गा० ओ० इं—गायकवाड ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा
भं० ओ० रि० इं०—भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना
ओ० रि० इ०—ओरियन्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, मैसूर
म० सं० का० ला०—महाराजा सस्कृत कालेज लाइब्रेरी, मैसूर
ग० ओ० मैं० ला०—गवर्नमैन्ट ओरियन्टल मैनस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास
आ० ला०—आड्यार लाइब्रेरी मद्रास
स० म० ला०—सरस्वती महल लाइब्रेरी तंजौर
यु० मैं० ला०—यूनिवर्सिटी मैनस्क्रप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम्

भाण

अनंगतिलक	: रंगनाथ, पाण्डुलिपि, देवनागरीलिपि, संपूर्ण, आर-२३०८—ग० ओ० मैं० ला०
अनंगजीवन	: कोचुन्निभूपालक, प्रकाशित, यु० मैं० ला०, त्रिवेन्द्रम्, १९६०
अनंगजीवन	: वरद, पाण्डुलिपि, देवनागरीलिपि, संपूर्ण, ५२८१ बी, स० म ०ला०
अनंगब्रह्मविद्याविलास.	: वरदाचार्य, पाण्डुलिपि, तेलगू, संपूर्ण, डी-१२४३०-ग० ओ० मैं० ला०
अनंगमंगल	: श्रीनिवास, पाण्डु०, ग्रन्थलिपि, संपूर्ण, ३७६६-ओ० रि० इं०
अनंगविजय	: जगन्नाथ, पाण्डु० दे० ना०, संपूर्ण, ५२८० बी, स० म० ला०
अनंगविजय	: शिवरामकृष्ण, पाण्डु०, ग्रन्थलिपि, संपूर्ण, डी-१२४४१, ग० ओ० मैं० ला०
अनंगसंजीवन	· वरद, पाण्डु०, ग्रन्थलिपि, संपूर्ण, २४ एल २०-आ० ला०
अनंगसर्वस्व	: लक्ष्मीनृसिंहाचार्य, पाण्डु०, तेलगूलिपि, संपूर्ण, १०६४४ बी, स० म० ला०
उभयाभिसारिका	: वररुचि, शृंगारहाट, में वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सपादित
कंदर्पदर्पण	:श्रीकठ, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, ५२७८ बी, स० म० ला०

कंदर्पविजय	: घनगुरुआर्य, पाण्डु०, ग्रन्थ, सपूर्ण, डी-१२५०४-ग० ओ० मै० ला०
कदर्पविजय	: उद्दण्डकवि, पाण्डु०, नन्दिनागरीलिपि, अधूरा, १३४६० बी, ग० ओ० इ०
कर्पूरचरित	: वत्सराज, रूपकषट्कम्, मे सी० डी० दलाल द्वारा सपादित
कामकलाविलास	: प्रधानवेंकभूपति, पाण्डु० दे० ना०, सपूर्ण, बी-१६२ ओ० रि० इ०
कुबलयानन्द	: रामचन्द्र कवि, पाण्डु, ८-आइ २७-आ० ला०
कुसुमायुधजीवितम्	: रगार्य, पाण्डु, ग्रन्थ, सपूर्ण, आर-८७२५-ग० ओ० मै० ला०
चन्द्ररेखाविलास	: शकर, पाण्डु० तेलगू, संपूर्ण, डी-१२५१६- ग० ओ० मै० ला०
चातुरीचन्द्रिका	: वेकटार्य, पाण्डु०, दे० ना० विश्रृंखलित, आर-१६४६-ग० ओ० मै० ला०
तरुणभूषण	: शथकोप, पाण्डु०, दे० ना०, सपूर्ण, आर- ५२०४-ग० ओ० मै० ला०
धूर्तविटसवाद	: ईश्वरदत्त, श्रृंगारहाट में वा० श० अग्रवाल द्वारा सपादित
पद्मप्राभृतक	: शूद्रक, श्रृगारहाट में वा० श० अग्रवाल द्वारा सपादित
पल्लवशेखर	: अनन्ताचार्य, पाण्डु०, तेलगू, ७१४- म० सं० का० ला०
पादताडितक	: श्यामिलक, श्रृंगारहाट मे वा० श० अग्रवाल द्वारा सपादित
पंचबाणसिद्धान्तबाण	: श्रीनिवासकवीन्द्र, पाण्डु०, ग्रन्थ, अधूरा, ६६६४ ए गा० ओ० इ०
पंचायुध प्रपच[1]	: त्रिविक्रम, पाण्डु०, दे० ना०, सपूर्ण, डा० सुरेन्द्रनाथ शास्त्री के निजी पुस्तकालय से प्राप्त
पंचबाणविजय	: रगार्य, पाण्डु० ग्रन्थ, सपूर्ण, डी-१२५३८-ग० ओ० मै० ला०
भद्रकाली-केलि-यात्रामह-भाण	: कोटिलिंगयुवराज, पाण्डु०, मलयालम, एल-१८५०-यु० मै० ला०

१. यह भाण-सी-१०८२-ओ० रि० इं० तथा ७७७७-गा० ओ०इं० में भी प्राप्त हुआ है ।

भाणनाटक	: पाण्डु०, मलयालम, विश्रृंखलित, १२९- सं० ओ० रि० इ०
भाणत्रयी	: पाण्डु०, मलयालम, अधूरा, १३७४६-गा० ओ० इं०
मदनगोपालविलास	: स्वयंभुनाथराय, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, एस, बी-१०९८- ओ० रि० इ०
मदनभूषण	: अप्पायज्वा, पाण्डु० दे० ना०, संपूर्ण, १०६५३ बी, स० म० ला०
मदनमहोत्सव	. श्रीकंठ, पाण्डु०, दे० ना०, अधूरा, आर-१५७१०-ग० ओ० मैं० ला०
मदनमजरी परिणयः	: वैद्यनाथ, पाण्डु०, दे० ना०, सपूर्ण, एस-बी-११२६७-ओ० रि० इ०
मदनसाम्राज्य	: भुजंगकवि, पाण्डु०, अधूरा, बी० १५५-ओ० रि० इ०
मदनाभ्युदय	: कृष्णमूर्ति शास्त्री, पाण्डु०, तेलगू, संपूर्ण, आर-२११४-ग० ओ० मैं० ला०
मदनसंजीवन	: घनश्यामकवि, पाण्डु०, दे० ना० विश्रृंखलित, ६६०-स० म० ला०
मदनविलास	: नंगनाथ, पाण्डु०, तेलगू, विश्रृंखलित, आर-१८७६ बी, ग० ओ० मैं० ला०
महिषमगल	· महिषमंगल नंपूर्तिरि, पाण्डु०, मलयालम, विश्रृंखलित, एल-१६८ वी० यु० मैं० ला०
मुकुन्दानन्द	: काशीपति, प्रकाशित- काव्यमाला १६-नि० सा० प्रे० बंबई, १९२६
रतिभूषण	: पाण्डु०, तेलगू, त्रुटित, डी-१६०८८-ग० ओ० मैं० ला०
रसरत्नाकर	: जयन्त, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, आर-३३०७-ग० ओ० मैं० ला०
रससदन	: युवराज, प्रकाशित, का० मा० ३७-नि० सा० प्रे० बंबई, १९२२
रसिकतिलक	: मद्दुराम, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, टी-८०९-यु० मैं० ला०
रसिकजनमानसोल्लास.	: श्रीनिवासाचार्य, पाण्डु०, तेलगू०, संपूर्ण, २४३-म० सं० का० ला०
रसिकजनरसोल्लासः	: वेंकट, पाण्डु०, तेलगू, विश्रृंखलित, डी-१२६३३-ग० ओ० मैं० ला०
रसोल्लास	: श्रीनिवासाचार्य, पाण्डु०, ग्रन्थ, संपूर्ण, १०६५२ बी, स० म० ला०
रसोदार	: अण्णयार्य. पाण्डु०, तेलगू, १२८१- ओ० रि० इ०
रंगराज	: गोपालराय, पाण्डु०, ग्रन्थ, अधूरा, १९- आ० ला०

रंगराजचरित	: श्रीनिवासाचार्य, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, आर-५३८४-ग० ओ० मै० ला०
रंगनाथ भाण	: श्रीनिवासाचार्य, पाण्डु०, नन्दिनागरीलिपि, ५९७-ओ० रि० इ०
लीलादर्पण	: पद्मनाभ, पाण्डु०, दे० ना०, सपूर्ण, आर-२३१०-ग० ओ० मै० ला०
वर्तमान भाण	: पाण्डु०, मलयालम, अधूरा, ७८९३- गा० ओ० इ०
वसन्ततिलक	: वरदाचार्य, जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सपादित, कलकत्ता, १८७२
वसन्नतिलक	: भास्कर कवि, पाण्डु०, नन्दिनागरी, सपूर्ण, ५२० ओ० रि० इ०
वसन्ततिलक	: नृसिह सूरि, पाण्डु०, तेलगू, आर-२६१६- ग० ओ० मै० ला०
वसन्ताभरण	: श्रीनिवास, पाण्डु० दे० ना०, सपूर्ण आर-८३४८-ग० ओ० मै० ला०
वसन्तोत्सव भाण:	: वसन्तराज, पाण्डु०, मलयालम, जीर्णशीर्ण, एल ११६२ ए, यु० मै० ला०
वल्लविपल्लवोल्लास:	: पाण्डु०, तेलगू, अधूरा, आर-२११५-ग० ओ० मै० ला०
वसन्तभूषण	: वरदचार्य, पाण्डु०,दे० ना०, सपूर्ण, आर-७७५-ग० ओ० मै० ला०
विलासभूषण	: तिरुमल्लाचार्य, पाण्डु०, दे० ना०, आर-१५३५५-ग० ओ० मै० ला० ।
विटनिद्राभाण	: त्रिविक्रम, पाण्डु०, दे० ना०, सपूर्ण, टी-३३०-यु० मै० ला० ।
विटराजविजय	: कोचुन्नि भूपालक, पाण्डु०, मलयालम, संपूर्ण, ५ ६०२ ए, यु० मै०ला० ।
शारदातिलक	शकर कवि, पाण्डु०,तेलगू, ६१५-ओ० रि० इं० ।
शारदातिलक	: शेषगिरि, पाण्डु०, तेलगू, संपूर्ण ७७० ओ० रि० इं० ।
शारदानन्दभाण	: श्रीनिवासाचार्य, पाण्डु०, तेलगू, संपूर्ण, डी-१२७०१, ग० ओ० मै० ला० ।
श्रृंगारकोश	: अभिनवकालिदास, पाण्डु०, दे० ना०, सपूर्ण, ५२७६ बी०, स० म० ला० ।
श्रृंगार कोश	. गीर्वाणेन्द्र दीक्षित, पाण्डु०, ग्रन्थलिपि, १०६४२-स० म० ला० ।
श्रृंगारचन्द्रिका	श्रीनिवासकवि, पाण्डु०, दे० ना० ,संपूर्ण, आर-२१९२ ग० ओ ०मै० ला० ।
श्रृंगारजीवन	. वरदाचार्य, पाण्डु०, ग्रन्थ,२१-आ० ला० ।
श्रृंगार जीवन	: अवधान सरस्वती, पाण्डु, तेलगू, १०६५१-स० म० ला० ।

शृंगारतिलक	:	रामभद्रदीक्षित, प्रकाशित, का० मा० ४४-नि० सा० प्रे० बंबई, १९३८।
शृंगारतिलक	:	राघवाचार्य, पाण्डु०, ग्रन्थ, ६५५-म० सं० का० ला०।
शृंगारदीप	:	वेंकटाध्वरिन्, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, आर-७७३०, ग० ओ० मै० ला०।
शृंगारदीपक	:	विंजुमूरिराघवाचार्य पाण्डु०, ग्रन्थ, त्रुटित, डी-१२७०२-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगाराद्वैत	:	अभिनवकालिदास, पाण्डु०, मलयालम, १३७५१ एच, गा० ओ० इ०।
शृंगारपवन	:	वैद्यनाथ, पाण्डु, ग्रन्थ, डी-१२७०३-ग० ओ० मै०ला०।
शृंगारभूषण	:	वामनभट्टबाण, प्रकाशित, का० मा० ५८-नि० सा० प्रे० बंबई, १९२७।
शृंगारभूषण	:	भट्टनारायण पडा, पाण्डु०, ग्रन्थ, ४३१-मं० ओ० रि० इं०।
शृंगारभूषण	:	अनन्ताचार्य, पाण्डु०, तेलगू, २४ सी-आ० ला०।
शृंगारभूषण	:	वेंकटाचार्य, पाण्डु०, ग्रन्थ, २४-आ० ला०।
शृंगारमंजरी	:	रतिकर, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, आर-५२०१-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगारमंजरी	:	वामनभट्टबाण, पाण्डु०, तेलगू, त्रुटित, आर-४८८५-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगारमंजरी	:	विश्वनाथ,पाण्डु०, तेलगू, अधूरा, आर-१८७६ ए, ग० ओ० मै० ला०।
शृंगारमजरी	:	वेंकटनारायण, पाण्डु०, दे० ना०, आर-९९६९-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगाररत्नाकर	:	सुन्दरताताचार्य, पाण्डु०, ग्रन्थ, संपूर्ण, आर-८१७४-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगाररस	:	पाण्डु०, दे० ना०, आर-९९५९-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगाररसभृंगार	:	इन्द्रगन्थिकोंद, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण,-आर-२३०९-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगाररसोदय	:	रामकवि, पाण्डु०, तेलगू, ग्रन्थ, डी-१२७०७-ग० ओ० मै० ला०।
शृंगारराजतिलक	:	अविमाशीश्वर, पाण्डु०, ग्रन्थ, डी-ग० ओ ०मै ला०।
शृंगारलीलातिलक	:	भास्कर, पाण्डु०, मलयालम, एल-९०४ए, यु० मै० ला०।
शृंगारविलसित	:	नारायण कवि, पाण्डु०, कन्नड, बी-२६१-ओ० रि० इं०।

शृंगारविलास	:	साम्बशिव, पाण्डु०, दे० ना०, संपूर्ण, एस बी-१०७२-ओ० रि० इं० ।
शृंगारशेखरभाण	:	रामानुजकवि पाण्डु०, ग्रन्थ त्रुटित, आर-५३७४बी-ग० ओ० मै० ला० ।
शृंगारसर्वस्त	:	नल्लादीक्षित, प्रकाशित, का० मा० ४७-नि० सा० प्र० बंबई, १९२५ ।
शृंगारसर्वस्व	:	अनन्तनारायणसूरि, पाण्डु०, ग्रन्थ, ५१३८-ग० ओ० मै० ला० ।
शृंगारसर्वस्व	:	स्वामि शास्त्री, पाण्डु०, तेलगू, डी१२७०९-ग० ओ० मै० ला० ।
शृंगारसुधाकर	:	अश्वतितिरुनालराम वर्मा, प्रकाशित, यु० मै० ला० त्रिवेन्द्रम् १९४५ ।
शृंगारसुधाकर	:	रामचन्द्र, पाण्डु०, तेलगू, आर-११३१-ग० ओ० मैला० ।
शृंगारसजीवन	:	शथजित, पाण्डु०, दे० ना०, आर-२२२९-ग० ओ० मै० ला० ।
शृंगारस्तवक	:	नृसिंह, पाण्डु०, दे० ना ०, संपूर्ण, ५२९८-बी, स० म० ला० ।
शृंगार शृंगाटक	:	रंगार्य, पाण्डु०, दे० ना०, आर-१५४१३-ग० ओ० मै० ला० ।
शृंगारसर्वस्व	:	वेदान्तदेशिक, पाण्डु०, ग्रन्थ, संपूर्ण, १०६५० बी, स० म० ला० ।
श्यामला भाण[1]	:	चिन्तामणि, पाण्डु०,दे० ना०, ८२२१-गा० ओ० इं० ।
सरस कविकुलानन्द	:	रामचन्द्र कवि, पाण्डु०, तेलगू, ५४५-२६२ ओ० रि० इं० ।
सारस्वतोल्लास	:	वेंकटरामकवि, पाण्डु०, कन्नड, बी-ओ० रि० इं० ।
संकर्षण भाण	:	पाण्डु०, नन्दिनागरी, अधूरा, १३४३९-गा ०ओ० इं० ।
सप्तकुमारविलास	:	रंगनाथ महादेशिक, पाण्डु०, ग्रन्थ, डी-१२७१९-ग० ओ० मै० ला० ।
हरिविलास	:	हरिदास, पाण्डु०,ग्रन्थ,संपूर्ण डी-१२७३३-ग० ओ० मै० ला० ।

---

१ इस भाण का कुछ अंश रा० ए० सो० बंबई मे भी प्राप्त हुआ है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

अग्निपुराण : कलकत्ता, संवत् १८८२

अभिनवभारती : अभिनवगुप्ताचार्य, गा० ओ० सि० बड़ौदा, द्वि० खण्ड १९३५, तृ० खण्ड १९५४

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदास, नि० सा० प्रे० बंबई, १९३३

अमरकोष : बांबे संस्कृत सिरीज़, १९०७

अवन्तिसुन्दरी कथा : दण्डी, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज़, १९५४

आस्पेक्ट्सआफ़संस्कृत लिटरेचर : एस० के० डे, फर्म-के० एल० मुखोपाध्याय कलकत्ता, १९५९

उत्तररामचरित : भवभूति, चौखम्भा संस्कृत सिरीज़, वाराणसी, १९५३

कथापंचक : पं० क्षमाराव, सहकारी ग्रन्थकार, नवाकालबाड़ी, गिरगांव, बंबई, १९३३

कथामुक्तावली : प० क्षमाराव, न० मा० त्रि० लि० बंबई, शक-१८७७

कथासरित्सागर : सोमदेव, नि० सा० प्रे०, बंबई, १९३०

काव्यालंकार : भामह, चौ० सं० सि० वाराणसी, १९३८

काव्यानुशासन : हेमचन्द्र, नि० सा० प्रे० बबई, १९३४

काव्येन्दुप्रकाश : साहित्यदर्पण पृ० २८७ (नि० सा० प्रे० संस्करण) पर उद्धृत ?

काव्यप्रकाश : मम्मट, भंडाकर ओरियन्टल इंस्टीट्यूट पूना, १९५०

काव्यमीमांसा : राजशेखर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, १९५४

कामसूत्र : वात्स्यायन, जयमंगलाटीका, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास लक्ष्मीवेंकेटेश्वर प्रेस, कल्याण, बबई, संवत् १९९१

कृष्णचरित : महाराज समुद्रगुप्त, जीवराज कालिदास शास्त्री, गोंडल, काठियावाड़, १९४१

गणिकावृत्तसंग्रह : स्टर्नबक द्वारा संपादित, विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन मंडल, होशियारपुर, पंजाब, १९५३

चतुर्भाणी : रामकृष्ण तथा रामनाथ शास्त्री द्वारा संपादित, पटना, १९२२

त्रिकाण्डशेषकोश : पुरुषोत्तम, बांबे संस्कृत सिरीज़

दशकुमारचरित : दण्डी, चौ० सं० सि०, वाराणसी, १९४८

दशरूपक : धनंजय, चौ० सं० सि०, १९५५

सन्दर्भ ग्रन्थ

दि डेट ऑफश्यामिलकस् पाद्मताडितक : ज॰ रा॰ ए॰ सो॰ १९४६

नंजराजयशोभूषण : नृसिंह कवि (अभिनव कालिदास) गा॰ ओ॰ सि॰ बड़ौदा १९२०

नाटकलक्षणरत्नकोष : (अंग्रेजी अनुवाद) डिलन तथा वी॰ राघवन् कृत अमेरिकन फिलासफिकल सोसा॰, १९६०

नाटकलक्षणरत्नकोष : सागरनन्दिन्, एम॰ डिलन द्वारा संपादित, आक्सफोर्ड, १९३७

नाट्य प्रदीप : सुन्दरमिश्र, अप्राप्त (पांडुलिपियो मे उद्धृत)

नाट्यशास्त्र : भरत, काव्यमाला ४२, नि॰ सा॰ प्रे॰ बबई, १९४३

नाट्यदर्पण : रामचन्द्र गुणचन्द्र द्वारा सपादित, गा॰ ओ॰ सि॰ बड़ोदा, १९२८

पदमजरी : हरदत्त, काशी संस्कृत सिरीज

प्रतापरुद्रयशोभूषण : विद्यानाथ तथा कमलाशंकर प्राणशकर द्विवेदी द्वारा संपादित, बाँबे स॰ सि॰; १९०९

प्रबन्धचिन्तामणि : सिंघी संस्कृतमाला, बंबई

फोर सस्कृत प्लेज : एफ. डब्ल्यू. थामस, शताब्दी अंक, ज॰ रा॰ ए॰ सो॰, लन्दन १९२३

बिबिलियोग्राफी ऑफ संस्कृत ड्रामा : कोलंबिया युनिवर्सिटी, इन्डो आर्फन सिरीज, भाग ३

भाण एक रूपकप्रकार : के॰ का॰ शास्त्री, गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय अहमदाबाद, १९६३

भारतवर्ष का इतिहास : भगवद्दत्त, वैदिक शोध सस्थान पंजाब, सवत् २००३

भाव प्रकाशन : शारदातनय, के॰ एस॰ रामास्वामी शास्त्री द्वारा संपादित, गा॰ ओ॰ सि॰ बड़ौदा, १९३०

मत्स्यपुराण : खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई

मन्दारमरन्द चम्पू : श्रीकृष्ण कवि, काव्यमाला ५२, नि॰ सा॰ प्रे॰ बंबई १८९५

मनुस्मृति : पुस्तक मन्दिर, मथुरा, संवत् २०१९

महाभाष्य : पतंजलि, चौ॰ सं॰ सि॰ १९५४

महाभाष्य-उद्योत : नागेशभट्ट, नि॰ सा॰ प्रे॰, बंबई, १९३२

महाभाष्य प्रदीप : कैय्यट, नि॰ सा॰ प्रे, बंबई

मालविकाग्निमित्र : कालिदास, पापुलर बुक स्टोर, सूरत, १९५०

मृच्छकटिक : शूद्रक, चौ॰ सं॰ वि॰, १९५४

रत्नावली नाटिका	: हर्षवर्धन, चौ० सं० सि०, १९५३
रसार्णवसुधाकर	. शिंगभूपाल, टी० गणपति शास्त्री द्वारा संपादित, त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज्, १९१६.
रसगंगाधर	: पंडितराज जगन्नाथ, नि० सा० प्रे बबई, १९३९
रूपकषट्कम्	: सी० डी० दलाल द्वारा संपादित, गा० ओ० सि० बड़ौदा, १९१८
लाज् ऐन्ड प्रेक्टिस आफ् सस्कृत ड्रामा	: एस० एन० शास्त्री, चौ० सं० सि० १९६१
वक्रोक्ति जीवितम्	: कुन्तक, एस० के० डे द्वारा सपादित, कलकत्ता, १९२८
वाचस्पत्यम्	: चौ० स० सि०, १९६२
विवृति	: साहित्यदर्पण पर रामचन्द्र तर्कवागीशकृत टीका, नि० सा० प्रे०, बंबई, १९३९
वियोग वैभवम्	. हरिदास सिद्धान्त वागीश, सिद्धान्त विद्यालय, कलकत्ता, बगाब्द १३५४
वेतालपंचविंशति	: जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सपादित, कलकत्ता, १९२४
वृत्तरत्नाकर	: केदारभट्ट, चौ० स० सि० १९४८
वृहज्जातक	: वराहमिहिर खेमराज श्री कृष्णदास, बंबई
शब्दकल्पद्रुम	: चौ० स० सि०, १९६१
शृंगारहाट (चतुर्भाणी)	: वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा संपादित, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर बंबई, १९५९
शृंगार प्रकाश	: भोजदेव, कर्णाटक पब्लिशिंग हाउस, बंबई, १९४०
सरस्वतीकण्ठाभरण	: भोजदेव, नि० सा० प्रे० बंबई, १९३४
साहित्यदर्पण	: विश्वनाथ, चौ० स० सि०, १९५५
साहित्यसार	: अच्युतराय, नि० सा० प्रे० बंबई, १९०६
सिद्धान्त कौमुदी	: भट्टोजि दीक्षित, नि० सा० प्रे०, बंबई, १९४२
सूक्तिमुक्तावली	: अल्हण, गा० ओ० इं० बड़ौदा, १९३८
संस्कृत ड्रामा	: कीथ, आक्सफोर्ड' १९२४
संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी	: एम० एम० विलियम्स, आक्सफोर्ड, १८९९
स्पोर्टस् इन मिडिवल इंडिया	: एस० एन० शास्त्री, मार्च १९५४
हरिवंशपुराण	: खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई
हलायुध कोष	: प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित, शक—१८७९

सन्दर्भ-ग्रन्थ

हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् १९५३

हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर : कीथ, आक्सफोर्ड, १९२८

हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर : दासगुप्त तथा एस० के० डे, कलकत्ता वि० वि०, १९४७

हिस्ट्री आफ् क्लैसिकल सस्कृत लिटरेचर : एम० कृष्णामाचारी, टी० टी० देवस्थान प्रेस, मद्रास, १९३७

———